गुलामीसे उद्धार।

(टाल्सटाय-विचार-संग्रह ।)

सम्पादक—

मूलचन्द्र अग्रवाल बी० ए०

प्रकाशक—

"विश्वमित्र" कार्यालय,

२१।१ टेमर लेन, कलकत्ता।

प्रथम बार २००० } सन् १९२२ संवत् १९७९ } मूल्य १)

विषय सूची।

प्रस्तावना ।

महात्मा गांधीने भारतमें जो अहिंसात्मक असहयोग आन्दो-
लन आरम्भ किया, उसके कारण रूसके सुप्रसिद्ध काउण्ट
टाल्सटायके सम्बन्धमे भारतीयोंको बहुत कुछ जाननेकी इच्छा
हुई। टाल्सटायकी लिखी हुई पुस्तकें स्वयं महात्मा गांधीने भी
पढ़ी और उनमें प्रकट किये हुए विचार पसन्द किये। रूसी
दार्शनिकने अहिंसात्मक असहयोगका पक्ष बड़ी दृढ़ताके साथ
समर्थन किया है और संसारके सब दुःखोंकी जड़ सरकारोंकी
रचना बतायी है। वे किसी प्रकारकी शासन-प्रणालीके पक्ष-
पाती नहीं, चाहे वह प्रजातन्त्र ही क्यों न हो। वे सरकारोंकी
रचना अस्वाभाविक और शान्तिनाशक मानते हैं। जो लोग
जान-मालकी रक्षाके लिये सरकारोंका अस्तित्व आवश्यक मानते
हैं, उन्हें टाल्सटायने मुंहतोड़ उत्तर दिये हैं। संसारमें जो उत्पन्न
हुआ है, वह भूमिका उसी तरह अधिकारी है जिस तरह जल
और वायुका है। इसी सिद्धान्तको स्वीकार करते हुए टाल्स-
टायने भूमिको सरकारी नहीं, बल्कि सार्वजनिक सम्पत्ति माना
है। मनुष्यपर मनुष्यका शासन टाल्सटायको असह्य है और
उनके मतसे परस्परमें एक दूसरेकी सहायताका सिद्धान्त सामा-
जिक सुव्यवस्थाकी जड़ है। टाल्सटायके विचारोंका संसारमें

मान बढ़ रहा है और स्वतन्त्र देशोंके अधिवासी भी इन विचारों-को ध्यानमें रखकर अपनी निस्सहाय अवस्थाका ज्ञान प्राप्त करने-में समर्थ हुए हैं। टालसटायके विचार रूसी भाषामें प्रकट किये गये हैं और संसारकी भिन्न भिन्न प्रधान भाषाओंमें उनका अनु-वाद प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत पुस्तकमें अंग्रेजी अनुवादसे कुछ विचार एकत्र कर दिये गये हैं। आशा है हमारे देश-वासी उनसे लाभ उठायेंगे। महात्मा गान्धीने भी टालसटायके विचारोंका प्रचार अभीष्ट माना है।

विनीत—

सम्पादक।

टालस्टायकी संक्षिप्त जीवनी ।

१८२८ ई० में रूसमें टालस्टायका जन्म हुआ था। जब वे स्कूलमें पढ़ते थे, तब बहुत होशियार लड़कोंमें नहीं समझे जाते थे। कालेजमें भर्ती होनेपर वे सफलता ही न प्राप्त कर सके। विश्वविद्यालयमें छात्रकी हैसियतसे पहले तो उन्होंने पूर्वी विद्याओं-का अध्ययन आरम्भ किया, परन्तु जब सफल न हुए तो कानून पढ़ने लग गये। कानूनमें भी उन्हें सफलता प्राप्त न हुई। जीवनके प्रारम्भमें वे अपनेको किसी कार्यमें सफल न देख निराश बन चुके थे। यौवनावस्थामे वे बुरी सुहबतमे पड़कर अपना जीवन निन्द्य बना बैठे। शराब पीने और जुआ खेलनेका बुरा शौक लग जानेसे वे बराबर दुखी रहा करते थे। एक ओर ये दुर्गुण उन्हें अपनी ओर खींच रहे थे और दूसरी ओर उनका अन्तःकरण उन्हें धिक्कार रहा था। स्वयं टालस्टाय भी अपने दुर्गुणपर क्रुद्ध रहते थे। एक दिन उन्होंने नङ्गे होकर अपनेको एक लोहेके डण्डेसे बांधा और इतने जोरसे कोड़े लगाये कि फूट फूटकर रोने लगे।

टालस्टायका भाई सम्राट्की सेनाका अफसर था। इसलिये वे भी विश्वविद्यालयसे निकलकर सेनामे भर्ती हो गये। फिर

क्या था, वे भी लड़ाईमे अपने भाइयोंको गोलियोंकी बौछारसे मारने लगे। किसानोंसे जबर्दस्ती रुपया छीनकर जुएमे हार जाया करते थे और ग्रामीण स्त्रियोंके साथ व्यभिचार करते हुए नही डरते थे। जुआ, ठगी, धोखाबाजी, मनुष्य-हत्या, व्यभि-चार और शराबखोरीमें दस वर्ष व्यतीत हुए। १८५३ मे जो क्रीमियाकी लड़ाई हुई, उसमें टाल्सटायने भी भाग लिया था। इस युद्धकी भयङ्करतामे भाग लेनेपर उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्हें अपने जीवनसे वास्तविक घृणा हो गयी। वे सेनाकी नौकरी छोड़कर रूसकी राजधानी सेण्टपीटर्सबर्गको लौट आये।

उस समय राजधानीमें स्वेच्छाचारी शासनसे मुक्ति पानेके लिये नवीन आन्दोलन आरम्भ हुआ, जो पश्चिमी ढङ्गका होनेके कारण टाल्सटायको पसन्द न आया और वे १८५७ मे युरोपीय यात्राके लिये रवाना हुए। वे कुछ ही सप्ताह बाद निराश होकर फिर वापस चले आये। पेरिसमे फांसीका एक भयानक दृश्य उन्हें दिखाई दिया, जिसका प्रभाव उनपर बहुत ज्यादा पड़ा। वे तीन वर्षतक अत्यन्त सादा जीवन बिताकर रूसी किसानोंके जीवनका अध्ययन करने लगे। इसके बाद उन्हें किसानोंके सम्बन्धमें इतना अनुराग उत्पन्न हुआ कि उन्होंने दूसरी बार युरोपके सभी देशोंकी यात्रा इसलिये करनी चाही, जिससे कि उन देशोंके किसानोंकी असली दशा अपनी आंखोसे देखी जा सके। एक सालके भ्रमणके बाद वे रूस लौट आये और अवैतनिक शान्ति-स्थापक नियुक्त किये गये, जिससे उन्हें

रूसकी जनताका और भी अधिक परिचय प्राप्त करनेका अवसर मिला। १८६२ मे ३४ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने विवाह किया। १५ वर्षतक वे आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते रहे। वे गृहकार्योंमे इतने मग्न हो गये कि सभी अन्य काम छोड़ बैठे। उनके पास जो पैतृक जायदाद थी, उसका उन्होंने बड़ी चतुराईसे निरीक्षण किया और दो उत्तम ग्रन्थोंकी रचना भी की, जिससे उनकी बड़ी ख्याति हुई और वे अच्छे लेखक माने जाने लगे। उन्होंने यूनानी और जर्मन भाषाओंका ज्ञान भी प्राप्त कर लिया।

पचास वर्षकी अवस्था होनेपर उन्हें फिर चिन्ता हुई कि जीवनका उद्देश्य क्या है। समाजमे नित्य असमानता, व्यभिचार और दुर्गुण बढ़ते देख उन्हें सुधारकी ओर ध्यान देना उचित दिखाई दिया। वे हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध, ईसाई धर्मग्रन्थोंका अनुशीलन करने लगे और रात दिन इसी चिन्तामे अपने दिन काटने लगे कि मनुष्यका जीवन किस तरह सुखी बनाया जावे। वे अपने जीवनको दिनपर दिन सादा बनाने लगे और बड़े बड़े दार्शनिकोंके विचारोंका अनुशीलन करने लगे। उन्हे किसी प्रकार जब सन्तोष न हुआ तो बड़ी दृढ़ताके साथ आत्मपरीक्षामे लगे और अन्तमे उन्होंने अपना सिद्धान्त निश्चित कर लिया। धन, बल और भोगके आदर्शको त्यागकर उन्होंने निर्धनता नम्रता, त्याग और परोपकारको अपना आदर्श बनाया। वे ईसाई समाजकी बुराइयोंसे दुःखी होकर उसका सुधार करना

चाहते थे; परन्तु अनुदार पादड़ियोंने उनका विरोध किया और १९०१ में उन्हें ईसाई धर्मसे अलग कर दिया।

टालसटायने जिस दिनसे अपना सिद्धान्त निश्चित किया, वे सांसारिक मोहसे सर्वथा अलग हो गये। वे अपनी जायदाद-की जरा भी परवा नहीं करते थे और उसकी आय घटते घटते बिल्कुल ही कम रह गयी। १८८५ में वे मास-भोजन भी त्याग चुके थे। वे शिकार, तम्बाकू तथा हर तरहकी विलासप्रियता छोड़ बैठे। किसानकी तरह सादा जीवन व्यतीत करने लगे। उनकी पोशाक, शकल-सूरत देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वे एक साधारण किसान नहीं हैं।

१८९१ मे टालसटायने अपनी सभी सम्पत्तिसे नाता तोड दिया। वे हर तरहकी सम्पत्ति हत्याके समान समझने लगे। अपनी पुस्तकोंको सार्वजनिक सम्पत्ति बना देनेका भी निश्चय उन्होंने किया। १८९१—९२मे रूस-दुर्भिक्षके कारण जनता बड़ी पीड़ित हुई। टालसटायने प्रजाको सुख पहुचानेका भार अपने ऊपर लेकर रात-दिन घोर परिश्रम किया। युरोप और अमेरिकामें उनके इस कार्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा हुई। कुछ दिनोंके परिश्रमके बाद उन्होने यह काम अपने अनुकूल न समझकर त्याग दिया।

रूसमें जब कभी अधिकारिवर्ग जनताको किसी तरह तङ्ग करता था, टालसटाय सदा ही जनताका पक्षसमर्थन करते थे। सरकारने जिस समय जबर्दस्ती सैनिक-भर्तीका नियम बनाया,

बहुतसे रूसी इस नियमको अपने अन्तःकरणके विरुद्ध समझकर उसका पालन करनेको तैयार न हुए और सरकारने उन्हें दबाने-का निश्चय किया। टालस्टायको इन लोगोंकी रक्षा करनेके लिये जब धनकी आवश्यकता हुई, तो उन्होंने अपने ग्रन्थ-प्रकाशनका अधिकार बेचकर उनकी रक्षा की। यद्यपि वे अपना सिद्धान्त स्थिर कर चुके थे कि मेरी लिखी हुई सभी पुस्तकें सार्वजनिक सम्पत्ति हैं, परन्तु दुःखियोंका दुःख दूर करनेके लिये उन्हें अपने सिद्धान्तको तोड़ना पड़ा। उन्हें पीछेसे इसके लिये बड़ा प्रायश्चित्त भी करना पड़ा। रूसको जनता जिन अधिकारोंके लिये लालायित हो रही थी, उनके पक्षमें टाल्सटायने भी अपनी आवाज उठायी और रूसके निरंकुश सम्राट् जारके नाम एक लम्बा पत्र बड़ी निर्भीकताके साथ लिख भेजा।

१६१० के अक्टोबर मासमें समस्त संसारमें यह आश्चर्यजनक समाचार फैला कि काउण्ट टाल्सटाय चुपचाप घर छोड़कर चले गये। वे अपने परिवारको भी अपना पता नहीं बता गये और न किसीको यही सूचना दी कि वे कहां गये। पीछेसे उनकी लड़की और डाक्टरको पता लगा कि वे एक गांवमें बीमार पड़े हैं। समस्त परिवार वहींपर उनके पास गया और उनके साथ रहने लगा। यदि वे बीमार न पड़ते, तो वे रूसके सीमान्तमें जाकर किसानोंके बीच रहते हुए शान्तिपूर्वक अपने दिन व्यतीत करते।

वे हिन्दू गृहस्थके समान ६० वर्षकी अवस्थाके उपरान्त जङ्गलोंमें जाकर जीवन व्यतीत करना अच्छा समझते थे। जिस

गांवमें जाकर वे बीमार पड़ गये थे, वहां कुछ दिन कष्ट भोग-कर वे १९१० के नवम्बर मासके बीसवें दिन प्रातःकाल ६ बजे स्वर्गवासी हुए।

टालसटायको पश्चिमी सभ्यतासे बड़ी घृणा थी। १९०१ में एक भारतीय प्रशंसकको उन्होंने पत्र भेजकर लिखा था कि मुझे यह सुनकर हर्ष हुआ कि भारतवासी अपना उद्धार युरोपीय साधनोंसे नही चाहते। उन साधनोंसे सुधार सम्भव भी नहीं है। पाशविक बलके आधारपर कोई भी समाज या राष्ट्र स्थिर नहीं रह सकता और उसपर जो अवलम्बित होगा, वह भयानक है। युरोपीय राष्ट्र पशुबलपर ही अवलम्बित हैं। पशुबलका सूत्र जब चाहे टूटकर समाजको अस्त-व्यस्त कर सकता है। सामाजिक सङ्गठन हिंसापर नही, बल्कि प्रेम और सहानुभूति-पर स्थिर रहना चाहिये। सच्चे धर्मकी उन्नतिपर ही यह सब-कुछ निर्भर है। सच्चे धर्मका अर्थ सभी धर्मोंमे समान निष्कर्ष है, जो प्रत्येक मनुष्यमे ईश्वरका अंश विद्यमान समझता है और उस अंशको रखनेवाले मानुषीय मन्दिरका सम्मान करता है।

हिन्दू धर्म बड़ा प्राचीन है। वह आत्मामे परमात्मा स्वीकार करता है। हिन्दू धर्मका महत्व मेरी सम्मतिमे वर्णभेदने नष्ट कर दिया है। बौद्ध धर्मने उस महत्वको कायम रखा है। कबीर-पन्थियोंने भी उसकी रक्षा की है; क्योंकि वे प्राणीकी आत्माकी पवित्रताका प्रधान सिद्धान्त स्वीकार किये हुए हैं। इसीसे वे किसी प्राणी और विशेषकर मनुष्यकी हिंसाका निषेध करते हैं।

जबतक भारतवासी अपने भाइयोंका वध करनेके लिये तैयार रहेंगे यानी सेनामें भर्ती होते रहेंगे, भारतमें दुर्भिक्ष बना रहेगा और भारतवासी मजूर बनकर अपना जीवन कष्टमय बनाये रहेंगे। जो शारीरिक स्वच्छता नहीं रखते, वे ही कीड़ोंका घर अपने शरीरमें बनाते हैं। भारतवासी नैतिक स्वच्छता रखकर आलसी लोगोंको अपना रक्त चूसनेका मौका न देंगे।

जनता जिन कारणोंसे धर्मके असली सिद्धान्तको नहीं समझ पाती, उन्हीं कारणोंको दूर करना प्रत्येक देशहितैषीका कर्तव्य है। धर्मपर जो पर्दा इस समय पड़ चुका है, उसे उठानेकी जरूरत है। यही उद्योग भारतवासियोंका सब प्रकारकी बुराइयोंसे उद्धार करेगा और भारतवासी अपने निर्दिष्ट उद्देश्यको प्राप्त कर सकेंगे।

टालसटायका प्रधान सिद्धान्त सत्यके लिये आग्रह करना है। वे बुराईकी जड़ बुराईसे काटनेके पक्षपाती नहीं। वे कष्ट-सहन-पर बड़ा जोर देते हैं। एक प्रसिद्ध पत्र-सम्पादकसे मुलाकात करते हुए उन्होंने कहा कि पशुबलका प्रयोग अक्षन्तव्य है, चाहे भयानकसे भयानक बुराईकी जड़ उखाड़नेमें ही क्यों न काममें लाया गया हो। पशुबलका मार्ग एक बार खुल जानेसे सब तरहकी बुराइयां प्रवेश पा सकती हैं। मनुष्य पशुबलद्वारा बुराई दूर करनेकी चेष्टा करते हैं और इस तरह अपने भाइयोंके सङ्कट बढ़ाया करते हैं। यदि वे चुपचाप अत्याचार सहें, तो अपनी सहनशक्तिसे उसका नाश कर सकते हैं। कष्ट-सहन

और मृत्युका सामना करनेसे ही मनुष्य अपने पक्षपातियोंकी संख्या बढ़ाया करता है।

उपदेशसे नहीं, मृत्युसे अनुयायियोंकी संख्या बढ़ा करती है। मनुष्य जिस समय देखते हैं कि हमारे समान ही मनुष्य चुपचाप अपनी सम्पत्तिका नाश देख रहा है, कष्टोंमे सुख पा रहा है और सिद्धान्तके लिये हंसते हंसते मृत्युको प्राप्त हो रहा है, तो वे गम्भीरतापूर्वक कहते हैं कि इस मनुष्यका सिद्धान्त निस्सार नहीं है। जबतक कोई किसी सिद्धान्तके लिये मरनेकी द्रढ़ता नहीं दिखाता, तबतक लोग उसकी सत्यतामे विश्वास नहीं किया करते। सब तर्कोंसे बढ़कर जेलखाना और फांसी है, जो दूसरे मनुष्यको अपने पक्षमें ला सकता है। जो इन कष्टोंसे दूर रहना चाहता है, वह दूसरोंको अपने पक्षमे लानेकी आशा न रखे।

जिस समय टालसटाय चुपचाप घर छोड़कर बाहर गये थे, वे अपनी स्त्रीके नाम एक पत्र लिखकर लिफाफेमें बन्दकर छोड गये थे। उस पत्रका सारांश नीचे दिया जाता है:—

प्रिय सोनया,

मैं बहुत दिनोंसे यह बात देख रहा हूं कि मेरा जीवन मेरे सिद्धान्तोंके अनुकूल व्यतीत नहीं हो रहा है। यह बात असम्भव है कि मैं तुम्हें ऐसी शिक्षा दे सकूं, जिससे तुम्हारा जीवन और आदतें बदल जायें। मैं अबतक तुम्हें इसलिये अकेला भी न छोड़ सका कि मेरे वियोगसे तुम्हें कष्ट होनेके सिवा बच्चोंकी रक्षा और शिक्षाका सारा भार भी तुम्हारे ही शिरपर आ जायेगा।

छोटे छोटे बच्चोंपर मैं अपना प्रभाव भी डालना चाहता था। १६ वर्षतक मैं बराबर अपने अन्तःकरणके साथ युद्ध करता रहा। अब मेरे लिये यह असम्भव हो गया है कि मैं अपनी भीतरी इच्छाके विपरीत जीवन व्यतीत करूं। मैंने वर्षोंसे जो निश्चय कर रखा है, उसीको घर छोड़कर पूरा करना चाहता हूं। मैं वृद्धावस्थामें इस जीवनके भारको असह्य मानकर अधिक शान्ति-का अभिलाषी हूं। बच्चे भी अब अवस्थामें अधिक हो गये हैं और मेरे प्रभावकी आवश्यकता नहीं रखते। तुम सब इतने सुखमें मग्न हो कि मेरी अनुपस्थितिसे विशेष कष्ट न होगा।

मैं ७० वें वर्षमें प्रवेश कर रहा हूं। प्रत्येक वृद्ध मनुष्य जीवनका अन्तिम समय ईश्वरीय सेवामें लगाना चाहता है। हिन्दू ६० वर्षकी अवस्था प्राप्त करनेपर जङ्गलोंमें चले जाते हैं। धार्मिक मनुष्यको वृद्धावस्थामें क्या हंसी-मजाक, खेल-कूद पसन्द आ सकता है? अपने अन्तःकरण और बाहरी जीवन-के बीच मैं जिस युद्धका अनुभव कर रहा हूं, उसका अन्त चाहता हूं।

यदि मैं खुले मैदान घर छोड़कर जानेकी तैयारी करता, तो लोग अनुनय-विनय, तर्क-वितर्कसे मुझे वशमें करनेकी अवश्य ही चेष्टा करते। मेरा निश्चय उस समय शिथिल पड़ जाता, जिसके अनुसार काम करना मैं परम आवश्यक समझता हूं। मैं आशा करता हूं, कि यदि मेरे इस कार्यसे तुम्हें जरा भी कष्ट हो, तो तुम मुझे क्षमा प्रदान करोगी। मुझे अब प्राणप्यारी!

स्वतन्त्रता-पूर्वक विचरने दो। मुझे तलाश न करना और न मुझे धिक्कारना। मुझपर घृणा भी न करना।

यह मत समझना कि तुमसे असन्तुष्ट होकर मैं घर छोड़ रहा हूं। मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूं कि तुम अपने विश्वासके विरुद्ध काम करनेको तैयार नहीं हो सकती और मेरे अनुसार अनुभव नहीं कर सकती। मै तुम्हारे अवगुणकी चर्चा नही कर रहा हूं। गृहस्थाश्रमके ३५ वर्ष जिस आनन्दसे व्यतीत हुए हैं, उनका मैं प्रेम और कृतज्ञतापूर्वक स्मरण कर रहा हूं।

इन ३५ वर्षोंमें भी इस कालका आधा भाग तो और भी अधिक स्मरणीय है जब कि तुमने पूर्ण स्वार्थत्यागसे गृहस्थीका भार संभाला। तुम जो कुछ दे सकती थी, वह मुझे और संसार-को दिया गया। तुमने एक माताकी हैसियतसे जो प्रेम और त्याग दिखाया, उसकी मैं प्रशंसा किये विना नही रह सकता।

गत १५ वर्षोंमे हम दोनोंके विचार एक दूसरेसे भिन्न हो गये। इसके लिये मेरा ही दोष है, क्योंकि मेरे ही जीवनमें परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन स्वयं मेरे लिये या संसारके लिये नहीं, बल्कि इसलिये हुआ कि मेरा वश न चला। तुमने मेरा अनु-करण न किया, इसके लिये तुम्हारा कोई अपराध नहीं। मैं तुम्हे धन्यवाद देता हूं और तुमने जो कुछ मुझे दिया, उसका मै सदा ही प्रेमपूर्वक स्मरण रखूंगा। प्रिय सोनया, अन्तिम नमस्कार।

तुम्हारा प्रेमपात्र—

लिओ टाल्सटाय।

श्रीहरिः।

गुलामीसे उद्धार।

पहला अध्याय।

भूमि और मजूर।

(१)

"मैंने देखा कि समस्त मनुष्य जाति गाय, बैल, बछड़ोंके झुण्डकी तरह एक बाड़ेमें बन्द है, जिसकी चारो ओर तार लगे हुए हैं। इस घेरेके बाहर बहुत अच्छी हरीहरी घास खानेके लिये मौजूद है। घेरेके भीतर पशुओंके पेट भरनेके लिये काफी घास नहीं है। इसीसे पशु एक दूसरेको सींगोंसे बहुत बुरी तरह मार रहे हैं और जो थोड़ीसी घास है, उसे पानेके लिये आपसमें एक दूसरेको कुचल रहे हैं। पशुओंका स्वामी बड़ा भला आदमी है। मैं उसे बुलाकर पशुशालामें लाया और उसे पशुओंकी दुर्दशा दिखायी। वह इसके लिये बड़ा दुःखी हुआ और मैंने उससे प्रश्न किया कि आप इनकी दशा सुधारनेका क्या प्रबन्ध कर सकते हैं। स्वामीने दया दिखाकर पशुओंके सुखके लिये घेरेके भीतर प्रबन्ध कर दिया कि इनको गर्मीमें हवा मिले और वर्षा तथा जाड़ेमें पानी और

सर्दीसे रक्षा हो। अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिये घास पानेकी चेष्टा करते हुए पशु एक दूसरेको सींगोंकी चोटोंसे घायल न करें, इसके लिये उसने सींगोके सिरोंपर लोहेके पत्ते जड़वा दिये। घेरेके एक हिस्सेमें उसने वूढ़े पशुओंको रखनेकी व्यवस्था कर दी, जिससे अपने अस्तित्वके लिये उन्हें लडना न पड़े और वे आसानीसे वास पा जायें। वछडे भी कष्ट पा रहे थे, मर रहे थे और वे अच्छे पशु भी नही वन रहे थे जिससे भविष्यमें स्वामीके लिये लाभदायक हों, इसलिये व्यवस्था की गयी कि उन्हें हर राज सवेरे थोड़ासा दूध दिया जाये। इस व्यवस्थासे यद्यपि किसीका पेट न भरा, परन्तु इतना दूध सवको मिला कि वह प्राण न खो दे। वास्तवमे स्वामीने सवके सुखकी व्यवस्थाके लिये जितना सुधार हो सकता था, किया। मैंने उससे कहा कि आपने इतना कष्ट झेलनेकी अपेक्षा एक साधारण काम क्यों न किया। इस वाड़ेको तोड़कर पशुओंको वाहर निकाल देते। स्वामीने उत्तर दिया कि यदि मैं ऐसा करता, तो फिर दूध कहांसे पाता।"

(२)
श्रम विभाग।

मनुष्य चाहे जहां चाहे जिस ढङ्गसे रहे, वह रहनेके लिये घर अपने आप ही नहीं पा जाता। उसे जलानेके लिये लकडी अपने आप ही नहीं मिल जाती, पानी भी अपने आप नहीं पहुंच जाता और न खानेके लिये आसमानसे रोटी ही गिरती है। उसे भोजन,

वस्त्र, पैरोंकी रक्षाके लिये जूते इत्यादि अपने पुरखोंसे नहीं मिले हैं। हर रोज सैकड़ो हजारो आदमी इसी समय घोर परिश्रम करते हुए उसके लिये यह सामान तैयार कर रहे हैं। ये आदमी सामान तैयार करते हुए भूखसे व्याकुल हो रहे हैं, बेहोश हो रहे हैं, भोजन, वस्त्र और निवासस्थानसे स्वयं वञ्चित हो रहे हैं और उनके बाल-बच्चे भी वञ्चित हैं। वे अपनी प्यारी सन्तान समेत कष्ट पाते हुए अकाल मृत्युको प्राप्त हो रहे हैं।

संसारमें सभी मनुष्य कुछ न कुछ आवश्यकता अवश्य ही रखते हैं। कुछ लोग स्वयं भूखों मरकर दूसरोकी आवश्यकताएं पूर्ण कर रहे हैं। संसारी आदमी उस जहाजके मनुष्योंके समान हैं, जिन्हें जहाजमें पानी भरा देख इस बातका ध्यान रखना है, कि जितनी खाद्यसामग्री है, उससे काम चल जाये। हरएकको जो जहाजपर सवार है, इस बातकी चिन्ता है कि खाद्यसामग्री इस तरह काममें लायी जाये कि अधिकसे अधिक समयतक सबका ही काम चल सके। जो जरूरतसे ज्यादा खा लेता है, वह तमाम जहाजके यात्रियोंको सङ्कटमें डालना चाहता है। परमात्माकी सृष्टिमें सबको अपने परिश्रमद्वारा अपनी आवश्यकता पूर्ण करनी है। जो आदमी बड़ा बनकर किसी दूसरेसे ऐसा काम लेता है जो सबके सुखको नहीं, उसीके सुखको बढानेवाला है और जो स्वयं आलसी रहकर अधिक सुखकी इच्छा करता है, वह जहाजवालोंकी तरह निश्चय ही संसारके मनुष्योंको सङ्कटमें डाल रहा है। क्या यह आश्चर्यकी

बात नहीं है कि अधिकांश पढ़े-लिखे आदमी अपने लिये दूसरों-को उस परिश्रमसे वञ्चित कर रहे हैं, जो उनके जीवनके लिये ही आवश्यक है? क्या दूसरोंके लिये कष्टदायी यह आलसी जीवन स्वाभाविक और उचित है, जो दूसरोंके परिश्रमपर निर्भर कर रहा है?

यदि कोई आदमी जूते बनाता है, तो क्या वह यह आशा अवश्य कर सकता है कि उसे दूसरे खानेके लिये भरपेट भोजन देनेके लिये बाध्य हैं? जूतोंकी दूसरोंको जरूरत भी तो होनी चाहिये। यदि किसीको उनकी आवश्यकता नहीं, तो उन्हें लगातार तैयार करते रहनेवाला भरपेट भोजन पानेका किस तरह अधिकारी है। जो लोग शासन, धर्म, कला और विज्ञान विभागोंमे काम कर रहे हैं, वे ऐसा काम करते हैं जिसकी जनताको आवश्यकता नहीं। वे बढ़िया चीजे भी तैयारकर सामने नहीं रखते। इसपर भी वे यदि आशा करें कि उन्हे बढ़िया भोजन और वस्त्र केवल इसी सिद्धान्तपर मिलना चाहिये कि संसारमें सबका काम बंटा हुआ है, तो उनकी यह मांग दुस्साहसपूर्ण नहीं तो क्या है।

संसारमें परिश्रमका विभाग सर्वत्र और सब कालोमे रहा। कोई पढ़ाता है, कोई लड़ता है, कोई खेती करता है और कोई अन्य काम करता है। कौन किस कामको करे, इसका निर्णय मनुष्य अपनी योग्यतानुसार आप ही कर लेता है। वह वही काम करने लग जाता है, जिसकी मानव समाजको आवश्यकता

है यानी जिसे करता हुआ वह दूसरोंसे बदलेमें अपने लाभके लिये दूसरा काम करा सकता है। किसीको यह अधिकार कभी नहीं है कि वह अपनी इच्छासे ऐसा काम करने लगे, जिसकी दूसरोंको इच्छा भी नहीं है और वह अपने इस कामके बदलेमें दूसरोंसे काम लेनेकी जबर्दस्ती आशा रखे। यह तो "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाला सिद्धान्त हुआ न कि उस सिद्धान्तका पालन हुआ जो मनुष्यको पारस्परिक सहायताके बन्धनमें बांधता है। किसीको क्या अधिकार है कि वह अपनी इच्छासे यह बात तय कर ले कि मैं तीस वर्ष तक आरामतलबीके साथ अध्ययन करूंगा और मेरे सुख तथा व्ययकी व्यवस्थाके लिये दूसरोंको व्यवस्था करनी होगी, क्योंकि पढ़-लिखकर मैं ऐसा काम करूंगा जो सबको लाभदायक होगा—चाहे उस कामको किसीने करनेको भले ही न चाहा हो। ३० वर्ष सुखपूर्वक अध्ययनमें बिताकर फिर भी दूसरोंसे बली या विशेष प्रभावशाली होनेके कारण जो दूसरोंके लिये कोई अच्छा काम कर देनेकी आशा दिलाकर दूसरोंके परिश्रमसे लाभ उठा रहा है, वह क्या इस सिद्धान्तका पालन कर रहा है कि संसारमें सबके लिये अलग अलग काम बंटा हुआ है? यह तो दूसरोंके परिश्रमसे जबर्दस्ती लाभ उठाना है और सच्चा श्रमविभाग नहीं। पुराने जमानेमें जिस तरह कुछ लोगोंने धर्मके नामपर ईश्वरीय अधिकारका ढोंग रचा था या दार्शनिकोंने मानुषिक जीवनकी अन्याय्य व्यवस्थाकी धूम मचायी थी, इसी तरह श्रमविभागको

झूठी धूम आजकल भी है—जिस धूमसे चालाक आदमी स्वयं कुछ भी परिश्रम न कर दूसरोंसे अपने लाभ और सुखके लिये परिश्रम कराना चाहते हैं ।

मनुष्योंमें यह बात सदा देखी गयी कि सभी काम एक ही आदमी कभी नहीं करता रहा। सबके हितके लिये सभी अलग अलग काम करते चले आ रहे हैं और भविष्यमें भी करते रहेंगे, परन्तु प्रश्न यह है कि काम किस तरह बांटे जायें जिससे सबको पूरा लाभ पहुचे। यह न हो कि एक दल थोड़ा काम करता हुआ अधिक सुख या लाभ प्राप्त कर ले और दूसरा दल कष्ट करनेपर भी सदा नङ्गा बना रहे, भूखों मरता रहे और अज्ञानके अन्धकारमे ठोकरें खाया करे।

कुछ लोग तो मानसिक और आत्मिक परिश्रमके ठेकेदार बने हुए हैं और कुछ शारीरिक परिश्रम करते हैं। एकके कामसे दूसरा किस तरह लाभ उठाये, यही प्रश्न है। मानसिक काम करनेवाले शारीरिक श्रम करनेवालोंसे कहा करते हैं कि तुम सब मिलकर खानेको अन्न, पहननेको वस्त्र बनाकर दो और हमारे सुखके लिये दास बनकर काम करो, तब हम तुम्हें अपने मानसिक श्रमका मजेदार फल चखनेको देंगे। एक दल दूसरे दलकी आवश्यकता पूरी करता रहे इसमे तो कोई हानि नहीं, परन्तु एक अपनेको वड़ा और दूसरेको छोटा कैसे समझ सकता है। दूसरेके शारीरिक श्रमसे पहले लाभ उठानेका किसीको इस प्रतिज्ञापर क्या अधिकार है कि उस परिश्रमका बदला पीछे-

से मानसिक परिश्रमद्वारा चुकाया जायेगा। शारीरिक परिश्रम करनेवाला पहले काम कर दे और काम कर देनेपर भी इस बातका पूरा निश्चय नहीं, कि बदलेमें उसे मानसिक काम करनेवालोंसे लाभ पहुंचेगा या नहीं। मनुष्यके लिये उत्तम जीवन-निर्वाहके वास्ते मानसिक और आत्मिक भोजनकी आवश्यकता हुआ करती है यानी जो भरपेट भोजन कर लेता है, उसे इस बातकी आवश्यकता रहती है कि वह अपने मनका नियन्त्रण भली भांति कर सके, जिससे पेट भर लेनेपर भी मनकी कमजोरीसे उसे कोई कष्ट न हो या आत्माकी कमजोरीसे वह कोई पाप न कर बैठे। शारीरिक परिश्रम करनेवालेको मानसिक और आत्मासम्बन्धी उन्नतिके लिये दूसरोंकी सहायताकी आवश्यकता है, परन्तु यह कौनसा न्याय है कि जो शारीरिक श्रम करता है, वह पहले मिहनत कर दे। उस मिहनतसे लाभ उठानेवाले चाहें तो उसका उपकार करें और चाहें तो उससे काम लेते हुए उसे सदा आशामें ही डाले रहें।

मानसिक परिश्रम करनेवाले यह दलील पेश कर सकते हैं कि पहले बढ़िया भोजन देकर, बढ़िया वस्त्र पहनाकर हमे सुख पहुंचाओ, तब हमारे दिमागसे ऐसी कोई बात निकल सकेगी जो तुम्हे लाभ पहुचा सके। शारीरिक परिश्रम करनेवाला भी क्या इसी तरह यह दलील पेश नहीं कर सकता कि पहले मुझे दिमागी लाभ पहुचाओ जिससे मैं अच्छे ढङ्गसे काम कर सकूं। मैं पीछेसे अपने शारीरिक श्रमद्वारा आपको लाभ पहुचा दूंगा।

मैं अपने जीवनको पहले बढ़िया बनाकर आपके लिये काम कर सकूंगा, इसलिये पहले मेरी मदद करो।

मेरे पास इस बातके लिये समय नहीं कि मैं विचार कर सकूं कि जीवनमें किन नियमोंका पालन करना आवश्यक है, जो नियम न्यायकी रक्षा कर सकते हैं—मुझे इस बातका ज्ञान दो। मेरे पास समय नहीं कि मैं अपने अस्त्रोंमें विज्ञानद्वारा कोई नया सुधार कर सकूं या अपने परिश्रमको सरल बना सकूं तथा अपने निवास-स्थानको स्वास्थ्यप्रद रखूं। मेरे पास कविता तैयार करनेके लिये भी समय नहीं, जो मेरे भावोंको जागृत-कर मेरे जीवनको आनन्दमय बनाये।

आप कहते हैं कि यदि मजूर हमारा काम करना छोड़ देंगे, तो हम महत्वपूर्ण काम न कर सकेंगे जो समाजके लिये आवश्यक है। मजूर भी तो इसी तरह कह सकता है कि यदि मुझे मानसिक या आत्मिक ज्ञान न दिया गया, तो मैं खेत जोतने, मैला ढोने या मकान साफ करनेका जरूरी काम न कर सकूंगा। अबतक हम लोगोंको जो आत्मिक भोजन मिला है, उससे हमारा कोई लाभ नहीं हुआ और न हम यह समझ सके कि वह किस काम आ सकेगा। जबतक हमें अपने अनुकूल आत्मिक भोजन न मिलेगा, हम आपका पेट भरनेके लिये अन्न पैदा नहीं कर सकते।

यदि मजूर इस प्रकार तर्क करने लगे, तो यह हंसीकी बात नहीं—न्यायकी ही बात होगी। मानसिक काम करनेवालोंकी

अपेक्षा शारीरिक काम करनेवालोंका कथन कहीं अधिक ठीक होगा, क्योंकि मानसिक कामसे शारीरिक काम कहीं अधिक आवश्यक और महत्वका है। मानसिक भोजन तो विना किसी रुकावटके हरएक आदमीको दिया जा सकता है, क्योंकि देनेसे उसकी वृद्धि होती है; परन्तु शरीर पुष्ट करनेवाला अन्न देनेमें बड़ी बाधा है, क्योंकि जो पैदा करता है उसे ही पहले उसकी आवश्यकता है।

यदि हमारे लिये परिश्रम करनेवाले मजूर अपनी स्वाभाविक मांगें प्रकट करने लगें, तो हम क्या उत्तर दे सकते हैं। हम उन मांगोंको किस तरह पूरा कर सकते हैं। स्वार्थमें मग्न होकर हम तो अब यह भी नहीं जानते कि मजूरोंकी क्या आवश्यकताएं हैं। हम श्रमजीवियोंके रहन-सहनका ढङ्ग, विचारोंका ढङ्ग और उनकी भाषा भी भूल गये। हम स्वार्थमें यहांतक अन्धे बन गये कि हमें इस बातका भी पता न रहा कि हमने किस उद्देश्यसे अपना कार्य आरम्भ किया था। जिन लोगोंकी सेवा करनेमें हमें अपना जीवन विताना था उन्हें तो हम अपरिचित मान बैठे और अब उनकी सेवा करनेमें नहीं, बल्कि उनके सम्बन्धमें जानकारी पैदा करनेके लिये अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अपने आराम और आनन्दके लिये हम उनके प्रतिनिधि बन जाते हैं। हम यह बात बिल्कुल ही भूल गये कि उनका अध्ययन नहीं, उनकी सेवा हमारा धर्म था।

समय आ गया है कि हम होशमें आयें। अपनी परीक्षा अच्छी तरह करें। हम उन पतित मनुष्योंमे हैं, जिनके हाथमें स्वर्गकी कुञ्जी हो और जो स्वय दरवाजा खोलकर भीतर न जाते हों और दूसरोंको भी भीतर घुसनेसे रोक रहे हों। हम अपने भाइयोंका रक्त चूसकर अपनेको धर्मात्मा, शिक्षित और दयालु माने बैठे हैं।

(३)

श्रमजीवियोंके नाम ।

सत्यको पहचानो और सत्य तुम्हें स्वतन्त्र बनायेगा ।

मुझे अधिक कालतक अब जीवित नहीं रहना है। मृत्युके पहले मैं श्रमजीवियोंको उनकी पीड़ित अवस्थाका ज्ञान कराना चाहता हूं। मै उन उपायोंका भी जिक्र करना चाहता हूं जो श्रमजीवियोंको स्वतन्त्र बना सकते हैं। मैंने इस सम्बन्धमें बहुत विचार किया है, इसलिये मेरे विचार श्रमजीवियोंके लिये लाभदायक हो सकते हैं। यद्यपि मैंने रूसी श्रमजीवियोंके बीच रहकर उनकी अवस्थाका ज्ञान प्राप्त किया है, परन्तु मेरे विचार अन्य देशोंके श्रमजीवियोंके लिये भी लाभदायक हो सकते हैं।

जिसके आंखे और दिल है, वह यह बात अच्छी तरह देख सकता है कि श्रमजीवी तमाम जीवन अपनी आवश्यकताएं पूर्ण

करनेकी चेष्टामें ही व्यतीत करते हैं; परन्तु उनकी साधारण आवश्यकताएं भी कठोर परिश्रम करनेपर भी पूर्ण नहीं होतीं। परिश्रम वे इतना करते हैं, जो उनके जीवनके लिये कहीं अधिक है। जहां श्रमजीवियोंकी यह दुर्दशा है, वहां कुछ लोग ऐसे हैं जो बिल्कुल ही काम नहीं करते। श्रमजीवी जो कुछ पैदा करते हैं, उससे लाभ उठाते हैं। श्रमजीवी परिश्रम करनेपर भी इन आलसी आदमियोंके गुलाम हैं।

क्या करना चाहिये, जिससे इस असह्य अवस्थाका अन्त हो।

पहला उपाय यही दिखाई देता है कि जो दूसरेके परिश्रमसे अनुचित लाभ उठानेवाले हैं, वे जबर्दस्ती उस परिश्रमसे वञ्चित कर दिये जायें। रोममें प्राचीन कालमें गुलामोंने यही उपाय काममें लाया था। जर्मनी और फ्रान्सके किसान भी इसी उपायको काममें लानेके लिये बाध्य हुए थे। रूसके श्रमजीवी अब भी कभी कभी इसी उपायको काममें लाते हैं।

यह उपाय स्वाभाविक रूपसे सबसे पहले सामने आता है, परन्तु इससे कभी उद्देश्य-सिद्धि नहीं हो सकती और श्रमजीवियोंकी दशा सुधरनेकी अपेक्षा और भी खराब होती है। प्राचीन कालमें सफलताकी कुछ आशा भी रहती थी, जब कि विज्ञानके अभावमें सरकारोंकी शक्ति उतनी नहीं थी, जितनी आज रेल, तार, पुलिस और सेनाओंके कारण दिखाई देती है। अब तो दङ्गा करनेवाले तुरन्त ही गोलीसे उड़ा दिये जाते हैं और काम न करनेवाले काम करनेवालोंपर अपनी शक्ति और भी अधिक जमा लेते हैं।

हिंसासे काम लेनेवाले श्रमजीवी हिंसाको और भी अधिक बढ़ाकर अपनी अवस्था विशेष दुःखदायी बनाते हैं। रस्सेसे बंधा हुआ आदमी जितना ही अधिक जोर लगायेगा, उतनी ही अधिक मजबूत उस रस्सेकी गाठ होती जायेगी। पशुबलसे जो अधिकार छीने जा चुके हैं, वे पशुबलको काममें लानेसे न मिलेंगे।

पशुबलसे श्रमजीवियोंकी अवस्थामें सुधार नहीं होता यह बात प्रायः सभी मानने लगे हैं। अब एक नया सिद्धान्त सामने रखा गया है। श्रमजीवियोंकी भलाई चाहनेवाले इस सिद्धान्तपर बड़ा जोर दे रहे हैं। ये लोग वास्तवमे भलाई चाहते हैं या नही, इसका कोई निश्चय नहीं हुआ; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भलाई करनेकी दुहाई दी जा रही है। यह नया सिद्धान्त यह है कि श्रमजीवी सभा-समितियोका सङ्गठन करे, जुलूस निकालें और देशके शासनमे भाग बटानेके लिये अपने प्रतिनिधि भेजे। इस तरह धीरे धीरे वे अपनी शक्ति बढ़ाते चले जाये। यहातक कि एक दिन आयेगा कि श्रमजीवी सभी भूमि और कल-कारखानोपर अपना ही अधिकार कर लेगे। अपना अधिकार जमाकर वे सुखी बन जायेंगे। यह सिद्धान्त यद्यपि परस्पर-विरोधी बातोंसे भरा हुआ है, असम्भव कल्पनाएं शामिल किये हुए है और मूर्खतापूर्ण भी है, परन्तु उसका प्रचार चारो ओर बढ़ रहा है।

इस सिद्धान्तका प्रचार केवल उन्हीं देशोमे नहीं है जहांपर अधिकांश श्रमजीवी कई पीढ़ियोसे खेतीका काम छोड़ भूमिसे

वञ्चित हो चुके है, बल्कि उन देशोंमें भी है जहांपर श्रमजीवी खेती करते हुए जमीन अपने पास रखते हैं।

यह सिद्धान्त 'साम्यवाद' के नामसे प्रख्यात है जिसे वे श्रमजीवी स्वीकार कर रहे हैं, जो नगरोंके चमकदार जीवनसे आकर्षित होकर खेती छोड़कर कारखानोंमें काम करने लग गये हैं। वे नगरोंमें जाकर इस सिद्धान्तके माननेवाले बन गये है कि मनुष्यकी आवश्यकताएं जितनी ही अधिक होंगी, वह उतना ही अधिक सभ्य बनेगा। श्रमजीवी 'साम्यवाद' के सिद्धान्तको थोड़ा बहुत समझकर बड़े उत्साहके साथ अपने साथियोंमें उसका प्रचार करते हैं। वे अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओंके कारण अपनेको गांवोंके सीधे-सादे मिहनती किसानसे बढ़कर समझते हैं। गावोंके किसान साम्यवादको माननेके लिये तैयार नहीं। वे उसे अपने अनुकूल नहीं मानते और यह बात अच्छी तरह समझते हैं कि यह सिद्धान्त उनका उद्धार न कर सकेगा। वे सभा-समितियों, जुलूसों और शासनके लिये अपने प्रतिनिधियोंके चुनावको विशेष महत्व नहीं देते।

गावोंके श्रमजीवियोंके लिये न तो सभा-समितिया ही उपकार करनेवाली हैं और न उन्हें अपने कामके घण्टे कम करने या मजूरी बढानेके लिये आन्दोलन करनेकी जरूरत है। वे एक ही चीज जरूरी समझते हैं, जो जमीन है। उनके पास काफी जमीन नहीं है जिससे वे अपने परिवारका निर्वाह कर

हिंसासे काम लेनेवाले श्रमजीवी हिंसाको और भी अधिक बढ़ाकर अपनी अवस्था विशेष दुःखदायी बनाते हैं। रस्सेसे बंधा हुआ आदमी जितना ही अधिक जोर लगायेगा, उतनी ही अधिक मजबूत उस रस्सेकी गांठ होती जायेगी। पशुबलसे जो अधिकार छीने जा चुके हैं, वे पशुबलको काममें लानेसे न मिलेंगे।

पशुबलसे श्रमजीवियोंकी अवस्थामें सुधार नहीं होता यह बात प्रायः सभी मानने लगे हैं। अब एक नया सिद्धान्त सामने रखा गया है। श्रमजीवियोंकी भलाई चाहनेवाले इस सिद्धान्त-पर बड़ा जोर दे रहे हैं। ये लोग वास्तवमें भलाई चाहते हैं या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं हुआ, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भलाई करनेकी दुहाई दी जा रही है। यह नया सिद्धान्त यह है कि श्रमजीवी सभा-समितियोंका सङ्गठन करें, जुलूस निकालें और देशके शासनमें भाग बटानेके लिये अपने प्रतिनिधि भेजें। इस तरह धीरे धीरे वे अपनी शक्ति बढ़ाते चले जायें। यहांतक कि एक दिन आयेगा कि श्रमजीवी सभी भूमि और कल-कार-खानोंपर अपना ही अधिकार कर लेंगे। अपना अधिकार जमाकर वे सुखी बन जायेंगे। यह सिद्धान्त यद्यपि परस्पर-विरोधी बातोंसे भरा हुआ है, असम्भव कल्पनाएं शामिल किये हुए है और मूर्खतापूर्ण भी है, परन्तु उसका प्रचार चारों ओर बढ़ रहा है।

इस सिद्धान्तका प्रचार केवल उन्हीं देशोंमें नहीं है जहांपर अधिकांश श्रमजीवी कई पीढ़ियोंसे खेतीका काम छोड़ भूमिसे

वञ्चित हो चुके है, बल्कि उन देशोंमें भी है जहांपर श्रमजीवी खेती करते हुए जमीन अपने पास रखते हैं।

यह सिद्धान्त 'साम्यवाद' के नामसे प्रख्यात है जिसे वे श्रमजीवी स्वीकार कर रहे हैं, जो नगरोंके चमकदार जीवनसे आकर्षित होकर खेती छोड़कर कारखानोंमें काम करने लग गये हैं। वे नगरोंमें जाकर इस सिद्धान्तके माननेवाले बन गये है कि मनुष्यकी आवश्यकताएं जितनी ही अधिक होंगी, वह उतना ही अधिक सभ्य बनेगा। श्रमजीवी 'साम्यवाद' के सिद्धान्तको थोड़ा बहुत समझकर बड़े उत्साहके साथ अपने साथियोंमें उसका प्रचार करते हैं। वे अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओंके कारण अपनेको गांवोंके सीधे-सादे मिहनती किसानसे बढ़कर समझते हैं। गांवोंके किसान साम्यवादको माननेके लिये तैयार नही। वे उसे अपने अनुकूल नहीं मानते और यह बात अच्छी तरह समझते हैं कि यह सिद्धान्त उनका उद्धार न कर सकेगा। वे सभा-समितियों, जुलूसों और शासनके लिये अपने प्रतिनिधियोंके चुनावको विशेष महत्त्व नही देते।

गावोंके श्रमजीवियोंके लिये न तो सभा-समितियां ही उपकार करनेवाली हैं और न उन्हें अपने कामके घण्टे कम करने या मजूरी बढ़ानेके लिये आन्दोलन करनेकी जरूरत है। वे एक ही चीज जरूरी समझते हैं, जो जमीन है। उनके पास काफी जमीन नही है जिससे वे अपने परिवारका निर्वाह कर

सके। जिस जमीनकी उन्हें इतनी बड़ी जरूरत है, उसका जिक्र भी साम्यवादियोंके सिद्धान्तमे नहीं है।

विद्वान् साम्यवादियोंकी राय है कि लड़ाई झगड़ेकी जड़ खानें, कारखाने और इसके बाद जमीन है। उनके सिद्धान्तानुसार श्रमजीवियोंको जमीन पानेके लिये पहले पैसेवालोंसे लड़कर कारखानोपर अधिकार जमा लेना होगा। जब कारखानोंपर अधिकार हो जायेगा, तो जमीन भी मिल जायेगी। मनुष्योंको जमीनकी जरूरत है, परन्तु उनसे कहा जाता है कि जमीन छोड़कर पहले कारखानोंको छीनो, जिनकी उन्हें जरूरत नहीं है और इसके बाद वे जमीन भी पा जायेंगे। जिस चीजकी आवश्यकता है, उसे त्यागकर पहले वह वस्तु प्राप्त की जाये जिसकी आवश्यकता नही है। इसके बाद आवश्यक वस्तुकी प्राप्ति होगी—यह पेचीदा ढङ्ग उस सूदखोरकी याद दिलाता है, जो एक हजार रुपया केवल इस शर्तपर देनेके लिये तैयार होता है कि पहले उससे चार हजार रुपयेका साबुन, रेशम आदि लिया जाये, तो वह उस अनावश्यक सामग्रीके साथ एक हजार नकद रुपया भी दे देगा। यह कैसा विचित्र सिद्धान्त है!

साम्यवादी जमीन और कारखानोंके बीच कुछ भी भेद न मानकर श्रमजीवियोंसे जमीन छोड़नेके लिये कहते हैं, जिस जमीनके लिये वे भूखे बैठे हैं और उनसे उन कारखानोंको लेनेके लिये कहते हैं, जो तोप, बन्दूक, शीशे, साबुन, इत्र तथा विलासके अन्यान्य सामान तैयार करते हैं। जिस समय श्रमजीवी इन

सब चीजोंको बनाना सीख लेंगे और जमीन जोतना भूल जायेंगे, उस समय वे जमीन लेकर क्या लाभ उठायेंगे ?

मनुष्यका स्वाधीन और आनन्दमय जीवन उसी समय सम्भव है, जब कि वह खेती करता हुआ जमीनपर अपनी आवश्यकतापूर्तिके लिये निर्भर हो। यह बात सभी आदमी जानते हैं। यही कारण है कि वे हमेशा जमीन पानेकी चेष्टा करते रहे हैं और भविष्यमें भी करते रहेंगे, चाहे उन्हें कृषि-जीवनके समान और कोई धन्धा भले ही सामने दिखाई दे।

साम्यवादियोंका कथन है कि मनुष्यको सुखी जीवनके लिये वृक्षों और प्रकृतिके सौन्दर्यके बीच रहनेकी जरूरत नहीं है। उसे उन स्थानोंमें रहना चाहिये जहांपर कारखाने अधिक हों, जहांकी वायु भी शुद्ध न हो और जहांपर उसकी आवश्यकताएं प्रति दिन अधिक होती रहें। मनुष्य इन बढ़ी हुई आवश्यकताओंको कारखानोंमे लगातार काम करता हुआ ही पूर्ण कर सकता है। कारखानोंमें काम करनेवाले यही बड़े महत्वका काम समझते हैं कि कारखानोंके स्वामियोंसे लडकर कुछ अधिक मजूरी पायी जाये और कम घण्टे काम किया जाये। वास्तवमें उनका सुख इस उद्योगसे कभी नहीं बढ़ सकता। उन्हें ऐसा उपाय सोचना चाहिये, जिससे वे अपनी खोयी हुई जमीन पाकर फिर खेती करने लगें। साम्यवादी यह बात भी कहा करते हैं कि मान लिया जाये कि कृषि-जीवन नगरके जीवनसे श्रमजीवीके लिये लाभदायक है, तो भी नगरोंमे श्रमजीवियोंकी संख्या इतनी बढ़

गयी है कि अब वे गांवोंको नहीं लौट सकते। इसके साथ ही कारखानोंमें तैयार किया हुआ सामान राष्ट्रीय धन है जो मजूरोंकी कमीसे घट जायेगा। कारखाने बचे हुए श्रमजीवियोंका भी पालन न कर सकेंगे। यदि सभी श्रमजीवी गावोंको लौटना चाहेंगे, तो उनके लिये जमीन काफी भी न होगी।

कारखानोसे श्रमजीवियोंके चले जानेपर राष्ट्रीय धन घट जायेगा यह दलील ठीक नहीं, क्योंकि जो लोग जमीन जोते-बोयेंगे, वे कारखानोंमे बिल्कुल ही काम न कर सकेंगे—ऐसी सम्भावना ही क्यों की जाती है। वे अपने घरोंमे बहुतसा सामान तैयार कर सकेंगे। यदि उनके चले जानेसे हानिकारक विलास-सामग्री घट जाये या जरूरी चीजे बहुत ज्यादा तैयार न हो, तो भी आर्थिक दृष्टिसे राष्ट्रकी हानि नही, क्योंकि खाद्यपदार्थ अधिक उत्पन्न होंगे तथा पशुपालन होनेसे राष्ट्रकी सम्पत्ति दूसरे ढङ्गसे बढ़ने लग जायेगी।

सब श्रमजीवियोंको काफी जमीन न मिल सकेगी यह दलील भी ठीक नहीं, क्योंकि रूस आदि देशोंमें जरूरतसे ज्यादा जमीन है। इङ्गलैण्ड, बेलजियम आदि देशोमे कम जमीन होनेपर भी वहांके श्रमजीवियोंके लिये काफी हो सकती है यदि बड़े बडे जमींदारोंसे जमीन ले ली जाये और विज्ञानकी सहायतासे जमीन अधिक उपजाऊ बनायी जाये, जिससे थोड़ीसी जमीनमें ही सबका काम चल जाये। पूरा ध्यान देनेसे जमीनकी उत्पादनशक्ति बहुत कुछ बढ़ायी जा सकती है। यदि किसानोंको यह विश्वास

हो जाये कि उन्हें जो जमीन मिली है वह उनसे छीनी न जायेगी, तो वे उसके लिये विशेष परिश्रम करने लग जायेंगे। वे जो रुपया जमीनका लगान चुकानेके लिये जमींदारोंको देते हैं, उससे जमीन उपजाऊ बना सकेंगे। जमींदार यह समझकर जमीनको कभी अच्छी बनाते ही नहीं कि हमे तो हर हालतमें उसका लगान मिल ही जायेगा।

यदि सबको काफी जमीन न मिले, तो इसका यह भी तो अर्थ नही है कि वह कुछ लोगोंको न दी जाये और व्यर्थ ही जमीदारोंके पास पड़ी रहे। इसका तो यही अर्थ हुआ कि एक आदमीके पास एक खाली मकान पड़ा है और वर्षा या तूफानसे घबराये हुए मनुष्योंका एक बड़ा दल मकानके भीतर घुसनेकी इच्छा रखता है। मकानका स्वामी सबको बाहर रखता है, क्योंकि वह मकानमे सबके लिये काफी जगह नहीं समझता। यदि वह सबको घुसनेकी आज्ञा दे दे, तो लोग किसी तरह प्रबन्धकर उसमें आश्रय पा ही जायेंगे और यदि कुछ लोग ज्यादा भी हुए, तो वे बाहर निकल पड़ेंगे। कुछको तो आश्रय मिल ही जायेगा। मकान-मालिकको कह देना चाहिये कि मकान खुला है। यदि सब जगह न पाये, तो क्या थोड़े आदमियोंको आश्रय न देना चाहिये ?

जमीनके सम्बन्धमें भी यही करना होगा। जो श्रमजीवी जमीन चाहे, उन्हे दी जाये। इसके बाद देखा जायेगा कि वह उनके लिये काफी है या नहीं।

एक और बात भी है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यदि श्रमजीवी कारखाने छोड़कर गांवोंको लौटेंगे, तो उन्हें काफी जमीन मिल जायेगी। कारखानोंमें काम करनेवाले मजूर गेहूं खरीदकर ही तो अपना पेट भरते हैं। यदि दूसरे उनके लिये काफी गेहूं तैयार कर सकते हैं, तो कोई कारण नहीं कि वे स्वयं अपने लिये इतनी जमीन न पायें जो उन्हें पेट भरनेके लिये गेहूं न दे सके। प्रत्येक देशमें इतनी जमीन मिल सकती है— चाहे वह भारतवर्ष हो, रूस हो या आस्ट्रेलिया हो।

इस तरह विचार करनेसे मालूम होगा कि यह दलील ठीक नहीं कि यदि मजूर गावोंमें लौटकर खेती करना चाहेंगे, तो उन्हें काफी जमीन न मिलेगी। गांवोंमें जाकर खेती करते हुए वे अपना सुख ही नहीं, समाजका सुख भी बढ़ानेमें समर्थ होंगे। साथ ही उन अकालोंको भी स्थान न मिलेगा जो हर समय भारत, रूस आदि देशोंमें अपना अड्डा जमाये हुए हैं। इन अकालोंसे स्पष्ट है कि आजकल जमीनका विभाग उचित ढङ्गसे नहीं हो रहा है।

जिन देशोंमें बहुत ज्यादा कारखाने खुल चुके हैं जैसे कि इङ्गलैण्ड, वेलजियम, अमेरिकामें हैं, वहांपर मजूरोंका जीवन अवश्य ही अकृत्रिम बना दिया गया है। इसी कारण उन्हें गांवोंको लौटनेमें बड़ी कठिनाई मालूम होती है। परन्तु यह कठिनाई इतनी बड़ी नहीं है कि किसान गांवोंमें जाकर खेती आरम्भ ही न कर सकें। श्रमजीवियोंको यह बात समझानी

होगी कि जबतक वे गांवोंमें जाकर खेती न करने लग जायेंगे, उनका कभी स्थायी कल्याण न होगा चाहे कारखानेके जीवनमें आन्दोलनके कारण कितना ही सुधार क्यों न हो जाये। उन्हें उसी लाभदायक जीवनकी ओर जानेके लिये उपाय ढूंढ़ निकालने चाहिये और कारखानेकी गुलामी स्थायी तथा न छूटनेवाली न समझनी चाहिये। वे यह भी न समझें कि गुलामीमें केवल सुधार ही हो सकता है, परन्तु उसका अन्त सम्भव नहीं।

जो श्रमजीवी जमीन छोड़कर कारखानोंमे आकर काम करने लग गये हैं, उन्हें हड़तालो, जुलूसों और समितियोंकी आवश्यकता नहीं। उन्हें एक ही चीजकी जरूरत है और वह यही है कि वे कारखानेकी गुलामीसे छुटकारा पानेके उपाय सोचें। वे जमीन पानेकी कोशिश करें जो जमींदार दबाये बैठे हैं और उसके सुधारकी ओर भी ध्यान नहीं देते। श्रमजीवियोंको अपने शासकोंसे केवल एक इसी चीजको मांगना चाहिये। इस चीजको मांगते हुए वे कोई ऐसी चीज नहीं मांग रहे हैं जो उनकी नहीं है। वे अपने जन्मसिद्ध अधिकारको मांग रहे हैं, जो प्रत्येक जीवधारीके जन्मके साथ लगा हुआ है। प्रत्येक प्राणी ईश्वरीय भूमिपर उत्पन्न होकर उससे अपना उदर-पोषण करनेका अधिकारी है और इस अधिकारको काममें लानेके लिये उसे किसीकी आज्ञा पानेकी भी आवश्यकता नहीं।

जमीन जायदाद न मानी जानी चाहिये, क्योंकि इस प्रथाका अन्याय और बुराइयां सबके सामने स्पष्ट हैं। प्रश्न यही है कि यह

प्रथा किस तरह नष्ट की जाये। गुलामीकी प्रथा पहले जमानेमें प्रचलित थी और वह सरकारी घोषणाओंके कारण उठ गयी परन्तु क्या सरकारें घोषणा निकालकर जमीनको जायदाद न रहने देंगी। जो ऐसी आशा करते हैं वे भूलमें हैं, क्योंकि सरकारें कभी इस सम्बन्धमें घोषणा प्रकाशित नहीं कर सकतीं।

सब सरकारोंमें वही लोग सम्मिलित देखे जाते हैं, जो दूसरे-के परिश्रमसे लाभ उठाते हैं। जमीन जायदाद बनकर इस जीवनको बड़ी सहायता पहुंचाती है। शासक और जमींदार जमीनको जायदाद माननेमें सहमत रहेंगे ही, परन्तु साथ ही वे लोग भी जो शासनमें भाग नहीं लेते परन्तु सुखी जीवन व्यतीत करते हैं—जैसे कि सरकारी कर्मचारी, वैज्ञानिक और व्यापारी आदि जमीनको जायदाद मानते रहेंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि सुखकी जड़ इसीमें है कि जमीन जायदाद मानी जाये। अधि-कांश सम्पन्न मनुष्य स्वभावसे ही इस बातका अनुभव करते हैं कि हमारे सुखकी जड़ भू-सम्पत्ति ही है।

पार्लमेण्टोंमें इस बातपर बड़ी बहस हुआ करती है कि जनताका हितसाधन किस ढङ्गसे किया जाये। जनताके हितके लिये नये नये उपाय भी सोचे जाते और काममें लाये जाते हैं। सब उपाय स्वीकार किये जाने योग्य माने जाते हैं, परन्तु एक उपाय कभी नहीं माना जाता जो भू-सम्पत्तिका विनाश है।

भू-सम्पत्ति नष्ट करनेके लिये इसलिये यह आवश्यक है कि मौनव्रत धारणकर जो उसके अस्तित्वके लिये स्वीकृति दी जाती

है, उस मौनावलम्बनकी शरण न ली जाये। जिन देशोंमें पार्लमेण्ट यानी प्रजाप्रतिनिधि शासन है वहां कुछ हो भी सकता है, परन्तु जहांपर निरंकुश शासन है वहापर भू-सम्पत्ति नष्ट करनेकी बहुत ही कम सम्भावना है। निरंकुश शासक तो बाहरी शासन किया करते हैं; असली शासन तो वही लोग किया करते हैं जो भू-सम्पत्ति रखते हैं और शासकको चारों ओरसे घेरे हुए हैं। शासक यदि भू-सम्पत्ति सब प्रजाको बांट देना चाहे तो वह ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि जो जमीन रखते हुए दूसरेके परिश्रमसे लाभ उठा रहे हैं, वे विरोध करेंगे। निरंकुश शासक भले ही भू-सम्पत्ति नष्ट न कर सके, परन्तु उसके नाशकी सम्भावना तो है, क्योंकि यह तो सभी जानते हैं कि जमींदार जमीनके मालिक बने हुए हैं। सरकारोंसे किसी प्रकारकी आशा करना व्यर्थ अवश्य है। जबर्दस्ती जमीन छीनना कठिन है, क्योंकि यह तो अनुभव की हुई बात है कि जिनके पास जमीन है वे अधिक पशुबल काममें ला सकते हैं। जिसके पास जमीन है, वह शक्तिसम्पन्न रहा है और कालान्तरमें भी रहेगा।

साम्यवादी अपने सिद्धान्तको काममें लाकर जब जमीन जमींदारोंसे छुड़ायेंगे, उस समयकी प्रतीक्षा किये हुए चुपचाप बैठा रहना भी मूर्खता है। साम्यवादियोंका सिद्धान्त श्रमजीवियोंको अपने स्वामियोंका और भी अधिक गुलाम बनानेवाला है और नये सङ्गठनोंके प्रबन्धक उन्हें कालान्तरमें गुलाम बनाये बिना न रहेंगे, ऐसी सम्भावना है।

प्रतिनिधि शासन या निरंकुश शासन किसीसे भी जमीनके छुटकारेकी आशा न करनी चाहिये। जिन लोगोंसे छुटकारेकी आशा की जाती है, वे स्वयं भू-सम्पत्ति रखते हैं और यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि जमीन अपने पास रखनेसे ही दूसरोंके परिश्रमसे लाभ उठाना सम्भव है। श्रमजीवियोंके हितकी चिन्ता सभी प्रकट करेंगे, परन्तु उन्हें कोई वह चीज देनेको तैयार न होगा जिसकी उन्हें सबसे अधिक आवश्यकता है। वे जमीन न पायेंगे।

श्रमजीवी पीड़ित अवस्थासे छुटकारा पानेके लिये फिर क्या करें यही प्रश्न है—

पहले तो यही दिखाई देगा कि छुटकारा सम्भव नहीं है और श्रमजीवियोंके बन्धन इतने दृढ़ है कि वे टूट नहीं सकते। यह ऊपरसे दिखाई देनेवाली बात है। श्रमजीवियोंको केवल अच्छी तरह अपनी अवस्थापर विचार करना है। फिर उन्हें पता लगेगा कि उद्धारके लिये न तो दङ्गा-फसाद, न साम्यवाद और न सरकारकी कृपाकी ही आवश्यकता है। उनके पास ही उद्धारका ऐसा उत्तम साधन है जिसे कोई विफल बना ही नहीं सकता। जो साधन सदासे उनके पास रहा है, अब भी है और रहेगा। श्रमजीवियोंके सभी कष्टोंकी जड़ यही है कि जमींदारोंके पास जमीन है और श्रमजीवी उसे पाते नहीं। जमींदार किन कारणोंसे जमीन अपने अधिकारमें किये हुए हैं?

पहली बात तो यह है कि यदि श्रमजीवी उनसे जमीन छीनना चाहेंगे, तो उनके विरुद्ध सेना रवाना की जायेगी जो उन्हे मार-

पीटकर भगा देंगी और उन्हें जानसे भी मार डालेगी। इस तरह जमीनपर अधिकार न हो सकेगा। श्रमजीवियो! विचारो तो सही कि ये सेनाएं किन लोगोंसे बनी हैं? क्या उनमें बड़े बड़े जमींदार सैनिक बन रहे है या तुम्हारे ही भाई-बन्धु हैं? यह तुम्हारे ही कारणसे है कि जमींदार जमीनपर अधिकार किये हुए हैं, क्योंकि तुम सेनामें भर्ती होते हो और सेनापतियोंकी आज्ञा मानकर गोलियां चलाते हो।

दूसरा कारण यह है कि तुम ही तो जमींदारोंसे जमीन लेकर उसके लिये लगान चुकाते हो। जमींदार लगानके लोभ-से जमीन नही छोड़ना चाहते जो वास्तवमें तुम्हारी ही है। यदि श्रमजीवियोंके बीच यह दृढ़ निश्चय हो जाये कि न तो जमींदारों-से लगान चुकानेके लिये जमीन ली जायेगी और न उनकी जमीन-पर परिश्रम ही किया जायेगा, तो जमींदारोंके लिये सारी जमीन बोझा बन जाये। वे अपनी जमीनको सबकी सम्पत्ति बना देंगे। जमींदार न तो मेशीनोंसे काम निकाल सकेंगे और न सब जमीन जङ्गल बढ़ाने या पशु चरानेमे ही लगा सकेंगे। उन्हें धीरे-धीरे जमीनका अधिकार छोड़ देना पड़ेगा।

इस तरह श्रमजीवी अच्छी तरह समझ लें कि उद्धारका एक रास्ता जमीनकी प्राप्ति है, जो जमीन सरकारों या जमींदारोंके हाथमे है। वह जमीन यदि सबकी बनानी है, तो कोई श्रम-जीवी सिपाही न बने, क्योंकि सिपाही श्रमजीवियोंको जमीनपर अधिकार नहीं करने देते। न कोई श्रमजीवी जमींदारकी जमीनपर

किसी तरहका काम करे और न जमींदारसे कोई जमीन लगानपर ही ली जाये।

कुछ लोग आपत्ति करेंगे कि यह ढङ्ग तो ठीक नहीं, क्योंकि सेना और जमीनमें गुलाम बनकर भाग न लेनेका फल उसी समय पूरा होगा जब कि संसारके सभी मजूर इस आन्दोलनमें भाग लें यानी संसारके सभी मजूर हड़ताल करें। ऐसा होना सम्भव नहीं है। यदि एक स्थानके मजूर भाग न लेंगे तो दूसरे देशोंके मजूर भाग लेने लग जायेंगे और जमींदार जमीनसे वञ्चित न होंगे। जो श्रमजीवी सेना या जमीनमें भाग लेना स्वीकार न करेंगे, वे अपनी अवस्था और भी खराब बनावेंगे और बाकी श्रमजीवियोंका उपकार भी न कर सकेंगे।

यह आपत्ति सर्वथा उचित मानी जाती यदि हड़तालका उद्देश्य सामने होता। मैं हड़तालके लिये प्रस्ताव ही नहीं कर रहा हूं। जो सेनाएं दूसरोंकी हत्याएं करती हैं, उनमें भाग न लेना चाहिये और न जमींदारोंकी जमीनमें ही किसी तरह भाग लेना चाहिये। इसलिये नही कि इन दोनोंके कारण श्रमजीवियोंकी दशा बिगड़ती है या उनकी गुलामी बढ़ती है, बल्कि इसलिये कि दोनों पापपूर्ण काम हैं और उनमे भाग न लेना उसी तरह आवश्यक है जिस तरह कोई चोरी, डकैती या नरहत्यामें भाग नहीं लेता। जमींदारोंके हाथमें जमीन रहनेसे जब लाखों आदमी भूखों मरते हैं, स्त्री, बच्चे और वृद्ध मनुष्य कष्ट पाते हैं और अकाल मृत्युको प्राप्त होते हैं,

तब जमीनके अधिकारियोंके अधिकारको अपने सहयोगसे लाभ-दायक बनाना पाप नहीं तो क्या है। श्रमजीवी इस पापका अनुभव करें, जो उनके द्वारा अप्रत्यक्ष रूपसे हो रहा है। उनके सहयोगसे ही उनके परिश्रमसे ऐसे लोग लाभ उठा रहे हैं, जो स्वयं कुछ भी परिश्रम नहीं करते।

लाखों करोड़ों आदमी हड़ताल किये बिना ही चोरी, डकैती हत्या और व्यभिचारमें सिर्फ इसीलिये भाग नहीं लेते कि उनमें भाग लेना पाप है। श्रमजीवियोंको भी जमींदारोंकी जमीनपर काम करना इसी तरह पापका साधन समझना चाहिये। श्रमजीवी जब अपनी आंखों देख रहे हैं कि जमीन दूसरोंकी जायदाद बन गयी इसीसे उनके भाई-बन्धु भूखों मर रहे हैं, तो उन्हें उस जमीन-पर क्या कभी कामकर जमींदारोंका लोभ बढ़ाना चाहिये? आश्चर्य है कि श्रमजीवी इस भयानक पापमें किस तरह सहायक बन रहे हैं। मैं हड़तालका प्रस्ताव नहीं करता, बल्कि यह चाहता हूं कि श्रमजीवी सूक्ष्म दृष्टिसे उस पापको देखें जिसमें वे इस समय अज्ञानवश भाग ले रहे हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि हड़तालकी तरह यह असहयोग सबको शीघ्रतापूर्वक प्रेमबन्धनमें नहीं बांध लेता, परन्तु धीरे धीरे प्रेमकी गांठ मजबूत होती जाती है और हड़तालियोंकी अपेक्षा इन असहयोगियोंका दल अधिक उपयोगी होता है। हड़ताल खतम हो जानेपर हड़तालियोंका प्रेम-सम्बन्ध टूट जाता है, परन्तु असहयोगियोंका दल और पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ता ही रहता है।

असहयोगी जमीनको जायदाद् न मानकर उसमें योगदान नहीं देते, इसका यह अर्थ है कि वे एक बुराईका अनुभव करते हैं और स्वार्थसाधनकी कोई इच्छा न रखते हुए सब प्रकारके कष्टोंका सामना करनेको तैयार हैं। वे हड़ताल करनेवालोंकी तरह किसी क्षणिक् लाभके लिये, थोडेसे मनुष्योंके हितके लिये त्याग नहीं दिखा रहे हैं, वलिक वे ऐसे सिद्धान्तके पालनमे दत्त-चित्त हैं जो सब कालमें, सब स्थानोंके मनुष्योंके लिये हितकारक है। ऐसे लोगोंकी संख्या वढ़नी स्वाभाविक है, क्योंकि जिसे भी बुराईका अनुभव होता जायेगा, वह त्यागियोंके दलमें शामिल होता जायेगा।

जिस समय श्रमजीवी भू-सम्पत्तिकी बुराईका अनुभव करने लग जायेंगे, उस समय सामाजिक सङ्गठनमे क्या परिवर्तन उपस्थित होगा इसका निश्चय करना कठिन है। इसमे सन्देह नही कि परिवर्तन अवश्य होगा। यह भी परिवर्तन उपस्थित हो सकता है कि श्रमजीवी जमीनपर जब किसी तरहका काम ही न करेंगे, तो जमींदार इनके साथ ऐसा प्रवन्ध कर लेंगे जिससे श्रमजीवियोंको लाभ पहुचने लग जाये या वे बिल्कुल ही जमीन छोड़ दें। यह भी परिवर्तन हो सकता है कि जब सेनाओंमें रहनेवाले श्रमजीवी भू-सम्पत्तिकी बुराई समझ जायेंगे, तो अपने भाइयोको न सतायेंगे और जमींदारोकी भू-सम्पत्तिकी सरकारें रक्षा ही न कर सकेंगी। इस तरह जमीन जमींदारोंके हाथसे निकल आयेगी। सरकारें यह भी कर सकती हैं कि वे कानून बनाकर भू-सम्पत्तिका नाश ही कर दें

जब कि वे यह देखें कि जमीन सार्वजनिक सम्पत्ति बनानी ही होगी। इस तरह श्रमजीवियोंका उद्देश्य सिद्ध हो जायेगा।

यह कोई नहीं कह सकता कि श्रमजीवियोंके असहयोगका कितना व्यापक परिणाम होगा, परन्तु एक बात तो निश्चित है— इस सम्बन्धमें जो भी चेष्टा सच्चे मनसे ईश्वरपर पूरा विश्वास-कर की जायेगी, वह परिणाम उत्पन्न किये बिना कभी नष्ट नहीं हो सकती।

जिस कामको अधिकांश मनुष्य पसन्द नहीं किया करते, उसके सम्बन्धमें लोग कहा करते हैं कि मैं अकेला क्या कर सकता हूं। ऐसे लोग समझा करते हैं कि किसी कामकी सफलताके लिये सब या अधिकांश मनुष्योंकी आवश्यकता है; परन्तु वास्तवमें बुरा काम करनेके लिये ही अधिक आदमियोंकी जरूरत है। अच्छा काम करनेके लिये एक ही आदमी काफी है, क्योंकि अच्छे कामके साथ परमेश्वर है। जिस अच्छे काम करनेवालेके साथ परमेश्वर है, उसके साथ एक न एक दिन सभी मनुष्य होंगे। श्रमजीवियोंकी अवस्थाका सुधार तभी सम्भव है, जब कि वे परमेश्वर यानी अपने अन्तःकरणकी पवित्र आज्ञानुसार विशेष नैतिक बल काममें लाते हुए चेष्टा करें जो चेष्टा उन्होंने अबतक नहीं की है।

श्रमजीवियोंके लिये यह उपदेश ठीक नहीं कि जिन कार-खानोंमें वे काम करते हैं, उनपर अपना अधिकार जमा लें। यह उपदेश सर्वथा नैतिक बलशून्य है। हमको दूसरोंके प्रति

वैसा ही वर्ताव करना चाहिये, जैसा वर्ताव हम दूसरोंसे अपने प्रति कराना चाहते हैं।

श्रमजीवियोंको जहां उपर्युक्त उपदेश न मानना चाहिये, वहां सेनामें भर्ती होकर अपने भाइयोंको भी न सताना चाहिये और न जमींदारोंकी जमीनके कुत्ते ही बनना चाहिये। ऐसा करनेसे यदि व्यक्तियोंको थोड़ासा लाभ भी पहुंच जाये, तो भी वह तमाम श्रमजीवी दलको हानि पहुंचानेवाला काम है।

अबतक श्रमजीवियोंने अपने उद्धारके लिये जो कुछ प्रयत्न किया है, वह इसीलिये सफल नहीं हुआ कि वह नैतिक बलसे शून्य था। उन्होंने यह सिद्धान्त नहीं माना कि दूसरोंके साथ वैसा ही वर्ताव करना चाहिये, जैसा वर्ताव पानेकी इच्छा है। श्रमजीवियोंका उद्धार किसी प्रकारका आक्रमण सम्बन्धी काम करनेसे न होगा, बल्कि रक्षात्मक काम करनेसे होगा क्योंकि वह नैतिक बलपूर्ण और न्यायसङ्गत होगा। वह परमेश्वरकी इच्छाके भी अनुकूल होगा।

उसी समाजमें लोग दुःखी रहेंगे, जिसमें एक दूसरेसे लड़कर लाभ उठानेका नियम है। यह पशु-सिद्धान्त है। धार्मिक समाजमें कोई दुःखी रह ही नहीं सकता। जब लोग आपसमें बांटकर काम चलाने लग जायेंगे, तब किसी चीजकी कमी रहनी तो कठिन है। वह और भी अधिक दिखाई देने लगेगी। यदि कुछ लोगोंके पास खानेके लिये अन्न है और कुछ भूखों मर रहे हैं, तो सीधा उपाय यह है कि सब मिलकर

उसे बांट खायें। पीछे पता लगेगा कि सबका पेट भर जानेपर भी कुछ चीज बाकी बच गयी। जो लोग यह कहा करते हैं कि आवश्यकता भला-बुरा सब काम कराती है, वे ठीक तौरसे अपनी समझ काममें नहीं लाते। परस्परकी सहायताका अभाव बुरे काम कराता है। श्रमजीवी जमींदारोंकी जमीनपर काम न करते हुए कभी भूखे न रहेंगे यदि वे एक दूसरेको मदद देनेका सिद्धान्त काममें लाने लग जायें।

जो श्रमजीवी जमींदारोंकी जमीनपर काम करने जाते हैं या उनसे लगानपर जमीन लेते हैं, वे अपना और अपने भाइयोंका कितना अनर्थ करते हैं यह बात वे समझते नहीं। ज्यों ज्यों उन्हें अपने अनर्थका ज्ञान होता जायेगा और वे असहयोग करते जायेंगे, त्यों त्यों उनपर जमींदारोंके कम अत्याचार होने लगेंगे।

श्रमजीवियोंके उद्धारका ईश्वरेच्छाके अनुकूल यदि कोई मार्ग है, तो यही कि जमीन जमींदारोंके अधिकारसे छुड़ायी जाये। साथ ही यह बात भी ध्यानमें रखनी होगी कि जमीन छुड़ानेसे ही काम न चलेगा। श्रमजीवियोंको पहलेसे यह बात जान लेनी होगी कि जब जमीन जमींदारोंके पञ्जेसे निकल आयेगी, तो श्रमजीवियोंके बीच उसका विभाग किस तरह करना होगा। बहुतसे लोग समझते हैं कि जमींदारोंसे जमीन छीन लेनेसे ही सब काम भली भांति चल जायेगा। ऐसी बात नहीं है। यह कहना सहल है कि आलसी जमींदारोंसे जमीन छीनकर काम करनेवालोंको दे दो। इस बातका विचार रखनेकी बड़ी जरूरत

है कि जमीनका विभाग न्यायपूर्वक हो और इस ढङ्गसे विभाग किया जाये कि जमींदारोंको फिर जमीन पाकर श्रमजीवियोंपर अपना अधिकार जमानेका मौका न मिले।

कोई भी श्रमजीवी जहां चाहे जमीन जोते, यह सिद्धान्त उसी समय काममें लाया जा सकता है जब कि जमीन ज्यादा और आबादी कम हो तथा सब जमीन एक ही ढङ्गकी हो। जहांपर आबादी ज्यादा और जमीन कम है तथा वह भिन्न प्रकारकी है, तो उसका विभाग विचारपूर्वक करना पड़ेगा। यदि जितने मनुष्य हैं उनकी संख्याके अनुसार जमीनका विभाग किया जायेगा, तो ऐसे व्यक्तियोंको भी जमीन मिल जायेगी जो उसे जोत बो न सकेंगे। ये लोग किसी दूसरेको अपने हिस्सेकी जमीन बेच देंगे और पैसेवाले उसे खरीदकर बढ़ाते जायेंगे। इस तरह फिर जमींदार दिखाई देने लग जायेंगे जो बिना परिश्रम किये जमीनसे लाभ उठाना चाहेंगे। यदि यह नियम कर दिया जायेगा कि कोई किसीको जमीन बेचे नहीं या पट्टा लिखाकर न दे, तो बहुतसी जमीन बिना जोती बोयी रह जायेगी। जहांपर भिन्न प्रकारकी जमीन होगी, वहांपर उसका विभाग भी कठिनाईके साथ हो सकेगा। कहींपर जमीन ज्यादा उपजाऊ है और कहींपर कम। उस समय जमीनके बटवारेमें लड़ाई-झगड़ा खड़ा होगा। बहुत दिनोंसे लोग इन कठिनाइयोंको सुलझानेमें लगे हैं और उन्होंने बहुतसे उपाय सोचे हैं। साम्यवादी यह उपाय काममें लाना चाहते हैं कि जमीन सार्वजनिक सम्पत्ति

समझी जाये और सब लोग मिलकर उसे जोतें बोयें। इसके सिवा और भी उपाय हैं जिनका संक्षेपमें वर्णन कर देना जरूरी है।

१८ वीं शताब्दीमें स्काटलैण्डके विलियम ओगिलवीने अपनी राय दी थी कि जो मनुष्य जिस जमीनपर उत्पन्न हुआ है, उसे उस जमीनपर अन्य लोगोंके समान ही अधिकार है। उसके हिस्सेपर किसी दूसरेका अधिकार नहीं हो सकता और न वह जमीन किसीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है। यदि किसीके पास अपने हिस्सेसे ज्यादा जमीन है और उस अधिक भागके लिये कोई माग प्रकट नहीं कर रहा है, तो अधिक जमीन रखनेवालेको सरकारके खजानेमें टेक्स देना चाहिये।

इङ्गलैण्डके टामस स्पेन्सकी राय है कि सब जमीन पुरोहितोंकी भूमि है और वे जिस तरह चाहें, उसे बांट सकते हैं। किसी भी व्यक्तिको अलग जमीनका स्वामी बननेका कोई अधिकार नहीं है। टामस स्पेन्सके सिद्धान्तका परिचय नीचेकी एक घटनासे जल्दी मिल सकता है। टामस स्पेन्स एक दिन एक झाड़ीमें कुछ फल तोड़ रहे थे। झाड़ीके रक्षकने उनसे पूछा कि क्या कर रहे हो। उन्होंने जवाब दिया कि फल तोड़ रहा हूं। रक्षकने कहा कि फल तोड रहे हो और इस साहसके साथ उत्तर दे रहे हो। टामस स्पेन्सने कहा कि हां, साहसपूर्वक क्यों न उत्तर दूं। यदि कोई बन्दर आकर इस तरह फल तोड़कर खाने लगे, तो क्या तुम उससे नाराज होगे। क्या मैं जानवरोंसे भी कम हूं।

तुम कौन हो जो मेरे काममें बाधा पहुंचा रहे हो। झाड़ीके पहरेदार-ने जवाब दिया कि तुम्हें शीघ्र ही पता लग जायेगा जब मैं तुम्हें अनधिकार प्रवेशके लिये पकड़ूंगा। फल तोड़नेवालेने कहा कि यह तो प्रकृतिकी कृपाका फल है। यहांपर किसने पौधे लगाये हैं। वे पशु और मनुष्य सबके खानेके लिये हैं। उनपर किसका अधिकार हो सकता है। यह तो सबकी सम्पत्ति है। पहरेदारने उत्तर दिया कि नहीं, यह ड्यूक आफ पोर्टलैण्डका बाग है। फल तोड़नेवालेने कहा कि मैं यह बात नहीं मान सकता। प्रकृतिका नियम है कि जो पहले पावे वही तोड़ ले। ड्यूक यदि फल खाना चाहें, तो उन्हें पहले आना चाहिये। अन्तमें स्पेन्सने कहा कि यदि मुझे ऐसे देशकी रक्षा करनेका भार दिया जाये जिसमें मुझे स्वेच्छासे एक फल तोड़नेका भी अधिकार नहीं है, तो मैं अपनी बन्दूक फेंककर यही कहूंगा कि ड्यूक सरीखे आदमी ही देशकी रक्षा करें जो उसके स्वामी होनेका दावा रखते हैं।

टामस पेनकी राय थी कि जमीन सबकी सम्पत्ति है। उसपर किसीका खास अधिकार नहीं हो सकता। कोई जमीन-का उत्तराधिकारी नहीं बन सकता। जो कोई मरे, उसकी मृत्युके बाद जमीन सार्वजनिक सम्पत्ति बना दी जाये।

डव साहबका सिद्धान्त है कि जमीनकी कीमत दो तरहसे है। एक तो जमीनकी ही कीमत हुआ करती है और दूसरे परिश्रमका मूल्य है, जो उस जमीनपर किया जाता है। जमीनकी कीमत

सब देशका धन है और परिश्रमका मूल्य व्यक्तियोंका धन है। इसलिये जमीन खास व्यक्तियोंके अधिकारमे नहीं जा सकती। जमीन सब देशकी ही सम्पत्ति होनी चाहिये।

जापानमे भूमि-उद्धारक समिति है। उसका सिद्धान्त है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भागके समान जमीन रखनेका अधिकारी है। उसे इस हिस्सेके लिये निश्चित कर चुकाना होगा। वह जिस किसी व्यक्तिके पास उसके भागसे अधिक जमीन देखेगा, उससे मांग सकेगा। मेरी रायमें हेनरी जार्जकी सम्मति न्यायसङ्गत और कार्यमे परिणत होने योग्य है।

हेनरी जार्जकी सम्मति नीचे एक उदाहरण देकर समझायी जाती है। मान लिया जाये कि किसी स्थानमें दो जमींदारोंके अधिकारमें सारी जमीन है। एक जमींदार बहुत मालदार है और वह विदेशमें रहता है। दूसरा जमींदार ज्यादा मालदार नहीं और स्वदेशमें ही रहता है। वह अपनी जमीन किसानोंको लगानपर दिये हुए है। इस तरह एक सौ किसान उसकी जमीन लिये हुए हैं। इसके सिवा उसी स्थानमें सैकड़ों ऐसे आदमी हैं जो मजूरी करते हैं और उनके पास जमीन नहीं है। वे कारीगर वगैरह हैं। यदि ऐसे स्थानके अधिवासी यह निश्चय करें कि जमीन किसी एक-दोकी नहीं, सबकी सार्वजनिक सम्पत्ति है और वे उस जमीनको आपसमें बांट लेना चाहते हैं, तो उस दशामे वे क्या करेंगे।

एक दोसे जमीन लेकर यदि कहा जाये कि सभी उसे काममें लायें

तो ऐसा करनेसे लड़ाई-झगड़ा खड़ा हो जायेगा ; क्योंकि जमीन-का एक ही टुकड़ा कई आदमी चाहेंगे। यदि कहा जाये कि कुछ लोग मिलकर खेती करे और फिर आपसमें पैदा हुआ अन्न बाट लें, तो यह प्रबन्ध भी सन्तोषजनक न होगा, क्योंकि बहुतसे आद-मियोंके पास हल, बैल इत्यादि न होंगे और बहुतसे जोतने बोनेका ज्ञान ही न रखते होंगे। सब प्राणियोंको बराबर बराबर जमीन बांट दी जाये यह भी सम्भव नहीं। यदि जमीनके बहुतसे टुकड़े कर दिये जाये और हरएक आदमीको समान श्रेणीकी जमीन खेती, चरागाह और लकड़ी आदिके लिये दी जाये, तो जमीनके बहुत ज्यादा टुकड़े हो जायेंगे। इसके सिवा यह भी भय है कि जो जमीन जोतना बोना न जानते होंगे, वे अपना हिस्सा दूसरेको बेच देंगे। इस तरह जमींदार पैदा होने लग जायेंगे।

इन सब कठिनाइयोंको हल करनेके लिये उस स्थानके अधि-वासी निश्चय करते हैं कि जिन दो जमींदारोंके पास जमीन है, वे उसे अपने ही पास रखें और सार्वजनिक कोषमें उस जमीनकी कीमत जमा कर दें। यह कीमत जमीनके मूल्यके अनुसार बांधी जायेगी न कि परिश्रमके मूल्यके अनुसार जो उस जमीनपर किया जायेगा। खजानेमें गया हुआ रुपया सब आपसमें बराबर बाट लेते हैं।

जिसके पास जमीन है, उससे जमीनकी कीमतका रुपया खजानेमें डलवाकर फिर उस रुपयेको व्यक्तियोंके बीच बांटना बड़ा जटिल काम होगा। सभी अधिवासियोंको स्कूल, अस्प-

ताल, सड़कों और दमकलोंके लिये रुपया देना ही होगा। इस तरह खजानेसे रुपया लेकर फिर सबको सार्वजनिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये उस रुपयेका कुछ भाग देना होगा। इस बखेड़ेसे छुटकारा पानेके लिये सब लोग निश्चय कर लेते हैं कि खजानेमें आया हुआ रुपया सार्वजनिक कामोंमें खर्च किया जायेगा। जिनके पास कुछ भी जमीन नहीं है, उन्हें भी इन सार्वजनिक संस्थाओंसे लाभ उठानेका अवसर मिलेगा।

इस प्रकारका नियम तय हो जानेपर जमींदारों और छोटे छोटे किसानोंसे जमीनकी कीमतके अनुसार रुपया वसूल किया जायेगा, जो सार्वजनिक सस्थाएं चलानेमे व्यय किया जायेगा। जो लोग जमीन नहीं रखते, उनसे कुछ भी न लेनेपर भी उन्हें सार्वजनिक संस्थाओंसे समान लाभ उठानेका अवसर दिया जायेगा।

इस प्रबन्धका यह फल होगा कि जो लोग स्वयं परिश्रम न कर सकेंगे, वे अपने पास ज्यादा जमीन रखना पसन्द न करेंगे और उनकी जमीन ऐसे लोगोंके अधिकारमें आ जायेगी, जो अधिक परिश्रमकर जमीनकी कीमत चुकानेपर भी कुछ बचा सकेंगे। जिनके पास बिल्कुल जमीन न होगी, वे भी कुछ जमीन लेकर उसके लिये परिश्रम करेंगे। इस तरह जमीन उन्हीं लोगोंके अधिकारमे रहेगी, जो परिश्रमकर उससे अधिक आय वसूल करना चाहेंगे। साथ ही सार्वजनिक सस्थाएं अधिक रुपया पाकर अधिक उन्नति करने लग जायेंगी। जमीनके सम्बन्धमें झगड़ा बखेड़ा

या खूनखराबी भी न होगी, क्योंकि सब उतनी ही जमीन रखना चाहेंगे जितनीके लिये वे परिश्रमकर काफी आय प्राप्त कर सकेंगे। हेनरी जार्जकी यह कार्यप्रणाली तमाम संसारके मनुष्यों या अलग अलग देशोंके बीच बहुत आसानीसे काममें लायी जा सकती है।

मैं सारांशमें यही कहना चाहता हूं कि श्रमजीवी उतनी ही जमीन लेनेकी चेष्टा करें जिसके लिये वे स्वयं परिश्रम कर सकते हों। आवश्यकतासे अधिक जमीन रखनेका कष्ट न उठायें। केवल इतनी जमीनकी आवश्यकता है जिसपर अपना निवास हो सके और पेट भरा जा सके।

जमीन पानेके लिये किसी तरहकी हड़ताल, जुलूस या दङ्गा-फसादकी जरूरत नहीं। न इस बातकी जरूरत है कि देशके शासनमें अपने प्रतिनिधि अधिक हों। एक चीजकी जरूरत है और वह यह कि जिसे बुराई समझा जाये, उसमें कभी भाग न लिया जाये। भू-सम्पत्तिका कभी समर्थन न किया जाये। यह समर्थन सेनामें भर्ती होने या जमीनपर काम करने तथा उसे लगानपर लेनेसे होता है।

इस बातपर भी ध्यान देना होगा कि जब जमीन जमींदारोंसे मिल जाये, तो उसका विभाग किस तरह करना होगा। यह कभी न समझना होगा कि जमींदारोंसे ली हुई भूमि किसीकी खास सम्पत्ति हो सकेगी। किसीको भी भू-सम्पत्तिका स्वामी न बनाना होगा, चाहे एक इञ्च ही जमीन क्यों न हो। जमीनको हवा

और पानीके समान सबकी सार्वजनिक सम्पत्ति समझना होगा और उसका आपसमें किसी ढङ्गसे विभाग कर लेना होगा, जो ढङ्ग सबको पसन्द हो।

जमीनपर अधिकार पानेके लिये किसी दलको वशमे करनेकी नही, बल्कि अपने आपको वशमे करनेकी चेष्टा करनी होगी। लोग इसीलिये कष्ट पाते हैं कि वे बुरा जीवन व्यतीत करते हैं। इससे घृणित और कोई विचार नहीं कि मनुष्यकी बुरी दशाका कारण दूसरे मनुष्य हैं, अपनी आत्मा नही। लोग जिस समय यह समझते हैं कि किसी बाहरी कारणसे बुरी दशा हो रही है तो उस कारणको बदलनेके लिये उद्योग करते हुए वे अपनी दशा और भी शोचनीय बनाते हैं। यदि वे अपनी आत्माकी जांच करनेका उद्योग करे, तो उनकी बुरी दशाका शीघ्र ही अन्त हो सकता है।

जो लोग ईश्वरीय इच्छाके विपरीत बुरा जीवन व्यतीत करते है उनका सुधार होना सम्भव नहीं। यदि ईश्वरीय इच्छाके अनुसार चला जाये, तो बुरी दशा नहीं रह सकती। मनुष्यको उन्नतिके लिये बाहरी नहीं, भीतरी सुधारकी आवश्यकता है। उसे बुराईमें भाग लेना छोड देना चाहिये यदि वह ले रहा हो और अच्छा काम शुरु कर देना चाहिये यदि उसे न कर रहा हो। मनुष्य जितना ही अधिक ईश्वरीय नियम काममें लायेगा यानी एकदूसरे-की सहायतापर कमर कसेगा, उतनीही वह उन्नति कर सकेगा। इस सिद्धान्तकी सहायतासे गुलामीका अन्त होता जायेगा।

यह बात बिलकुल सच कही गयी है कि तुम सत्यको जानो और सत्य तुम्हें स्वतन्त्र बनायेगा ।

(४)

एक ही उपाय ।

तमाम संसारमें एक अरबसे ज्यादा श्रमजीवी हैं। जितना भी अन्न, वस्त्र संसारमें दिखाई देता है, वह सब श्रमजीवियोंने ही उत्पन्न किया है। बड़े बड़े बाग-बगीचे, ऊंचे ऊंचे महल और राजा-रईस, सेठ-साहूकार सभी श्रमजीवियोंके परिश्रमके कारण दिखाई दे रहे हैं। श्रमजीवी जो कुछ उत्पन्न करते हैं उससे वे स्वयं लाभ नहीं उठा सकते, बल्कि सरकार और मालदार आदमी लाभ उठाते हैं। श्रमजीवी तो भूखों मरते हैं, आधे नंगे रहते हैं, विद्याहीन रहते हैं और गुलामीमें अपने दिन काटते हैं। जिन लोगोंको वे परिश्रमकर बढ़िया भोजन, वस्त्र और महल देते हैं, उन्हीं स्वार्थियोंकी घृणाके पात्र बनते हैं।

श्रमजीवियोंको जमीनसे वञ्चित किया जाता है और वह उन लोगोंकी जायदाद बनती है, जो कुछ भी परिश्रम नहीं करते। श्रमजीवी अपना पेट भरनेके लिये जमींदारोंकी गुलामी किया करते हैं। यदि कोई खेती न कर किसी कारखानेमें जाकर मजूरी करने लग जाता है, तो वह दूसरे धनी आदमियोंका गुलाम बन जाता है। उनके लिये उसे आजीवन लगातार दस, बारह और चौदह घण्टे हर रोज काम करना पड़ता है। इस तरह उसका स्वास्थ्य मिट्टीमें मिल जाता है। यदि कोई पुरुषार्थी अलग

जमीन लेकर मिहनत करने लग जाता है, तब भी वह स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत नही कर सकता। उससे कर मांगा जाता है, वह सेनामे तीन चार वर्षतक जबर्दस्ती काम करनेके लिये वाध्य किया जाता है और उसे सेनाका व्यय सहना पड़ता है। यदि वह जमीनको काममें लाता हुआ कर नहीं चुकाता या हड़तालकी तैयारी करता है या अपने स्थानपर किसी दूसरे आदमीको काम करनेसे रोकता है, तो उसके विरुद्ध सेना भेजी जाती है, वह घायल किया जाता है या मार डाला जाता है या पहलेकी तरह काम करने और कर चुकानेके लिये वाध्य किया जाता है।

इस तरह वे तमाम संसारमें मनुष्योकी तरह नही, बल्कि लदाऊ जानवरोंकी तरह जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें तमाम जीवन वह काम करना पड़ता है जो उनके लिये नहीं, उनके अत्याचारियोंके लिये आवश्यक है। उन्हें इस कामके बदलेमें केवल इतना ही भोजन और वस्त्र दिया जाता है कि वे अपने अत्याचारियोका काम करनेमे समर्थ बने रहें। कुछ थोड़ेसे आदमी इन श्रमजीवियोंके परिश्रमसे लाभ उठाते हुए भोग-विलास करते हैं और आलसमे दिन काटते हैं। लाखों आदमियोंकी मिहनतका फल जिस ढङ्गसे चाहते हैं, वर्वाद किया करते हैं।

रूसके सम्राट् द्वितीय निकलसके राज्याभिषेकके समय गरीबोंको मुफ्तमे शराब और मांस रोटी बांटी गयी थी। जिस स्थानपर भोजन कराया जानेवाला था, वहां बड़ी भारी भीड़ जमा हुई

और लोगोंने एक दूसरेको धक्का देना शुरु किया। इस धूममें बहुतसे आदमी गिर गये और भीड़के नीचे आ गये। इस तरह कई हजार आदमी मर गये। जब धूम खतम हो गयी तब प्रश्न उपस्थित हुआ कि इतने आदमियोंकी मृत्युका क्या कारण है। किसीने पुलिसके प्रबन्धकी निन्दा की, किसीने सम्राट्की निन्दा की जिन्होंने भद्दी रीतिसे लोगोंको खानेके बहाने एकत्र किया। सबने अपनेको छोड़कर दूसरोंको दोषी ठहराया, परन्तु असलमें दोष भीड़का ही था जिसने थोड़ीसी शराब और रोटीकी धुनमें अपने भाइयोंका कुछ भी ख्याल न रखा और स्वार्थमे पागल हो गयी। सबकी यही चेष्टा थी कि अपने पडोसीसे पहले कुछ पा लिया जाये। क्या श्रमजीवी इसी दाबमे नही पड़ रहे हैं? वे भूखों मरते हैं, स्वास्थ्य खोते हैं, नङ्गे रहते हैं और जानसे मार डाले जाते हैं,परन्तु थोड़ेसे स्वार्थमें पढ़े विना नही रहते जो स्वार्थ उन्हें और उनके लाखों करोड़ो भाइयोंको तमाम जीवन दुखी बनाये रहता है।

श्रमजीवी कभी सरकारोंकी, कभी जमींदारोंकी और कभी कारखानेके स्वामियोंकी तथा कभी सैनिक दलोकी निन्दा किया करते हैं; परन्तु जमींदार उनके परिश्रमसे लाभ उठाते हैं और सरकारें कर वसूल करती हैं। कारखानेके मालिक उनसे काम कराते हैं तथा सेनाएं उन्हें पशुबलके नीचे दबाये रहती हैं, क्योंकि श्रमजीवी इन सबको रक्तशोषणके काममें सहायता ही नही देते, बल्कि वे स्वयं ही रक्तशोषणके साधन बने हुए हैं और जो काम

स्वयं कर रहे हैं उसके सम्बन्धमें दूसरोंकी शिकायत किया करते हैं। जमींदार यदि लाखों बीघा जमीनसे बिना कुछ काम किये ही लाभ उठाता है, तो इसका कारण यही है कि उसे जमीन जोतने बोने और फसलकी रक्षा करनेके लिये लाखों मजूर मिल जाते हैं। सरकारें कर वसूल करनेमें इसीलिये समर्थ होती हैं कि मजूरोंके भाई-बन्धु ही थोड़ेसे लोभमें पड़कर पटवारी, तहसीलोंके चपरासी और पुलिसमेन बनते हैं। इस तरह श्रमजीवी सरकारकी जिस कड़ाईकी शिकायत करते हैं, उस कड़ाईको वे स्वयं काममें लाते हैं। कारखानेवालोंके सम्बन्धमें शिकायत की जाती है कि वे कम मजूरी देते हैं और ज्यादा काम लेते हैं, परन्तु इसमें किसका अपराध है? श्रमजीवी ही प्रतिद्वन्द्वी बनकर अपनी मजूरी कम कराते हैं और पहरेदार, जमादार बनकर अपने भाइयोंसे ज्यादा काम लेते हैं। अपने स्वामियोंके हितके लिये अपने भाइयोंपर जुर्माना कराते हैं और उन्हें तरह तरहसे तङ्ग करते हैं।

श्रमजीवी कहा करते हैं कि जब कभी हम जमीनको अपने अधिकारमें करना चाहते हैं तो हमारे विरुद्ध सेना भेजी जाती है; परन्तु इस सेनामें कौन है? वही श्रमजीवी तो हैं जो थोड़ेसे लाभके लिये अपने भाइयोंको भयभीतकर धनवानोंके गुलाम बनाये रहते हैं। वे ईश्वरीय नियम और अपनी अन्तरात्माकी आवाजके विरुद्ध अधिकारियोंके इशारेपर लोगोंको मार डालना धर्म समझते हैं। इस तरह श्रमजीवियोंके सभी कष्ट उनके

ही कारण बने हुए हैं। यदि वे धनवानों और सरकारोंको मदद देना छोड़ दें, तो उनपर अत्याचार होने एकदम बन्द हो जायें। फिर वे ऐसा काम क्यों कर रहे हैं जो उनका सर्व-नाश कर रहा है?

ईश्वरीय नियम है कि मनुष्यको एक दूसरेकी सहायता करनी चाहिये। सभी देशोंके प्रसिद्ध दार्शनिकोंने इस नियम-पर जोर दिया है। यह नियम बड़ा सरल है और वह मनुष्यो-को अधिकसे अधिक लाभ पहुंचा सकता है। मनुष्योंको जिस समय इस नियमका ज्ञान हो जाये, उन्हें उसके पालनमें विलम्ब न करना चाहिये। स्वयं इसका पालन करते हुए वे दूसरोंको भी यही शिक्षा दे कि इस नियमके अनुसार चलो।

सभी धर्मशास्त्रोंमें परस्परकी सहायतापर बड़ा जोर दिया गया है और सब धर्मोंका सार इसी सहायतामें बताया है। आश्चर्य तो इस बातका है कि लोग इसपर भी इस सीधे नियमको नहीं जानते और यदि जान भी लेते हैं, तो उसे अनावश्यक समझ उसके अनुसार न तो स्वयं काम करते हैं और न दूसरोंको ही उसके अनुसार चलनेकी राय देते हैं।

जब मनुष्य इस साधारण नियमका पालन नहीं करता कि हमें दूसरोंके साथ वैसा ही वर्ताव करना चाहिये जैसे वर्तावकी आशा हम दूसरोंसे रखते हैं, तब वह अपने लिये अधिकसे अधिक सुखचैन ढूंढ़ता है और इस तरह मनुष्यके कल्याणमें बाधा पड़ती है। जो आदमी दूसरोंकी परवा न कर अपने लाभकी

ओर विशेष ध्यान देता है, वह ऐसे आदमियोंकी शरण लेता है जो उसकी रक्षा कर सकें। वह इन शक्तिसम्पन्न मनुष्योंको सहायता देता है। ये शक्तिसम्पन्न मनुष्य अपनेसे अधिक बलशाली मनुष्योंकी शरणमें जाकर उनकी सहायता किया करते हैं। इस तरह परस्पर लाभ पहुचानेकी इच्छा न रहनेसे समाजमे कुछ थोड़ेसे आदमियोंका बल बढ़ जाया करता है और वे दूसरोंको गुलाम बना लेते हैं।

जो थोड़ेसे आदमी अधिक आदमियोंको गुलाम बनाये हुए हैं, वे पारस्परिक सहायताके सिद्धान्तको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं और अपने अधीन मनुष्योंको उसे स्वीकार नहीं करने देते। ये शक्तिसम्पन्न मनुष्य जानते हैं कि हमारी शक्ति इसी लिये है कि हमारे अधीन मनुष्य सदा आपसमें लडा करते हैं और एक दूसरेको अपने वशमें करना चाहते हैं। इसीसे वे गुलामीमें फसे हुए लोगोंसे पारस्परिक सहायताका सिद्धान्त दूर रखते हैं।

पारस्परिक सहायताका नियम तो बड़ा सरल है इसलिये किसीकी ताकत नही जो किसीको उसे स्वीकार करनेसे रोक सके, परन्तु शक्ति भोगनेवाले मनुष्य इस सिद्धान्तको निर्बलोंसे दूर रखनेके लिये बहुतसे नियम और कानून बना डालते हैं, जो सिद्धान्तको स्वीकृतिमे बाधक होते हैं। यह भी कहा जाता है कि ये नियम और कानून बडे महत्वके हैं और उनके सामने और किसी नियम या सिद्धान्तके माननेकी आवश्यकता नहीं है।

शक्तिको भोगनेवालोंमें पुरोहित और धर्माचार्य भी हैं जो धर्मका सहारा लेकर अनेक नियम बनाया करते हैं और उन्हें ईश्वरीय नियम बनाकर सदा उनके पालनपर जोर दिया करते हैं। परस्परकी सहायताका नियम इन नियमोंकी धूममें छिप जाता है और मनुष्य असली नियमको भूलकर दूसरे नियमोंका पालन करनेकी चिन्तामें लग जाते हैं जो विशेष महत्वके नहीं हैं, परन्तु स्वार्थी मनुष्य उन्हें महत्व दिये रहते हैं।

शासन करनेवाले अपने नियम बनाते हैं और अपने हाथके कठपुतले धर्माचार्योंके नियमोंका प्रचार किया करते हैं। वे ऐसे नियम बनाते हैं जो परस्परकी सहायताके नियममें बाधा पहुचानेवाले हैं। शासकोंके नियमोंका पालन न करनेसे दण्ड दिया जाता है। इस तरह शक्ति रखनेवाले निर्बलोंको अपने उद्धारका नियम नहीं मानने देते।

विद्वान् और धनी मनुष्य ईश्वरके किसी खास नियमको न मानकर सदा अपने वैज्ञानिक नियमोंका आविष्कार किया करते जिन्हें धनी मनुष्य सुखवृद्धिके लिये मानते हैं। ये लोग अपने समान ही दूसरोंका जीवन भी आलसी बनाना चाहते हैं और सबको स्कूल, थियेटर, बायस्कोप और सभाओंमें जानेकी सलाह दिया करते हैं। ये लोग कहा करते हैं कि वैज्ञानिक नियमोंका पालन करनेसे श्रमजीवियोंके सभी कष्ट दूर हो जायेंगे, इसलिये परस्परकी सहायताके नियमका तो ये लोग नाम ही नहीं लेते।

उपर्युक्त श्रेणियोंमेंसे कोई भी श्रेणी परस्परकी सहायताके सिद्धान्तका विरोध नहीं करती, परन्तु वे सब मिलकर इतने नये नियम सामने उपस्थित कर देती हैं कि उन सबके बीच ईश्वरका सरल और सर्वोपकारी नियम छिप जाता है।

इस तरह श्रमजीवी असली उद्धार करनेवाले सिद्धान्तसे वञ्चित रहकर सरकारों और सम्पन्न मनुष्योंके अधीन रहकर पीढ़ी दर पीढ़ी अपना जीवन दुःखमय बनाया करते हैं। वे अपना जीवन दुःखमय बनानेके साथ अपने भाइयोंको भी दुखी बनाये रहते हैं। अपना उद्धार चाहनेके लिये वे चालाक और मतलबी आदमियोंके बनाये हुए नियमोंकी शरण लिया करते हैं—जैसे कि देवमन्दिरोंमें जाकर लम्बीचौड़ी प्रार्थनाएं किया करते हैं, राज्यके नियमोंका अक्षरशः पालन करते रहते हैं, सभा-समितियां बनाया करते हैं, व्याख्यान दिया करते और सुना करते हैं। हड़तालें करते हैं या दङ्गाफसाद और क्रान्तिमें भाग लेते हैं, लेकिन असली ईश्वरीय नियमका पालन नहीं करते जो नियम उनका उद्धार अवश्य ही कर सकता है।

जो लोग चालाक और स्वार्थी आदमियोंके लम्बेचौड़े सिद्धान्त बहुत दिनोंसे सुनते आ रहे हैं, वे अवश्य ही इस बातपर सन्देह करेंगे कि परस्परकी सहायताका सिद्धान्त ईश्वरीय नियम है और वह मनुष्यके जीवनका प्रधान अङ्ग है; क्योंकि इस नियममें कोई पेचीदा या घुमावफेरकी बात नहीं। लोगोंकी धारणा बन गयी है कि ईश्वरीय नियम इतना सरल हो ही नहीं सकता

और वह सबको मालूम नहीं हो सकता जबतक कि आचार्य और पुरोहितोंकी कृपा न हो, जो अपनी शक्ति और अधिकारके लिये शासन करनेवालोंका मुंह ताका करते हैं और अपने उच्च पदकी रक्षाके लिये सरकारका समर्थन किया करते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि परस्परकी सहायताका नियम बडा सरल और संक्षिप्त है। वह वर्षोंके अनुभवके बाद मनुष्यके ध्यानमे आया है। वह किसी स्वार्थी दलके दिमागसे नहीं निकला है। आजकलके धार्मिक और राजशासन-सम्बन्धी नियम बड़े लम्बे चौडे और गूढ़ होते हैं और बहुत थोडे आदमी उनका ज्ञान रखते हैं—जैसे कि जायदाद, चुनाव, दण्ड आदिके सम्बन्धमें सब आदमी नहीं जानते, परन्तु परस्परकी सहायताका नियम सब कोई जान सकता है। इसे जाननेके लिये किसी प्रकारकी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं है और न किसीका धर्म, पद और अवस्था उसके जाननेमें बाधक हो सकते हैं।

इसके सिवा धार्मिक और शासनसम्बन्धी नियम एक स्थान या एक कालमें ठीक मान लिये जाते हैं, परन्तु दूसरे काल या स्थानमें वे ठीक नहीं माने जाते। परस्परकी सहायताका नियम सब स्थानोंमें और सब कालमे समान रूपसे मान्य है। जो लोग उसे एक बार मान चुके उसे फिर कभी न माननेकी आवश्यकता ही नहीं रहती। अन्य नियमों और इस नियममें यह भी भेद है कि अन्य नियमोंसे मनुष्यको सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होती और कभी कभी उनके कारण शत्रुता और कष्ट बढ़

जाया करते हैं, परन्तु यह प्रधान नियम सदा ही सुख-शान्ति देनेवाला है।

परस्परकी सहायताका नियम अशान्तिके स्थानमें शान्ति और कष्टके स्थानमें सुख उपस्थित करनेवाला है वह चाहे किसी स्थान या कालमें क्यों न माना जाये। इस सिद्धान्तके आधारपर ही मनुष्योंके बीच अनेक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। यदि इस नियमकी प्रधानता स्वीकार कर ली जाये, तो मनुष्योंका उद्धार हो जाये और व्यक्ति व्यक्ति तथा समाज और व्यक्तिके बीच किसी तरहका झगडा न रहे। जिस तरह बूढ़ों और बच्चोंको आजकल अन्य धार्मिक और वैज्ञानिक नियम समझाये जाते हैं जो वास्तवमें हानिकारक हैं, उसी तरह यदि यह प्रधान नियम सिखाया जाये तो मनुष्यके जीवनमें परिवर्तन उपस्थित हो जाये और इस परिवर्तनके साथ उस अत्याचारका भी अन्त हो जाये जो आजकल अधिकांश मनुष्योंको पीड़ित कर रहा है।

पारस्परिक सहायताका नियम जिस तरह ईश्वरीय है, उसी तरह यह नियम भी ईश्वरीय ही समझना चाहिये कि किसीकी जान न ली जाये। परन्तु जिस तरह अनेक नियमोंकी धूममें पहला नियम भुला दिया गया, वही दशा दूसरे नियमकी भी हुई। यद्यपि किसीने पहले नियमकी तरह दूसरे नियमका विरोध नहीं किया, परन्तु अन्य नियम महत्वपूर्ण बता दिये गये और उनके बीचमें ईश्वरीय नियम न ठहर सका। मनुष्योंके

प्राणोकी पवित्रता स्वार्थियोंने स्वीकार न होने दी। यदि लोग जिस तरह उपवासके दिनोंमे मांस न खाने, देवमन्दिरोंमें अश्लील आचरण न करने आदिके नियमोंको महत्व देकर उनका पालन करते हैं, उसी तरह यदि किसीकी जान न लेनेका नियम माना जाता, तो मनुष्योंकी वर्तमान दुर्दशा ही न होती, क्योंकि न तो लड़ाइया होती और न कोई किसीका गुलाम ही बनता। जब लोगोंको प्राणोका भय दिखाई देता है, तभी वे दूसरोकी गुलामी स्वीकार करते हैं। यदि सब अपने प्राणोको सुरक्षित समझते, तो क्यो किसीकी गुलामीके बन्धनमे पडते।

लोगोंने बडी चालाकीसे ईश्वरीय नियमको दबाया। बहुतसे छोटे छोटे नियम बनाये गये और उन्हें बडा भारी महत्व दिया गया। भूखे रहने, नमक न खाने और माला फेरनेसे मोक्षका द्वार खुल जाना सम्भव बनाया गया और लोग इन छोटे छोटे नियमोंपर मोहित हो ईश्वरके प्रधान नियमको यहांतक भूल गये कि उसका पालन तो दूर रहा, उसके विरुद्ध भी आचरण करने लगे। इससे ईश्वरीय नियमकी उपयोगिता प्रकट न हो सकी। दूसरेकी जान न लेने और परस्परमें सहायता करनेका ईश्वरीय नियम काम न आया।

मनुष्य दुर्दशामें इसलिये नहीं पड़े कि उन्हे ईश्वरीय नियमका ज्ञान न था, बल्कि दुर्दशाका कारण वे मनुष्य बने जो अपने या अपने संरक्षकोंके स्वार्थके लिये नियमपर नियम बनाते चले गये। वे इन नियमोंको ईश्वरीय नियम बताते गये और उनका महत्व

कभी कभी ईश्वरीय नियमोंसे भी अधिक निश्चित किया। इस समय यदि मनुष्यका उद्धार सम्भव है, तो इसी बातपर कि वे स्वार्थियोंके बनाये हुए नियमोंके चक्करमें न पडकर ईश्वरीय नियमका महत्व समझ ले। वे अपनेको ईश्वरीय नियमके अनुसार काम करनेवाला मानें। ईश्वरीय नियम एक या दो दलको नहीं, सभी मनुष्योंको सर्वत्र सबसे अधिक सुख पहुंचाने-वाला है।

सरकार और तालुकदार आदमी श्रमजीवियोका रक्त-शोषण न कर सके, इसके लिये यह आवश्यक है कि श्रमजीवी आत्म-शुद्धि करे। शरीरकी अशुद्धतासे जिस तरह मैल और मैलसे कीडे उत्पन्न होकर मनुष्यका शरीर जर्जरित कर देते हैं, उसी तरह आत्माकी शुद्धिके अभावमे स्वार्थी मनुष्योंकी सृष्टि होती है जो समाजका सब सुख छीन लेते है। श्रमजीवियोकी दुर्दशासे छुटकारेका उपाय एक ही है—वे आत्मशुद्धि करें। इस आत्म-शुद्धिके लिये उन्हें उन अनेक नियमोका पालन करनेकी आव-श्यकता नहीं, जो स्वार्थ-साधनके लिये निर्बलोंको बन्धनमें डाले हुए हैं। श्रमजीवियोको परमेश्वर और उसके एक नियममें वि-श्वास होना चाहिये। इसीसे उनका उद्धार हो सकेगा।

शिक्षित और अशिक्षित सभी श्रमजीवी अपनी वर्तमान दुर्दशा और सामाजिक अत्याचारकी शिकायत किया करते हैं। परन्तु इसपर भी शासकोंने चाहे मिलोंको ऐसा सुभीता कर दिया जाये कि वे और आदमियोंकी अपेक्षा सस्ती चीजें तैयार करने लगे,

तो वह उस जुर्मानेको स्वीकार कर लेगा चाहे उसके अन्य सैकड़ों हजारों भाई उसके कारण भले ही बर्बाद हो जायें। यदि दोनोंमेंसे किसीको किसी मालदार आदमीके यहां बढ़िया नौकरी मिलती हो, तो वह तुरन्त स्वीकार कर लेगा चाहे उसे उस उच्च पदपर रहकर अपने भाइयोंको सताना ही क्यों न पड़े। यदि किसीको जमीन खरीदने या मजूर लगाकर काम करानेका मौका मिले, तो हजारमें ६६६ आदमी ऐसे मिलेंगे जो बिना किसी विचारके इस बातका समर्थन करेंगे कि जमीन रखना कोई बुरा काम नहीं और वह जमींदारों तथा मालदार आदमियोंकी तरह या उनसे भी ज्यादा कड़ाई करनेके लिये तैयार हो जायेगा।

सेनामें भर्ती होना या सेनाके व्ययके लिये कर चुकाना बड़ा बुरा काम है। परन्तु बहुत थोड़े आदमी ऐसे मिलेंगे जो अपने भाइयोंको गुलामीमें न पड़ने देनेके लिये ऐसा कर चुकाना या सेनामें भर्ती होना बुरा समझते हों। इन कामोंका तो लोग साधारण समझकर किया ही करते हैं।

क्या कभी सम्भव है कि जिस समाजमें इस प्रकारके लोग हैं, उसकी दुर्दशाका कभी अन्त होगा?

श्रमजीवी अपनी दुर्दशाके लिये जमींदारों, धनवानों और सरकारोंको कोसा करते हैं, परन्तु सभी या अधिकांश श्रमजीवी बड़े नहीं तो छोटे रूपमें जमींदार, धनवान या सरकार बने हुए हैं और वे जिन तकलीफोंकी शिकायत किया करते हैं, उनकी जड़ स्वयं ही हैं।

एक आदमी गांवसे आकर किसी रईसके यहां अपने गांव-वाले रईसकी सिफारशपर नौकरी पा जाता है, परन्तु जब वह सुनता है कि एक आदमी विना किसी कारण नौकरीपरसे हटा दिया गया है तो वह उस रईसके यहां नौकरी करना अस्वीकार करता है। वह नही चाहता कि दूसरे आदमीके साथ ऐसा वर्ताव किया जाये जैसा वर्ताव वह अपने साथ नहीं चाहता। इसी तरह एक बड़े परिवारवाला किसान किसी जमींदारके यहां ऊंचा वेतन पाकर नौकरी स्वीकार कर लेता है, परन्तु जब वह देखता है कि उसे अपने मालिकके लाभके लिये गरीब किसानोंके पशु पकड़ने पड़ते है जो जमींदारके खेतोंमें चले आये हैं या उन स्त्रियोंको पकड़ना होता है जो जलानेके लिये लकड़ियां एकत्र करने आयी हैं या मजूरोंकी मजूरी कमकर उनसे ज्यादा काम लेना पड़ता है, तो वह अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध काम करना पसन्द न कर नौकरी छोड़ देता है। उसे नौकरी छोड़नेमें अपने परिवारके भूखो मरनेका भय है, परन्तु वह इसकी कुछ भी परवा नहीं करता। वह ऐसा काम करने लग जाता है जो उसे कम लाभ पहुंचाता है, परन्तु उसके अन्तः-करणके अनुकूल है। इसी तरह एक सैनिकको अपनी पल्टनके साथ पहुंचकर हड़ताल करनेवाले मजूरोंपर गोली चलानी है। वह गोली चलानेकी आज्ञा न मानकर कष्टमें पड़ता है। ये सब आदमी अपने अन्त.करणके अनुसार काम करते हैं और इस नियमका पालन करते हैं कि दूसरोंके साथ कभी वैसा

बर्ताव न करो जिस बर्तावकी आशा तुम दूसरोंसे नहीं रखते।

दूसरी तरफ यदि कोई आदमी अपनी चीजका दाम इसलिये घटा रहा है कि उसकी चीज जल्दी बिक जाये—उसे इस बातकी चिन्ता नहीं कि उसके इस कामसे दूसरे भाइयोंकी हानि होगी, तो समाजका कष्ट पहुंचानेवाला बुराईका अन्त नहीं हो सकता। यदि कोई श्रमजीवी अपने स्वामीके साथ मिल जाता है और उसे मदद देने लग जाता है, तो भी बुराईका अन्त नहीं हो सकता। जो सेनामे भर्ती होकर अपने भाइयोंको गोलीसे मारनेके लिये तैयार है, वह भी दुर्दशाका कारण है। सेनामें भर्ती होनेवाला कह सकता है कि मुझे तो इस बातका पता नहीं कि मै किसे कब और कहां मारूंगा। वह यह बात भले ही न जाने, परन्तु यह तो अवश्य ही जानता है कि सेनाका काम मारना है।

श्रमजीवियोंकी दुर्दशाका उसी समय अन्त हो सकता है जब कि वे समझ लें कि हमारे भाइयोका किसी तरह अहित न होना चाहिये। जिस तरह लोग उपवासके दिनोमें नमक नहीं खाते, मुर्दोंका अन्तिम संस्कार करानेपर स्नान करते हैं, उसी तरह श्रमजीवियोको साधारण नियमोंकी परवा न कर परस्परकी सहायताका नियम मानते हुए धनवानोकी नौकरीसे जहांतक सम्भव हो अलग रहना चाहिये, कभी कम मजूरी स्वीकारकर काम न करना चाहिये, धनवानोकी सहायतासे अपने भाइयोंकी अपेक्षा अपना विशेष हित न करना चाहिये और

सबसे जरूरी बात यह है कि किसी तरह भी सरकारके भयप्रदर्शन-के काममे भाग न लेना चाहिये यानी पुलिस, चुङ्गी और सेनाकी नौकरी न स्वीकार करनी चाहिये।

इस प्रकार अपने भाव धार्मिक बनाकर काम करते हुए श्रमजीवी अपना उद्धार अनेक अत्याचारोसे कर सकते हैं।

अगर कोई श्रमजीवी किसी विशेष लाभकी इच्छासे या भय-वश अपने अन्तःकरणकी प्रेरणाकी परवा न कर हत्यारोंके दलमें यानी सैनिकोमे शामिल हो जाता है, यदि वह अपने सुखके लिये अपने भाइयोकी आय घटानेके लिये तैयार हो जाता है, यदि वेतनके लोभसे स्वामीका साथ देने लग जाता है, तो उसे अपनी दुर्दशाके लिये शिकायत करनेका कोई कारण नही।

मनुष्य जिस किसी अवस्थामें है, वह अपने ही कारण है। वह अपने आप ही अत्याचारी या अत्याचार-पीड़ित बनता है।

इसके विरुद्ध कोई बात नहीं हो सकती। ईश्वर और उसके अटल सिद्धान्तमें विश्वास न करनेके कारण वह अपने अल्प जीवनमे सबसे अधिक सुख चाहता है। चाहे उसकी इस तृष्णासे दूसरोकी कुछ भी दुर्दशा हो। जब मनुष्य दूसरोकी परवा न कर अपने लिये सबसे अधिक सुखकी इच्छा करने लग जाता है, तब अवश्य ही ऐसा सामाजिक सङ्गठन तैयार हो जाता है जिसके सिरेपर तो अत्याचारी रहते हैं और नीचे अत्याचारपीड़ितोंका झुण्ड दिखाई देता है।

———

दूसरा अध्याय।

हमारे जमानेकी गुलामी।

(१)

अङ्कगणनाने यह बात स्पष्ट कर दी है कि उच्च श्रेणीके मनुष्योंकी आयु औसतसे ५५ वर्षकी होती है, तो स्वास्थ्यनाशक काम करनेवाले मजूरोंकी आयु केवल २६ वर्षकी ही होती है। यह बात ध्यानमें रखकर हम लोग यदि पशु नहीं बन गये हैं, तो श्रमजीवियोंसे ऐसा काम लेना छोड दें जो उनके प्राणतक ले लेता है। जो मनुष्योंसे इस प्रकार काम लेते हैं, उन्हें प्राणोंसे वञ्चित करते हैं, उन्हें एक मिनटके लिये भी सुखकी नींद न आनी चाहिये। असल बात यह है कि मालदार आदमी चाहे वे उदार हों या मनुष्यताके उपासक हो, मजूरोंसे लगातार काम लेकर धनवान बनना चाहते हैं यद्यपि इन दीन मनुष्योंके प्रति ही नहीं, पशुओंपर भी करुणाभाव प्रकट किया करते हैं। हम ऐसा करते हुए दुखी नहीं होते। यदि हम सुनते हैं कि कुछ रेलवे मजूर लगातार ३७ घण्टे काम करते हैं और गन्दे स्थानोंमें रहते हैं, तो हम तुरन्त ही इन्सपेक्टर भेजकर उन्हें ज्यादा काम करनेसे रोक देते हैं। रेलवे कर्मचारियोंसे केवल १२ घण्टे काम करनेको कहते हैं यद्यपि यह बात भली भांति जानते हैं कि कम समयतक

काम करनेसे वे कम मजूरी पायेंगे और अपना पेट भी न भर सकेंगे। रेलवे कम्पनीको वाध्य किया जाता है कि वह मजूरोंके लिये स्वास्थ्यप्रद् निवासस्थान बना दे। इसके बाद हम बड़ी शान्तिके साथ रेलद्वारा माल मंगाने और भेजने लगते हैं और रेलवे कम्पनी-के लाभमें भाग बटाते तथा मकानोंका किराया वसूल करते हैं।

हम यह बात जानते हैं कि रेशमके कारखानोंमें स्त्रियां और लड़कियां अपने परिवारोंसे दूर रहकर अपना और अपनी सन्तान-का जीवन नष्ट किया करती हैं। आधी धोबिनें जो हमारे कपड़े धोकर ठीक करती हैं और वे स्त्रियां जो छापाखानोंमें काम करती हैं, क्षयरोगमें ग्रसित हो जाती हैं। हम यह सब सुनकर दयापूर्वक अपने कन्धे हिला देते हैं और कह दिया करते हैं कि हमें यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ, परन्तु हम रेशमी कपड़े पह-नते रहते हैं, धुले हुए कपड़े काममें लाया करते हैं और किताबें लगातार पढ़ा करते हैं। हम दुकानोंमें रहनेवाले कर्मचारियों और स्कूलोंमें पढ़नेवाले अपने बच्चोंके ज्यादा घण्टोंके लिये आन्दोलन मचाते हैं और गाड़ीवानोंसे कहते हैं कि घोड़ोंको ज्यादा समयतक न जोतें और कसाईखानोंमें जाकर ऐसा प्रबन्ध करते हैं कि पशु हत्याके समय वहुत ही कम कष्टका अनुभव करें, परन्तु हम उन करोड़ो मजूरोंके प्रति कितने उदासीन हैं जो हमारी चारो ओर काम करते हुए धीरे-धीरे दुःखपूर्वक मृत्युको प्राप्त होते रहते हैं! हम उन वेचारोंकी मिहनतसे बड़े मज़ेसे लाभ उठाया करते हैं।

(२)

विज्ञानद्वारा वर्त्तमान जीवनका समर्थन।

लोगोंमें श्रमजीवियोंके कष्टोंके सम्बन्धमें उदासीनताके जो भाव हैं उसका यही कारण है कि लोग जब कोई बुरा काम करने लग जाते हैं, तो जीवनका ऐसा नियम तैयार कर सामने रख देते हैं जिससे उनका बुरा काम बुरा ही न मालूम हो। वे कह दिया करते हैं कि हम उन नियमोंको तो बदल नहीं सकते जो परिवर्तनशील नहीं हैं। प्राचीन कालमें लोग यह सिद्धान्त बनाये बैठे थे कि जो कष्ट भोग रहे हैं, वे ईश्वरके अटल नियमके अनुसार कष्टमय अवस्थामें हैं और मनुष्य उनका कुछ भी सुधार नहीं कर सकता। ईश्वरीय नियम-के कारण कुछ मनुष्य विना काम किये हुए ही दूसरोंकी मिह नतसे लाभ उठाकर चैनकी वंशी बजा रहे हैं। तरह तरहके धार्मिक सिद्धान्त रचे गये और कहा गया कि ईश्वरने ही स्वामी और सेवकको जन्म दिया है, इसलिये दोनोंको अपने अपने जीवनसे सन्तुष्ट रहना चाहिये। यह भी कहा जाता था कि सेवक अच्छी सेवा करते हुए अगले जन्ममें सुख पायेंगे। साथ ही इस वातपर भी जोर दिया जाता था कि सेवकोंको अपना काम न छोड़ना चाहिये। यदि स्वामियोंकी कृपा होगी, तो उनका जीवन सुखी हो सकता है। जब गुलामीकी प्रथा उठ गयी तो इस नियमका प्रचार किया गया कि ईश्वरकी इच्छा है कि कुछ थोड़ेसे आदमी धन रक्खें और उस धनको अच्छे कामोंमें व्यय

करें। इसलिये इस बातमें कोई बुराई नहीं कि कुछ थोड़ेसे आदमी धनी और ज्यादा आदमी गरीब हैं।

इन सिद्धान्तोंने कुछ समयतक अपना काम किया। अमीर तो उनसे सन्तुष्ट होते ही, परन्तु गरीब भी सन्तुष्ट रखे गये। कालान्तरमें इन सिद्धान्तोंकी पोल खुल गयी। गरीबोंको उनसे असन्तोष हुआ। तब नये सिद्धान्तोंकी आवश्यकता हुई। ठीक समयपर वे भी रच डाले गये। नये सिद्धान्त, विज्ञान और अर्थशास्त्रके आधारपर बनाये गये और कहा गया कि श्रमविभाग होना चाहिये और श्रमजीवियोंके श्रमके फलका तमाम मनुष्योंमें विभाग होना चाहिये। इन नये सिद्धान्तोंके अनुसार कहा गया कि गरीबोंको परिश्रम करना होगा, क्योंकि उनके पास धन नहीं और यह परिश्रम मानुषिक जीवनके अटल नियमके अनुसार परम आवश्यक है। बहुत दिनोंतक जब गुलामीकी प्रथा जारी थी, ईश्वरको यह बात अच्छी लगती थी कि एक आदमी दूसरे आदमीको उसे कोई जड़ पदार्थ समझकर अपने बशमें रखे। निर्दयताका पक्षसमर्थन करनेवाले सिद्धान्तकी पोलसे निन्दा होने लगी और उसकी सत्यतापर लोगोंका विश्वास न रहा।

इसी तरह आजकल जो यह अटल नियम बनाया गया है कि कुछ लोगोंको तो अपने पास धन रखना होगा और कुछको तमाम जीवन परिश्रम करना होगा और वह धन बढ़ाना होगा, कुछ थोड़ेसे आदमियोंको अधिकांश मनुष्योंके प्रति दयाशून्य

यता रहा है और जनसाधारणको उसकी सत्यताके सम्बन्धमें सन्देह होने लगा है।

(३)

कल-कारखाने।

श्रमजीवियोंके कष्टोंका यह कारण नहीं है कि पैसेवालोंके हाथमें तमाम कल-कारखाने हैं। उनके कष्ट उन कारणोंसे उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने उनको गांवोंसे भगाया है। दूसरी बात यह है कि मजूरोंके असली कष्ट कामके घण्टे कम करने, मजूरी बढ़ा देने या कालान्तरमें कल-कारखानोंको सार्वजनिक सम्पत्ति बना देनेसे दूर न होंगे। श्रमजीवियोंको इसलिये विशेष कष्ट नहीं कि उन्हें बहुत घण्टे काम करना पड़ता है। किसान हर रोज १८ और कभी ३६ घण्टे काम करते रहते हैं और बड़े प्रसन्न रहते हैं। उन्हें इसलिये भी कष्ट नहीं कि कम मजूरी मिलती है या कल-कारखानेपर उनका अधिकार नहीं। उनका कष्ट इस बातमें है कि उन्हें अस्वाभाविक ढङ्गसे खराब स्थानोंमें काम करना पडता है। इससे उनके स्वास्थ्यपर बडा आघात होता है। उन्हें दूसरोंकी इच्छानुसार जबर्दस्ती काम करना पडता है और सबको एक साथ मिलकर रहना पड़ता है जो व्यभिचार बढ़ानेवाली बात है।

इधर मजूरोंके कामके घण्टे कम हो गये हैं और उनकी मजूरी भी बढ़ गयी है, परन्तु उनके कष्ट कम नहीं हुए। यह बात दूसरी है कि आजकल मजूर घड़ी लगाये, मुंहमें चुरट दबाये और

हाथमें शराबकी बोतल लिये देखे जाते हैं। ध्यान तो इसपर देना है कि क्या उनका स्वास्थ्य और नैतिक बल सुधरा है? सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि क्या उन्हें स्वतन्त्रता मिली है?

हर जगह कल-कारखानोंमे काम करनेवालोंका स्वास्थ्य किसानोंसे खराब है। उनकी आयु कम होती है। उनका नैतिक पतन हो रहा है। इसका कारण यही है कि वे ऐसे स्थानोंसे हटा दिये गये हैं जो नैतिक चरित्रकी रक्षा किया करते हैं। श्रमजीवी पारिवारिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकते और न उनका काम उतना स्वतन्त्र, आनन्ददायक, भिन्न और स्वास्थ्य-प्रद है, जितना कि कृषिकार्य है।

अर्थशास्त्रवादियोंका यह कहना ठीक है कि कामके घण्टे कम हो जाने, मजूरी बढ़ जाने और कल-कारखानोंकी स्वास्थ्यप्रद अवस्था हो जानेसे पहलेकी अपेक्षा मजूरोंका स्वास्थ्य और नैतिक चरित्र सुधरा है। यह भी ठीक है कि इधर किसानोंकी अपेक्षा मजूरोंकी बाहरी अवस्था कहीं अच्छी है। परन्तु यह इसीसे है कि सरकार और समाज किसानोंकी कुछ भी परवा न कर कार-खानोंके मजूरोंकी ओर विशेष ध्यान देनेमें समर्थ हुई हैं।

यदि श्रमजीवियोंकी अवस्था कुछ स्थानोंमे किसानोंसे अच्छी हुई है, तो इससे स्पष्ट है कि मनुष्य दूसरेके जीवनको अनेक नियम बनाकर दुखी कर सकता है और ऐसी कोई भी अस्वा-भाविक और बुरी अवस्था नहीं जिसके अनुकूल मनुष्य अपनेको धीरे धीरे न बना लेता हो।

कारखानेके मजूरों और नगरोंमें काम करनेवालोंकी अवस्था इसलिये कष्टमय नहीं कि वे कम मजूरी पाते और ज्यादा घण्टे काम करते हैं। शहरों और कारखानोंमें उन्हें अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उनकी स्वतन्त्रता छिन जाती है और उन्हें दूसरोंकी इच्छासे लगातार एकसा ही काम करना पड़ता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मजूरोंकी अवस्था कम घण्टे काम करने, ज्यादा मजूरी पाने और कारखानोंको अपने अधिकार-में कर लेनेसे भी नहीं सुधर सकती। जिन कारणोंने उन्हें प्राकृतिक जीवनसे वञ्चितकर शहरोंमें भेजा है, उन्हें दूर करनेसे ही श्रमजीवी सुखी बन सकते हैं।

इङ्गलैण्ड, बेलजियम और जर्मनीके श्रमजीवी कई पीढ़ियोंसे नगरोंमें काम कर रहे हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे जो काम बहुत दिनोंसे कर रहे हैं उससे प्रसन्न या सुखी हैं। उनके पूर्वज कृषक जीवन कई कारणोंसे त्यागकर शहरोंमें आनेके लिये बाध्य हुए थे। वे जबर्दस्ती जमीनसे वञ्चित कर दिये गये थे। इसके बाद उन्हे भाड़ेके टट्टू बनानेके लिये बड़ी कड़ी सजाएं दी गयी। जलते हुए लोहेसे वे जलाये गये और गुलाम बननेके लिये बाध्य किये गये। इससे उन कारणोंका पता लग जाता है जो किसानोंको शहरोंमे भेजनेवाले बने और अब भी बन रहे हैं।

अर्थशास्त्रका उद्देश्य यह बताया जाता है कि उसे उन कारणोंको दूर नहीं करना है जिनके वशीभूत होकर गरीब

आदमी गावोंको छोड़कर शहरोंमे आये। उसका उद्देश्य नगर-मे आये हुए लोगोका जीवन सुधारना है। इस तरह अर्थशास्त्री यह बात माने बैठे हुए हैं कि श्रमजीवियोका शहरोमे रहना तो छूट ही नहीं सकता और न वह रास्ता ही बन्द हो सकता है जिससे और भी किसानोके शहरोंमें चले आनेकी सम्भावना है।

यद्यपि बड़े बड़े ऋषि-मुनियो और कवियोने कृषि-जीवन बड़ा आनन्दमय और सुखदायक बताया है और श्रमजीवी अब भी उसे अधिकतर पसन्द करते हैं, परन्तु अर्थशास्त्री यही कह रहे हैं कि सभी किसानोंको कारखानोके मजूर बनना पड़ेगा। किसान-का जीवन कारखानेवालोंके जीवनसे कहीं अधिक आनन्दमय और सुखदायक है। किसान स्वतन्त्र है। वह जब चाहे परि-श्रम करे और जब चाहे विश्राम कर सकता है। कारखानेवालों-को लगातार अपनी इच्छाके विपरीत एक ही काम करना पड़ता है। मजूर यद्यपि कारखानेके स्वामी ही क्यों न बना दिये जायें, परन्तु उनकी परतन्त्रता दूर नहीं हो सकती, क्योकि उन्हें कल-पुर्जोंके वशमे रहना ही होगा। कृषि-जीवन इतना उत्तम होनेपर भी अर्थशास्त्री यही कहा करते हैं कि जो लोग गांवोंसे शहरोंमें चले आये हैं, उनकी कोई हानि नहीं हुई। किसान अपनी इच्छासे शहरोंमे आते हैं और आनेकी चेष्टा किया करते हैं।

(४)

साम्यवादी कहते हैं कि कालान्तरमें कल-कारखाने सार्व-जनिक सम्पत्ति बन जायेंगे। उनपर पैसेवालोंका जो अधिकार

है, वह न रहेगा। परन्तु वे कहते हैं कि कारखानोंमें काम अबकी तरह ही होता रहेगा। पैसेवाले भी कुछ काम करेंगे, परन्तु वे प्रबन्ध करनेवाले या हस्तकौशल दिखानेवाले बनेंगे। जमीनके नीचे घुसकर आग और धुएंके सामने कौन काम करेगा, इसका वे या तो कुछ उत्तर ही नहीं देते या कह देते हैं कि इतना सुधार हो जायेगा कि ये काम भी आनन्ददायक मालूम होंगे। इस तरह साम्यवादी हवाई किले बना रहे हैं।

उनका कथन है कि सभी श्रमजीवी अपने अपने संघ बनाकर हड़तालें कर और शासनमे हाथ बटाकर कल-कारखानोंपर अधिकार जमा लेंगे। जमीन भी उन्हींके अधिकारमें आ जायेगी। फिर वे इतना बढ़िया भोजन, वस्त्र और छुट्टियोंके दिनोंमें आनन्द पायेंगे कि वे नगरमें रहना ही पसन्द करेंगे। वे पक्की इमारतों और धुएंदार निवासस्थानोंको ग्रामीण स्थानोंसे अधिक पसन्द करने लग जायेंगे। वे ग्रामके स्वतन्त्र और आनन्ददायक व्यवसायकी अपेक्षा कारखानेके परतन्त्र और लगातार समान रहनेवाले कामको ज्यादा पसन्द करेंगे।

यह भविष्यकथन उसी तरहका है, जिस तरह धर्माचार्य कहा करते थे कि किसानोंको बहुत बढ़िया स्वर्ग मिलेगा, क्योंकि वे यहां बड़ा परिश्रम कर रहे हैं। जिस तरह पुराने जमानेमें समाजके बुद्धिमान् मनुष्य भी धर्माचार्योंकी बातोंपर विश्वास कर लिया करते थे, उसी तरह आजकलके अर्थशास्त्रियोंका भविष्यकथन भी बुद्धिमान् मनुष्योंद्वारा भी मान लिया जाता है।

बुद्धिमान् आदमी और उनके शिष्य जो पैसेवाले हैं, भला इस भविष्यवाणीको क्यों न मानें। उनके सामने तो बड़ी जटिल समस्या है। या तो वे यह भविष्यवाणी स्वीकार करें या यह बात मानें कि हम रेलों, आरामकी चीजोंसे जो लाभ उठा रहे हैं, वे उन मनुष्योंके परिश्रमका फल हैं जो अपनी जानें भी गंवा देते हैं। जो लोग दूसरोंकी जानें लेनेवाली चीजोंसे लाभ उठाते हैं, वे या तो अपनेको सम्मानित पुरुष कहना छोड़ दें या यह कहने लगें कि जो कुछ हो रहा है सबके ही लाभके लिये हो रहा है। यह ईश्वरके अटल नियमोंके अनुकूल भी है। वैज्ञानिक और शिक्षित मनुष्य किस कारणसे यह बात कहा करते हैं कि श्रमजीवी ग्रामोंका सुखी, आनन्ददायक और प्राकृतिक जीवन त्यागकर स्वेच्छासे शहरोंमें चले आते हैं, यह सब भली भांति स्पष्ट हो जाता है। श्रमजीवी कृषिजीवन त्यागकर जिस समय कल-कारखानोंमें मजूरी करने लग जाते हैं, वे अपने शरीर और आत्मा दोनोंका ही विनाश करते हैं फिर भला वे इच्छासे ऐसा काम क्यों करने लगे। असल बात यही है कि स्वार्थी अपने उच्च सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिये लम्बी चौड़ी बातें बना लिया करते हैं।

(५)

साम्यवादकी निस्सारता।

यदि यह निर्मूल बात ही मान ली जाये कि गांवोंकी अपेक्षा शहरोंमें रहना अच्छा है और अपनी इच्छाके विपरीत कल-कार-

खानोंमें काम करना स्वेच्छापूर्वक खेती करनेसे अच्छा है, तो सर्वशास्त्री जिस उद्देश्यकी ओर मनुष्योंको ले जाना चाहते हैं वह आदर्श भी परस्पर-विरोधी बातोंसे भरा हुआ है। आदर्श यह है कि नगरोंमें पहुंचकर श्रमजीवी जिस समय कल-कारखानोंके स्वामी बन जायेंगे, तो धनवानोंके समान वे भी सुख और आनन्द भोगने लग जायेंगे। वे सब बढ़िया वस्त्र पहनेंगे और अच्छे मकानोंमें रहेंगे। सब बिजलीसे प्रकाशित बढ़िया चमकदार सडकोंपर सैर करेंगे। नाच-तमाशे देखेंगे, अखबार और पुस्तकें पढ़ेंगे तथा मोटरोंपर सवार होंगे। इन सब चीजोंको काममें लानेके पहले तैयार भी तो करना होगा। प्रश्न यह है कि ये सब चीजें यदि स्वयं श्रमजीवी तैयार करेंगे, तो प्रत्येक मनुष्य कितना और कौनसा काम करेगा।

जिस समाजमें किसी तरहकी कोई रुकावट नहीं, कोई धनी और कोई गरीब ही नहीं, उस समाजमें यह निर्णय कैसे किया जायेगा कि कौनसी वस्तुकी आवश्यकता है और वह कितनी चाहिये। लोगोंको इन चीजोंको तैयार करनेके लिये किस तरह कहा जायेगा, जब कि कुछ लोग ऐसे मिलेंगे जो किसी चीजको आवश्यक समझते होंगे और किसीको अनावश्यक मानते होंगे।

इस समय तो कल-पुर्जोंकी सहायतासे तथा कार्य-विभाग रहनेके कारण बड़ी किफायतके साथ बहुतसी चीजें भिन्न भिन्न प्रकारकी तैयार होती रहती हैं। ये चीजें कारखानेके स्वामियोंको फायदा पहुचानेवाली हैं और हमें आराम पहुचाती हैं। ये चीजें अच्छी

बनी हैं और उनके तैयार करनेमें विशेष शक्ति भी नहीं लगायी गयी है, वे मालिकोंको लाभ पहुचानेवाली तथा हमारे लिये सुख-दायक हैं.इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी स्वतन्त्र समाजमें लोग विना किसी दण्डप्रयोगके उन्हे तैयार करते रहेंगे। बहुतसे लोग बहुतसी चीजोंको हानिकारक समझेंगे। इन लोगोंसे किस तरह वे चीजें तैयार करायी जायेगी ?

मान लिया जाये कि सब लोग ही कुछ चीजें बनानेके लिये सहमत हो गये, यद्यपि यह कल्पनामात्र ही है, तो यह बात कैसे तय होगी कि कौनसी चीज अन्य चीजोंकी अपेक्षा पहले बनायी जाये। बिजलीकी रोशनी करनेका पहले प्रबन्ध किया जायेगा या सिंचाईके लिये नहरें निकालनेका काम पहले शुरू होगा। जब सभी श्रमजीवी स्वतन्त्र हैं, तब यह प्रश्न कैसे हल होगा कि कौन आदमी कौनसा काम करे। सब लोग घास एकत्र करना और उसे सुखाना पसन्द न करेंगे, न धुएके पास रहकर काम करना या जमीनके नीचे जाकर काम करना चाहेंगे। लोगोंको कार्यविभागके सम्बन्धमें किस तरह सहमत कराया जायेगा ? प्रश्न बातें बनाकर भले ही हल कर लिया जाये, परन्तु यह वास्तवमें क्रियात्मक दृष्टिसे हल नहीं हो सकता।

जिस समाजमें साम्यवादका प्रचार है और कल-कारखाने सामाजिक सम्पत्ति हैं, वहा उपर्युक्त कठिनाइयोंके सिवा एक सबसे बड़ी कठिनाई और भी उपस्थित होगी। कार्यविभागका परिमाण क्या होगा - इस समय जो लोग पेट भरनेके लिये

सब तरहके छोटे बड़े काम अधिकसे अधिक समयतक किया करते हैं। वे जमीनके नीचे भी रहते हैं, किसी चीजका शतांश ही तैयार करनेमें अपना जीवन लगाये रहते हैं या कलपुर्जोंकी घूममें अपने हाथ पैर चलाया करते हैं; परन्तु वह आदमी दण्डप्रयोगके विना ये सब काम क्यों करेगा जो कल-कार खानोंका स्वयं स्वामी बना बैठा है और किसी तरहकी आवश्य कतासे भी दुखी नहीं है। कार्यविभाग मनुष्योंके लिये स्वभावसे लाभदायक है। आजकल वह समाजमें बहुत ज्यादा प्रवेश कर गया है, परन्तु स्वतन्त्र समाजमें यदि वह रहेगा भी, तो उसका रूप संकुचित ही होगा।

यदि कोई किसान जूते बनाता है, उसकी स्त्री कपड़ा बुनती है, एक किसान खेत जोतता है, दूसरा लोहार है और ये सब अपने अपने कामोंमें निपुण होनेके कारण खूब काम करते और आपसमें अदल-बदल करते रहते हैं, तो यह श्रमविभाग सबके लिये ही लाभदायक है; क्योंकि जिसके पास एक चीज नहीं है, वह अपनी तैयार की हुई चीज या चीजोंसे बदलकर अपना काम चला लेता है। स्वतन्त्र समाजमें भी ऐसे ही श्रम-विभागकी सम्भावना है। लेकिन ऐसा श्रमविभाग जिसमें एक आदमी भयानक गर्मीमें जमीनके नीचे रहकर काम करता है, दूसरा अपना तमाम जीवन किसी एक ही वस्तुके शतांशको तैयार करनेमें लगाता है तो इस प्रकारका विभाग हानि-कारक है क्योंकि उसके कारण यद्यपि बहुतसी चीजें

तैयार होती हैं जो काम महत्वकी हैं; परन्तु मनुष्यका मूल्यवान जीवन नष्ट हो जाता है जो बड़े महत्वका है। वर्तमान श्रम-विभाग दण्डप्रयोगसे ही कायम रह सकता है। एक जर्मन साम्यवादीका मत है कि साम्यवादी श्रम-विभाग मनुष्योंको एकताके सूत्रमें बांधता है। यह बात सच है, परन्तु वही श्रम-विभाग मनुष्योंको एकताके सूत्रमें बांधता है जो मनुष्य स्वेच्छासे स्वीकार करते हैं। यदि सड़क तैयार करनेकी इच्छासे लोग काम शुरू करते हैं और एक कङ्कड़ कूटता है, दूसरा पत्थर लाता है और तीसरा खोदता है, तो इस प्रकारका श्रमविभाग सबकी एकता बढ़ाता है, परन्तु यदि मजूर स्वेच्छाके विरुद्ध काम करें और उन्हें पता ही न रहे कि किस कामके लिये एक पेड़ काट रहा है, दूसरा लोहा ला रहा है, तीसरा लकड़ी चीर रहा है, चौथा कोयला खोद रहा है, तो इस प्रकारका श्रमविभाग मनुष्यों-की एकता बढ़ानेकी अपेक्षा उसका नाश करता है।

जिस समय श्रमजीवी कल-कारखानोंके मालिक बन जायेंगे और वे काम करनेमें स्वतन्त्र होंगे, तो इस प्रकार काम करेंगे कि काम करनेसे इतना लाभ हो कि कामके कारण जो हानि हो, वह बहुत कम दिखाई दे। प्रत्येक आदमी अपनी इच्छानुकूल जो काम आरम्भ करता है, उसे ही वह बहुत बढ़ाना चाहता है। इसलिये स्वतन्त्र सर जो वर्तमान कालके समान श्रमविभाग न रहेगा।

इस बातकी कल्पना न करनी चाहिये कि कल-कारखानोंपर श्रमजीवियोंका प्रभुत्व हो जानेपर उसी तरह ज्यादा चीजें तैयार

होती रहेंगी जिस तरह आजकल जबर्दस्ती तैयार करायी जाती है। इस कल्पनाका यह अर्थ होगा कि गुलामी प्रथा उठ जानेके बाद भी उनके द्वारा लगाये हुए बाग-बगीचे और नाच-रङ्ग-भवन पहलेके समान ही बने रहेंगे। इसलिये साम्यवादियोंका आदर्श परस्पर-विरोधी बातोंसे भरा हुआ है। वह आदर्श स्वतन्त्र समाजमें तथा ऐसी अवस्थामें जब कि श्रमजीवी धनवानों के समान ही जो चीज चाहते हैं, वह सब या कुछ कम पा जाते हैं, किस तरह पूरा हो सकता है।

(६)

सभ्यता या आजादी।

वैज्ञानिक मनुष्य तथा उनके चेले धनी आदमी इस युगको सभ्यताका काल कहते हैं और रेल, तार, फोटो, अस्पताल, बिजली तथा प्रदर्शिनियोंमें वे अपने सुखकी सारी सामग्री देखते हैं। वे स्वप्नमें भी इस बातकी कल्पना नहीं करना चाहते कि वर्तमान सभ्यताकी कुछ भी सामग्री जरा भी बदली जाये या उसपर आघात किया जाये। वे सब कुछ बदल डालनेको तैयार हैं, परन्तु इस सभ्यताको नष्ट नहीं करना चाहते। यह स्पष्ट है कि इस सभ्यताकी रक्षा तभी हो सकती है जब कि श्रमजीवी काम करनेके लिये बाध्य किये जाये। वैज्ञानिक इस सभ्यताके इतने बड़े पक्षपाती हैं कि इसे मानुषिक जीवनकी नियामत बताते हैं। प्राचीन सिद्धान्तवादियोंका सिद्धान्त था कि चाहे संसार नष्ट हो जाये, परन्तु न्याय करो। इन सभ्यता-

भिमानियोंका कहना है कि न्याय चाहे रहे या नहीं, परन्तु सभ्यताकी रक्षा करो। वे अपने सिद्धान्तकी दुहाई ही नहीं देते, उसके अनुसार काम भी करते हैं। प्रत्येक चीज बदली जा सकती है, परन्तु वर्तमान सभ्यता नहीं, कल-कारखानोंकी धूम नहीं और दुकानोंमें बिकनेवाला सामान नहीं बदला जा सकता।

जो लोग धार्मिक हैं और सब भाइयों तथा पड़ोसियोंके साथ प्रेम करनेके पक्षपाती हैं, वे ऊपरके सिद्धान्तके विरुद्ध होंगे।

बिजलीकी रोशनी, रेल, तार और प्रदर्शिनियां अच्छी हैं और आमोद-प्रमोदका अन्य सामान भी अच्छा है, परन्तु वह सब धूलमें मिल जाये तो भी कुछ परवा नहीं यदि उसे तैयार करनेके लिये ९९ फीसदी आदमी दासतामें रहते हैं और हजारों आदमी अपने स्वास्थ्य और प्राणोंकी आहुति उनकी तैयारीके लिये दे डालते हैं। यदि बड़े बड़े शहरोंमें जैसे कि लन्दन और पेरिसमें बिजलीकी रोशनी करनी है या प्रदर्शिनी-भवन तैयार करने हैं या शौकीनी इमारतें खड़ीकर उन्हें सजानेकी जरूरत है और इन सब कामोंके लिये थोड़ेसे भी मनुष्योंकी जानें जातीं, स्वास्थ्य नष्ट होता या आयु क्षीण होती है, तो शहरमें बिजलीकी जगह तेलके दीपक जलाना और अन्य चमक-दमक न रखना ठीक है, परन्तु इस धूमके लिये मनुष्योंको गुलाम बनाने या उनके प्राण लेनेकी आवश्यकता नहीं। यदि रेलगाड़ियोंके कारण हर साल हजारों आदमी मरते हैं, तो उन्हें न रखकर बैलगाड़ियोंसे काम

जलाना ठीक है। हाथसे जमीन जोतना बोना ठीक है, कल-पुर्जोंसे काम लेनेकी जरूरत नहीं यदि वे आदमियोंके प्राण लेते हैं। सच्चे सभ्यताभिमानी मनुष्यको संसार त्यागकर न्यायकी रक्षा करनी चाहिये न कि सभ्यताके लिये न्यायका गला घोटना चाहिये।

लाभदायक सभ्यताको नष्ट करनेकी आवश्यकता ही न पढ़ेगी। वास्तवमें इस बातकी आवश्यकता न पढ़ेगी कि मसालों से रोशनी करनी पड़े या पुराने ढङ्गसे जमीन जोती बोयी जाये। मनुष्योंने दासता स्वीकारकर कई शताब्दियां शिल्प और विज्ञानकी उन्नतिमें व्यतीत की हैं और यह समय सर्वथा व्यर्थ नहीं गया। इस बातका यदि ध्यान रखा जाये कि अपने सुखके लिये अपने भाईकी जान लेना पाप है, तो वैज्ञानिक और शिल्प-सम्बन्धी साधनोंका सावधानीसे प्रयोग किया जा सकता है। उनसे मनुष्योंके प्राण नहीं जा सकते। जीवनमें ऐसे उपाय काममें लाये जा सकते हैं, जिससे प्रकृतिके अङ्गोंपर मनुष्यका प्रभुत्व बना रहे और भाइयोंको दासताके बन्धनमें भी न फसना पड़े।

(७)

गुलामी हममें है।

यदि कोई सीधासादा आदमी किसी ऐसे स्थानसे आवे जहांपर मनुष्यताका वर्ताव सबके साथ होता है, तो वह नयी धूम और सभ्यताको देखकर क्या कहेगा। उसे सबसे पहले यह बात

दिखाई देगी कि कुछ थोड़ेसे आदमी हाथ मुंह साफ रखते हुए कुछ भी काम नहीं करते, रातदिन आमोद-प्रमोदमें व्यतीत करते हैं, अपने लाखों भाइयोंके कठोर परिश्रमके फलको पानीकी तरह बहाते हुए आलसी जीवन व्यतीत कर रहे हैं और दूसरी ओर मैले कुचैले आदमी, गन्दे और तङ्ग मकानोंमें चिथड़े पहनकर जीवन निर्वाह कर रहे हैं। वे सुबहसे शामतक पूरा परिश्रम करते हैं, परन्तु उस परिश्रमके बदलेमें दोनों वक्त भरपेट भोजन भी नहीं पाते। वे ऐसे आदमियोंके लिये काम करते हैं, जो स्वयं कुछ काम नहीं करते और आमोद-प्रमोदमें मग्न हैं।

पहले जमानेमें लोग आदमियोंको गुलाम बनाकर रखते थे और इनके जीवन-मरणपर उनका पूर्ण अधिकार था, परन्तु आज-कल यह प्रथा घृणित कहकर उठा दी गयी है। इसपर भी यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाये, तो अब भी स्वामियों और गुलामोंका दर्जा बना हुआ है। फर्क इतना ही है कि आजकलके गुलाम कुछ समयके लिये ही गुलाम होते हैं या एक ही समयमें गुलाम और स्वामी दोनो होते हैं। गुलामों और स्वामियोंके बीच इतना बारीक भेद है कि इसका पता नहीं लगता, परन्तु दिन रातको अलग करनेवाली चीजका भले ही पता न लगे, २४ घण्टे दिन और रातमें अवश्य विभक्त हो जाते हैं।

यद्यपि आजकल कोई सभ्य मनुष्य गुलाम नहीं रखता जो पाखानोंके अन्दर जाकर मैला साफ करें, परन्तु पुराना गुलामोंका मालिक अपने पास पांच रुपये रखता है जिन रुपयोंकी हजारों

लाखों गरीब आदमियोंको जरूरत है। जिसके पास रुपया है, वह इन हजारोंमेंसे किसी एकको चुनकर उसका अन्नदाता बन सकता है और उससे पुराने जमानेके गुलामकी तरह सभी काम ले सकता है।

कल-कारखानोंमें काम करनेवाले श्रमजीवी ही गुलाम नहीं हैं जो अपना पेट भरनेके लिये अपने स्वामियोंके हाथ बिक जाते हैं, परन्तु वे किसान भी हैं जो रातदिन पसीना बहाकर दूसरेके खेतोंमें दूसरेके लिये अन्न पैदा किया करते हैं या अपने ही खेतोंमें महाजनका व्याज चुकानेके लिये परिश्रम किया करते है, जिस महाजनसे उन्हें कभी छुटकारा ही नहीं मिलता। इसके सिवा वे लाखों रसोइये, कुली, माईस तथा अन्य घरेलू नौकर गुलाम हैं जो रातदिन अपनी इच्छाके विरुद्ध काम किया करते हैं।

गुलामी बनी हुई है, परन्तु वह हमे दिखाई नहीं देती जिस तरह कि युरोपमें १८ वीं शताब्दीके अन्तमें गुलामी विद्यमान थी, परन्तु दिखाई न देती थी।

उस जमानेके लोग समझा करते थे कि स्वामियोंके लिये खेती करना दूसरोंका स्वाभाविक काम है। आज्ञा पालन करना भी उनके लिये प्राकृतिक है। इसके बिना जीवन व्यतीत हो ही नही सकता। इसीसे वे उस अवस्थाको गुलामी नहीं मानते थे। आजकल भी लोगोकी यही धारणा है। श्रमजीवियोंकी अवस्था अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे स्वाभाविक मानी जाती है। इसीसे वे इसे गुलामी नहीं समझते।

जिस तरह अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें युरोपवासी धीरे धीरे समझने लगे थे कि अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे जो उन्हें स्वाभाविक जीवन दिखाई दिया है, वह अन्यायपूर्ण है, उसे बदलनेकी जरूरत भी है। इसी तरह अब लोग समझने लग गये हैं कि अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे श्रमजीवियोंका वर्तमान जीवन स्वाभाविक नहीं, बल्कि न्यायविरुद्ध है और उसे बदलनेकी आवश्यकता है।

समाजके विचारशील मनुष्य श्रमजीवियोंकी गुलामीका अनुभव कर रहे हैं। अधिकांश मनुष्य उसका अनुभव ही नहीं करते। पहलेकी गुलामीकी प्रथा कुछ थोड़ेसे ही आदमियोंका जीवन बन्धनमें डाले हुए थी. परन्तु आजकलकी गुलामीमें बहुत ज्यादा आदमी पड़ गये हैं। कीमियाके तारतार लड़ाईमें जिन कैदियोंको पकड़ लाते थे, वे उनके पैरोंके तलोंमें घावकर उनमें काँटे चुभा दिया करते थे। इसके बाद उनकी बेड़ियां उतार लेते थे। उन्हें विश्वास हो जाता था कि कैदी भाग न सकेंगे। पुराने जमानेकी गुलामी इस ढङ्गसे उठायी गयी है कि गुलामीका प्रधान अङ्ग अब भी बना हुआ है और श्रमजीवी इससे छुटकारा नहीं पा सके यद्यपि गुलामी उठा देनेकी धूम मचा दी गयी है। अमेरिकामें लोगोंने उस समय गुलामी उठानेपर जोर दिया जब कि उन्होंने देख लिया कि रुपयेसे सभी गुलाम बनाये जा सकते हैं और गुलाम बनानेकी यह प्रणाली सफलतापूर्ण भी है। रूसमें उस समय गुलामी उठी

जब कि देशकी सब जमीन स्वामियोंने अपने अधिकारमें कर ली। जब किसानोंको जमीन बांटी गयी, तब उनसे लगान मांगा गया। पहले उनसे मिहनत करा ली जाती थी।

युरोपमें उस समय कर उठाया गया, जब कि लोग जमीन खो बैठे और खेती करनेमें असमर्थ हो गये तथा शहरोंमें आकर पैसेवालोंके गुलाम बन गये। इङ्गलैण्डमें उसी समय अन्नपरसे कर उठाया गया। जर्मनी तथा अन्य देशोंमें श्रमजीवियोंको सभी टेक्सोंसे मुक्त किया जा रहा है जब कि अधिकांश मनुष्य पैसेवालोंके हाथमें आ चुके हैं। गुलामीका एक ढङ्ग उस समयतक नहीं दूर किया जाता, जबतक कि और कोई नया ढङ्ग नहीं निकल आता। गुलामीके ढङ्ग तो एक नहीं अनेक हैं।

यदि एक प्रकारकी गुलामी लोगोंको बन्धनमें नहीं डालती, तो दूसरे प्रकारकी डाल देती है। थोड़ेसे आदमी बहुतसे आदमियोंपर अपना अधिकार जमा लेते हैं। थोड़ेसे आदमियोंपर बहुतसे आदमियोंका अधिकार हो जाना ही जनताके कष्टोंका कारण है। इसलिये श्रमजीवियोकी अवस्थाका सुधार इस तरह हो सकता है कि इस बातका अनुभव होने लगे कि गुलामी वास्तवमें फैली हुई है। जब इस बातका अनुभव होने लगे, तब इस बातका कारण मालूम किया जाये कि बहुतसे आदमियोपर थोड़ेसे आदमियोंका अधिकार क्यों है। कारण मालूम हो जानेपर उन्हें दूर करनेका प्रयत्न होना चाहिये।

(८)
गुलामी क्या है।

हमारे इस युगमें किस बातमें गुलामी है। किन कारणोंसे थोड़े आदमी बहुतसे आदमियोंपर अधिकार जमा लेनेमें समर्थ हो जाते हैं। संसार भरमें जितने श्रमजीवी हैं, उनसे यदि प्रश्न किया जावे कि किस कारणसे वे वर्तमान अवस्थामें हैं, तो अधिकांश यही उत्तर देंगे कि हमारे पास जमीन न थी या जिनके पास जमीन थी, उन्हें इतने कर चुकाने पडते थे कि मजूरी करनेकी जरूरत हुई या यह कहा जायेगा कि शहरोंके विलासी जीवनने आकर्षित किया। यह जीवन मजूरी करने और स्वतन्त्रता बेचनेसे ही भोगनेको मिला। जमीन न रहने या करोंके बोझसे आदमी जबर्दस्ती मजूरी करनेके लिये बाध्य होते हैं। शहरोंका जीवन उन्हें प्रलोभनमें डाला करता है।

जमीनकी प्राप्ति पहले बतायी हुई हेनरी जार्जकी तरकीबसे हो सकती है और गरीबोंसे वसूल किये जानेवाले टैक्स अमीरोंके सिरपर लादे जा सकते हैं जैसा कि बहुतसे देशोंमें हो रहा है, परन्तु नगरोंके विलासी जीवनका आकर्षण ऐसा असाध्य रोग है जिसका इलाज सम्भव नहीं। जिस तरह पानी ऊंची जमीनसे बहकर नीची जमीनकी ओर जरूर ही जाता है, उसी तरह बड़े आदमियोंके विलासी जीवनसे गरीब आदमी भी प्रलोभनमें पड़ सकते हैं। अमीर आदमी विलासी जीवन न भोगें यह तो सम्भव ही नहीं है, फिर उनके पास रहनेसे धीरे धीरे श्रमजीवी भी उसी

जीवनके लिये लालायित होने लग जाते हैं। विलासी जीवनका सम्बंज यद्यपि स्वेच्छासे उत्पन्न हुआ कारण है, परन्तु उसका ही दूर होना कठिन है। विज्ञान इस कारणको नहीं मानता, परन्तु वास्तवमें यही सबसे प्रबल और प्रधान कारण श्रमजीवियोंकी कामनाका है। श्रमजीवी कठोरसे कठोर परिश्रमकर ही थोड़ासा विलासी जीवन भोग सकते हैं। यही कारण है कि इङ्गलैण्ड और अमेरिकाके मजूर जीवन-निर्वाहसे दसगुना पाकर भी गुलाम बने हुए हैं।

(६)

जमीन, जायदाद, कर-सम्बन्धी कानून।

जर्मन साम्यवादियोंने बहुतसे कारण सामने रखकर राय दी है कि यही श्रमजीवियोंको पैसेवालोंके गुलाम बनानेवाले हैं और ये कारण लोहेके समान हैं यानी मनुष्यकी शक्तिमें नहीं जो इनका सुधार हो सके। असल बात यह नहीं है। गुलामीका कारण मनुष्योंके बनाये हुए कानून ही हैं जो कर, जमीन और जायदादके सम्बन्धमें बनाये जाते हैं। मनुष्य ही कानून बनाते और मिटाते हैं। मनुष्यकी कार्यवाही गुलामी पैदा करती है, और कोई कारण इस गुलामीका नहीं। कुछ ऐसे कानून हैं जिनकी सहायतासे जमीन खास व्यक्तियोंकी सम्पत्ति बन सकती है और वे कई पीढ़ीतक उसे अपने अधिकारमें रख सकते हैं। वे जिसे चाहें दे सकते हैं और बेच भी सकते हैं। कुछ कानून ऐसे हैं जिनके कारण जिससे कर मांगा जायेगा, उसे चुपचाप

महा कर देना होगा और कुछ कानून ऐसे हैं जो मनुष्योंको उन चीज़ोंका अधिकारी मान लेते हैं जो उनके पास किसी तरह भी आ गयी हों। इन कानूनोंने गुलामी कायम कर रखी है।

इन कानूनोंके सम्बन्धमें हम सब इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि वे हमें अस्वाभाविक नहीं मालूम होते जैसे कि पहले ज़मानेमें गुलाम बनानेका कानून अस्वाभाविक नहीं मालूम होता था। हम उनके न्याय, अन्यायके सम्बन्धमें विचार ही नहीं करते और उनमें कोई बुराई नहीं देखते। जिस तरह एक समय आया जब कि लोग गुलाम बनानेवाले कानूनके न्यायपूर्ण होनेमें सन्देह करने लगे, उसी तरह आजकल भी वर्तमान सामाजिक बुराइयोंका अनुभवकार लोग ज़मीन, जायदाद और करसे सरोकार रखनेवाले कानूनोंकी भलाई बुराईके सम्बन्धमें तर्क करने लग गये हैं जो कानून सामाजिक बुराईकी जड़ बन रहे हैं।

जिस तरह पहले लोग कहने लगे थे कि क्या यह बात ठीक है कि एक आदमी दूसरे आदमीको अपने वशमें रखे और दूसरा आदमी इतना निस्सहाय हो कि वह अपनी कमाई दूसरेके हवाले एकदम कर दे। उसी तरह आज हमें भी प्रश्न करना चाहिये कि क्या दूसरेके नामपर ज़मीन लिख जानेसे ही किसीको उसे काममें लानेका अधिकार नहीं रह जाता। क्या यह बात ठीक है कि लोग अपनी मिहनतका फल करोंके रूपमें चुपचाप दूसरोंके

हवाले कर दें। क्या यह बात ठीक है कि लोग उन चीजोंका प्रयोग ही न कर सकें जो दूसरेकी जायदादमें शामिल कर ली गयी हैं।

क्या यह ठीक है कि लोग जमीनको काममें ही न ला सकें जो दूसरोंकी बतायी जाती है और वे स्वयं उसे जोत बो नहीं रहे हैं?

कहा जाता है कि जमीन-सम्बन्धी कानून इसलिये काममें लाया जाता है कि भू सम्पत्ति कृषिकी उन्नतिके लिये आवश्यक है यानी कुछ खास लोगोंको जमीनका मालिक बनाये बिना काम ही नहीं चल सकता। यदि कुछ व्यक्ति मालिक न हों, तो जो जिसे चाहेगा जमीनपरसे हटा देगा और कोई जमीनका प्रयोग न करेगा। क्या यह बात सच है? इसका जवाब इतिहास और आजकलकी परिस्थितिसे मिल सकता है। इतिहास डङ्केकी चोट बता रहा है कि जमीनपर कुछ लोगोंका पैतृक अधिकार इस इच्छासे नहीं हुआ कि जमीन काममें लानेवाले इस ढङ्गके कारण सुरक्षित हो जायेंगे। सार्वजनिक भूमिपर विजय पाने-वालोंने अधिकार जमा लिया। उन्होंने अपनी सेवा करनेवालोंके बीच वह जमीन बांटी। किसानोंके सुधारके लिये जमीन नहीं बांटी गयी। आजकलकी परिस्थिति देखनेसे भी पता लगता है कि जमीनपर लोगोंका पैतृक अधिकार होनेसे किसान इसलिये निश्चिन्त नहीं है कि जो जमीन आज वे जोत बो रहे हैं, वह उन्हींके पास रहेगी। वास्तवमें जैसा कहा जाता है इसके

विपरीत ही काम हुआ और हो रहा है। कुछ चुने हुए लोगोंके हाथमें जमीन है और अधिकांश आदमी उस जमीनको काममें लाते हैं। जमीनके स्वामी जरासी बातपर किसानोंको जमीन-परसे हटा सकते हैं। जमीन पैतृक सम्पत्ति बन गयी इसलिये किसानोंके अधिकार तो और भी सुरक्षित नहीं रहे। किसान अपनी मिहनतका फल ही नहीं चखने पाते। पैतृक अधिकार उन्हें तो अपने परिश्रमके फलसे वञ्चित कर देता है और ऐसे लोगोंको अधिक अधिकार देता है जो स्वयं जरा भी मिहनत नहीं करते। जमीनपर पैतृक अधिकार कृषिकी उन्नति नहीं, अवनति करता है।

करोंके सम्बन्धमें यह बात कही जाती है कि लोगोंको उन्हें जरूर ही अदा करना चाहिये, क्योंकि वे सबकी सलाहसे ही नियत होते हैं चाहे सब इस सम्बन्धमें बोलें भी नहीं। ये कर सबके लाभके लिये हैं और सभीके काम आते हैं। क्या यह बात सच है?

इस प्रश्नका उत्तर भी इतिहासमें भरा पड़ा है और आज-कलकी परिस्थितिसे भी मिल सकता है। इतिहास बता रहा है कि कर कभी सबकी रायसे नहीं लगाये गये। वे तो उन लोगोंने अपनी इच्छासे लगाये, जो विजय या अन्य किसी कारणसे शक्ति पा गये।

जितने कर इन्होंने लगाये जनताके हितके लिये नहीं, अपने लाभके लिये लगाये। अब भी यही बात देखनेमें आती है। वे ही

लोग कर वसूल करते हैं जो ऐसा करनेकी शक्ति रखते हैं। यदि करोंका कुछ हिस्सा सार्वजनिक कामोंमें व्यय भी किया जाता है, तो वे सार्वजनिक काम लाभदायक नहीं उल्टे हानिकारक हैं। रूसमें किसानोंसे एक तिहाई आमदनी करोंके रूपमें ले ली जाती है, परन्तु तमाम सरकारी आयका पचासवां हिस्सा भी जनताकी सबसे बड़ी जरूरत—शिक्षामें व्यय नहीं किया जाता। जो कुछ धन शिक्षाप्रचारमें लगता भी है, वह ऐसी शिक्षा फैलाता है जो जनताको जागृत करनेकी अपेक्षा और भी सुलाती है। इस तरह वह जनताका अहित किया करती है। ४९ हिस्से ऐसे कामोंमें खर्च होते हैं जिनसे जनताको लाभ नहीं। सेनाएं सजायी जाती हैं, किले, जेलखाने और सैनिक रेलें तैयार की जाती हैं। सैनिक और असैनिक अफसरोंको बड़ी बड़ी तनखाहें चुकायी जाती हैं और खुशामदी धर्माचार्यों और दरबारियोंका पेट भरा जाता है। यानी उन्हीं लोगोंके खर्चमें सब आमदनी जाती है, जो उसे एकत्र किया करते हैं और जनतासे वसूल करते हैं।

यही दशा तुर्की, फारिस और भारतकी तथा संसारके अन्य देशोंकी भी है जहांपर प्रजातन्त्र शासन भी स्थापित है। अधिकांश आदमियोंसे रुपया वसूल किया जाता है और इस बातकी जरा भी परवा नहीं की जाती कि वे स्वेच्छासे दे रहे हैं या नहीं। इतना रुपया नहीं लिया जाता जितना वास्तवमें आवश्यक है, बल्कि जितना मिल सकता है बटोरा जाता है। वह जनताके लाभमें व्यय नहीं होता, बल्कि उन बातोंमें व्यय होता है जिन्हें शासन

करनेवाली जातियां आवश्यक समझती हैं। विदेशोंमें अधिकार बढ़ाने और उन्हें कायम रखनेमें खर्च होता है। यह कहना सरासर अन्याय है कि कर जनताकी स्वीकृतिसे लगाये जाते हैं और यह बात उसी तरह भ्रमजनक है जिस तरह यह कहना कि कृषिकी उन्नतिके लिये खास व्यक्तियोंको जमीनपर पैतृक अधिकार दिया जाता है।

क्या यह बात ठीक है कि लोग उन चीजोंको काममें न लायें जिनकी उन्हें जरूरत है अगर वे चीजें दूसरोंकी जायदाद मान ली गयी हैं? कहा जाता है कि सम्पत्तिपर अधिकारका नियम इसलिये चलाया गया है जिससे मजूरको इस बातका विश्वास रहे कि अपनी मिहनतसे जो कुछ प्राप्त हुआ है वह दूसरा न लेगा। क्या यह बात सच है?

संसारमें जो कुछ हो रहा है उसपर जरा ध्यान देनेकी जरूरत है। संसारमें जायदादका अधिकार बड़ी सरगर्मीसे सुरक्षित रखा जाता है। सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर पता लगेगा कि असलमें बात पालनेके सर्वथा विपरीत है।

प्राप्त वस्तुपर अधिकारकी धूम जिस बातको रोकनेके लिये मचायी जाती है, वही बात वास्तवमें होती है। श्रमजीवी ज्यों ज्यों चीजें तैयार करते जाते हैं, वे उन लोगोंद्वारा अधिकारमें कर ली जाती हैं जो उन्हें तैयार नहीं करते। इसलिये जायदादी अधिकारकी बात सर्वथा मिथ्या है और जायदादकी रक्षाके लिये जो कानून बनाये जाते हैं उनसे श्रमजीवियोंको लाभ नहीं

पहुंचता, क्योंकि उनके परिश्रमके फलको वे अपने पास नहीं रख पाते और दूसरे उसे छीन लेते हैं। खेतीके सुधार और जनता के लाभके वास्ते कर लगानेके लिये जैसे शर्त ठहराई दी जाती है उसी तरह जायदादपर व्यक्तियोंके अधिकारकी बात श्रमजीवियों को धोखा देनेवाली है। उनसे जो लोग अन्यायपूर्वक जबर्दस्ती चीजें छीन लेते हैं, कानून उनकी ही रक्षा करनेमें काम आता और चोरोंको साधु बनाता है।

एक कारखाना जो नाना प्रकारके भोगोंसे प्राप्त हुआ है और श्रमजीवियोंके परिश्रमसे वैसा बना है, वह व्यक्तिविशेष या दल विशेषकी सम्पत्ति मान लिया जाता है और दूसरे उसे छू भी नहीं सकते, परन्तु काम करनेवालोंकी जानें जो कारखाना चलानेमें खतम होती हैं और उनका परिश्रम उनकी जायदाद नहीं, बल्कि कारखानेके मालिककी जायदाद हैं, जिसने गरीब आदमियोंकी आवश्यकताएं देखकर उन्हें किसी तरह बन्धनमें जकड़ लिया है जो कानूनी मान लिया गया है। हजारों मन गल्ला जो सूदखोरी तथा अन्य कड़ाइयोंको काममें लाकर बेचारे किसानोंसे छीन लिया गया है वह व्यापारीकी जायदाद है, परन्तु किसानोंने मिहनतकर जो फसल तैयार की है वह किसी दूसरेकी जायदाद है जो भूमिपर पैतृक अधिकार रखता है और जिसके किसी पूर्वजने वह जमीन जनतासे ही छीनी थी। कहा जाता है कि कानून अमीर गरीब सबकी रक्षा समान रूपसे करता है, परन्तु अमीर गरीबकी दशा उन दो लड़नेवालोंके समान है जिनमें एकके

तो हाथ बांध दिये गये हैं और दूसरेके हाथ ही नहीं खुले, बल्कि उसे हथियार भी मिले हुए हैं। दोनोंमें इतना भेद होनेपर भी दोनोंके लिये लड़नेके नियम पक्षपातशून्य ढङ्गसे काममें लानेकी दुहाई दी जाती है। वास्तवमें सभी कानून गुलामी बढ़ानेवाले हैं और उनका समर्थन उसी तरह किया जाता है, जिस तरह पहले गुलामीके नियमोंका किया जाता था। ऊपर बताये हुए तीनों कानूनोंने गुलामी कायम रखी है यद्यपि उसका स्वरूप बदल गया है। जिस तरह पहले जमानेमें लोग आदमियोंको खरीद सकते, बेच सकते और अपनी इच्छानुसार उनसे काम ले सकते थे, उसी तरह आजकल कानून बन गये हैं जिनके कारण कोई उस जमीनको काममें लानेमें स्वतन्त्र नहीं है जिसपर अन्य किसीका पैतृक अधिकार जम गया है। कानूनोंके कारण लोगोंको चुपचाप कर चुका देना पड़ता है जितना उनसे मांगा जाता है। वे ऐसी चीजें काममें नहीं ला सकते, जो दूसरेकी जायदाद बन चुकी हैं। यह हमारे जमानेकी गुलामी है।

(१०)

गुलामीका कारण।

जमीन, जायदाद और करोंके सम्बन्धमें बने हुए कानूनोंने हमारे जमानेकी गुलामी पैदा की है। इसलिये जो लोग श्रमजीवियोंकी दुर्दशा मिटाना चाहें, वे इन कानूनोंकी जड़ खोदनेकी ओर ध्यान लगावें।

कुछ लोग करोंको गरीब आदमियोंपरसे हटाकर अमीर आद मियोंके ऊपर रखना चाहते हैं, कुछ भू सम्पत्ति बिल्कुल ही उठा देनेके पक्षमें हैं। न्यूजीलैण्ड और अमेरिकाके एक राष्ट्रमें यह उद्योग आरम्भ भी हो चुका है। साम्यवादी कल-कारखानोंको सार्वजनिक सम्पत्ति बना देना चाहते हैं। वे आमदनी और पैतृक अधिकारसे पायी हुई सम्पत्तिपर अधिक कर लगाना चाहते हैं और पैसेवालोंके अधिकार संकुचित करना चाहते हैं। इन बातोंको ध्यानमें रखकर बहुतसे लोग समझते हैं कि कानून उठ जायेंगे और वे आशा करते हैं कि गुलामी न रहेगी। यदि हम सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो पता लगेगा कि श्रमजीवियोंकी अवस्था सुधारनेके लिये जो कानून उठाये जानेवाले हैं, उनकी जगह अप्रत्यक्ष रूपसे नये कानूनोंकी रचना हो रही है। इस तरह गुलामीका दूसरा ढङ्ग स्थान पा रहा है। जो लोग गरीबोंपरसे कर उठाकर अमीरोंपर लादना चाहते हैं, वे इस बातको मान लेते हैं कि अमीर आदमी जमीनपर व्यक्तिगत तौरसे अधिकार रख सकेंगे और इस जमीनकी आयसे ही कर चुकायेंगे। साथ ही वे उन भी चीजोंके मालिक रहेंगे जिनसे पूरी आमदनी होगी और वह आमदनी कर चुकानेमें काम आयेगी। अमीरोंके पास कर चुकानेके लिये आसमानसे तो धन आयेगा नहीं। श्रमजीवी यदि करोंसे मुक्त भी कर दिये गये, तब भी वे पैसेवालोंके गुलाम रहेंगे, क्योंकि जमीनपर पैतृक अधिकार होनेसे बड़े आदमियोंको दूसरोंको वशमें रखनेका मौका मिलेगा ही। जो हेनरी ज

तरह जमीनपर पैतृक अधिकार करानेके कानून उठा देना चाहते हैं, वे जमीनपर एक नया कर लगाते हैं जो सबको अवश्य ही अदा करना पड़ेगा। गुलामी बढ़ानेका यह भी मार्ग है।

यदि किसी समय अच्छी फसल न हुई और कर चुकाना जरूरी है, तो किसीसे रुपया उधार लेकर कर चुकाया जायेगा और उसकी गुलामीमें पड़नेका मौका मिलेगा। जो साम्यवादी जमीनपर व्यक्तिगत अधिकार नहीं रखना चाहते और कल-कारखाने सार्वजनिक सम्पत्ति बना देना चाहते हैं, वे कर-सम्बन्धी कानून बनाये रखनेके सिवा जबर्दस्ती काम करनेके लिये कानूनका मार्ग खोलते हैं। यह कानून पुराने जमानेके समान ही गुलामी नहीं पैदा करेगा तो क्या करेगा। इस तरह एक न एक ढङ्गसे गुलामी बनी रहती है जब कि गुलामी पैदा करनेवाले कानूनोंको उठा देनेकी चर्चा होती है। होता यही है कि जेलके एक कैदीकी तरह बेड़िया गर्दनसे हाथोंमें और हाथोंसे टांगोंमें चली जाती हैं। यदि जेलर बेड़िया उतार लेता है, तो बन्द कमरा कर देता है। समाजमें श्रमजीवियोंके सुधारके अबतक जितने प्रयत्न हुए हैं, सब इसी ढङ्गके हुए हैं।

पहले यही कानून था कि गुलामोंसे जबर्दस्ती काम लिया जाता था, परन्तु पीछेसे उसकी जगहपर यह कानून बना कि स्वामियोंके हाथमें जमीन रहे और वे किसीसे जबर्दस्ती काम न ले सकें। [illegible] अधिकार नहीं, पर कर-सम्बन्धी कानून काममें लाये जा सकते हैं। इस प्रकार [illegible]

कर-सम्बन्धी कानून उठा देनेपर चीजोंपर लोगोंको व्यक्तिगत अधिकार देनेका कानून सामने आवेगा और कालान्तरमें यह अधिकार भी नष्टकर उसकी जगहपर जबर्दस्ती काम लेनेका कानून दिखाई देगा।

इससे स्पष्ट है कि जमीन, जायदाद और कर-सम्बन्धी कानून एक तरहकी गुलामी दूर कर दूसरे ढङ्गकी गुलामीको स्थान देते रहेंगे। तीनों कानून एक साथ उठा देनेसे भी गुलामीका अन्त न होगा। फिर भी एक नये ढङ्गकी गुलामी स्थान पायेगी। उस गुलामीके चिन्ह दिखाई देने लगे हैं और वह श्रमजीवियोंको बन्धनमें डाल रही है। काम करनेके घण्टोंके सम्बन्धमें, श्रमजीवियोंकी आयु और अवस्थाके सम्बन्धमें तथा स्कूलोंमें जबर्दस्ती पढ़ानेके सम्बन्धमें कानून बन रहे हैं। यह सब गुलामीका नया ढङ्ग है। एक बिल्कुल ही नये ढङ्गकी गुलामी स्थान पा रही है।

स्पष्ट है कि गुलामी आज जिन कानूनोंके कारण है, उनकी जड़में नहीं और न उन कानूनों या अन्य किसी कानूनमें ही है बल्कि कानून है इसीमें गुलामी भरी हुई है। यानी कानून रखनेका यह अर्थ है कि कुछ लोग ऐसे हैं जो कानून तैयार करते हैं। वे अपना लाभ हर हालतमें देखेंगे। जबतक लोगोंके पास यह अधिकार है, गुलामीका अन्त हो ही नहीं सकता।

पहले जमानेमे लोगोंको गुलामोंके रखनेमे लाभ था इसलिये उन्होंने गुलाम सम्बन्धी कानून बनाये थे। जब जमीन रखनेमें

फायदा दिखाई देने लगा, तब जमीनके लिये कानून बना डाले गये। अब लोग इसमें फायदा समझते हैं कि श्रमविभागपर अपना निरीक्षण और अधिकार रहे, इसलिये वे इस सम्बन्धमें कानून बनानेकी धुनमें हैं। गुलामीका प्रधान कारण कानूनोंकी रचना है। कानून बनानेका यह अर्थ है कि कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें कानून बनानेका अधिकार है। कानून क्या है और लोग कानून बनानेका अधिकार किस तरह पाते हैं?

(११)

कानूनका सार संगठित पशुबल है।

सिद्धान्तवादी कहते हैं कि कानून समस्त जनताकी प्रकट इच्छाका नाम है। परन्तु यह बात वास्तवमें नहीं है, क्योंकि हरएक स्थानमें कानूनको काममें लानेवालोंकी अपेक्षा कानून तोड़नेवालों या तोड़नेकी इच्छा रखनेवालोंकी संख्या कहीं अधिक है। दण्डके भयसे कानून न तोडा जाये, यह दूसरी बात है। जब यह हालत है, तब कानून समस्त जनताकी प्रकट की हुई सम्मति है यह कैसे माना जा सकता है।

उदाहरणके लिये देखा जाये कि तार न तोड़नेका कानून है, कुछ लोगोंके प्रति सम्मान दिखानेका कानून है। हरएक आदमीको बीस पहुंचनेपर सैनिक सेवा करनी पड़ेगी या जूरर रहना पड़ेगा, यह भी कानून है। किसीकी जमीन काममें न ला सकें जबतक उसकी अनुमति न मिले, यह भी कानून है। जाली रुपये या नोट न बनाये जायें इसका भी कानून

है। इसी तरह और भी बहुतसे कानून हैं। इनमेंसे कौनसा कानून जनताकी प्रत्यक्ष इच्छा कहा जा सकता है? सब कानून किसी न किसी उद्देश्यसे बनाये गये हैं और सबमें यह बात विद्यमान है कि जो उनमेंसे किसीको न मानेगा, उसके विरुद्ध सेना रवाना की जायेगी। सेना कानून न माननेवालेको मारेगी, उसकी स्वतन्त्रता छीनेगी और उसके प्राणतक ले लेगी।

यदि कोई आदमी अपनी कड़ी मिहनतका फल करोंके रूपमें देनेको तैयार नहीं, तो हथियारबन्द आदमी आकर उससे जो चाहेंगे, छीन ले जायेंगे। यदि वह विरोध करेगा, तो मार खायेगा। यह भी सम्भव है कि वह जानसे मार डाला जावे। जो दूसरेकी अनुमतिके बिना जमीन ले लेगा, उसकी भी यही दशा होगी, यही दशा उस आदमीकी भी होगी जो अपनी आवश्यकताएं पूरी करनेके लिये वे चीजें ले लेता है जो दूसरेकी जायदाद मान ली गयी हैं।

जिन लोगोंके प्रति सम्मान दिखानेका कानून है यदि उनके प्रति सम्मान न दिखाया जायेगा, तो उसकी भी दुर्दशा की जायेगी। जो अपनी इच्छाके विरुद्ध सेनामें भर्ती होकर न लड़ना चाहेगा, वह भी सताया जायेगा। जो भी कानून न माना जायेगा, उसके लिये दण्ड भोगना होगा। जो कानून बनाते हैं, वे अपराधीको हर तरहका दण्ड देंगे।

बहुतसी शासनप्रणालियां बनायी गयी हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो कि जो कानून काममें लाये जा रहे हैं, वे जनताकी इच्छासे

तैयार हुए हैं। परन्तु यह बात सभी जानते हैं कि निरंकुश शासनमें ही नहीं, इङ्गलैण्ड, फ्रान्स और अमेरिका आदि स्वतन्त्रसे स्वतन्त्र देशोंमें भी जनताकी इच्छासे कानूनोंकी रचना नहीं हुई। कानून उन्हीं लोगोंने बनाये हैं जिनके हाथमें शक्ति है। इसीसे वे इन शक्तिसम्पन्न लोगोंके लिये ही लाभदायक हैं। चाहे उनकी संख्या अधिक हो या कम हो या एक ही हो। सभी जगह पशुबलके सहारे कानूनोंके अनुसार काम कराया जाता है। इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं।

दूसरा मार्ग हो भी नहीं सकता। कानून कुछ आदमियोंके दूसरोंकी इच्छा पूरी करानेके साधन हैं। इच्छा न होनेपर भी दूसरोंकी बात पशुबलके भयसे ही मानी जा सकती है। यदि कानून है, तो उनके पालनके लिये पशुबल भी रहेगा। यह पशुबल साधारण नहीं, बल्कि सङ्गठित होगा जिससे शक्तिसम्पन्न आदमियोंकी इच्छाके अनुकूल काम होता रहे जिसे वे कानूनका पालन कहेंगे।

इसलिये कानूनका प्रधान उद्देश्य न तो जनताकी इच्छाको कार्यमें लाना। और न जनताके अधिकारोंकी रक्षा करना ही है। इसका प्रधान उद्देश्य शक्तिसम्पन्न व्यक्तियोंकी इच्छानुसार दूसरों-से जबर्दस्ती काम कराना है जिसके लिये हर समय सङ्गठित पशुबल तैयार रहता है। कानूनकी असली परिभाषा यह है कि ये पशुबलसम्पन्न शासन करनेवालोंद्वारा बनाये हुए नियम हैं जिनका पालन न करनेसे मृत्युका भी सामना करना

पड़ता है। इस परिभाषासे उस प्रश्नका उत्तर मिल जाता है, जिसमें पूछा गया है कि लोगोंको कानून बनाना किस तरह सम्भव है। जो चीज़ कानून तैयार कराती है, वही उन कानूनों-का पालन भी कराती है और वह चीज़ सङ्गठित पशुबल है।

(१२)

सरकारें क्या हैं। उनका अस्तित्व क्या आवश्यक है?

श्रमजीवी गुलामीमें पड़े रहनेके कारण कष्ट भोग रहे हैं। गुलामीका कारण कानून हैं जो पशुबलपर चलाये जा रहे हैं। संगठित पशुबलका नाश करनेसे जनताकी कष्टमय अवस्था दूर की जा सकती है। सङ्गठित पशुबलका नाम ही सरकार है और सरकारोंके बिना किस तरह जीवन सम्भव है। उनके न रहनेसे चारों ओर अराजकता फैल जायेगी, सभ्यताका फल मिट्टीमें मिल जायेगा और लोग असभ्यताकी ओर लौट पड़ेंगे, यही सरकारोंके हिमायती कहते हैं। जिन लोगोंको वर्तमान प्रणाली और कानूनोंसे लाभ पहुंच रहा है, वे ही यह बात नहीं कहते, जिन्हें कष्ट पहुंच रहा है वे भी यही बात कहते हैं; क्योंकि वे कल्पना ही नहीं कर सकते कि सरकारोंके बिना भी जीवन व्यतीत किया जा सकता है। वे सोचते हैं कि सरकारें न रहनेसे चारों ओर चोरी, डकैती और बदमाशी बढ़ जायेगी, बुरे आदमी भले आदमियोंको तङ्गकर उनका सब कुछ छीन लेंगे और उन्हें अपना गुलाम बना लेंगे। इसलिये सुखी और दुखी सभी चाहते हैं कि सामने जो ढङ्ग दिखाई दे रहा है,

इसे छुआ भी न जाये। इसे छूनेसे ही सब बुराइयां सामने आ जायेंगी।

हजारों ईंटोंके ढेरसे एक बड़ा स्तम्भ बना खड़ा है। वह इतना अप्राकृतिक है कि उसकी एक ईंट इधर उधर करनेसे ही वह बालूकी दीवालकी तरह झट नीचे गिरता दिखाई देगा। ऐसे स्तम्भको खड़े रखनेसे लाभ ही क्या है। सब ईंटे निकालकर इस तरहकी व्यवस्था क्यों न की जाये जिससे वह स्तम्भ वास्तवमें मजबूत बन जाये। पुराने ढांचेको बदलकर नयी व्यवस्था क्यों न की जाये। पशुबलपर खड़ी हुई सरकारें कमजोर खम्भेके समान हैं और उनमें जरासा परिवर्तन करनेसे ही जब सभ्यताका ढेर नष्ट होनेकी सम्भावना है, तो सरकारोंका यह अप्राकृतिक स्वरूप क्यों कायम रखा जाये। जब जरासे आघातसे सारी सभ्यता धूलमें मिल सकती है, तब ऐसे सङ्गठनको अनावश्यक न कहा जाये, तो क्या कहा जाये। इस भयानक और हानिकारक सङ्गठनको जारी रखनेसे क्या काम है। यह सङ्गठन हानिकारक तो अवश्य है, क्योंकि उसके कारण समाजकी बुराई घटती नहीं, बढ़ती ही है। सरकारोंने इस बुराईको न्यायसङ्गत ठहरा दिया है या उसका स्वरूप चित्ताकर्षक बना दिया है या उसे भीतर ही भीतर छिपा रखा है।

कुशासित राष्ट्रोंने जो पशुबलसे भयभीत किये गये हैं बाहर सब लोग सुखी दिखाई देते हैं। वास्तवमें सुख नहीं है। जो

दुःखमय दृश्यमें बाधा देनेवाले भूखे, नङ्गे और बीमार आदमी हैं, वे सबके सामने नहीं रखे जाते। वे छिपाकर रखे जाते हैं। हम उन्हें नहीं देख पाते इसका यह अर्थ नहीं है कि वे मौजूद ही नहीं हैं। वे जितने छिपाकर रखे जायेंगे, उतना ही अधिक उनपर अत्याचार होगा। पशुबलपर स्थापित सरकारें यदि नष्ट हो जायेंगी, तो सुखी जीवनका बाहरी दृश्य अवश्य नष्ट हो जायेगा परन्तु सरकारोंके नाशसे जनताका कोई अहित नहीं हो सकता। बाहरी सुखी जीवनके भीतर जो दुःखमय जीवनकी पोल है, वह अवश्य दिखाई देने लग जायेगा और उस जीवनके सुधारका प्रयत्न भी होने लगेगा।

अबतक लोगोंका यही विश्वास था कि सरकारोंके बिना जीवन व्यतीत ही नहीं किया जा सकता, परन्तु समयने मनुष्यके भावोंमें परिवर्तन उपस्थित कर दिया। सरकारोंने बड़ी चेष्टा की कि लोग भुलावेमें पड़े रहें और उनके अस्तित्वको आवश्यक माने, परन्तु लोग जाग गये और खासकर युरोप और अमेरिकाके श्रमजीवियोंको ज्ञान हुआ कि इस दुःखमय अवस्थाका क्या कारण है।

सरकारें रातदिन यह बात कहा करती हैं कि यदि हमारा अस्तित्व न रहेगा, तो पड़ोसी आक्रमणकर जानमालपर सङ्कट उपस्थित कर देंगे। लोगोंकी धारणा हो रही है कि सरकारोंने झूठा भय दिखा रखा है। वास्तवमें सरकारें ही अपने किसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये जिसका जनताको पता भी नहीं

चलने पाता, दूसरे देशोंके आक्रमणको निमन्त्रण देती हैं। वे अपने अभिमानकी धुनमें या किसी अभिलाषाकी पूर्तिके लिये लड़ाई छेड़ देती हैं। प्रजाके पसीनेसे आया हुआ रुपया सेनाएं तैयार रखनेमें व्यय करती हैं। सरकारें बड़ी बड़ी स्थलसेनाएं, जल-सेनाएं, अस्त्रागार और सैनिक रेलो, हवाई जहाजों और गोता-खोरोंकी धूम मचाकर अपने पडोसियोंकी ईर्षाका कारण बनती हैं। सरकारें कहती तो यह हैं कि हम जनताके लिये लडाइयां लड़कर जमीनकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हैं, परन्तु प्रत्यक्षमें यह बात दिखाई देती है कि जमीन गरीब आदमियोंके हाथसे निकलकर धीरे धीरे उन पैसेवालोंके दलके पास जा रही है, जो स्वयं कुछ काम नहीं करते। अधिकांश आदमी इन आलसियोंके गुलाम बनते जा रहे हैं। जो जमीनको उत्तम बनाते हैं, उनसे जमीन छीनकर दूसरोंको दी जाती है। कहा तो यह जाता है कि सरकारें मिहनतीको उसकी मिहनतका फल दिलानेवाली हैं, परन्तु इसके विपरीत कार्य हो रहा है।

जो लोग बढ़िया चीजें तैयार करनेवाले हैं, वे सरकारोंकी कृपासे ऐसी अवस्थामें रखे गये हैं कि उन चीजोंकी तैयारीसे कुछ लाभ नहीं उठा पाते। वे काम न करनेवालोंकी गुलामीमें रहा करते हैं।

लोग अब सरकारोंकी पोल अच्छी तरह समझ गये हैं और उनके अन्दर बड़ी जागृति उत्पन्न हो गयी है। शहरोंके ही नहीं, गांवोंके श्रमजीवियोंके विचार भी बहुत जल्दी बदलते जा रहे हैं।

सभ्य और स्वतन्त्र देशोंमें ही नहीं, परतन्त्र और अशिक्षित स्थानों-में भी यह जागृति बढ़ रही है।

कहा जाता है कि यदि सरकारें न रहेंगी, तो हम उन संस्थाओंसे वञ्चित हो जायेंगे जो मानसिक जागृति उत्पन्न करने वाली अथवा शिक्षित बनानेवाली हैं और जिन संस्थाओंकी सब को बड़ी आवश्यकता है। यह धारणा क्यों उत्पन्न हुई? क्या सरकारोंके बिना लोग अपनी जीवन-व्यवस्था इस प्रकारकी न बनायेंगे जैसी कि सरकारें उनके लिये बना रही हैं? क्या वे अपना हित आप न कर सकेंगे?

हम तो देखते हैं कि सरकारोंकी अपेक्षा जनता ही अपनी संस्थाओंका अच्छा सङ्गठन किया करती है। कभी कभी तो सरकारी विरोधका सामना करनेपर भी वह बहुत अच्छी तरह संस्थाएं चलाती है। वह अपने लिये सङ्घ, समितियां स्था-पित करती है। यदि लोगोंको सार्वजनिक संस्थाएं लाभदायक मालूम होंगी, तो वे उन्हें क्यों न अच्छी तरहसे चलायेंगे जब कि इस समय पशुबलसे भयभीत होकर अनेच्छासे चला रहे हैं। यह कल्पना ही क्यों की जाती है कि पशुबल न रहनेसे न्यायालय भी न रहेंगे। जिन आदमियोंपर दोनों पक्षोंका पूरा विश्वास हो, वे सदासे झगड़ोंको निपटाते चले आ रहे हैं और निपटाते रहेंगे। झगड़ा मिटानेके लिये, न्यायालय चलानेके लिये पशुबलकी क्या आवश्यकता है? बहुत दिनोंसे गुलामी भोगनेके कारण हमारा इतना पतन हो गया है कि हम इस बातकी कल्पना ही

नहीं कर सकते कि पशुबलके बिना भी शासन चल सकता है। असलमें वह चल सकता है। अब भी जो लोग सरकारी प्रभाव-से बहुत दूर हैं, अपना काम बड़े मजेसे चलाते हैं। अपने झगड़े आपसमें तय कर लेते हैं। वे अपनी पुलिस रखते हैं और सार्वजनिक कामोंके लिये धनसंग्रह भी किया करते हैं। वे उस समयतक उन्नति करते हैं, जबतक सरकार अपने पशुबल द्वारा हस्तक्षेप नहीं करती। लोग आपसमें यह भी तय कर सकते हैं कि जमीनका विभाग किस ढङ्गसे होना चाहिये।

मैं ऐसे आदमियोंको जानता हूं जिनके बीच जमीन कभी किसी खास व्यक्तिकी जायदाद नहीं मानी गयी। उन लोगोंके बीच इतना दुःख देखा गया जितना कि उस समाजमें नहीं है, जिसमें पशुबलके आधारपर जमीन खास व्यक्तियोंकी जायदाद मानी गयी है। मैं अब भी ऐसे समाजोंको जानता हूं जिनमें व्यक्तियोंका किसी खास जायदादपर अधिकार नहीं है। रूसके किसान जब गुलामीसे मुक्त किये गये तो उन्होंने यह सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया कि जमीन खास व्यक्तियोंकी है। सरकार कहती है कि जमीनको खास व्यक्तियोंकी सम्पत्ति बनाकर झगड़ेको मिटाया जाता है, परन्तु वास्तवमें झगड़ा मिटता नहीं, उल्टा बढ़ता है। कभी कभी इस व्यवस्थासे झगड़ा पैदा भी होता है।

जमीनपर खास व्यक्तियोंका अधिकार होनेसे उसकी कीमत बढ़ गयी और लोग संकुचित स्थानोंमें जीवन व्यतीत करने लगे।

सभ्य और स्वतन्त्र देशोंमें ही नहीं, परतन्त्र और अशिक्षित स्थानोंमें भी यह जागृति बढ़ रही है ।

कहा जाता है कि यदि सरकारें न रहेंगी, तो हम उन संस्थाओंसे वञ्चित हो जायेंगे जो मानसिक जागृति उत्पन्न करनेवाली अथवा शिक्षित बनानेवाली हैं और जिन संस्थाओंकी सब को बड़ी आवश्यकता है । यह धारणा क्यों उत्पन्न हुई ? क्या सरकारोंके बिना लोग अपनी जीवन-व्यवस्था इस प्रकारकी न बनायेंगे जैसी कि सरकारें उनके लिये बना रही हैं ? क्या वे अपना हित आप न कर सकेंगे ?

हम तो देखते हैं कि सरकारोंकी अपेक्षा जनता ही अपनी संस्थाओंका अच्छा सङ्गठन किया करती है । कभी कभी तो सरकारी विरोधका सामना करनेपर भी वह बहुत अच्छी तरह संस्थाएं चलाती है । वह अपने लिये सङ्घ, समितियां स्थापित करती है । यदि लोगोंको सार्वजनिक संस्थाएं लाभदायक मालूम होंगी, तो वे उन्हें क्यों न अच्छी तरहसे चलायेंगे जब कि इस समय पशुबलसे भयभीत होकर अनेच्छासे चला रहे हैं। यह कल्पना ही क्यों की जाती है कि पशुबल न रहनेसे न्यायालय भी न रहेंगे । जिन आदमियोंपर दोनों पक्षोंका पूरा विश्वास हो, वे सदासे झगड़ोंको निपटाते चले आ रहे हैं और निपटाते रहेंगे । झगडा मिटानेके लिये, न्यायालय चलानेके लिये पशुबलकी क्या आवश्यकता है ? बहुत दिनोंसे गुलामी भोगनेके कारण हमारा इतना पतन हो गया है कि हम इस बातकी कल्पना ही

नहीं कर सकते कि पशुबलके बिना भी शासन चल सकता है। असलमें वह चल सकता है। अब भी जो लोग सरकारी प्रभाव-से बहुत दूर हैं, अपना काम बड़े मजेसे चलाते हैं। अपने झगड़े आपसमें तय कर लेते हैं। वे अपनी पुलिस रखते हैं और सार्वजनिक कामोंके लिये धनसंग्रह भी किया करते हैं। वे उस समयतक उन्नति करते हैं, जबतक सरकार अपने पशुबल द्वारा हस्तक्षेप नहीं करती। लोग आपसमें यह भी तय कर सकते हैं कि जमीनका विभाग किस ढङ्गसे होना चाहिये।

मैं ऐसे आदमियोंको जानता हूं जिनके बीच जमीन कभी किसी खास व्यक्तिकी जायदाद नहीं मानी गयी। उन लोगोंके बीच इतना सुख देखा गया जितना कि उस समाजमें नहीं है, जिसमें पशुबलके आधारपर जमीन खास व्यक्तियोंकी जायदाद मानी गयी है। मैं अब भी ऐसे समाजोंको जानता हूं जिनमें व्यक्तियोंका किसी खास जायदादपर अधिकार नहीं है। रूसके किसान जब गुलामीसे मुक्त किये गये तो उन्होंने यह सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया कि जमीन खास व्यक्तियोंकी है। सरकारें कहती हैं कि जमीनको खास व्यक्तियोंकी सम्पत्ति बताकर झगड़ेको मिटाया जाता है, परन्तु वास्तवमें झगड़ा मिटता नहीं, उल्टा बढ़ता ही है। कभी कभी इस व्यवस्थासे झगड़ा पैदा भी होता है।

जमीनपर खास व्यक्तियोंका अधिकार होनेसे उसकी कीमत बढ़ गयी और लोग संकुचित स्थानोंमें जीवन व्यतीत करने लगे।

सभ्य और स्वतन्त्र देशोंमें ही नहीं, परतन्त्र और अशिक्षित स्थानों-में भी यह जागृति बढ़ रही है।

कहा जाता है कि यदि सरकारें न रहेंगी, तो हम उन संस्थाओंसे वञ्चित हो जायेंगे जो मानसिक जागृति उत्पन्न करनेवाली अथवा शिक्षित बनानेवाली हैं और जिन संस्थाओंकी सब को बड़ी आवश्यकता है। यह धारणा क्यों उत्पन्न हुई? क्या सरकारोंके बिना लोग अपनी जीवन-व्यवस्था इस प्रकारकी न बनायेंगे जैसी कि सरकारें उनके लिये बना रही हैं? क्या वे अपना हित आप न कर सकेंगे?

हम तो देखते हैं कि सरकारोंकी अपेक्षा जनता ही अपनी संस्थाओंका अच्छा सङ्गठन किया करती है। कभी कभी तो सरकारी विरोधका सामना करनेपर भी वह बहुत अच्छी तरह संस्थाएं चलाती है। वह अपने लिये सङ्घ, समितियां स्थापित करती है। यदि लोगोंको सार्वजनिक संस्थाएं लाभदायक मालूम होंगी, तो वे उन्हें क्यों न अच्छी तरहसे चलायेंगे जब कि इस समय पशुबलसे भयभीत होकर अनेच्छासे चला रहे हैं। यह कल्पना ही क्यों की जाती है कि पशुबल न रहनेसे न्यायालय भी न रहेंगे। जिन आदमियोंपर दोनों पक्षोंका पूरा विश्वास हो, वे सदासे झगड़ोंको निपटाते चले आ रहे हैं और निपटाते रहेंगे। झगड़ा मिटानेके लिये, न्यायालय चलानेके लिये पशुबलकी क्या आवश्यकता है? बहुत दिनोंसे गुलामी भोगनेके कारण हमारा इतना पतन हो गया है कि हम इस बातकी कल्पना ही

नहीं कर सकते कि पशुबलके बिना भी शासन चल सकता है। असलमें वह चल सकता है। अब भी जो लोग सरकारी प्रभाव-से बहुत दूर हैं, अपना काम बड़े मजेसे चलाते हैं। अपने झगड़े आपसमें तय कर लेते हैं। वे अपनी पुलिस रखते हैं और सार्वजनिक कामोंके लिये धनसंग्रह भी किया करते हैं। वे उस समयतक उन्नति करते हैं, जबतक सरकार अपने पशुबल द्वारा हस्तक्षेप नहीं करती। लोग आपसमें यह भी तय कर सकते हैं कि जमीनका विभाग किस ढङ्गसे होना चाहिये।

मैं ऐसे आदमियोंको जानता हूं जिनके बीच जमीन कभी किसी खास व्यक्तिकी जायदाद नहीं मानी गयी। उन लोगोंके बीच इतना सुख देखा गया जितना कि उस समाजमें नहीं है, जिसमें पशुबलके आधारपर जमीन खास व्यक्तियोंकी जायदाद मानी गयी है। मैं अब भी ऐसे समाजोंको जानता हूं जिनमें व्यक्तियोंका किसी खास जायदादपर अधिकार नहीं है। रूसके किसान जब गुलामीसे मुक्त किये गये तो उन्होंने यह सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया कि जमीन खास व्यक्तियोंकी है। सरकारें कहती हैं कि जमीनको खास व्यक्तियोंकी सम्पत्ति बताकर झगड़ेको मिटाया जाता है, परन्तु वास्तवमें झगड़ा मिटता नहीं, उल्टा बढ़ता ही है। कभी कभी इस व्यवस्थासे झगड़ा पैदा भी होता है।

जमीनपर खास व्यक्तियोंका अधिकार होनेसे उसकी कीमत बढ़ गयी और लोग संकुचित स्थानोंमें जीवन व्यतीत करने लगे।

यदि ऐसा न होता तो ये स्वतन्त्र भूमिका जमा चाहते उपयोग करते, जितनी जमीनकी संसारमें कमी नहीं हो सकती। अब रात दिन जमीनके लिये लड़ाई हुआ करती है और सरकारें अपने कानूनोंसे इस झगड़ेको मदद पहुंचाया करती हैं। इस झगड़ेसे उन बेचारोंको लाभ नहीं पहुंचता जो खेतोंमें काम करनेवाले हैं बल्कि उन लोगोंका लाभ है जो सरकारके पशुबलमें हिस्सा लेनेवाले हैं।

जो आदमी कोई चीज अपनी मिहनत या गुणसे तैयार करे, उसकी रक्षाके लिये किसी प्रकारके पशुबलकी आवश्यकता नहीं। पारस्परिक सहायताके भाव तथा लोकमतद्वारा उन चीजोंकी रक्षा होती ही रहेगी।

एक आदमी लाखों बीघा जङ्गल रखे और उसके पड़ोसी लकड़ीके लिये तरसे, इस अन्यायपूर्ण विभागके लिये पशुबलकी तो आवश्यकता रहेगी। इसी तरह उन कल-कारखानोंकी पशुबलसे रक्षा करनी पड़ेगी जिनमें लाखो मजूर अपने स्वास्थ्यकी आहुति दे चुके। इसी तरह उस लाखो मन अन्नकी रक्षा भी पशुबलसे करनी पड़ेगी जो किसानोंके मुखसे छीना जाकर एक आदमीके पास इसलिये जमा है कि अकाल पड़नेपर वह चौगुने दामोंमें बेचा जाये। सरकार या किसी धनी आदमोको छोड़कर एक भी ऐसा आदमी गांवमे न मिलेगा जो अपने पड़ोसीको उस अन्नसे वञ्चित करे जो उसने अपनी मिहनतसे पैदा किया है। उसकी वह गाय भी न छीनेगा जो उसने स्वयं परिश्रम कर

पाली है। कोई किसान किसी दूसरे किसानका हल, बैल या खेतीका अन्य दूसरा साधन कभी न छीनेगा।

यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरेकी चीज ले भी ले, तो उसके प्रति सब लोग इतनी घृणा प्रकट करेंगे कि उसे चीज जिसकी है उसे लौटा देनी होगी। एक आदमी दूसरे आदमीकी चीजपर यदि अधिकार कर सकता है, तो उसी समय जब कि पशुबलके कारण जायदादकी रक्षा होनी सम्भव हो। आम तौरसे यह बात कही जाती है कि भू-सम्पत्तिका अधिकार यदि उठा दिया जाये और मिहनतके फलकी रक्षा न की जाये, तो कोई आदमी काम न करेगा। किसीको इस बातका विश्वास न होगा कि हमने जो तैयार किया है, वह हमारे पास ही रह सकेगा। इस कथनके विपरीत बात है। अन्यायसे पायी हुई जायदादकी रक्षा जबसे पशुबलके कारण होनी सम्भव हो गयी है, तबसे लोग यह बात भूल गये हैं कि अपनी चीजको काममें लाना मनुष्यका स्वाभाविक अधिकार है जो अधिकार मनुष्योंके बीच सदासे कायम रहा है।

कोई कारण नहीं कि लोग सङ्गठित पशुबल यानी सरकारोंके बिना अपने जीवनकी सुव्यवस्था न कर सकें।

घोड़े और बैलोंको समझदार मनुष्योंके पशुबलके नीचे रहना पड़ता है, परन्तु मनुष्य मनुष्योंके पशुबलसे क्यों शासित हों, जो उनके ही समान हैं। कुछ आदमी किसी समय शक्ति पा गये हैं तो उन आदमियोंके अधीन दूसरे आदमी क्यों रहें। इस बातका

क्या सबूत है कि जो दूसरोंपर पशुबल दिखाना चाहते हैं, वे अधिक बुद्धिमान् हैं ·

जो मनुष्योंपर पशुबलका प्रयोग करना चाहते हैं, वे अधिक तो क्या-- बहुत कम बुद्धिमान् हैं। शासन करनेके लिये जो लोग पैतृक अधिकार रखते हैं या चुनावमें आ जाते हैं, वे सबसे बुद्धिमान् हैं यह बात नहीं। बहुधा यह बात देखनेमें आती है कि जो अन्तःकरणकी कम परवा करनेवाले और नैतिक बल-शून्य हैं, वही शक्ति पा जाते हैं।

लोग प्रश्न करते हैं कि मनुष्य सरकारों यानी सङ्गठित पशुबलके बिना किस तरह रह सकते हैं। इसके विपरीत यह प्रश्न किया जाना चाहिये कि लोग समझदार होकर भी सामाजिक बन्धनका कारण पशुबल क्यों माने बैठे हैं और परस्परकी सहायताका सिद्धान्त क्यों नहीं स्वीकार करते।

मनुष्य यदि समझदार नहीं, तो उन्हें एक दूसरेके बन्धनमें रहनेके लिये पशुबलकी आवश्यकता पड़ेगी। कोई कारण नहीं कि कुछ लोग उसे काममें लायें और कुछ नहीं। उस दशामें सरकारोंका अस्तित्व ठीक नहीं। यदि वे समझदार हैं, तो उनका पारस्परिक सम्बन्ध पशुबलके आधारपर न होना चाहिये। इस दशामें भी सरकारी अस्तित्वका समर्थन नहीं होता।

(१३)

सरकारोंका नाश कैसे हो।

कानून गुलामी पैदा करते हैं और सरकारें कानून बनाती

हैं। इसलिये सरकारोंके नाशसे ही गुलामी मिट सकती है। सरकारोंका नाश किस तरह किया जाये ?

अबतक मारकाटसे सरकारोको नष्ट करनेकी जो चेष्टा हुई है, उसका यही परिणाम हुआ है कि एककी जगहपर दूसरी सरकार स्थापित हो गयी है। नयी सरकार पुरानीसे भी अधिक दयाशून्य निकली।

सरकारोंको मिटानेके लिये पहले जमानेमें मारकाटसे काम लिया गया। साम्यवादी कल-कारखानो और जमीनको मारकाटद्वारा ही सार्वजनिक सम्पत्ति बनाना चाहते हैं और समझते हैं कि मारकाट ही नयी व्यवस्थाकी रक्षा कर सकेगी। पुराने जमानेमें मारकाटसे पशुबल दूर करनेकी चेष्टा लोगोंको उससे मुक्त न कर सकी और न भविष्यमें ही वह ऐसा कर सकेगी। इसलिये मारकाटसे गुलामीका भी अन्त नहीं हो सकता। ऐसा अनुमान स्वाभाविक भी है।

जब किसीसे उसकी इच्छाके विपरीत काम कराया जाता है तो मारकाटकी धमकी दी जाती है। अपनी इच्छाके विपरीत दूसरेकी इच्छा पूर्ण करना गुलामी है। जबतक किसीको किसीकी इच्छाके विपरीत काम करनेके लिये बाध्य किया जाता है, तबतक मारकाटसे काम लेना पड़ता है। इसलिये मारकाटके साथ गुलामी रहनी स्वाभाविक है।

मारकाटसे गुलामी नष्ट करनेकी चेष्टा आगसे आग बुझाने,

नालीसे पानी रोकने या एक नया छेद बनाकर दूसरा छेद बन्द करनेके समान है।

गुलामीसे बचनेका यदि कोई मार्ग है, तो मारकाटसे काम न लेकर उन कारणोंको दूर करना चाहिये जो सरकारी मारकाटको सम्भव बनाते हुए हैं। सरकारी मारकाट सदासे इसी कारण जारी रही है कि कुछ थोड़ेसे आदमी सशस्त्र रहते हैं जब कि अधिकांश मनुष्य अस्त्रहीन रहते हैं या थोड़ेसे आदमी अच्छी तरह अस्त्रसज्जित रहते हैं और अधिकांश मनुष्य उतनी अच्छी तरह हथियारबन्द नहीं होते।

जितनी विजय प्राप्त हुई है, सब इसी कारण हुई और हो रही है। इसी तरह शान्तिकालमें सभी सरकारें अपनी प्रजाको काबूमें रखती हैं। कुछ लोग इसीसे दूसरोंपर शासन किया करते हैं कि वे दूसरोंकी अपेक्षा अधिक अस्त्रशस्त्र सम्पन्न रहते हैं।

पुराने जमानेमें जो हथियारबन्द अस्त्रहीन मनुष्योंपर आक्रमण किया करते थे, वे लूटमें जो कुछ पाते थे, आपसमें अपनी वीरताके अनुसार बांट लिया करते थे। आजकल जो श्रमजीवी हथियारबन्द हाकर निरस्त्र जनतापर आक्रमणकर उसे लूटते या अधिकारमें करते है, वह अपने लिये नहीं, बल्कि उन लोगोंके लिये जो स्वयं युद्धमें भाग नहीं लेते।

पुराने जमानेके आक्रमणकारियों और आजकलकी सरकारोंके बीच यह भेद है कि आक्रमणकारी अपने सैनिकोंके साथ

निरस्त्र लोगोंपर चढ़ाई किया करते थे और स्वयं अस्त्र-प्रयोगकर लोगोंको मारते और वशमें करते थे। आजकल सरकारें स्वयं यह काम नहीं करतीं, परन्तु दूसरोंसे कराती हैं जो स्वयं जनताके ही आदमी होते हैं और मारकाटकी शिक्षा पाकर अमानुषिक अत्याचार करनेवाले बनाये जाते हैं। पहले जमानेमें वीरता दिखाकर मारकाट की जाती थी, आजकल धोखे से की जाती है।

पहले जमानेमें मारकाटसे मारकाट बन्द की जा सकती थी, क्योंकि वीरता दिखायी जाती थी। आजकल धोखेबाजीसे मारकाट की जाती है इसलिये उसे रोकनेके लिये मारकाटकी जरूरत नहीं, क्योंकि जो लोग मारकाट कराते हैं, वे स्वयं तो मैदानमें आते नहीं। उस धोखेको खोलनेकी जरूरत है जिसके कारण लोग दूसरोंके कहनेपर अपने ही भाइयोंको मारनेके लिये तैयार होते हैं। उस धोखेबाजीको खोलना है जिसके कारण कुछ थोड़ेसे आदमी ज्यादा आदमियोंपर दबाव कायम किये हैं।

जो थोड़ेसे आदमी अधिकांश आदमियोंपर अधिकार रखते हैं, वे अपने पूर्वजोंसे शक्ति पाते हैं और फिर अधिकांश मनुष्योंसे कहते हैं कि तुम लोग संख्यामें अधिक हो; परन्तु तुम सब मूर्ख और अशिक्षित हो, अपना शासन आप नहीं कर सकते और न अपने सार्वजनिक कामोंको ही सम्भाल सकते हो। इसलिये इन सब जिम्मेदारियोंको हम अपने ऊपर लिये लेते हैं। हम तुम्हारी रक्षा बाहरी शत्रुओंसे करेंगे और भीतरी शान्ति भी भङ्ग

न होने देंगे। हम तुम्हारे लिये न्यायालय, शिक्षालय खोलेंगे रेल, तार और सड़कोंकी व्यवस्था करेंगे। यानी तुम्हा हितकी ओर ध्यान देंगे। इन सब सेवाओंके लिये तुम्हें थोड़ी सी मांग पूरी करनी होगी। अपनी आयका कुछ भाग हमा अधिकारमें दे देना होगा और तुम स्वयं अपनी रक्षा और सर कारकी रक्षाके लिये सेनामें भर्ती होगे।

बहुतसे आदमी सरकारोंके भुलावेमें आकर उनकी शर्तें स्वीकार कर लेते हैं। इसलिये नहीं कि उन्होंने शर्तोंके भले बुरे परिणामपर अच्छी तरह विचार कर लिया है। उन्हें इस विचार का तो अवसर ही नहीं मिला। वे केवल इसीलिये शर्तें स्वीकार कर लेते हैं कि बचपनसे उन्होंने इन शर्तोंमें रहना सीख लिया है।

यदि किसीको इन शर्तोंको स्वीकार करनेमें सन्देह होता है तो वह अपने सम्बन्धमें विचार करता है और शर्तें न माननेपर जो दण्ड भोगना होगा उसका अनुमानकर शर्तें मान लेता है। हरएक आदमी चाहता है कि सम्भव हो तो इन शर्तोंसे व्यक्तिगत लाभ उठाया जाये। हरएक आदमी यह समझकर अपनी आमदनीका कुछ भाग करके रूपमें चुकाने लगता है और सैनिक सेवा स्वीकार कर लेता है कि इससे हमारी विशेष हानि नहीं।

ज्योंही सरकारें धन और सैनिक पा जाती हैं, वे बाहरी शत्रुओं और भीतरी अशान्तिसे जनताकी रक्षा करनेकी अपेक्षा पड़ोसी राष्ट्रोंको लड़नेके लिये उकसाया करती हैं और लड़ाइयां

छेड़ती हैं। वे जनताका हितसाधन तो करती नहीं, परन्तु जनताकी हानि करती हैं।

पुरानी कहानियोंमें एक कहानी मिलती है जिसमें बताया गया है कि एक यात्री किसी निर्जन टापूमें जा पहुंचा था। उसे जलके किनारे एक छोटासा आदमी बैठा मिला जिसकी टांगे सिकुड़ी हुई थी। बूढ़े आदमीने उस यात्रीसे प्रार्थना की कि मुझे अपने कन्धेपर रखकर नदी पार करा दो। ज्योंही यात्रीने उसे अपने कन्धोंपर बैठाया, उसने अपनी टांगें निकालकर उसकी गर्दनकी दोनों ओर डाल दीं और फिर उतरनेके लिये तैयार न हुआ। यात्रीको अपने अधिकारमे पाकर बूढ़ा आदमी उसे जिधर चाहता, ले जाता और स्वयं पेड़ोंसे फल तोड़कर खाता। बेचारे यात्रीको फलकी जगह गालियां देता।

जो लोग सरकारोंको धन और सिपाही देते हैं उनकी दशा उस यात्रीके ही समान होती है। रुपया पाकर सरकारे तोपें तैयार कराती हैं, सैनिक अधिपति किरायेपर रखकर उन्हें अमानुषिक काम करनेके लिये आज्ञा देती हैं और यही सैनिक अधिपति प्रबन्धका ढोंग रचकर सेनामें भर्ती होनेवालेको सैनिक बनाते हैं। प्रबन्धका यह अर्थ है कि जो लोग सेनाओंमें रहते हैं वे मनुष्यताके सभी गुणोंसे धीरे धीरे वञ्चित हो जायें। वे अपनी स्वतन्त्रता भी खो बैठते हैं। वे अपने मालिकोंके हाथमें लोगोंको मार डालनेकी मेशीने बन जाते हैं। इन्ही सेनाओमे सब धोखेबाज़ीका सार भरा हुआ है जिसे काममें

लाकर सरकारें अधिकांश जनताको वशमें किये रहती हैं। जब सरकारोंके पास मानवघातका ऐसा उत्तम साधन रहता है, तब समस्त जनताको अपने अधिकारमें समझती हैं। वे फिर जनताको अपने अधिकारसे नहीं मुक्त होने देतीं और उसपर तरह तरहके अत्याचार करने लग जाती हैं। वे किरायेके आदमी नियुक्तकर जनताको इस प्रकारकी धार्मिक और देशभक्तिपूर्ण शिक्षा देती हैं कि वह उन्हें पूज्य मानने लगती है और उनपर भक्ति दिखाना कर्तव्य समझती है। जनता उनपर भक्ति दिखाती है जो उसपर अत्याचार करनेवाले हैं और उसे गुलामीमें जकड़नेवाले हैं।

सभी राजा, बादशाह, राष्ट्रपति प्रबन्धके बड़े भक्त होते हैं और समय समयपर सेनाओंकी कवायद आदि देखा करते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि इस धूमसे प्रबन्धकी रक्षा होती है और प्रबन्धपर ही तो उनका अस्तित्व निर्भर करता है। इसीलिये वे प्रबन्धके बड़े भक्त होते हैं। नियन्त्रित सेनाओंकी सहायतासे वे स्वयं हाथ न उठाकर भीषणसे भीषण अत्याचार कर सकते हैं। इन अत्याचारोंकी सम्भावना ही लोगोंको सदा भयभीत बनाये रहती है।

इसलिये सरकारोंको नष्ट करनेका उपाय मारकाट नहीं बल्कि सब धोखेबाजीकी पोल खोल देना है। लोगोंको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि एककी दूसरेसे रक्षा करनेके लिये सरकारोंकी आवश्यकता नहीं है और भिन्न भिन्न देशोंमें लड़

करानेवाली सरकारें ही हैं। सेनाएं इसी लिये रखी जाती हैं कि कुछ थोड़ेसे आदमी ज्यादा आदमियोंपर शासन कर सकें। सेनाएं लोगोंके लिये अनावश्यक ही नहीं, बल्कि उनका सबसे अधिक अहित करनेवाली हैं। वे ही तो गुलामी बढ़ानेवाली हैं। सरकारें जिस नियम-पावन्दीपर इतना जोर दिया करती हैं वही मनुष्यके लिये सबसे बड़ा अपराध है। सरकारोंके बुरे उद्देश्योंका यही प्रत्यक्ष प्रमाण है। नियम और कानूनोंकी पावन्दीसे मनुष्यकी स्वतन्त्रता छिन जाती है और मनुष्य उन कामोंको करनेके लिये तैयार हो जाता है जो साधारण अवस्थामें वह कभी करनेको तैयार न होता।

आत्मरक्षा और राष्ट्रीयताके लिये जो लड़ाइयां लड़ी जाती हैं उनके लिये भी किसी प्रकारके नियन्त्रणकी आवश्यकता नहीं। दक्षिण अफ्रीकाके वोर यह वात स्पष्ट रूपसे बता चुके हैं। प्रबन्धकी आवश्यकता भयानकसे भयानक अपराध करनेके लिये होती है। जिस तरह कहानीमें बुड्ढे आदमीने यात्रीके साथ वर्ताव किया था, उसी तरह सरकारें भी आचरण किया करती हैं। बुड्ढेने यात्रीकी हंसी की और उसका अपमान किया, क्योंकि वह जानता था कि जबतक कन्धोंपर सवार हूं, मैं इस आदमीको अपने वशमें किये हूं।

इसी प्रकार धोखा देकर थोड़ेसे अयोग्य आदमी जो अपनेको सरकार बताया करते हैं, अधिकांश मनुष्योंपर अधिकार रखते हैं। वे उन्हें निर्धन ही नहीं बनाते, वल्कि उनकी पीढ़ियों-

की पीढ़िया हानिकारक विचार फैलाकर बरबाद कर देते हैं। स
रकारें और उनके कारण बढ़नेवाली गुलामीका नाश हो, इस
लिये जरूरी है कि सरकारोंद्वारा काममें लानेवाली धोखाध
हटायी जाये।

एक जर्मन पत्र-सम्पादकने अपने पत्रमे लिखा था कि स
कारें कहा करती हैं कि जनताको सुरक्षित बनाये रखनेके लि
हमारा अस्तित्व है, परन्तु वे उस डाकूका अनुकरण कर रही
जो राहगीरोंसे नियमित कर वसूल किया करता था जिससे
राहमे सुरक्षित रह सके। पत्र-सम्पादकपर उस लेखके कारण
मामला चला था, परन्तु जूररोंद्वारा वह छोड़ दिया गया।

हम लोग सरकारोंके मोहमे इतने ज्यादा पड गये हैं कि
ऊपरकी तुलना हमे या तो अतिशयोक्ति या हास्यजनक बात
मालूम होती है, परन्तु दोनोमेसे वह एक भी नहीं और बिल्कुल
ठीक है। तुलनामे इतनी भूल अवश्य है कि डाकूकी अपेक्षा
सरकारोंके काम विशेष अमानुषिक और हानिकारक हैं
डाकू केवल अमीर आदमियोंको ही लूटा करता था, परन्तु सर
कारें गरीब आदमियोंको ही लूटती हैं। जो अमीर आदमी उनके
अत्याचारोंमें हाथ बटानेवाले हैं, उनकी वे रक्षा किया करती हैं
डाकू अपना काम अपनी जान खतरेमे डालकर करता था, परन्
सरकारोंको ऐसा नही करना पड़ता। वे झूठ और धोखेबाज
काममें लाकर अपना काम निकाला करती हैं।

डाकूने किसीको वाध्य नही किया कि वह उसके दल

शामिल हो, परन्तु सरकारें जबर्दस्ती सैनिक भर्ती किया करती हैं। डाकूको जो कोई कर चुका देता था उसकी खतरेसे समान रूपसे रक्षा हुआ करती थी, परन्तु राष्ट्र-शासनमें जो व्यक्ति धोखेबाजीमें अधिक भाग लेता है उसकी विशेष रक्षा ही नहीं होती, बल्कि उसे पुरस्कार भी दिया जाता है। सबसे अधिक रक्षा राजा, बादशाहो और राष्ट्रपतियोंकी होती है और जनताके पाससे जो रुपया वसूल किया जाता है उसे ये लोग जितना चाहें खर्च कर सकते हैं। इनके बाद सरकारी धूममें ज्यादा भाग लेनेवाले सेनापति, मन्त्री, गवर्नर, पुलिसके अध्यक्ष हैं जिनकी खास तौरसे रक्षा की जाती है। इसके बाद पुलिसके सिपाही हैं जिनकी बहुत कम रक्षा की जाती है और जिनको वेतन भी बहुत ही कम दिया जाता है। जो सरकारोंको कर नहीं चुकाते, सरकारकी सेवा करनेसे इनकार करते हैं और सरकारके जोर जुल्ममें भाग नहीं लेना चाहते वे उसी तरह मारकाटका सामना करते हैं जिस तरह डाकूके सामने आकर उसे कुछ न देनेवाले मारे जाते हैं। डाकू जानबूझकर लोगोंपर बुरा प्रभाव नहीं डालता, परन्तु सरकारें अपना मतलब गाठनेके लिये बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतक अपना बुरा प्रभाव डाला करती हैं। वे झूठी शिक्षा दिया करती हैं और उसे धार्मिक बताया करती हैं। निर्दयीसे निर्दयी डाकूकी तुलना उन बादशाहोंसे नहीं की जा सकती जिन्होंने जनतापर भीषण अत्याचार किये है। निरंकुश बादशाहोंकी तो बात ही अलग है, परन्तु उदार और न्यायके आधारपर संस्थापित सरकारे अपनी भयानक

कालकोठरियों और फांसी तथा गोलियोंकी बौछारके कारण भीषणतामें निर्दयी डाकूसे बढ़ जाती हैं।

देवमन्दिरोंकी तरह सरकारोंके प्रति सदैव ही पूज्य भाव रखना पड़ता है। जबतक लोग नहीं जानते कि सरकारें क्या हैं, तबतक उनके वैसे भाव रहते भी हैं। जबतक वह सरकारके अधीन होकर जीवन व्यतीत कर रहा है, वह स्वाभिमानके कारण यही कहा करता है कि हम ऐसी संस्थाके अधीन हैं जो बड़ी पवित्र है। जब वह समझने लगता है कि उसका नियन्त्रण करनेवाली संस्था पवित्र नहीं है, बल्कि धोखेकी टट्टी है, जो कुछ अयोग्य मनुष्योंद्वारा खड़ी की गयी है जो अपने स्वार्थके लिये पथप्रदर्शक बने हुए हैं, तब वह इन लोगोंके प्रति घृणा प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। उसका इन लोगोंसे जितना ही अधिक सम्बन्ध होता है उतनी ही अधिक उसकी घृणा होती है।

लोग जब समझ जाते हैं कि सरकारें क्या हैं, तब उनके प्रति घृणा प्रकट हुए बिना नहीं रह सकते।

लोगोंको यह बात अच्छी तरह समझनी चाहिये कि अपनी आमदनीका कुछ हिस्सा देकर या सेनामें नौकरी कर सरकारका उसके अत्याचारोंमें जो हाथ बटाते हैं वह कोई साधारण बात नहीं है जिसकी उपेक्षा कर दी जाये, जैसी कि बहुधा कर दी जाती है। दोनों काम भाग लेनेवालों और उनके अ... ों के लिये हानिकारक ही नहीं, बल्कि उन अनेक अत्याचारों

की तैयारीमें शामिल हैं जो सरकारें हमेशा सेनाएं रखकर करनेको तैयार रहती हैं।

यद्यपि सरकारें बड़ी चेष्टा किया करती हैं कि लोगोंपर उनका जादूके समान असर रहे और लोग निद्रावस्थामें रहकर उनके असली भयानक रूपको न समझ लें, परन्तु उनके प्रति श्रद्धाभक्ति घटती जा रही है। अब समय आ गया है, जब कि लोग यह समझने लग जाये कि सरकारें अनावश्यक ही नहीं, हानिकारक और पापपूर्ण संस्थाएं हैं। उनमें किसी भले आदमीको कभी भाग न लेना चाहिये। उनसे जो भी लाभ प्राप्त होता हो, उसे कभी न स्वीकार करना चाहिये।

ज्यों ही लोगोंको यह बात मान्य हो जायेगी, वे सरकारोंको धन और सिपाही देना बन्द कर देंगे। जब अधिकांश आदमी ऐसा करने लग जायेंगे, तब वह धोखाबाज़ी धूलमें मिल जायेगी जो लोगोंको गुलामीमें जकड़ा करती है।

इसी ढङ्गसे ही लोग गुलामीसे छुटकारा पा सकते हैं।

(१४)

हरएक आदमी क्या करे।

जो लोग अपनी अवस्थासे अभ्यस्त हो रहे हैं और उसे बदलना सम्भव नहीं समझते या बदलना ही नहीं चाहते; वे कहेंगे कि ये सब बातें जीवनमें काम आने योग्य नहीं, सिद्धान्तकी दृष्टिसे भले ही अच्छी हो।

सम्पन्न श्रेणीके लोग कहेंगे कि हम लोग क्या करें, यह बता दो । समाजका सङ्गठन किस ढङ्गसे होना चाहिये ।

जिस समय श्रमजीवियोंकी अवस्था सुधारनेका प्रश्न आता है सम्पन्न श्रेणीके लोग जो अपने जीवनमें परिवर्तन नहीं करना चाहते और दूसरोंकी मिहनतसे लाभ उठाना चाहते हैं, तरह तरह के उपाय पेश करने लग जायेंगे, परन्तु वे एक असली काम न करेंगे जिससे मनुष्योंका कल्याण हो । वे उस बुराईका परित्याग न करेंगे जो कर रहे हैं । वे जो बुराई कर रहे हैं वह स्पष्ट है । वे लोगोंसे उनकी इच्छाके विरुद्ध जबर्दस्ती काम ही नहीं लेते, बल्कि जबर्दस्ती काम लेनेके सिद्धान्तको कायम किये हुए हैं । उनको यह न करना चाहिये ।

श्रमजीवी समझते हैं कि हमारी बुरी अवस्था इस लिये है कि हमारे स्वामी हमें कम मजूरी देते हैं और आप स्वामी बने बैठे हैं। वे लोग यह नहीं समझते, कि बुराईका कारण हम ही हैं और यदि हम चाहें तो उस बुराईसे अलग हो सकते हैं और अलग होकर अपना और अपने भाइयोंका कल्याण कर सकेंगे। वे उन उपायोंसे अपनी अनेक इच्छाएं पूर्ण करना चाहते हैं जिन्होंने उन्हें गुलामीमें डाला है और अपनी नयी आदतोंको पूरा करनेके लिये मानुषिक गौरव तथा स्वतन्त्रताको त्यागकर अपमानजनक और पापपूर्ण कार्य करने लग जाते हैं। वे हानिकारक आवश्यक वस्तुएं तैयार करते हैं और सबसे खराब बात तो यह क सरकारोंका समर्थन करते हैं। उन्हे कर देते और

उनकी सेनाओंमें भर्ती होते हैं। इस तरह अपनी गुलामी बढ़ाते हैं।

अवस्थाके सुधारके लिये सम्पन्न मनुष्यों और श्रमजीवियों-को समझ लेना होगा कि अपने हितकी रक्षा करनेसे ही काम न चलेगा। सेवामें त्यागकी आवश्यकता हुआ करती है। इसलिये जो अपना और अपने भाइयोंका कल्याण चाहते हैं, उन्हे अपने जीवनका ढङ्ग ही न बदलना होगा, बल्कि उन लाभोंसे हाथ धोना पड़ेगा जो वे प्राप्त किये चले आ रहे हैं। उन्हें भीषण युद्धके लिये भी तैयार रहना चाहिये जो सरकारोंके विरुद्ध नहीं, बल्कि स्वयं अपने और अपने परिवारके विरुद्ध छिड़ा दिखाई देगा। सरकारकी शर्तें पूरी न करनेसे जो कष्ट दिये जायेंगे, उन कष्टोंको भोगनेके लिये भी तैयार रहना चाहिये।

हमे क्या करना चाहिये, इस प्रश्नका उत्तर स्पष्ट और सरल है। वह हरएक आदमीके लिये काममें लाने योग्य भी है। यद्यपि यह उत्तर उन लोगोंको सन्तुष्ट न करेगा जो धनवानोंकी तरह यह धारणा बनाये बैठे हैं कि हमें दूसरेको शिक्षा देनी और दूसरेका सुधार करना है। अपने सुधारकी आवश्यकता नहीं। सब कसूर पैसेवालोंका ही है। वे जिन चीजोंको काममें ला रहे हैं उनसे छीन ली जायें। इस तरहकी व्यवस्था की जाये कि इस समय केवल धनी ही जिन चीजोंको काममे ला रहे हैं, वे सबके काम आने लगें। उत्तर स्पष्ट इसलिये है, कि वह उसका सुधार चाहता है जिसपर हम सबका पूरा अधिकार है और

वह अपनी सत्यात्मा है। जो श्रमजीवी या स्वामी अपना ही भला नहीं चाहता, बल्कि दूसरोंका भी उपकार करना चाहता है उसे उस बुराईमें भाग न लेना चाहिये जो गुलामीकी जड़ है। बुराई न करनी पड़े इसलिये उसे स्वेच्छासे भी नहीं और न अनि-च्छासे किसी भी सरकारी काममें भाग लेना चाहिये। उसे न तो सैनिक बनना चाहिये और न सेनापति, न मन्त्री, न टैक्स एकत्र करनेवाला, न गवाह, न अवैतनिक मजिस्ट्रेट, न जूरर, न गवर्नर और न प्रतिनिधि सभाका सदस्य ही बनना चाहिये। कहनेका अभिप्राय यह है कि मारकाटसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई भी पद स्वीकार न करना चाहिये।

इसके साथ ही अपनी और दूसरेकी भलाई चाहनेवाले व्यक्ति को सरकारका कोई कर स्वेच्छासे न चुकाना चाहिये। न प्रत्यक्ष रूपसे और न अप्रत्यक्ष रूपसे ही चुकाया जाये। जो रुपया करद्वारा एकत्र किया गया है, वह वेतन, पुरस्कार या पेन्शनके रूपमें न स्वीकार करना चाहिये। उसे सरकारी संस्थाओंसे भी लाभ न उठाना चाहिये जो प्रजासे छीने हुए करकी सहायतासे चलायी जाती हैं।

अपनी चीज, जायदाद या सम्पत्तिकी रक्षाके लिये सरकारसे अपील न करनी चाहिये, मामला चलनेपर पैरवी न करनी चाहिये। वही जमीन या धन अपने पास रखना चाहिये जिसके लिये दूसरेका कोई दावा न हो।

लोग कहेंगे कि ऐसा करना तो असम्भव है। सरकारी

किसी कार्यक्रममें भाग न लेनेका यह अर्थ है कि जीना ही नहीं है। जो आदमी सैनिक न बनना चाहेगा उसे जेलकी सजा दी जायेगी। -कर न चुकानेवालेको दण्ड दिया जायेगा और उसकी जायदादसे वह कर वसूल किया जायेगा। जिसके पास जीविका-का कोई दूसरा साधन नहीं है, वह सरकारी नौकरी न कर परिवार समेत भूखों मरेगा। यही दशा उस आदमोकी होगी जो अपनी जानमालकी रक्षाके लिये सरकारी सहायता न लेगा। जिन चीजोंसे कर लिया जाता है उन्हें और सरकारी संस्थाओंको काममें न लाना तो असम्भव ही है। प्रायः सभी आवश्यक वस्तुओं-पर कर लगा रहता है। रेल, तार, सडकसे काम न लेना असम्भव ही है।

यह बात बिलकुल ठीक है कि आजकलके मनुष्य सरकारके किसी भी काममें भाग न लें यह कठिन बात है। चूंकि हरएक आदमी सरकारी काममें किस हदतक भाग लेना बन्द नहीं कर सकता इसका यह अर्थ नहीं कि उससे धीरे धीरे ज्यादा अलग होना सम्भव नहीं। यदि जबर्दस्ती सेनामें भर्ती होनेसे हरएक आदमी इनकार करनेका साहस नहीं करता (यद्यपि ऐसे भी कुछ आदमी हैं और होते रहेंगे) तो भी हरएक आदमी यह तो कर सकता है कि स्वेच्छासे सेना या पुलिसमें भर्ती न हो। सरकारके न्याय या मालगुजारी विभागमें नौकरी न करे। सरकारी नौकरीसे कुछ कम वेतनवाली किसी व्यक्तिकी नौकरी कर ले। हरएक आदमी भू-सम्पत्ति त्यागनेका साहस न करे

(यद्यपि ऐसा करनेवाले भी आदमी हैं) परन्तु भू-सम्पत्तिकी बुराइका समझकर हरएक उसे कम कर सकता है। हरएक आदमी धन या पशुबलसे रक्षाकी चाह करनेवाले पदार्थोंका परित्याग नहीं कर सकता (कुछ ऐसे भी आदमी हैं जो करते हैं) परन्तु हरएक आदमी अपनी आवश्यकताएं कमकर उन चीजोंको कम कर सकता है, जो दूसरोंकी ईर्षा बढ़ानेवाली हैं। हरएक सरकारी कर्मचारी सरकारी वेतन नहीं छोड़ सकता (यद्यपि कुछ आदमी हैं जो सरकारकी घृणित नौकरीसे भूखे रहना अच्छा समझते हैं) परन्तु हरएक आदमी इसलिये कि मारकाटके कामोंसे कम सम्बन्ध रहे, बड़ीकी जगह छोटी तन खाहपर काम करना पसन्द कर सकता है। हरएक आदमी सरकारी शिक्षालयोंका बहिष्कार नहीं कर सकता (यद्यपि बहुतसे करते हैं) परन्तु हरएक आदमी उनकी जगहपर अर्द्ध-सरकारी शिक्षालयोंको तो काममें ला सकता है। जिन चीजोंपर टेक्स लगता है उनका प्रयोग कम कर सकता है और सरकारी संस्थाओं—रेल, तार, डाकका प्रयोग भी कम कर सकता है।

पशुबलपर जो वर्तमान जीवन अवलम्बित है तथा पारस्परिक सहायताके सिद्धान्तपर अवलम्बित व्यवस्थाके बीच बहुतसी सीढ़ियां हैं जिनसे होकर आदर्शको प्राप्त करना पड़ेगा। आदर्शकी ओर उतनी ही अधिक अग्रगति होती है जितना कि मनुष्य मारकाटसे अपना सम्बन्ध कम करता है। उससे कम लाभ है और उसके लिये अभ्यस्त भी नहीं बनता।

हम यह नहीं जानते और न बतानेका साहस करते हैं, कि किस तरीकेसे धीरे धीरे सरकारोंकी शक्ति घट जायेगी और लोग गुलामीसे मुक्त हो जायेंगे। इस मुक्तिके साथ मनुष्यका जीवन कैसा वनता जायेगा यह भी हम नहीं वता सकते, परन्तु यह हम वता सकते हैं कि उन लोगोंकी अवस्था जीवनके पवित्र सिद्धान्त और अन्तःकरणके अनुकूल होगी जो सरकारी पशुवलका ज्ञान प्राप्तकर उससे लाभ उठाना नहीं चाहते या उसमें भाग नही लेना चाहते। उनका जीवन वर्तमान जीवनसे अच्छा होगा जिसमें लोग स्वयं सरकारी मारकाटमें भाग लेते हैं और बहाना यह करते हैं कि सरकारोंके विरुद्ध लड़ाई छेड़े हुए है। नयी मारकाटसे पुरानी मारकाट दूर करना चाहते हैं।

प्रधान बात तो यह है कि वर्तमान जीवन-व्यवस्था बुरी है। इस सम्वन्धमें सभी सहमत हैं। बुरी व्यवस्था और गुलामीका कारण सरकारोंका पशुवल है। सरकारी मारकाट दूर करनेका यही मार्ग है कि उसमें भाग न लिया जाये। यह प्रश्न करना ही व्यर्थ है कि सरकारी मारकाटमें भाग न लेना कठिन है या नहीं या इस प्रकार भाग न लेनेसे क्या शीघ्र ही परिणाम दिखाई देगा इत्यादि, क्योंकि लोगोंको गुलामीसे मुक्त करानेका एक ही मार्ग है दूसरा नहीं।

पशुवलकी जगहपर पारस्परिक सहायताका सिद्धान्त कितना और कब काममें आयेगा यह बात जनताकी जागृतिपर निर्भर है। साथ ही उस जनसंख्यापर निर्भर है, जो इस जागृतिको

अपना अङ्ग बनावेगी। हम सब अलग अलग व्यक्ति हैं और इस हैसियतसे मनुष्यताके उद्धारमें उतने ही सहायक हो सकते हैं जितनी हमसे उद्देश्यपूर्ति हो सके। हम उन्नतिके शत्रु भी बन सकते हैं। जिसकी जो इच्छा हो, बने। या तो ईश्वरीय नियमका विरोध करें और बालूपर अपने शरीरसे जीवनका कच्चा मकान तैयार करें या ईश्वरीय इच्छाके अनुसार सच्चे जीवनके चिरजीवी और अनन्त आन्दोलनमें सम्मिलित हो जायें।

लेकिन शायद मैं भूल कर रहा हूं। मानुषिक इतिहास से इस प्रकारके परिणामपर पहुंचना ठीक नहीं और मनुष्य जाति गुलामीसे छुटकारा पानेकी तरफ नहीं बढ़ रही है। शायद यह भी सिद्ध हो सकता है कि मारकाट उन्नतिके लिये आवश्यक साधन है और मारकाट करनेवाली सरकारें जीवनका आवश्यक अङ्ग हैं। यदि सरकारें नष्ट कर दी जायगी, तो लोगोंके लिये बड़ी खराबी होगी। यदि जानमालकी रक्षा ही न होगी तो बड़ा अनर्थ होगा।

हम ये सब बातें थोड़ी देरके लिये मान लेते हैं और हम जिस परिणामपर पहुंचे हैं उसे भ्रमपूर्ण बताते हैं, परन्तु मनुष्यताके सम्बन्धमें विचार करनेके सिवा प्रत्येक व्यक्तिको अपने जीवनके प्रश्नका भी तो सामना करना है। जीवन-सम्बन्धी व्यापक सिद्धान्तोंकी बात तो अलग रही, कोई मनुष्य ऐसा काम नहीं कर सकता जो हानिकारक होनेके साथ ही साथ

भी है।

हमारे जमानेका प्रत्येक सच्चा और ईमानदार आदमी जवाब देगा कि इतिहाससे यह बात सिद्ध की जा सकती है कि व्यक्तियों-की उन्नतिके लिये सरकारकी आवश्यकता है और सरकारका पशुबल समाजके हितके लिये है। यह बात ऐतिहासिक होनेके साथ ही साथ उचित भी है, परन्तु हत्या करना बुरा काम है यह बात मुझे अच्छी तरह मालूम है चाहे मेरी तर्कशक्ति कुछ भी न हो। मुझसे जो सेनामें भर्ती होने और सैनिकोंके खर्चके लिये टेक्स देनेको कहा जाता है उसका यह अर्थ है कि मैं हत्यामें भाग लेनेवाला बनाया जाता हूं, जिसे मैं कभी नहीं करना चाहता। भूखे आदमियोंसे धमकी देकर तुमने जो रुपया एकत्र किया है उसे भी मैं नहीं चाहता। मैं उस जमीन और धनको भी नहीं पसन्द करता जिसकी तुम्हारे द्वारा रक्षा होती है, क्योंकि मैं जानता हूं कि उसकी रक्षा हत्याके आधारपर ही है।

सरकारों और उनके पशुबलके समर्थनमें जितनी दलील पेश की जाती हैं उन सबका जवाब इस प्रकार होना चाहिये:—

कि मैं इन सब बातोंको कर सकता था जबतक मैंने उनके पापपूर्ण स्वरूपको न समझा था। जब मैं समझ चुका हूं तब उनमें भाग नहीं ले सकता।

मैं जानता हूं कि हम सब पशुबलसे इतने बंधे हुए हैं कि उससे छुटकारा नहीं पा सकते, परन्तु जहांतक मुझसे होगा मैं उसमें भाग न लूंगा। मैं पापमें भाग लेनेवाला न बनूंगा। पशुबलसे प्राप्त होनेवाली और रक्षा की जानेवाली चीजोंका प्रयोग न करूंगा।

मैं अपने छोटेसे जीवनमें अपने अन्तःकरणके विरुद्ध क्यों आचरण करूं। मैं पापपूर्ण कामोंमें कभी सहायक न बनूंगा।

मेरे इस आचरणका क्या फल होगा यह मैं नहीं जानता। मैं केवल यह विचार करता हूं कि अन्तःकरणके अनुसार काम करनेसे कोई हानि नहीं हो सकती।

आम तौरसे तर्क करनेपर जो परिणाम निकलेगा, उसका समर्थन प्रत्येक व्यक्तिका अन्तःकरण भी करेगा जो सर्वोत्तम और दोषशून्य न्यायकर्ता है।

उपसंहार।

जो कुछ मैंने लिखा है, उसे पढ़कर लोग कहेंगे कि यह तो वही पुरानी बात हुई। एक ओर तो वर्तमान जीवन क्रमको नष्ट करनेकी सलाह कोई नया क्रम सामने न रखकर दी जा रही है और दूसरी ओर निष्क्रियताका आदेश है। मैं जानता हूं कि बहुतसे सच्चे और गम्भीर मनुष्य यह भी सोचेंगे और कहेंगे कि सरकारी काम बुरा है, जमींदारका काम बुरा है, व्यापारीका काम बुरा है, साम्यवादी और क्रान्तिवादीका काम बुरा है यानी जो भी वास्तविक काम हो रहा है वह सब तो बुरा है; परन्तु वह सब अनिश्चित बात अच्छी है जो नैतिक और धार्मिक बतायी जाती है और जिसके कारण पूरी गड़बड़ और अकर्मण्यता उत्पन्न होती है।

मारकाट या पशुबलका अभाव लोगोंको इसलिये बुरा लगता ... वे समझते हैं कि उसके बिना जानमालकी रक्षा न हो

सकेगी। जो आदमी जिस चीजको चाहेगा, दूसरेसे छीन लेगा और उसे दण्ड न मिलेगा। पशुबलके विना सदा अशान्ति बनी रहेगी और सदा एक दूसरेके विरुद्ध लड़ाई छिड़ी रहेगी।

मैं जो कुछ कह चुका हूं उसे न दुहराकर यही कहूंगा कि पशुबलसे जानमालकी रक्षा होनेके कारण अशान्ति घटती नहीं, बढ़ती ही है। यदि मान लिया जाये कि पशुबलके अभावमें अशान्ति ही खड़ी होगी, तब भी वे लोग क्या करें जो सब बुराइयों और कष्टोंकी जड़ इसी पशुबलको मान चुके हैं।

यदि हमे मालूम हो जाये कि शराबखोरीके कारण हम बीमार हैं, तो हमें शराब पीना छोड़ देना चाहिये न कि दवाओंका प्रयोग कर शराबखोरी जारी रखनी चाहिये।

सामाजिक बीमारीके सम्बन्धमें भी यही होना आवश्यक है। यदि हम समझ गये हैं कि मारकाटसे सब कष्ट होते हैं, तो हमे मारकाटका समर्थन किसी भी रूपमें न करना चाहिये। जबतक लोगोंके कष्टोंका प्रधान कारण न मालूम हुआ था तबतक दूसरी बात थी। जब पशुबल कष्टोंका प्रधान कारण मान लिया गया, तब न तो पुरानी मारकाट जारी रखनी चाहिये और न नयीको स्थान देना चाहिये। जिस तरह शराबखोर शराब छोड़कर ही बीमारीसे मुक्त हो सकता है, उसी तरह सामाजिक बुराइयां दूर करनेका एक ही उपाय है—पशुबलकी जड़ मिटा दी जाये। उसका न तो प्रचार किया जाये और न वह न्यायसङ्गत ही ठहराया जाये।

पशुबलके नाशसे सामाजिक बुराइयां दूर होती हैं और स[illegible] ही हमारे जमानेके आदमियोंकी नैतिक जागृति भी इस ढ[illegible] होती है, इसलिये पशुबलका नाश करना चाहिये। जो ब[illegible] लोगोंको गुलामीसे छुड़ानेवाली है, वह व्यक्तियोंकी नैति[illegible] जागृतिके लिये भी आवश्यक है। इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको न [illegible] मारकाटमें भाग लेना चाहिये, न उसका समर्थन करना चाहि[illegible] और न उससे लाभ ही उठाना चाहिये। इससे उसका जीवन[illegible] सम्बन्धी नियम पूरा होता है और साथ ही सबका हित भी होता है।

तीसरा अध्याय।

सरकार।

(१)

सुधारकोंसे अपील।

राजनीतिक और धार्मिक विज्ञान अलग अलग कर दिया गया—यह संसारमें सबसे बड़ी भयानक भूल हुई।

श्रमजीवियोंसे अपील करते हुए मैंने कहा है कि यदि श्रम-जीवी अत्याचारपीड़ित नहीं रहना चाहते, तो उन्हें उस तरह रहना त्याग देना चाहिये जिस तरह कि वे आजकल रह रहे हैं। व्यक्तिगत लाभके लिये उन्हें अपने पड़ोसियोंसे न लड़ना होगा। इस धर्मवाक्यको मानना होगा कि दूसरोंके साथ उसी तरहका वर्ताव किया जाये जैसा वर्ताव कि हम दूसरोंसे चाहते हैं।

मैंने जो ढङ्ग बताया उसके कारण दो विरोधी मतवाले भी एक ही तरहसे दोषारोपण करने लग गये हैं जैसी कि मुझे आशा थी।

यह सब हवाई किले हैं। उस समयतक कैसे राह देखी जा सकती है, जबतक कि लोग अत्याचार और पशुबलसे मुक्त होनेके लिये धर्मपरायण न बन जायें। इसका तो यह अर्थ होगा कि बुराईका अनुभव हो जानेपर भी चुप बैठना पड़ेगा।

मैं बताना चाहता हूं कि मेरा विचार क्रियात्मक है जैसा कि वह बहुतोंको मालूम ही नहीं होता। सामाजिक सुधारके लिये जिन तत्त्वदर्शियोंने अबतक जो उपाय बताये हैं उनसे यह अधिक ध्यान देने योग्य है। मैं यह बात उन लोगोसे कहना चाहता हूं जो सच्चे दिलसे समाजसेवा करना चाहते है—जबानी जमाखर्च करनेकी अपेक्षा कुछ काम करना चाहते हैं। इन्हीं लोगोंसे मैं अब कुछ कहता हूं।

(१)

सामाजिक जीवनके आदर्श बदला करते हैं जिनके लिये व्यक्तियोंकी शक्ति व्यय हुआ करती है। उन आदर्शोंके परिवर्तन के साथ मानुषिक जीवनका क्रम भी बदला करता है। एक समय था जब कि सामाजिक जीवनका आदर्श पशुवत् स्वतन्त्रता थी उसके कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको हड़प जाया करता था यदि वह ऐसा करनेमें समर्थ होता था। इसके बाद वह समय आया जिसमें कि सामाजिक आदर्श एक व्यक्तिकी शक्तिके रूपमे दिखाई दिया। लोगोंने उसकी ईश्वरके समान पूजा की और स्वेच्छापूर्वक बड़े उत्साहके साथ उसके अधीन हुए। इसके बाद लोगोंने ऐसा क्रम आदर्श माना जिसमे शक्ति इसलिये स्वीकार की गयी जिससे लोगोंकी जानें ठीक बनी रहे। कभी राजशासन स्वीकार किया गया, कभी पुरोहितोंका शासन माना गया। इसके बाद प्रतिनिधि-शासन माना गया और इसके बाद त ˆ धूम मची। इस समय सबका यह उद्देश्य है कि

आर्थिक सङ्गठन इस ढङ्गका हो कि कोई किसी चीजपर अपना विशेष अधिकार न रखता हो और सब चीजें राष्ट्रीय सम्पत्ति मानी जायें।

आदर्श भले ही भिन्न हो, परन्तु उनको कार्यमे परिणत करनेके लिये सदा ही पशुबलकी आवश्यकता हुई, जिसने लोगोंसे उनकी इच्छाके विरुद्ध कानूनका पालन कराया। अब भी वही पशुबल स्वीकार किया जा रहा है।

यह विश्वास किया जाता है कि सबके लिये अधिकसे अधिक कल्याण कुछ लोगोंद्वारा प्राप्त किया जा सकता है जिनके हाथमें शक्ति सौंपी गयी हो। वे नागरिकोंकी रक्षा कर सकेंगे और एक दूसरेके अधिकार या सम्पत्तिपर आक्रमण न कर सकेगा। किसीकी जान और आजादी भी न नष्ट होगी। मानुषिक जीवनके लिये जो वर्तमान सरकारी ढङ्ग आवश्यक समझते हैं उन्हींका यह विश्वास नहीं, बल्कि उन साम्यवादियों और क्रांतिवादियोंका भी है जो वर्तमान शासन-सङ्गठनके विरोधी हैं। वे भी पशुबलको आवश्यक मानते हैं। वे सामाजिक जीवनके लिये यह जरूरी समझते हैं कि कुछ लोगोंको अधिकार है कि वे दूसरोंको कानून माननेके लिये वाध्य कर सकें।

प्राचीन कालसे यह बात चली आती है और अब भी जारी है। जो लोग पशुबलके कारण कानून माननेके लिये वाध्य हुए, उन्होंने कानूनोंको कभी सर्वोत्तम नहीं माना। ... शक्ति भोगनेवालोंके विरुद्ध विद्रोह किया और उन्हें

नये आदमियोंके हाथमें अधिकार दिया। उनकी रायमें नवीन
क्रम विशेष रक्षा करनेवाला था, परन्तु शक्ति पाने
वाले अधिकारके मदमें पतित हो गये। उन्होंने अपन
शक्ति सार्वजनिक हितमें न लगाकर अपना मतलब हल
करनेमें लगायी। इस तरह नया क्रम पुरानेके समान ह
निकला और बहुधा वह पहलेसे भी अधिक अन्यायपूर्ण निकल
यह तो उस समय हुआ जब कि विद्रोह करनेवाले सफल
प्राप्त कर गये। यदि उन्हें विफलता हुई, तो शासनकर्ताओं
अपनी विजयके मदमें चूर होकर अपनी रक्षाका विशेष प्रब
किया और नागरिकोंकी स्वतन्त्रतापर विशेष आघात हुआ।

पुराने जमानेमें ऐसा ही हुआ और वर्तमान कालमें भी य
बात देखी गयी। १९ वीं शताब्दीका युरोपीय इतिहास इ
सम्बन्धमें विशेष शिक्षाप्रद है। शताब्दीके पूर्व भागमें विद्र
करनेवालोंको सफलता हुई, परन्तु पहले और तीसरे नेपोलि
तथा दसवें चार्ल्सने शक्ति पाकर नागरिकोंकी शक्ति नहीं बढ़ायी
शताब्दीके द्वितीय भागमें यानी १८४८ के बाद जितनी रा
क्रान्तियां हुईं, सब सरकारोंद्वारा दबा दी गयीं। सरका
अपनी रक्षाकी विशेष व्यवस्था की। वैज्ञानिक साधनोंने उन
शक्ति और भी अधिक बढ़ा दी। शताब्दीके अन्तमें उन्होंने अ
शक्ति इतनी बढ़ा ली कि लोगोंको उनके विरुद्ध शिर उठ
असम्भव हो गया। सरकारोंने जनतासे बहुतसा धन ब
सेनाओंको पूर्णरूपसे सुसज्जित किया। उन्होंने इतना

नहीं किया, बलिक आध्यात्मिक साधनोंद्वारा जनताके हृदयपर भी प्रभाव डाला। उन्होंने समाचारपत्रो और शिक्षापर भी अपना प्रभाव कायम कर लिया। ये सब उपाय इतने जबर्दस्त सिद्ध हुए हैं कि १८४८ के बाद युरोपमे लोगोंको जल्दी शिर उठानेका साहस नहीं हुआ।

(२)

हमारे इस जमानेकी अवस्था पुराने जमानेसे भिन्न है। नीरो, चंगेजखां और चार्ल्स यद्यपि बली शासक थे, परन्तु वे अपने सीमान्तके विद्रोहको कभी शान्त न कर सके। अपनी प्रजाके आध्यात्मिक, शिक्षासम्बन्धी और नैतिक तथा धार्मिक विचारोंका वे कभी नियन्त्रण नही कर सके, परन्तु आजकलकी सरकारें इनका अच्छी तरह नियन्त्रण कर रही हैं।

अब सरकारोंने अपना सङ्गठन इस ढङ्गसे किया है कि उनके विरुद्ध विद्रोह करना सम्भव नहीं। उनके हाथमें खुफिया पुलिस, जासूस विभाग, रेल, तार, टेलीफोन, जेलखाने, किले, अपार धन और सेना है। वे समाचार-पत्रोंको रिश्वत देकर लोकमतपर भी अपना अधिकार रखती हैं। सङ्गठन इस ढङ्गसे किया गया है कि अयोग्यसे अयोग्य शासक बड़ीसे बड़ी क्रान्ति दबा सकता है। क्रान्तिवादी विद्रोहकी जो चेष्टा करते हैं उसके कारण सरकारोंकी शक्ति और भी बढ़ जाती है। सरकारोंसे मुक्ति पानेका अब यही उपाय है कि जनताद्वारा बनी हुई सेनाएं सरकारोंकी निर्दयता और अन्यायको देखकर उनका साथ देना

छोड़ दें। सरकारें अपनी शक्तिका साधन सेनाओंको समझकर उनका सङ्गठन इस तरहसे किये हुए हैं कि जनताका आन्दोलन उन्हें सरकारोंके अधिकारसे बाहर नहीं कर सकता। जो सेनामें है उसके कुछ भी व्यक्तिगत विचार हों, प्रबन्धके नाम पर प्रत्येक आज्ञा माननेके लिये बाध्य है। जिस तरह कि आंख के सामने घूसा दिखानेसे पलकें जरूर गिरा करती हैं। नव-युवकोंके हृदयोंमें देशभक्तिका बीज बोकर उन्हें सेनामें भर्ती किया जाता है और भ्रमजनक शिक्षा पानेके कारण वे कोई आज्ञा नहीं टाल सकते। वे सेनामें भर्ती होनेसे इनकार नहीं कर सकते और भर्ती होनेके बाद एक ही सालमें सरकारके कठपुतले बन जाते हैं। सरकारी प्रबन्धके जादूकी यही महिमा है जो शताब्दियोंकी चालाकीसे उपस्थित किया गया है। हजारोंमें एक दो व्यक्ति अपने धार्मिक सिद्धान्तों या अन्तःकरणके आवेशके कारण सैनिक सेवा स्वीकार नहीं करते। सरकारें उनके सिद्धान्तोंको नहीं मानतीं। इस तरह युरोपमें सरकारोंके विरुद्ध विद्रोह होना कठिन है।

यदि विद्रोह खड़ा कर दिया जाये तो वह शीघ्र दबा दिया जायेगा। कुछ दुस्साहसी मारे भी जायेंगे और अन्तमें सरकारोंकी शक्ति बढ़ जायेगी। साम्यवादी और क्रान्तिवादी पेशेदारे आन्दोलक बन गये हैं इसलिये वे अपनी कार्यप्रणालीकी त्रुटिका भले ही अनुभव न करे, परन्तु कोई भी समझदार आदमी इतिहासकी घटनाओंसे लाभ उठाये बिना नहीं रह सकता।

(३)

बहुत पुराने जमानेसे सरकारों और जनताके बीच मुठभेड़ होती चली आ रही है जिसका यही फल हुआ है कि पुरानीकी जगह नयी सरकार क़ायम होती गयी। युरोपमें १६ वीं शताब्दी-के मध्यसे ऐसी अवस्था वैज्ञानिक उन्नतिने उत्पन्न कर दी है कि सरकारोंके विरुद्ध मुठभेड़ हो ही नहीं सकती। सरकारोंकी शक्ति ज्यों ज्यों बढ़ी है त्यों त्यों यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो गयी है कि पशुबलपर स्थापित शक्तिसे कभी लाभ नहीं पहुंच सकता। शक्ति सर्वोत्तम आदमियोंके हाथ न लगकर सबसे खराब आदमियोंको मिली। अच्छे आदमियोंने उसे न पाया, क्योंकि वह तो पशुबलपर निर्भर करती है। यदि अच्छे आदमी पा भी गये, तो उसे क़ायम न रख सके।

शक्ति हानिकारक होनेपर भी उससे उल्टा लाभ चाहना वास्तवमें अग्निको शीतल समझनेके समान है। लोग वर्षोंतक सरकारोंसे लाभ उठानेके फेरमें पड़े रहे, क्योंकि सरकारें बाहरी धूमसे अपने असली रूपको छिपाये रहती हैं। उनसे स्वाभाविक तौरसे भय लगता है और उनका भय बढ़ानेमें कुछ प्राचीन प्रणाली भी मदद देती है। लोग हालहीमें समझ सके हैं कि सरकारें अपना भयानक रूप छिपाये रहती हैं, परन्तु वे वास्तव में पशुबलपर ही अवलम्बित हैं और इस बलके द्वारा लोगोंको जानमालसे वञ्चित करनेकी धमकी दिया करती हैं। जिन लोगोंके पास शक्ति होती है वे कोई भी क्यों न हों, सदा इस

छोड़ दें। सरकारें अपनी शक्तिका साधन सेनाओंको समझकर उनका सङ्गठन इस ढङ्गसे किये हुए हैं कि जनताका आन्दोलन उन्हें सरकारोंके अधिकारसे बाहर नहीं कर सकता। जो सेनामें है उसके कुछ भी व्यक्तिगत विचार हों, प्रबन्धके नाम पर प्रत्येक आज्ञा माननेके लिये बाध्य है। जिस तरह कि आंख के सामने घूंसा दिखानेसे पलकें जरूर गिरा करती हैं। नव युवकोंके हृदयोंमे देशभक्तिका बीज बोकर उन्हें सेनामें भर्ती किया जाता है और भ्रमजनक शिक्षा पानेके कारण वे कोई आज्ञा नहीं टाल सकते। वे सेनामें भर्ती होनेसे इनकार नहीं कर सकते और भर्ती होनेके बाद एक ही सालमें सरकारके कठपुतले बन जाते हैं। सरकारी प्रबन्धके जादूकी यही महिमा है जो शता ब्दियोंकी चालाकीसे उपस्थित किया गया है। हजारोंमें एक दो व्यक्ति अपने धार्मिक सिद्धान्तों या अन्तःकरणके आदेशके कारण सैनिक सेवा स्वीकार नहीं करते। सरकारें उनके सिद्धान्तोंको नहीं मानतीं। इस तरह युरोपमें सरकारोंके विरुद्ध विद्रोह होना कठिन है।

यदि विद्रोह खड़ा कर दिया जाये तो वह शीघ्र दबा दिया जायेगा। कुछ दुस्साहसी मारे भी जायेंगे और अन्तमें सर कारोंकी शक्ति बढ़ जायेगी। साम्यवादी और क्रान्तिवादी पेशे दारे आन्दोलक बन गये हैं इसलिये वे अपनी कार्यप्रणालीकी त्रुटिका भले ही अनुभव न करें, परन्तु कोई भी समझदार आदमी इतिहासकी घटनाओंसे लाभ उठाये विना नहीं रह सकता।

(३)

बहुत पुराने जमानेसे सरकारों और जनताके बीच मुठभेड़ होती चली आ रही है जिसका यही फल हुआ है कि पुरानीकी जगह नयी सरकार कायम होती गयी। युरोपमें १६ वीं शताब्दीके मध्यसे ऐसी अवस्था वैज्ञानिक उन्नतिने उत्पन्न कर दी है कि सरकारोंके विरुद्ध मुठभेड़ हो ही नहीं सकती। सरकारोंकी शक्ति ज्यों ज्यों बढ़ी है त्यों त्यों यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो गयी है कि पशुबलपर स्थापित शक्तिसे कभी लाभ नहीं पहुंच सकता। शक्ति सर्वोत्तम आदमियोंके हाथ न लगकर सबसे खराब आदमियोंको मिली। अच्छे आदमियोंने उसे न पाया, क्योंकि वह तो पशुबलपर निर्भर करती है। यदि अच्छे आदमी पा भी गये, तो उसे कायम न रख सके।

शक्ति हानिकारक होनेपर भी उससे उल्टा लाभ चाहना वास्तवमें अग्निको शीतल समझनेके समान है। लोग वर्षोंतक सरकारोंसे लाभ उठानेके फेरमें पड़े रहे, क्योंकि सरकारें बाहरी धूमसे अपने असली रूपको छिपाये रहती हैं। उनसे स्वाभाविक तौरसे भय लगता है और उनका भय बढ़ानेमें कुछ प्राचीन प्रणाली भी मदद देती है। लोग हालहीमें समझ सके हैं कि सरकारें अपना भयानक रूप छिपाये रहती हैं, परन्तु वे वास्तव में पशुबलपर ही अवलम्बित हैं और इस बलके द्वारा लोगोंको जानमालसे वञ्चित करनेकी धमकी दिया करती हैं। जिन लोगोंके पास शक्ति होती है वे कोई भी क्यों न हों, सदा इस

बातके लिये चिन्तित रहते हैं कि हमारी श्रेयस्कर स्थिति बनी रहे। वे इसीलिये अच्छे नहीं, सबसे खराब आदमी होते हैं और समाजका कल्याण करनेकी अपेक्षा सामाजिक दुर्दशाके सबसे प्रधान कारण होते हैं। पहले जो शक्ति रखते थे वे भक्ति पात्र बना करते थे, अब घृणापात्र बनते हैं। लोग समझ गये हैं कि सरकारोंकी बाहरी तड़क भड़क फांसी लगानेवालेकी बढ़िया चमकीली पोशाकके समान है। वह अन्य कैदियोंकी अपेक्षा बढ़िया कपड़े पहनता है, क्योंकि उसे सबसे भीषण काम करना पड़ता है जो प्राणीको फांसीपर लटकाना है।

शासक यह बात समझ गये हैं कि लोग हमें घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं इसलिये अब वे अपनी शक्ति यह कहकर कायम नहीं रखना चाहते कि शासकोंमें कभी कोई दुर्गुणकी कल्पना ही न करनी चाहिये। वे पशुबलसे दूसरोंको भयभीतकर अपनी शक्तिकी रक्षा करते हैं। पशुबलपर ही अवलम्बन करनेवाले शासक दिनपर दिन जनताका विश्वास खोते जा रहे हैं। विश्वास खोकर वे राष्ट्रीय जीवनका और भी अधिक नियन्त्रण करना जरूरी समझते हैं। यह नियन्त्रण और भी अधिक असन्तोष उत्पन्न करता है।

शासन करनेवाले अधिकाधिक पशुबलका सहारा लेते जा रहे हैं और जनता उनके प्रति दिनपर दिन भक्ति कम करती जा रही है। वह उनकी अधीनी केवल इसीलिये स्वीकार करती है कि और कोई उपाय नहीं।

१६ वीं शताब्दीके मध्यसे सरकारोंकी शक्ति अजेय हुई है और उसी समयसे उसने जनताकी भक्ति भी खोयी है। जनतामें यह धारणा उत्पन्न हो गयी है कि दण्डके भयसे किसी दूसरेकी इच्छाके अनुसार काम करनेका नाम कभी स्वतन्त्रता नहीं है जिसकी दुहाई शक्तिसम्पन्न सरकारें दिया करती हैं। सच्ची स्वतन्त्रता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने निर्णयके अनुसार काम कर सके। वह चाहे तो कर चुकाये और चाहे तो न चुकाये। वह चाहे तो सेनामें भर्ती हो और चाहे तो न भी भर्ती हो। वे पड़ोसी देशोंसे मित्रता चाहें तो मित्रता कर सकें और उनके शत्रु होना चाहें तो शत्रु बन सकें। कुछ आदमी दूसरे आदमियोंपर शासन करें, यह सच्ची स्वतन्त्रताके विपरीत बात है।

अब पहलेकी तरह शासन करनेवाले व्यक्ति ईश्वरीय नहीं माने जाते। कोई आदमी यह भी नहीं मानता कि शासन करनेवालोंकी समाज-हितके लिये आवश्यकता है। सब जानते हैं कि पशुबलकी सहायतासे कुछ थोड़ेसे आदमियोंने अधिक आदमियोंपर शासन स्थापित कर रखा है। शक्ति चाहे किसी निरंकुश सम्राट्के हाथमें हो, किसी कमेटीके अधिकारमें हो या राष्ट्रपतिके हाथमें हो और चाहे जिस स्थानमें हो, वह कुछ थोड़ेसे आदमियोंके हाथमें अधिक आदमियोंको दबानेके लिये ही रहेगी। इस शक्तिके रहते हुए स्वतन्त्रता नहीं दिखाई दे सकती। मनुष्यपर मनुष्यका प्राधान्य दिखाई देगा। इसलिये शक्तिका नाश आवश्यक है।

इस शक्तिका नाश कैसे हो और उसके नष्ट होनेपर समाजकी क्या नयी व्यवस्था हो जिससे लोग असभ्य-कालकी तरह एक दूसरेको हड़प जानेके लिये तैयार न हो। सभी क्रान्तिवादी पहले प्रश्नका एक ही उत्तर देते हैं। वे शक्तिका नाश पशुबलसे नहीं चाहते। वे कहते हैं कि लोग जब उसकी खराबी और अना-वश्यकता समझ जायेंगे, तब उसे नष्ट कर देंगे। दूसरे प्रश्नका उत्तर भिन्न भिन्न रूपसे दिया जाता है।

१८ वीं शताब्दीके अन्त और १६ वीं शताब्दीके आरम्भमें गाडविन नामक अंग्रेजने और प्राउधन नामक फ्रांसीसीने लिखा है कि शक्तिके नाशके लिये जनताकी जागृति काफी है। यदि लोगोंको बता दिया जाये कि सार्वजनिक हित और न्यायपर शक्ति भोगनेवाले ही आघात करते हैं, तो शक्ति कायम न रह सकेगी। शक्तियोंके न रहनेपर नया सामाजिक सङ्गठन उस जागृतिके आधारपर हो जायेगा, जो सार्वजनिक हित और न्याय-की रक्षाके लिये उत्पन्न हुई है। लोग उनकी रक्षाके लिये अपने आप ही बढ़िया जीवनक्रम बना लेंगे।

क्रोपोटकिन आदि अन्य क्रान्तिवादियोंकी राय है कि जब जनता समझ जायेगी कि शक्ति भोगनेवाले उन्नतिमें बाधक हैं तो वह न ठहर सकेगी। शक्तिके नाशके वास्ते वे क्रान्तिके लिये लोगोंको तैयार करनेका अनुरोध करते हैं। सामाजिक सङ्गठनके सम्बन्धमें उनकी राय है कि लोग अपने आप ही ऐसा निर्धारित कर लेंगे जो परस्परमें लाभदायक होगा।

जर्मन क्रान्तिवादी मेक्स स्टर्नर और अमेरिकानिवासी टकर भी यही उत्तर देते हैं। दोनोंका विश्वास है कि यदि लोग समझने लग जायेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति उसी तरह काम करनेके लिये वाध्य है जिससे उसका हित हो और उस हितमे शासन करनेवाले वाधक हैं, तो शक्तिका नाश हो जायेगा। लोग या तो शासन करनेवालोंकी आज्ञा न मानेंगे या शासनमें योगदान न करेंगे। शक्तिका नाश हो जानेपर आत्मकल्याण चाहनेवाले लोग इस ढङ्गसे सङ्गठित हो जायेंगे कि वे हरएकके लिये उचित और लाभदायक व्यवस्था तैयार कर लेंगे।

सब लोगोंका यह मत विल्कुल ठीक है कि सरकारोंका नाश पशुबलसे नहीं हो सकता। पशुवल यदि एक शक्तिको नष्ट कर देगा तो दूसरी शक्ति सामने आ जायेगी। लोग जिस समय शक्तिकी आवश्यकता न समझेंगे और उसे हानिकारक मानने लगेंगे, तो उनकी इस जागृतिसे शक्तिका अवश्य नाश हो जायेगा। लोग उसकी आज्ञा न मानेंगे और न उसमें योगदान करेंगे। यह विल्कुल ठीक वात है कि जनताका आत्मज्ञान ही शक्तिका नाश कर सकता है। जनताकी जागृति किस वातमें समझी जानी चाहिये? क्रान्तिवादी कहते हैं कि सार्वजनिक हित, न्याय, उन्नति या व्यक्तिगत कल्याणकी ओर ध्यान देना ही जागृतिका चिन्ह है। सार्वजनिक हित, न्याय और उन्नति सबकी रायमें भिन्न भिन्न मालूम होंगे। लोग इनके सम्बन्धमें सहमत नहीं हो

सकते। आपसमें एक दूसरेका विरोध करनेवाले मनुष्य जमा हुई शक्ति किस तरह नष्ट कर सकते हैं।

जो लोग सार्वजनिक हितके लिये व्यक्तिगत लाभ न त्याग सकेंगे, वे क्या ऐसी व्यवस्था कर सकेंगे कि स्वतन्त्र रहते हुए न्यायपूर्ण सङ्गठनमें बने रहें? यह बात कभी हो ही नहीं सकती कि सब व्यक्तिगत लाभोंको ध्यानमें रखते हुए आपसमें न्यायपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लेंगे।

क्रान्तिवादी यद्यपि सरकारें नष्ट करनेके साधन आध्यात्मिक बताते हैं, परन्तु उनका जीवन-आदर्श आधिभौतिक ही है। शक्ति भोगनेवाले इस कमजोरीको समझते हैं और उससे लाभ उठाया करते हैं। वे जानते हैं कि क्रान्तिवादी उस सच्चे आध्यात्मिक साधनको काममें नहीं ले सकते जिसने सदा शक्तिका नाश किया है। आध्यात्मिक साधन यही है कि प्रत्येक व्यक्ति इस मानुषिक जीवनको सब-कुछ न समझकर उसे एक पूर्ण जीवनका भाग समझे और अपने ऐहिक जीवनको उस पूर्ण जीवनसे सम्बद्ध करे। अपना हित उसी जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाले कानूनोंको पूरा करनेमें लगाये। मनुष्यद्वारा बनाये हुए कानूनोंकी उनके सामने परवा भी न करे। यह धार्मिक सिद्धान्त सब मनुष्योंको एकताके एक दृढ़ सूत्रमें बांध देगा और किसी मानुषिक शक्तिके वशमें रहनेकी आवश्यकता न समझी जायेगी जिससे वह नष्ट कर दी जायेगी। जीवनका यही आदर्श मनुष्योंको बिना न्यायपूर्ण सङ्गठन तैयार करनेमें मदद देगा।

लोग समझ गये कि सरकारोंकी ताकतपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। पशुवल उस ताकतके सामने ठहर नही सकता। सरकारोंकी ताकत और उससे पैदा होनेवाली बुराइयां केवल इसी लिये सम्भव हैं कि मनुष्यका जीवन-आदर्श बुरा है। ताकत और उसकी बुराइया दूर करनेके लिये मनुष्यको अच्छा जीवन व्यतीत करना होगा। अब लोगोंको समझना होगा कि अच्छा जीवन व्यतीत करनेके लिये ऐसे धार्मिक सिद्धान्तका प्रचार करना होगा और उसे कार्यमे परिणत करना होगा जो अधिकांश मनुष्योंके लिये स्वाभाविक हो और उनकी समझमें आ जाता हो। इस धार्मिक सिद्धान्तके विना और किसी चेष्टासे सरकारें नष्ट न होंगी और उनके नष्ट न होनेपर जीवनका उत्तम सङ्गठन न होगा। लोग जिस उद्देश्यकी ओर बढ रहे हैं वह इस सिद्धान्तके विना प्राप्त होना तो दूर रहा, वह मनुष्योंसे और भी दूर होता जायेगा।

(५)

भले आदमियो! यदि तुम इस अभिमानपूर्ण स्वार्थी जीवनसे असन्तुष्ट होकर अपनी शक्तियां दूसरोंकी सेवामें लगाना चाहते हो, तो मै तुमसे ऊपरकी बात कहता हूं। यदि आप लोग सरकारी कामोंमें भाग लेकर जनताकी सेवा करना चाहते हैं, तो भूल करते हैं। ऐसी कोई सरकार नहीं जो पशुबलपर स्थापित न हो, मारकाट और लूट न करती हो।

अमेरिकाके एक प्रसिद्ध लेखक थारोने एक निवन्ध लिखा

है कि लोगोंको सरकारकी आज्ञा न माननी चाहिये। उन्होंने बताया है कि मैंने अमेरिकन सरकारको एक भी डालर करके रूप मे नहीं दिया। मैंने लिखा कि जो सरकार हवशियोंको गुलाम बनाना ठीक समझती है उसमे मैं कर देकर भाग लेनेवाला नहीं बनना चाहता। क्या उन्नतिशीलसे उन्नतिशील सरकारोंके नागरिक भी यही बात नहीं कह सकते जब कि वे देखते हैं कि उनकी सरकारें अमेरिकन सरकारकी तरह दूसरोंको गुलाम बनाये हुए हैं?

कोई भी सच्चा आदमी जो अपने भाइयोंकी सेवा करना चाहता है, सरकारका स्वरूप पहचानकर उसमे भाग नहीं ले सकता। वह इस सिद्धान्तपर भले ही भाग ले सकता है कि उद्देश्य अच्छा होनेपर कोई भी साधन काममे लाया जा सकता है। अनुभवसे यह बात मालूम हुई है कि ऊपरके सिद्धान्तपर काम करनेसे और सरकारी कामोंमे भाग लेनेसे उन लोगोंको हानि पहुची है जिनकी सेवा करना उद्देश्य माना गया है। काम करनेवालोको भी हानि पहुची है।

बात बड़ी सीधी है। आप सरकारके कानून मानकर, उसकी अधीनी स्वीकारकर जनताके लाभके लिये उससे अधिक स्वतन्त्रता और अधिकार छीनना चाहते हैं। जनताकी स्वाधीनता और अधिकार अधिक होनेसे सरकारें कम लाभ उठा सकेंगी और कमजोर बन जायेंगी। सरकारें यह बात भली जानती हैं। वे शक्ति अपने पास रखकर लोगोंको उदार

सिद्धान्तोंकी धूम मचाने देती हैं और कभी कभी कुछ सुधार भी कर दिया करती हैं जिससे उनकी शक्तिका परिचय दिया जा सके। इसके बाद वे उदार सिद्धान्तोंके दमनके लिये तैयार होती हैं जिन सिद्धान्तोंसे उनके लाभ छिन सकते हैं और उनका अस्तित्व भी नष्ट हो सकता है। इसलिये जो लोग सरकारी संस्थाओं और पार्लमेण्टोंद्वारा जनताकी सेवा करना चाहते हैं, वे सरकारोंको शक्ति बढ़ानेका मौका देते हैं और इस तरह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे सरकारोंमें भाग लेनेवाले बनते हैं।

क्रान्तिवादी और साम्यवादियोंका जीवन-आदर्श अपूर्ण है जिससे मनुष्य कभी सन्तुष्ट नहीं हो सका। साथ ही उस उद्देश्य-प्राप्तिके साधन झूठ, धोखाबाजी, हत्या और पशुबल हैं। ये साधन कभी सफल नहीं हो सकते। सरकारोंकी बढ़ी हुई ताकतका वे मुकाबिला नहीं कर सकते। प्रत्येक विद्रोहात्मक चेष्टा सरकारोंकी ताकत बढ़ानेमें सहायक होती है। यदि असम्भव बात सम्भव मान ली जाये और विद्रोहसे सरकारकी हार मान भी ली जाये, तो पशुबलप्रधान एक ताकत दूर होनेपर दूसरी वैसी ही शक्ति प्राधान्य प्राप्त कर लेगी और जनताको कोई अधिकार प्राप्त न होगा। यदि यह भी मान लिया जाये कि वह जनताको सभी अधिकार दे देगी, तो भी लोग स्वार्थी जीवन व्यतीत करते हुए पहलेसे अच्छा जीवन-क्रम न बना सकेंगे।

लोग आपसमें एक दूसरेपर अत्याचार न करते हुए एक

साथ जीवन व्यतीत कर सकें, इसके लिये उन्हें ऐसे सङ्गठनके भीतर रहनेकी जरूरत नहीं जो पशुबलप्रधान हो। ऐसे सङ्गठनकी आवश्यकता है जो नैतिक बलप्रधान हो यानी जिसमें लोग बाहरी दबावके कारण नहीं, बल्कि स्वेच्छासे दूसरोंके प्रति वैसा बर्ताव करनेको तैयार हों, जिस बर्तावकी वे स्वयं अपने लिये दूसरोंसे इच्छा रखते हों। अपने पड़ोसियोंकी सेवाकी इच्छा रखनेवालोंके लिये जरूरी है कि वे जीवनका नया क्रम तैयार करनेकी ओर ध्यान न दें, बल्कि अपना और दूसरे आदमियोंका चरित्र सुधारें।

बहुतसे लोग समझते हैं कि बाहरी जीवन-क्रम बदल जानेसे लोगोंमें सुचरित्रता उत्पन्न हो जायेगी, परन्तु ऐसा समझना मानो कार्यको कारण बनाना है। जीवनक्रम मनुष्यके चरित्रपर नहीं, मनुष्यका चरित्र जीवनक्रमपर प्रभाव डाल सकता है। चरित्र सुधारकी ओर ध्यान न देकर नये जीवनक्रमकी ओर ध्यान देनेसे यह भी सम्भावना रहती है कि मनुष्यकी चेष्टा ठीक मार्गपर न चले। जीवनक्रम बदलकर चरित्र-सुधारकी आशा रखना चूल्हेकी गीली लकड़ियोंको इधरसे उधर उलट-पलटकर रखने और इस उलट-पलटसे आग जलानेकी चेष्टा करनेके समान है। आग तो सूखी लकड़ीसे ही पैदा होगी, वे चाहे किसी ढङ्गसे ही क्यों न रख दी गयी हों।

इतनी बड़ी भूल होनेका कारण है। चरित्र-सुधारकी चेष्टा करनेके लिये मनुष्यको पहले अपना चरित्र सुधारनेकी जरूरत

पड़ती है जिस सुधारके लिये बड़ा परिश्रम और युद्ध करना पड़ता है। बाहरी जीवनक्रम बदलनेकी चेष्टामें अपना चरित्र सुधारनेकी जरूरत नहीं पड़ती और अपनी आत्मासे युद्ध किये बिना ही योद्धा बननेका मौका मिल जाता है।

जो लोग सच्चे दिलसे अपने पड़ोसियोंकी सेवा करना चाहते हैं उन्हें मुझे इस भूलके सम्बन्धमें सावधान करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

(६)

हम अपनी चारों ओर भूखे और दुःखी आदमी देख रहे हैं, फिर हम किस तरह धार्मिक सिद्धान्तको मानते हुए चुपचाप उसके अनुसार काम करते हुए रह सकते हैं। हम तो लोगोंकी तुरन्त सेवा करना चाहते हैं और इसके लिये हर तरहसे कोशिश करना चाहते हैं और अपनी जानतक दे देना चाहते हैं। बहुतसे आदमी यह बात उत्तेजित होकर कहेंगे।

मैं उन्हें जवाब दूंगा कि आप लोग यह बात कैसे जानते हैं कि हमें अपने भाइयोंकी सेवा उसी ढङ्गसे करनी है जो हमें अच्छा और क्रियात्मक मालूम हो। आप जो कुछ कह रहे हैं उससे स्पष्ट है कि आप निश्चय कर चुके हैं कि हम धार्मिक जीवन व्यतीत कर मनुष्योंकी सेवा नहीं कर सकते। असली सेवा तो राजनीतिक आन्दोलनसे ही की जा सकती है जो प्रसिद्धि प्रदान करनेवाला है।

सब राजनीतिक नेता इसी प्रकार विचार किया करते हैं

और सब एक दूसरेका विरोध करते हैं। इसलिये वे निश्चय ही ठीक तौरसे विचार करनेवाले नहीं माने जा सकते। यह बहुत अच्छी बात होती यदि मनुष्य अपने भाइयोंकी सेवा जिस तरह चाहते कर सकते। परन्तु ऐसी बात नहीं हो सकती। मनुष्योंकी सेवा करने और उनका उपकार करनेका एक ही मार्ग है। यह मार्ग उस सिद्धान्तके अनुसार काम करना है जो आत्मोन्नतिपर जोर देता है। सच्ची आत्मोन्नति यही है कि लोगोंके बीच रहकर, उनसे अलग रहकर नहीं, उनके बीच प्रेमसम्बन्ध स्थापित किया जाये। प्रेमसम्बन्ध स्थापित होनेसे मनुष्योंकी अवस्था सुधरे बिना नहीं रह सकती—यह सुधार मनुष्यको यद्यपि विदित नहीं होता।

यह सच है कि सरकारी, पार्लमेण्ट-सम्बन्धी या क्रान्तिकारी कार्यमे भाग लेता हुआ मनुष्य पहलेसे जान सकता है कि किस फलको प्राप्त करना है और साथ ही विलासी जीवन व्यतीत कर सकता, प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता और लोगोंकी हर्षध्वनि प्राप्त कर सकता है। यदि इस प्रकार काम करनेवालेको कुछ कष्ट भी थोड़े समयके लिये उठाना पड़ता है, तो वह यह समझकर सह लिया जाता है कि आगे सफलता होगी। लड़ाईमें लड़ने वालोंको तो जानका भी खतरा रहता है, परन्तु वे सफलताकी आशासे लड़ा करते हैं यद्यपि सेनामें भर्ती होनेवाले सबसे पतित और स्वार्थी मनुष्य हुआ करते हैं।

धार्मिक कार्यके परिणामका पता नहीं चला करता। यह कार्य

बाहरी सफलताके परित्यागपर जोर देता है। वह मनुष्यको उच्च पद देनेकी अपेक्षा सामाजिक दृष्टिसे बहुत नीचे पदपर कर देता है। धार्मिक कार्य करनेवाला अपमान और घृणाका ही पात्र नहीं बनता, बल्कि भयानक कष्ट और मृत्युका भी सामना करता है।

जिन देशोंमें सैनिक सेवा करनी आवश्यक है, उनमें धार्मिक कार्य करनेवाले सेनामें भर्ती होनेसे इनकारकर सरकारी अत्याचारोंसे पीड़ित होते हैं। धार्मिक कार्य इसलिये बड़ा कठिन है, परन्तु वही सच्ची स्वतन्त्रताका ज्ञान कराता है। वही यह विश्वास दिलाता है कि मनुष्य जो कुछ काम कर रहा है वही उसे करना चाहिये था।

धार्मिक कार्य वास्तवमें फलदायी है। उसके द्वारा सर्वोच्च उद्देश्यकी प्राप्ति सीधे और स्वाभाविक ढङ्गसे हो जाती है, जिस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये सुधारक नकली उपाय काममें लाकर इतना प्रयत्न किया करते हैं।

इस तरह सिद्ध हो जाता है कि जनताकी सच्ची सेवा करनेका एक ही उपाय है। सेवा करनेकी इच्छा रखनेवाले दोषहीन जीवन व्यतीत करें। लोग इस साधनको हवाई पुल समझते हैं, क्योंकि वे उससे लाभ नहीं उठा पाते। लेकिन वह वैसा नहीं, अन्य साधन अवश्य हवाई पुल ही हैं। जनताके नेता इन्हींकी मददसे जनताको जालमें फंसाया करते हैं। उस साधनसे उसे दूर करते रहते हैं, जो वास्तवमें ठीक है।

(७)

जो लोग इस उद्देश्यकी पूर्ति शीघ्र देखना चाहते हैं, वे प्रश्न करेंगे कि यदि ऐसी बात है तो इस साधनसे कब उद्देश्यपूर्ति होगी। यदि कोई शीघ्रता कर सके तब तो बहुत ही अच्छी बात है। यदि कोई जल्दी बगीचा लगा सके तो बहुत अच्छी बात है, परन्तु ऐसा तो हो नहीं सकता। पहले बीज डालना होगा, फिर पत्तियां दिखाई देंगी, इसके बाद छोटी छोटी डालियां फूटेंगी, तब कहीं पूरा पेड़ बनकर बाग तैयार होगा।

यदि कोई चाहे तो थोड़ी देरके लिये डालियां तोड़कर जमीन मे लगा सकता है और बगीचा तैयार दिखाई देने लगेगा, परन्तु क्या वह कुछ दिनकी ही बहार न होगी? यही हालत जल्दीसे सामाजिक सुव्यवस्था स्थापित करनेकी होगी। सरकारोंकी तरह मनुष्य अच्छे सामाजिक सङ्गठनकी नकल तैयारकर दिखा सकते हैं, परन्तु इस नकली सङ्गठनके कारण असलीकी स्थापना की सम्भावना न रहेगी। नकली सङ्गठन लोगोंको धोखा देता है और वह पशुबलके आधारपर ही कायम किया जा सकता है जो पशुबल मनुष्यको पतित बनाता है चाहे वह शासक हो या शासित हो। इस तरह असली उन्नतिकी सम्भावना दूर हो जाती है।

मनुष्यका आदर्श पशुबलशून्य सामाजिक सुव्यवस्था है। वह जल्दी स्थापित हो सकती है या नहीं, यह इसी बातपर निर्भर है कि जो जनताकी सच्चे दिलसे सेवा करना चाहते हैं जल्दी समझ

पाते हैं या नही कि अभी वे जो काम कर रहे हैं वह मनुष्यको उद्देश्यसे बहुत दूर हटानेवाला है, उसकी ओर ले जानेवाला नहीं। पुराना अन्धविश्वास न रखना होगा और न सब धर्मोंको अस्वीकार ही करना होगा। सरकारकी सेवा, क्रान्ति और साम्यवादकी ओर जनताकी शक्ति न ले जानी होगी। जनताकी सेवा करनेवाले जब समझ जायेंगे कि बुराईसे छुटकारा पानेका एक ही उपाय धार्मिक और निस्स्वार्थ जीवन व्यतीत करना है और सामाजिक व्यवस्थाके लिये किसी प्रकारके पशु-बलकी आवश्यकता नहीं, तो जीवनका वर्तमान हानिकारक क्रम अवश्य नष्ट हो जायेगा और उसकी जगहपर मनुष्योंकी जागृतिके अनुकूल नया क्रम दिखाई देने लगेगा।

चौथा अध्याय।

युद्ध और शान्ति।

(१)

ट्रान्सवाल युद्धका कारण राजनीतिक नेताओंका आचरण बताया जाता है; परन्तु मैं उसे मान नहीं सकता।

यदि कोई दो आदमी किसी सराय या होटलमें शराब पीकर ताश खेलें और आपसमें लड़ पड़ें, तो मैं उनकी लड़ाईका कारण यह कभी न कहूंगा कि एकने बेईमानी की। मैं तो उस लड़ाईका कारण ढूंढ़ता हुआ यही राय दूंगा कि यदि दोनों शराब पीकर ताश न खेलते, तो लड़ाई ही क्यों होती। दोनों शान्तिपूर्वक आराम कर सकते थे या कोई काम कर सकते थे।

इसी तरह कोई युद्ध होनेपर जब एक पक्षपर दोषारोपण किया जाता है तो मैं उससे सहमत नहीं हो सकता। यह बात भले कही जा सकती है कि एक पक्ष दूसरेकी अपेक्षा विशेष निर्दयता दिखा रहा है, यह मालूम होनेपर भी यह कोई नहीं कह सकता कि निर्दयतापूर्ण और भीषण युद्ध उस कारण उपस्थित हुआ है।

जिसके आंखें हैं वह देख सकता है कि लड़ाइयोंका असली क्या है। लड़ाईके तीन प्रधान कारण हैं। सम्पत्तिका

असमान विभाग, सैनिक श्रेणीकी नियुक्ति, झूठा धार्मिक उपदेश। इसलिये किसी राजा, बादशाह या और किसीके शिर लड़ाईका दोष रखना ठीक नहीं। उनसे नाराज होना भी उचित नही। वे तो लड़ाईके कारण नहीं, केवल निमित्तमात्र हैं। यदि नाराजी दिखानी है तो प्रत्येकको अपने ऊपर दिखानी चाहिये जो किसी न किसी रूपमें ऊपर बताये हुए तीनो कारणोंमेंसे एक न एक कारणमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे भाग लेनेवाले हैं।

जबतक हम अपने पास अधिक धन रखकर लाभ उठानेकी इच्छा बनाये रहेंगे, तबतक बराबर लड़ाई कराते रहेंगे; क्योंकि बाजारों और सोनेकी खानोंकी जरूरत बनी रहेगी जो हमारे धनको कायम रख सके जब कि लाखों करोड़ों आदमी हमारे धनके लिये पसीना बहाकर परिश्रम कर रहे हैं। सैनिक सङ्गठन कायम रहनेसे भी लड़ाई होगी। हम या तो स्वयं सेनामें भर्ती होते है या उसे आवश्यक बताकर उसकी प्रशंसा किया करते हैं। जब वह लड़ाई छेड़ देती है तब दूसरोंको गालियां सुनाने लग जाते हैं। लड़ाई बराबर जारी रहेगी जबतक हम इस बिगड़े हुए धार्मिक उपदेशको घृणाकी दृष्टिसे न देखेंगे जो धर्मके नामपर बराबर सुनाया जाता है। धर्मोपदेशक युद्धको ईश्वरीय, सेनाको ईश्वरप्रेमी, तोप बन्दूकोंको धर्मसेवामें लगी बता दिया करते हैं। हम इस प्रकारके बिगड़े हुए धर्मको अपने बच्चोंको सीखने देते हैं, स्वयं उसे मानते हैं और फिर लड़ाईके लिये दूसरोंको कारण मानते हैं।

यही सब कारण हैं कि जिनसे मैं लड़ाईके लिये दूसरोंको दोष नहीं देता। यदि ऊपर बताये हुए तीनो कारणोंमेंसे एकमें भी कोई भाग न ले, तो कभी लड़ाई न हो। जो आदमी सत्यका समर्थक है और लड़ाईसे दुःखी है, उसे तीनों कारणोंको दूर करनेके लिये आन्दोलन करना चाहिये।

प्रत्येक देशके शासक अपनी जनताको यह कहकर धोखा दे रहे हैं कि तुम लोगोंपर बाहरवाले आकर आक्रमण कर सकते हैं। हम लोग तुम्हारी जानमालकी रक्षा किये हुए हैं। इस लिये तुम्हें हर साल अपनी कमाईमेंसे कुछ लाख रुपया देना चाहिये जो तुम्हारी रक्षा करनेवालोंके काम आये। इसके साथ ही तुम्हें भी रक्षा करनेवाली सेनाओंमें भर्ती होना चाहिये। सेनाके लिये तुम धन-जन दो और वह हमारे अधिकारमें रहे। जो सेनामें भर्ती हो, वे हमारी इच्छाके अनुसार चलें। हम मारकाटसे लोगोंको भयभीत रखना चाहते हैं इसलिये जो सेनामें भर्ती हो, वे मारकाटके लिये तैयार रहें।

यह बात बिलकुल झूठ है कि बाहरी देशोंसे आक्रमण होनेका भय है। दूसरे देशवाले अपने देशवालोको धोखेमें रखनेके लिये अपने ऊपर आक्रमण होनेका भय दिखाया करते हैं। इन मिथ्यापूर्ण घोषणाओंके सिवा लोग यह भी जानते हैं कि सेनामें भर्ती होकर दूसरोंकी गुलामी करनी होगी और मनुष्योंकी जानें लेनेका भीषण काम भी करना होगा, तब भी वे धोखेमें आ जाते हैं और अपनी ही गुलामी बढ़ानेके लिये सरकारोंको रुपया दे

देते हैं तथा दूसरोको गुलाम बनानेके लिये सेनामे भी भर्ती हो जाते हैं।

सरकारोका पशुबल इतना बढ़ा हुआ है कि जो लोग उनकी सेनाओंमे भाग लेनेसे इनकार करते हैं, उन्हें तरह तरहका दण्ड देती हैं। पुलिसद्वारा लोगोको गिरफतार कराती, उन्हें जेल भेजती, कोड़े लगवातीं और देशनिकालेकी आज्ञा देती हैं।

लोग आदमियोंकी जानें लेनेवालोंको वीर बताते, उनकी प्रशंसा करते हैं इसलिये प्रशंसा और पुरस्कारकी इच्छासे वे और भी अधिक नरहत्या करते हैं। जो लोग लड़ाईमे भाग न लेनेसे कालकोठरियोंमें सड़ते और दण्ड खाते हैं, उन वेचारोंके सम्बन्धमे कोई एक बात भी नही कहता। लोग कह दिया करते हैं कि सेनामे भर्ती होनेसे इनकारकर लोग व्यर्थ ही मरते हैं। उनकी मृत्युसे वर्तमान जीवन-क्रम तो बदलेगा नही। ईसामसीह जिस समय शूलीपर चढ़े, उनके सम्बन्धमें भी तो यही बात कही गयी थी।

हमारे समयके आदमी और खासकर अपनेको बुद्धिमान् बतानेवाले इतने भावहीन बन गये हैं कि वे आध्यात्मिक शक्तिका महत्व ही स्वीकार नही करना चाहते। पचीस सेरका गोला जब जीवित मनुष्योपर गिराया जाता है तब उसे तो वे ताकत मानते हैं, परन्तु सत्यका उन्हे कोई बल ही नहीं दिखाई देता। इसका कारण यह है कि यह बल धूम तो मचाता नहीं और रक्तकी नदियां तथा हड्डियोंका ढेर भी नहीं दिखाई देता। सरकारें

इस बातको समझती हैं कि आध्यात्मिक शक्ति कितनी बड़ी है इसलिये वे उसे देखकर चिन्तित होने लगती हैं। यही कारण है कि जो आदमी अपने अन्तःकरणके विरुद्ध सेनामें भर्ती होनेके लिये तैयार नहीं होता या सेनाकी नौकरी घृणा प्रकटकर छोडना चाहता है, उसे वे कड़ा दण्ड देती हैं।

प्रत्येक सरकार जो पशुबलपर स्थापित है, आध्यात्मिक शक्ति देखकर घबरा जाती है। ईसामसीहने कहा था कि मैंने दुनिया जीत ली। उनका यह कथन वास्तवमें सत्य है यदि लोग उनके दिये हुए अस्त्रकी शक्तिपर विश्वास करने लगें।

यह अस्त्र यही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्तःकरणकी आज्ञा माने। यह बात इतनी सरल है कि हरएक आदमीकी समझमें आ सकती है। न्यायपरायण आदमी सरकारसे कह सकता है कि मुझे हत्यामें भाग लेनेवाला नहीं बनना है और न मैं हत्यारोंके दलके व्ययके लिये एक पाई भी दे सकता हूं। मैं तुम्हारी आज्ञा न मानकर उस महान् शक्तिकी आज्ञा मानूंगा जिनके अधीन तुम भी हो। उस आज्ञामें साफ कहा गया है कि किसीकी जान मत लो और किसीके प्रति राग-द्वेषनक न करो।

बड़े बड़े समझदार धार्मिक मनुष्य जो किसी पशुकी भी हत्या करनेको तैयार नहीं, तुरन्त ही जान लेनेको तैयार हो जाते हैं यदि उस हत्याका नाम युद्ध बता दिया जाये। वे फिर ...को मारेंगे और लूटेंगे और अपने इस भीषण कार्यका

अभिमान करेंगे। यह आश्चर्य है कि जो श्रमजीवी युद्धका सारा बोझ सहते हैं वे भी लड़नेके लिये तैयार हो जाते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि यदि लड़ाईमें भाग न लिया जायेगा तो और भी अधिक कष्ट उठाना होगा। जो लोग इन श्रमजीवियोंको लड़ाते हैं वे बहुत थोड़े आदमी होते हैं और दूसरेकी कमाई अपनी विलासितामें व्यय करते हैं। वे स्वयं लड़ाईमें भाग नहीं लेते। यह धोखावाजी बहुत दिनोंसे चल रही है। इधर धोखेवाजोंका दुस्साहस बहुत बढ़ गया है और श्रमजीवियोंकी बहुतसी कमाई लूटने मारनेमें व्यय की जा रही है। सभी देशोंमें श्रमजीवी ही इस भीषण कार्यमें भाग लेनेके लिये वाध्य किये जाते हैं। अन्तर्जातीय सम्वन्ध जानवूझकर जटिलतापूर्ण रखा जाता है जिससे युद्ध छिड़ जाता है। शान्तिपूर्ण देश हर साल किसी न किसी बहानेसे लूटे जाते हैं। सब मारकाट और लूटके भयमें रहते हैं।

यह सब काम केवल इसी लिये हो रहा है कि कुछ थोड़ेसे चालाक आदमी अधिकांश मनुष्योंको धोखेमें डाले हुए हैं। जो लोग जनताको लूट-मारसे सुरक्षित बनाना चाहते हैं, उनका पहला काम धोखेवाजीकी कलई खोलना होना चाहिये जो श्रमजीवियोंको कष्ट दे रही है। लोग यह तो कुछ नहीं करते, परन्तु शान्तिके लिये कभी इस स्थानमें एकत्र होते हैं और कभी दूसरे स्थानमें एकत्र होते हैं। वे मेजोंके पास गम्भीर बनकर विचार करते हैं कि इस लूटमारका अन्त कैसे किया जाये।

वे नाना प्रकारके प्रश्न सामने रखते हैं मानो उन्हें किसी बातका कुछ भी पता नहीं।

यहांपर एक तुलना याद आ जाती है। जुआरी जुएमें फंसकर अपना सर्वस्व खो देते हैं और कभी कभी अपनी जानको भी खतरेमें पड जाते हैं; परन्तु वे इसी आशासे जुआ खेलते रहते हैं कि भविष्यमें अवश्य लाभ होगा। जुआ खिलानेवाले कुछ चालाक आदमी उनकी मूर्खतासे लाभ उठाते हैं। हम लोग इस धोखेबाजीको जानते हैं और लोगोंको सङ्कटसे बचानेके लिये उन सब प्रलोभनोंकी पोल नहीं खोलते जिनके वशमें पडकर वे सर्वस्व खो बैठते हैं। हम उन्हें जुएका पाप नहीं समझाते जो दूसरेके दुर्भाग्यसे लाभ उठानेके लिये खेला जाता है। हम बड़ी गम्भीरतासे सभाएं करते हैं और विचार करते हैं कि जुआ खिलानेवाले किस तरह अपना अड्डा अपने आप बन्द कर दें। हम इस सम्बन्धमें पुस्तकें भी लिखते हैं और इतिहास, कानून तथा उन्नतिकी दृष्टिसे विचार करते हैं कि जुआ खेलना चाहिये या नहीं।

यदि किसी आदमीसे शराब छुड़ाना है तो उससे साफ कहना होगा कि तुम स्वयं ही इस बुराईको छोड़ सकते हो। पूरी सम्भावना है कि वह इस स्पष्ट उपदेशको मानकर शराब पीना छोड़ दे। यदि इस स्पष्ट उपदेशकी जगहपर उससे कहा जाये कि हम तुम्हारे सम्बन्धमें विचार करनेके लिये सभा करेंगे उसमें जो निश्चय होगा उसे तुम मान लेना—प्रश्न सरल

नहीं बड़ा जटिल है, तो शराबी नशा जारी रखेगा और हमारे निश्चयकी राह देखता रहेगा। यही दशा उन अन्तर्जातीय सभाओं और अदालतोंकी है जो लड़ाइयां बन्द करनेके सम्बन्धमें विचार करती हैं। वे सीधा यह काम नहीं करतीं कि जो लोग सेनाओंमें भर्ती होनेके लिये लालायित हो रहे हैं उनसे कह दें कि भर्ती होना पाप है। वे कह दें कि जो लोग लड़ना बुरा काम समझते हैं, वे सेनाओंमें भर्ती न हों।

शान्तिके बुद्धिमान् उपासक इस सरल मार्गको नहीं बताते। वे इस बातका जिक्र भी नहीं सुन सकते। जब यह बात उनके सामने लायी जाती है तो वे उसे ध्यानमें ही नहीं लाते और बहाना बता देते हैं। यदि उन्हें ध्यान देनेके लिये बाध्य ही होना पड़े, तो अपने कन्धे हिलाकर उसे मूर्खतापूर्ण प्रस्ताव कह देते हैं और राय देते हैं कि जब सरल मार्ग है तो इस पागलपनसे लाभ क्या। सरकारोंसे कहा जाये कि वे लड़ाइयां बन्द करनेके लिये सेनाएं भङ्ग कर दें। उनके इस प्रस्तावका यही अर्थ है कि पशुबलप्रधान सरकारें प्रस्ताव मानकर स्वयं नष्ट हो जायें।

वे कहते हैं कि पंचायतों और अन्तर्जातीय अदालतोंकी सहायतासे सरकारोंके बीचके सब झगड़े तय हो सकते हैं। सरकारें झगड़ोंको तय नहीं करना चाहतीं। वे तो यदि कोई झगड़ा न भी हो तो नया पैदा करती हैं। अन्य सरकारोंके साथ झगड़ा रहनेका बहानाकर वे अपनी बड़ी बड़ी सेनाएं रख सकती हैं जिनपर

उनकी शक्ति ठहरी हुई है। इस तरह शान्तिके वुद्धिमान् उपासक श्रमजीवियोंका ध्यान उस एक ही मार्गसे हटाना चाहते हैं जो उनका उद्धार कर सकता है। उन्हें देशभक्तिके नामपर धोखेमें डाला जाता है, किरायेके धर्माचार्योंकी शपथोंसे धोखेमें रखा जाता है और सरकारोंके भयसे गुलामीमें फंसाया जाता है।

जो लोग सेनामें भर्ती होनेसे इनकार करते हैं उन्हें सरकारें यदि कड़ा दण्ड दे तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि उनसे वे डरती हैं। वे जानती हैं कि इस इनकारीसे उनका रोव नष्ट होता है जिसमें वे जनसाधारणको फंसाये रखना चाहती हैं। जो लोग इनकार करते हैं, उन्हें पाप करानेवाली सरकारोंसे भयभीत होने का कोई कारण नहीं। सेनामे भर्ती होनेसे इनकारकर मनुष्य उतना खतरेमें नही पड़ता जितना कि सेनामें भर्ती होनेसे पड़ता है। जेल या देशनिकालेका दण्ड मनुष्यको सैनिक सेवाके खतरोंसे सुरक्षित वनाता है। सेनामें भर्ती होनेसे उसे लड़ाईमें भाग लेना पड़ेगा और लड़ाईमे वह मारा जा सकता या घायल हो सकता है। यदि आदमी वीमार पड़ गया, तो उसे वहुत ही गन्दे स्थानोंमें रहकर प्राण त्यागने होंगे। यदि वह सेनामें काम करता हुआ अपनेसे वड़ेकी आज्ञा न मानेगा, तो उसे इतना कड़ा दण्ड मिल सकता है जितना कि सैनिक सेवासे इनकार करनेपर भी न मिलता। सैनिक सेवामें भाग न लेनेवाला जेल या देशनिकालेका दण्ड पा सकता है, परन्तु सेनामें भर्ती होनेसे ... या पांच वर्षतक वहुत ही भद्दे स्थानोंमें रहना पड़ेगा।

लोगोंकी जानें लेनेका पापपूर्ण काम करना होगा और प्रबन्धकी कड़ाईके कारण जेलकी तरह ही जीवन व्यतीत करना होगा। उसे पतित मनुष्योंकी आज्ञा माननी होगी।

जो आदमी सैनिक सेवा करना स्वीकार नहीं करता उसे यह आशा है कि एक दिन वह दण्डमुक्त कर दिया जायेगा, क्योंकि जब कोई आदमी धोखेमें पड़नेके लिये न मिलेगा तो सरकारका अस्तित्व ही मिट जायेगा। यदि सेनामें भर्ती होना जारी रहेगा, तो राष्ट्रोंके कत्लकी कभी सम्भावना ही नहीं।

सब लोग चाहते हैं कि हमें ऐसा अवसर मिले कि कुछ ईश्वर और भाइयोंकी सेवा की जाये। जिस समय किसीको सेनामें भर्ती होनेकी आज्ञा मिलती है तो उसे उस सेवाका सुअवसर प्राप्त होता है। जो आदमी उसे स्वीकार नहीं करता या सैनिक व्ययके लिये कर नहीं चुकाता, वह वास्तवमें ईश्वर और मनुष्यकी सेवा करता है।

सेनामें भर्ती होकर ऐसे लोगोंकी आज्ञा माननेके लिये तैयार होना जो हत्याको अपना प्रधान उद्देश्य बनाये हुए हैं, नैतिक दृष्टिसे असम्भव काम है। इसलिये सैनिक सेवा अस्वीकार करना मनुष्यका प्रधान कर्तव्य ही नहीं, बल्कि उसे स्वीकार करना असम्भव है यदि मनुष्य दूसरोंके जादूमें न फंस गया हो।

लोग प्रश्न करेंगे कि यदि सभी सैनिक सेवा अस्वीकार कर देंगे, तो बदमाशोंको काबूमें रखनेका क्या साधन होगा। वे भले

आदमियोंको सताने लग जायेंगे और जनताकी अत्याचारों
रक्षा न हो सकेगी।

यह भय कि बादमाश भले आदमियोंको सताने लग जायेंगे, क
अर्थ रखता है जब कि वे आज भी तो भले आदमियोंको सता र
हैं ? जो काम पहलेसे ही जारी है, उसके सम्बन्धमे भय क्यों ? इस
के साथ ही यदि और किसी जातिके आक्रमणका भय है, तो
क्या इतनी बड़ी बड़ी सेनाएं प्रत्येक देशको रखनी चाहिये ?

मनुष्यका सबसे उत्तम पथप्रदर्शक उसका अन्तःकरण है
उसके अनुसार काम करता हुआ वह कह सकता है कि मुझे
करना चाहिये वही कर रहा हूं। इसलिये सेनामें भर्ती न होने
पर दण्डका भय और सेना न होनेपर बदमाशोंके आक्रमण
भय उस बड़ी धोखाबाजीका अङ्ग है जो सरकारे अपना अ
बनाये रखनेके लिये काममे ला रही हैं।

लोग संसारकी दुर्दशाकी शिकायत कर रहे हैं, परन्तु य
दुर्दशा उपस्थित होनी स्वाभाविक है; क्योंकि हम ईश्वरकी आ
काममें नहीं लाते जो इस प्रकार है—तुम किसीकी जान मत लेना
मनुष्योंके बीच भ्रातृभाव होना चाहिये उस सिद्धान्तका हम ग
घोंट रहे हैं। किसी भी राजा, बादशाह या राष्ट्रपतिके इशा
पर ईश्वरीय आज्ञा भुला दी जाती है और मनुष्य मनुष्यको म
डालनेके लिये तैयार हो जाता है। जिस समाजमें ऐसे लोग
वह भीषण न हो तो क्या हो। वह इसीसे ऐसी है।

भाइयो ! जागो। उन धूर्तोंकी बात न सुनो जो बचपनसे

तुम्हारे दिमागमें देशभक्तिकी बातें भरते रहते हैं। उनकी बातें सत्य और दयालुताके विरुद्ध हैं। वे तुम्हें धन, स्वतन्त्रता और मानुषिक गौरवसे वञ्चित करनेवाली हैं। जो धोखेबाज धर्मके नामपर लड़ाई कराना चाहते हैं, उनकी बात भी न सुनो। जो विज्ञान और सभ्यताकी रक्षाकी दुहाई देकर सभाओंमे जाकर बैठते और किताबें लिखते, व्याख्यान देते हैं और उत्तम सामाजिक जीवन तैयार करनेकी दुहाई देते हैं, उनके भी फेरमें न पड़ो। उनका उद्देश्य किसी तरह वर्तमान क्रमको जारी रखना ही है। वे बातें बनानेके सिवा शान्तिस्थापनके लिये कोई वास्तविक उद्योग नहीं करते। उस जागृतिकी ओर ध्यान दो जो तुमसे कह रही है कि न तो तुम पशु हो और न गुलाम हो, बल्कि स्वतन्त्र मनुष्य हो। तुम अपने कामोंके लिये स्वयं जिम्मेदार हो, इसलिये न तो स्वयं हत्या करो और न हत्यारोंका साथ ही दो। तुम्हें जागृत ही होना चाहिये; फिर तुम्हें पता लग जायेगा कि तुम जो काम कर रहे हो, वे कितने भीषण हैं। इसके बाद तुम उन कार्योंको बन्द कर दोगे जो बुराईकी जड़ हैं और तुम्हारा नाश कर रहे हैं। जिस बुराईसे तुम घृणा करते हो यदि उसे करना छोड़ दोगे, तो वे धोखेबाज जो पहले तुम्हें खराबकर पीछे तुमपर अत्याचार करते हैं, इस तरह भाग जावेंगे जिस तरह सूर्यकी रोशनी देखकर उल्लू भाग जाते हैं।

(२)

हरएक आदमी जानता है कि लड़ाईका समर्थन करनेवालों-

की दलीलें कमजोर हैं। उसका समर्थन केवल इस कारण किया जाता है कि प्रत्येक मानुषिक सङ्कटसे कुछ न कुछ लाभ अवश्य है। कभी कभी यह बेतुकी बात भी कह दी जाती है कि लड़ाइयां हमेशासे होती चली आ रही हैं इसलिये वे जारी रहेंगी। इसका यह अर्थ है कि बुरे काम किये जा सकते हैं यदि वे कुछ लाभ पहुंचानेवाले हों या वे इसलिये करने योग्य हैं कि बहुत दिनोसे होते चले आ रहे हैं। सब बुद्धिमान् आदमी इस बातको जानते हैं, परन्तु ज्यों ही लड़ाई आरम्भ होती है तो वह सब बातें तुरन्त भुला दी जाती हैं और जो कलतक लड़ाईकी भयङ्करता और हानिपर व्याख्यान दे रहे थे, मनुष्योंकी हत्या करने और मनुष्यके परिश्रमके फलको नष्ट करनेपर जोर देने लग जाते हैं। वे उन सीधेसादे मिहनती और शान्त मनुष्योंको उत्तेजित करने लग जाते हैं जो अपनी मिहनतसे इन बुद्धिमानोंका पेट भरते हैं। यही बुद्धिमान् मनुष्य उनसे अन्तःकरण और धर्मके विपरीत भीषण काम कराते हैं।

अनेक प्रकारकी प्रार्थनाओं,प्रशंसाओं और समाचारपत्रसम्बन्धी लेख पढ़कर हजारों नवयुवक मदान्ध हो पोशाके पहनकर, भीषण अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित होकर, अपने भाई-बन्धुओ,मातापिताओ,औ· बच्चोंको घरपर रोता छोड़ बड़ी बहादुरीके साथ लड़नेके लिये जाते हैं और अपनी जान खतरेमे डालकर दूसरोंके प्राण लेनेका भीषण काम करते हैं। उनके पीछे सैकड़ों डाक्टर और दाइयां रवाना ˆ हैं मानों उन्हें अपने देशके गरीबोंकी सेवा करनेका मौका

ही नहीं। वे उन्हींकी सेवा करना चाहती हैं जो दूसरोंकी हत्या करनेके कामपर लग गये हैं। जो लोग घरोंमें रह जाते हैं वे नरहत्याके समाचार सुनकर बड़े प्रसन्न होते हैं और जो प्रसन्न नहीं होता उसे तङ्ग करते हैं, उसकी हंसी करते हैं। जब वे सुनते हैं कि इतने शत्रु मारे गये तो वे उसे धन्यवाद देते हैं जिसे ईश्वर कहनेका साहस करते हैं।

हमारे जमानेके लोगोंका यह हाल है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम इसी तरह स्वार्थकी ओर ध्यान रखकर एक दूसरेसे लड़नेको तैयार रहेंगे, तो पशुबलका प्राधान्य बढ़ाते हुए अपना नाश जारी रखेंगे। अपनी कमाई अस्त्रशस्त्र बढ़ानेमें लगाते रहेंगे और आपसकी लड़ाइयोंमें हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंकी खतमकर हम दिनपर दिन पतित बनते जायेंगे।

सैनिक, सेनापति या राष्ट्रपति प्रश्न कर सकता है कि इस समय अब हम क्या करें, जब कि हमपर शत्रुकी चढ़ाई हो रही है और हमारे आदमी मारे जा रहे हैं। क्या हम अपना धन जन लड़ाई न छेड़कर नष्ट हो जाने दें। हमारी कमाई दूसरोंके हाथमें चली जाये। क्या हमारे आदमी कैद होकर शत्रुके पास चले जायें। जब यह सब हो रहा है तो हम क्या करें?

मैं तो यही जवाब दूंगा कि जो आदमी अपना कर्तव्य निश्चित कर चुका है वह चाहे लड़ाई शुरू हो जाये और हजारों देशवासियोंकी हत्या भी होने लगे तथा एक नहीं अनेक स्थान भी छिन रहे वह लड़ाईमें भाग लेनेके लिये तैयार नहीं हो सकता।

ईश्वरकी आज्ञा समझ लेनेपर उसके विपरीत काम नहीं किया जा सकता। आदमी यही कह सकता है कि मैं भाग न लूंगा, भाग ले नहीं सकता और न भाग लेनेकी इच्छा करता हूं। मैं यह नहीं जान सकता कि ईश्वरीय आज्ञाके विपरीत काम न करनेसे क्या होगा, परन्तु मुझे इस बातका विश्वास है कि ईश्वरीय आज्ञाका पालन लाभदायक होनेके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता।

आक्रमण करनेवाले शत्रुओंका फिर क्या हो? धर्मकी आज्ञा है कि शत्रुओंपर प्रेम दिखाओ तो फिर वे न रहेंगे। बहुतसे लोग कहेंगे कि यह बात सिर्फ कहनेके लिये ही है, क्योंकि शत्रुओंके प्रति प्रेम दिखानेकी बात उन्हें अतिरञ्जित मालूम होगी। परन्तु यह कार्य सब परिणामोंको अच्छी तरह समझ लेनेपर एक निश्चित नीतिका फल है।

शत्रुओंसे प्रेम करनेका यह अर्थ होगा कि उन्हें न मारा जाये और उन्हें अफीम देकर नष्ट न किया जाये जिस तरह कि अंग्रेजोंने किया, उनकी जमीन छीननेके उद्देश्यसे उन्हें नष्ट न किया जाये जिस तरह कि फ्रांसीसी, रूसी और जर्मनोंने किया। उन्हें जीवित न गाड़ा जाये और न उनके बाल बांधकर उन्हें एक साथ बांधा जाये या नदीमें डुबाया जाये जैसा कि रूसियोंने किया।

जिन्हें हम अपना शत्रु कहते हैं, उनपर प्रेम करनेका अर्थ नहीं कि उन्हें अपने समान झूठे धार्मिक सिद्धान्त सिखाकर

दूसरोंको मारनेके लिये राजी किया जाये, बल्कि उन्हें न्याय, निःस्वार्थता, दयालुता और प्रेम सिखाया जाये और यह शिक्षा शब्दोंद्वारा नहीं वल्कि आचरणद्वारा दी जाये।

धोखेमें पड़े हुए आदमी कब कहने लग जायेंगे कि राजा, बादशाह, मन्त्री, पत्र-सम्पादक या फाटकिये जो दूसरोंको लड़नेका उपदेश दिया करते हैं स्वयं ही गोलियोंकी बौछारके नीचे जाकर लड़ें। हम लोग नहीं जाना चाहते। हम लोग शान्तिपूर्वक खेती करेंगे और तुम आलसियोंका भी पेट भरेंगे। यह कहना स्वाभाविक भी मालूम होगा।

अभी तो वे ऐसा नहीं कहते। वे लड़नेके लिये जा रहे हैं और जाते रहेंगे। वे जानेके सिवा और क्या कर सकते हैं जब कि उन्हें अपने शरीरका तो ख्याल है, परन्तु शरीर और आत्मा दोनोंका ख्याल नहीं। वे दण्डसे शरीरकी रक्षा तो करना चाहते हैं, परन्तु भयङ्कर पतनसे अपनी आत्मा और मौत या गोलियोंसे शरीरकी रक्षा नहीं करना चाहते।

शिक्षापर लडाई बन्द होनेका सहारा है। लोगोंको सिखाया जाये कि दूसरोंकी जान लेना बुरा काम है। जो उच्च श्रेणीके लोग अपने लाभके लिये लडाई छेड़ना चाहते हैं, उनकी आज्ञाओंका धीरे धीरे विरोध किया जाये। जो उपदेशक स्वार्थसाधनके लिये देशभक्तिकी दुहाई देकर उन सीधे आदमियोंपर गोलियां चलवाना चाहते हैं जो अपने घरोंकी रक्षा कर रहे हैं, उनका उपदेश घृणाकी दृष्टिसे देखा जाये। इस प्रकार शान्तिकी

शिक्षाका प्रचार करने और लड़ाईकी भयंकरता तथा पापका परिचय करानेसे वे लोग भी लड़नेके लिये उत्साहित न होंगे जो सेनामें भर्ती हो चुके हैं।

लोग जिस संसारमें धनके लिये एक दूसरेका गला काटनेको तैयार हैं, वे मेरी बातें सुनकर मुझे अवश्य ही पागल बतायेंगे; परन्तु मेरी तो दृढ़ धारणा हो गयी है कि युद्ध एक प्रकारका विस्तृत व्यापार ही है जो कुछ थोड़ेसे उच्चाभिलाषी चला रहे हैं और जनताकी प्रसन्नता इस व्यापारके चक्करमें आ गयी है।

जिन लोगोंने कभी एक दूसरेको देखातक नहीं और न कभी एक दूसरेको हानि ही पहुचायी है, वे अचानक एक दूसरेको मारनेके लिये पशुओंकी तरह तैयार हो जायें यह कितनी रोमाञ्चकारी बात है। आश्चर्य तो इस बातका है कि इन भीषण कामोंमें भी लोग ईश्वरकी सहायताका नाम लेते हैं और अपने पाशविक कामोंके साथ उसका पवित्र नाम जोड़ते हैं।

सरकारोंके नाशसे युद्धकी सम्भावना मिट जायेगी। यदि सरकारोंके विना लोगोंको भूखों मर जानेका भय है, तो रूस, इटाली और भारतमें क्या हो रहा है। यदि न्याय और शिक्षापर आघात होगा, तो उनका उतना ही अंश नष्ट होगा जो आज जनताकी उन्नति न कर उसमें उल्टा बाधक हो रहा है। यदि अराजकता और अशान्ति फैलेगी, तो वह इतना अनर्थ नहीं कर सकती जितना कि सरकारें करा रही हैं।

मनुष्यो! होशमें आ जाओ और सोचो कि तुम क्या कर

रहे हो। अपने भाई-बहिनोंके हितके नामपर सोचो कि तुम क्या कर रहे हो। तुम्हारे शत्रु दूसरे देशके लोग नहीं, बल्कि स्वयं तुम हो। तुम स्वार्थियोंकी बात मानकर गुलाम बन रहे हो। तुम कभी यह मत समझो कि दूसरे देशवाले तुम्हारे किसी भी हितमें बाधक हैं। तुम दूसरोंसे जो कुछ छीनते हो और अपनी सरकारोंको देते हो, उससे उनका पशुबल बढ़ता और तुम्हारा अहित होता है इसलिये देशभक्तिके फेरमें पड़कर दूसरोंकी स्वतन्त्रता छीनना त्याग दो। तुम इस मातृभूमि या उस पितृभूमिके नहीं, बल्कि एक परमेश्वरके पुत्र हो। इसलिये न किसीके गुलाम और न शत्रु बनो। तुम्हारे सब कष्ट दूर हो जायेंगे।

पांचवां अध्याय।

युगान्तर।

(१)

धार्मिक पुस्तककी भाषामें युग या युगान्तका अर्थ किसी शताब्दीका अन्त या प्रारम्भ नहीं है। उसका अर्थ मनुष्योंके बीचके सामाजिक सम्बन्धके एक ढङ्ग, जीवनसम्बन्धी एक मत तथा एक विश्वासका अन्त और सामाजिक सम्बन्धके दूसरे ढङ्ग, जीवन-सम्बन्धी दूसरे मत और दूसरे विश्वासका आरम्भ है। धर्मग्रन्थमें लिखा हुआ है कि इस परिवर्तनके समय सब तरहके कष्ट होंगे। विश्वासघात, धोखे, निर्दयता और लड़ाइयां होनेके साथ ही साथ कानूनी पावन्दीके अभावसे प्रेम शिथिल होगा। मैं इन बातोंको ईश्वरकी भविष्यवाणी नहीं मानता। मनुष्यका एक प्रकारका जीवन क्रम और विश्वास बदलता है तो अशान्ति और अनियमबद्धता होनी स्वाभाविक है, जिससे मनुष्यके सामाजिक जीवनका प्रेमबन्धन अवश्य ही शिथिल पड़ना चाहिये। रूसमें ही नहीं, तमाम ईसाई देशोंमें यह परिवर्तन उपस्थित हो रहा है। रूसमे परिवर्तनने स्पष्ट रूप धारण लिया है, परन्तु अन्य ईसाई देशोंमें वह छिपा हुआ

है। प्रत्येक ईसाईका जीवन इस समय दो युगोंको विभक्त करनेवाली सीमापर है। दो हजार वर्षसे तमाम ईसाई संसारमें जो क्रान्ति तैयार हो रही थी, वह आरम्भ हो गयी है। झूठे धर्मकी जगह सच्चा धर्म स्थापित हो रहा है जिसके फलस्वरूप एक मनुष्यका दूसरेपर प्राधान्य न रहकर मनुष्योंके बीच समानता और सच्ची स्वतन्त्रता बढ़ रही है। ये दो गुण सभी समझदार मनुष्योंके लिये आवश्यक हैं।

इस मत-परिवर्तनका वाह्य स्वरूप यह है कि सभी देशोंमें भिन्न भिन्न श्रेणियोंके बीच भीषण प्रतिद्वन्द्विता उपस्थित हो गयी है। एक ओर तो धनवानोंकी निकृष्ट निर्दयता और दूसरी ओर गरीबोंकी निराशा दिखाई दे रही है। एक दूसरे राष्ट्रके विरुद्ध अस्त्रशस्त्र बढ़ाये जा रहे हैं और साम्यवादका प्रचार बढ़ रहा है जो कभी काममें नहीं आ सकता। भावी क्रान्तिके यही लक्षण उपस्थित हो रहे हैं। क्रान्तिका श्रीगणेश रूस-जापानी युद्धने किया, जो अभी हालहीमें समाप्त हुआ है। इस युद्धके कारण रूसकी जनतामें क्रान्तिकारी आन्दोलन उपस्थित हो गया है जो पहले कभी न था।

जापानने रूसको हरा दिया और इस हारका कारण रूसी राजनीतिज्ञोंका दुराचरण बताया जाता है। रूसमें जो क्रान्तिकारी आन्दोलन आरम्भ हुआ, उसका कारण कुशासन तथा क्रान्तिकारियोंकी बढ़ी हुई चेष्टा बताया जाता है। रूसी तथा विदेशी राजनीतिज्ञ इन कारणोंसे रूसकी शक्ति क्षीण होती देख

रहे हैं और समझते हैं कि अन्तर्जातीय सम्बन्धका केन्द्र बदल रहा है। रूसकी शासनप्रणाली बदलनेकी भी आशा की जाती है।

मेरी रायमें इन घटनाओंका महत्व और भी अधिक है। रूसी स्थल और जलसेना तथा रूसी शासन-सङ्गठनकी हार रूसी सरकारके नाशका चिन्ह है। रूसी सरकारका नाश भूठा ईसाई सभ्यताके नाशका चिन्ह है। यह पुराने युगका अन्त और नयेका आरम्भ है।

ईसाई देश जिन कारणोंसे वर्तमान अवस्थाको प्राप्त हुए हैं, वह कारण बहुत पहलेसे काम करते आ रहे हैं। जिस समयसे ईसाई धर्म राष्ट्रधर्म मान लिया गया, उसी समयसे परिवर्तन आरम्भ हुआ।

प्रत्येक ईसाई देश पशुबलपर स्थापित है। धार्मिक कानूनोंकी अपेक्षा सरकारी कानून बड़े माने जाते हैं और उनके अनुसार सबको बाध्य होकर चलना पड़ता है। सरकारें फांसी, सेनाओं और लड़ाइयोंको आवश्यक मानती हैं। शासक ईश्वरीय अधिकार रखनेवाले माने जाते हैं, धन-बलकी प्रशंसा होती है। इस अवस्थामें ईसाई धर्म राष्ट्रधर्म माना गया है यानी देशके शासक और शासित ईसाई धर्म माननेकी दुहाई देते हैं जिस धर्मने मनुष्योंके बीच पूर्ण समानता मानी है, जो सब प्रकारके पशुबल, फांसी और युद्धोंको न मानकर शत्रुओंसे भी प्रेम करनेका आदेश देता है, धनबलकी जगह नम्रता और प्रशंसा करता है और मनुष्योंके कानूनसे ईश्वरीय

कानून ऊंचा मानता है। इससे स्पष्ट है कि असली ईसाई धर्म नहीं, बल्कि उसका नकली स्वरूप राष्ट्रधर्म माना गया है जिससे अधार्मिक जीवन व्यतीत हो रहा है। शासक और शासित धर्मके असली तत्वको नहीं समझ रहे हैं और उन लोगोंसे नाराज होते हैं जो सच्चे धर्मका प्रचार करनेवाले हैं। वे शान्त अन्तः-करणसे सच्चे प्रचारकोंको फांसीपर लटकाते, देशनिकालेका दण्ड देते और सच्चे धर्म-प्रचारको रोकते हैं। धर्माचार्य सरकारों और ईसाई धर्मके बीच जो मेल सम्भव नहीं, उसे किसी तरह स्थापित करते हैं और लोगोंको भुलावेमें डालनेके लिये नयी रस्में तैयार-कर काममें लाते हैं। इस तरह वर्षोंतक लोग सच्चे ईसाई न रहकर अपनेको ईसाई ही मानते रहते हैं।

सरकारोंने अपनी शक्तिके भरोसे सच्चे धर्मका कितना ही गला घोंटा हो, परन्तु अन्तमें सत्यका संहार न हो सका। मनुष्यों-का आत्मज्ञान ज्यों ज्यों बढ़ता गया, त्यों त्यों यह बात स्पष्ट होती गयी कि नम्रताको प्राधान्य देनेवाले धर्म तथा पशुबलपर स्थापित सरकारोंके बीच कोई सम्बन्ध ही नहीं हो सकता। बड़ेसे बड़ा बांध सलासे बहते हुए पानीकी तेज धाराको नहीं रोक सकता। पानी या तो बांध तोड़कर निकल जायेगा, बांधको लांघकर निकल जायेगा या बांधकी दोनों ओरसे घूमकर निकल जायेगा। वह कब निकलेगा, यही विचारकी बात है। सर-कारोंकी शक्तिसे गुप्त रखी हुई धर्मकी ताकतका भी यही हाल है। सरकारोंने अधिक कालतक बहते हुए पानीकी

धाराको रोका और अन्तमें ईसाई धर्म उन बांधोंको नष्टकर निकल भागा।

ईसाई धर्म अपने बहावमें सरकारोंका नष्ट हुआ अंश भी लिये जा रहा है। जापानियोंने बिना किसी विशेष चेष्टाके रूसियोंको हरा दिया और इस हारके बाद ही रूसकी जनतामें अशान्ति बढ़ गयी—ये बाहरी लक्षण नये युगके आरम्भके हैं।

(२)

रूसी हारका कारण सेनाके दूषित सङ्गठन, सेनापतियोंकी भूलें आदिमें ढूंढ़ा जाता है, परन्तु यह बात नहीं है। जापानियोंने रूसी सैनिक सङ्गठनकी कमजोरी या शासनकी बुराईके कारण विजय नहीं प्राप्त की। अधिक सैनिक शक्तिने उन्हें विजय प्राप्त करायी है। जापान इसलिये नहीं जीता कि रूस कमजोर है, बल्कि इसलिये कि स्थल और जलसेनामें वह संसारके सभी देशोंसे बढ़ा चढ़ा है। जापानी विजयने रूसको ही नहीं, सारे ईसाई संसारको बता दिया कि बाहरी सभ्यतासे कुछ काम नहीं चल सकता जिसका ईसाई देशोंको इतना अभिमान है। यह सभ्यता विशेष महत्व नहीं रखती जिसे वे वर्षोंके परिश्रमका फल समझ रहे हैं। जापानी किसी विशेष आध्यात्मिक शक्तिमें प्रसिद्ध न होनेपर भी कुछ ही वर्षोंमें ईसाई देशोंके वैज्ञानिक ज्ञानको प्राप्त कर बैठे और वे इतने क्रियाशील निकले कि जिस सैनिक शक्तिको ईसाई देश इतने महत्वकी समझते हैं, उसीमें सबसे आगे बढ़ गये।

वर्षों आत्मरक्षाके बहाने ईसाई देशोंने एक दूसरेके नाश-के लिये नये नये साधन तैयार किये। उन्होंने इन साधनोंद्वारा एक दूसरेको भयभीत रखा और एशिया, अफ्रीकाके असभ्य राष्ट्रोंसे हर तरहका लाभ उठानेकी चेष्टा की। गैर-ईसाई देशोंमें एक देश ऐसा निकला जिसने सङ्कटका अनुमानकर ईसाई देशोंकी तरह अपनी सैनिक शक्ति बहुत ही जल्दी बढ़ा ली। वह उनसे भी अधिक शक्तिशाली बन गया, क्योंकि वह साधा-रण नियम समझ गया कि यदि कोई तुम्हें मजबूत डण्डेसे मारे तो तुम उससे भी मजबूत डण्डा लेकर मारनेवालेको मार दो। जापानी अपनी देशभक्ति और धार्मिक निरंकुशतासे और भी अधिक लाभ उठा सके। इस तरह वे संसारमें सैनिक शक्ति प्राप्त करनेवाले बने। सब सैनिक शक्तियां समझ गयी हैं कि गैरईसाई देशोंके पास भी सैनिक शक्ति जा रही है या अवश्य जायेगी। एशिया और अफ्रीकाके जो देश ईसाई देशोंके अत्या-चारोंसे पीड़ित हैं, जापानका अनुकरण आसानीसे कर सकते हैं। सैनिक शक्ति रखनेवालोंको भय है कि ये देश हमारी तरह ही सैनिक शक्ति प्राप्तकर कहीं अपनेको अत्याचारमुक्त करते हुए संसारसे ईसाई सरकारोंका नाम ही न मिटा दें।

इस भयने ईसाई सरकारोंको और भी अधिक शक्ति बढ़ानेका मार्ग दिखाया है। यद्यपि जनता सैनिक व्ययसे दबी हुई है, परन्तु वे अपनी शक्ति बढ़ा रही हैं। वे समझती हैं कि गैर-ईसाई देश जापानका अनुकरणकर सैनिक शक्ति प्राप्तकर कहीं

हमारा प्राधान्य न नष्ट कर दें और हमारे पंजेसे निकलकर भयानक बदला लेने लगे। रूसको ही नहीं, तमाम ईसाई सरकारोंको यह बात स्पष्ट हो गयी है कि पशुबल अधिक सङ्कट और कष्ट सामने लानेवाला है।

जापानकी विजयने ईसाई देशोंको बता दिया है कि सैनिक शक्ति बढ़ानेमे तत्पर रहकर उन्होंने बड़ा भारी पाप किया। गैर ईसाई देश उनसे इस काममे बाजी मार सकते हैं। उन्होंने अबतक जिस ओर ध्यान दिया, वह उनके लिये नाशकारी ही निकला। सैनिक शक्तिने सारी शक्ति चूस ली और गैर-ईसाई देश शत्रु बन गये। ईसाई देश सैनिक शक्तिमें कभी गैर ईसाई देशोंसे नहीं बढ़ सकते। यदि उन्हें आत्मरक्षा करनी है, तो वे सैनिक शक्तिकी ओर ध्यान न देकर किसी दूसरी ओर ध्यान दें। वे ऐसा जीवन-क्रम तैयार करें कि मनुष्योंका अधिकसे अधिक हित हो सके जो पशुबलसे नहीं, बल्कि परस्परके सहयोग और प्रेमसे हो सकेगा। जापानी विजयसे ईसाई राष्ट्र यही उपदेश ग्रहण करें।

(३)

जापानी विजयने ईसाई राष्ट्रोंको प्रकट कर दिया कि वे भूलपर थे। रूसी जनताने जापानसे लड़कर धनजनके संहार का सामना किया, अपने परिश्रमका फल पानीकी तरह बहाया। वह समझ गयी है कि सरकारकी आज्ञानुसार काम करना

है।

किसी आवश्यकताके बिना ही रूसी सरकारने ऐसी लड़ाई छेड़ी जिसका बुरा परिणाम होना निश्चित था। यह लड़ाई कुछ व्यक्तियोंने जो किसी तरह प्राधान्य प्राप्त करनेमें समर्थ हुए, स्वात्मलाभके लिये छेड़ी। सैकड़ों हजारों जानें गयीं। जनताके परिश्रमका फल नष्ट हुआ, रूसका गौरव मिट्टीमें मिला और यह सब उन लोगोंके लिये, जो किसी तरह रूसके अधिकारी बन गये। जिन्होंने इतना भयानक काम किया, वे दूसरोंपर दोषारोपण कर रहे हैं और अब भी अपनी पुरानी नीति काममें ला रहे हैं जिससे वे रूसी जनताको और भी नये सङ्कटमें डाल देंगे।

प्रत्येक क्रान्ति उस समय उपस्थित हुआ करती है जब कि कोई जीवन-क्रम अधिकांश जनताको मान्य नहीं रहता और नये क्रमकी आवश्यकता समझी जाती है। अधिकांश जनता जिस समय यह समझने लग जाती है कि जो जीवन व्यतीत किया जाता है वह उस जीवनका विरोधी है जो वास्तवमें व्यतीत किया जाना चाहिये, और जिस देशमें इस विरोधके समझनेवाले अधिक हो जाते हैं, वहां क्रान्ति उपस्थित होती है। जिस उद्देश्यकी ओर क्रान्तिका लक्ष्य होता है, उसीके अनुसार क्रान्तिके ढङ्ग हुआ करते है।

सन् १७९३ में मनुष्योंकी समानता और राजाओं, पुरोहितों तथा अधिकारियोंके निरंकुश अधिकारोंके बीच जो आपसका विरोध था उसका ज्ञान साधारण जनताको ही नहीं, बल्कि

शासकवर्गके मनुष्योंको भी हुआ और फ्रांसमें यह जागृति विशेष रूपसे उत्पन्न हुई जिससे वहां क्रान्ति उपस्थित हुई। समानता प्राप्त करनेका साधन स्वाभाविक रूपसे यही समझा गया कि अधिकारियोंके पास जो अधिकार हैं, वे पशुबलद्वारा उनसे छीन लिये जायें। इसलिये १७९३ में मारकाटसे काम लिया गया।

अब सन् १९०५ मे स्वतन्त्र जीवनकी सम्भावना और पशुबल प्रधान अधिकारियोंकी दासताके बीच जो विरोधपूर्ण अवस्था है उसका ज्ञान हो रहा है और यह ज्ञान केवल जनताको ही नहीं, बल्कि शासकवर्गके मनुष्योंमें भी उत्पन्न हो रहा है। रूसमें इस सम्बन्धमें विशेष जागृति है, क्योंकि रूसी सरकारने अकारण ही जनताको जापानसे भिड़ाकर धनजनका नाश किया और दूसरा कारण जागृतिका यह है कि रूसी जनता आज भी कृषिजीवन व्यतीत करनेवाली तथा ईसाई धर्मका सार समझने वाली है। १९०५ की क्रान्ति इसलिये रूसमें ही सबसे पहले आरम्भ होनी चाहिये। जिस मारकाटका सहारा लेकर लोगोंने अबतक समानता स्थापित करनेकी चेष्टा की है, उससे भिन्न कोई नया साधन नवीन क्रान्ति उपस्थित करनेमें काममें लाया जाना चाहिये। मारकाटकी सहायतासे समानताकी स्थापना नहीं हुआ करती। मारकाट स्वयं ही असमानताका स्थूल रूप है। जो लोग नयी क्रान्ति मारकाटसे पुराने ढङ्ग काममें लाकर उपस्थित करना चाहते हैं, वे बड़ी भारी भूल करते हैं।

यह मारकाटका युग नहीं। मारकाटसे कभी सच्ची स्वाधी-नता नहीं प्राप्त हुई, यह बात भी स्पष्ट है। लोग अब यह या वह अधिकार नहीं चाहते और न एककी जगह दूसरी पशुबल-प्रधान सरकार ही चाहते हैं। वे तो सच्ची स्वाधीनताके अभिलाषी हैं।

रूसमें ही नहीं, तमाम संसारमें जो नवीन क्रान्ति उपस्थित हो रही है उसका यह महत्व नहीं कि जनता कुछ नयी संस्थाओं-की सृष्टि चाहती है या ऐसे दिखावटी निर्वाचन अधिकार चाहती है कि वह शासनमें भाग लेनेवाली मानी जाये। वह प्रजातन्त्र शासन भी नहीं चाहती—वास्तविक स्वतन्त्रता चा-हती है।

नकली नहीं, असली स्वतन्त्रता जब प्राप्त करनी है तो हत्या या पशुबलसे काम न चलेगा, न ऐसी संस्थाओंसे काम चलेगा जो हर-घरवाकार स्थापित कर दी जायें। वह स्वतन्त्रता तो उसी समय प्राप्त होगी जब कि किसी भी मानुषिक शक्तिका आज्ञापालन न किया जाये।

(४)

सारी क्रान्तिका प्रधान कारण अन्य क्रान्तियोंके समान ही धार्मिक है। धर्मका अर्थ कुछ रीति-रस्म समझे जाते हैं या ईश्वरसृष्टि, उत्पत्तिका कारण बताना आदि धर्म माना जाता है या नैतिक नियमोंको धर्ममें शामिल किया जाता है, परन्तु असली धर्म सब मनुष्योंके बीच प्रधान नियमको प्रकट करने-

वाला है जो हर समय मनुष्योंका अधिकसे अधिक कल्याण कर सके।

यह प्रधान नियम प्राचीन कालसे सिखाया जा रहा है कि मनुष्य केवल अपने लाभके लिये जीवन व्यतीत न करे, परन्तु सब एक दूसरेका कल्याण करनेके लिये पारस्परिक सहायता करें। इस नियमकी सचाई और लाभ सभी स्वीकार करते हैं। परन्तु लोगोंकी दिनचर्यामें उस नियमकी जगहपर पशुबलको इतना स्थान मिल गया है कि लोग समझने लग गये हैं कि बुराईके बदले बुराई न करने और किसीको डराये बिना काम ही नहीं चल सकता। कुछ लोगोंने इसीलिये कानून बना डाले हैं और उन्हें काममें लानेका भार अपने ऊपर ले लिया है। उन्हें ऐसे भी आदमी मिल गये हैं, जो उनकी आज्ञा मानने लग गये हैं। शासन करनेवाले अधिकारके मदमे पतित हो गये और उनके कामोमे सहयोग देनेवाले भी पतित बन गये। इस पतनसे बचनेका एक ही उपाय है कि पशुबलका नाश किया जाये। उससे छुटकारा पानेका यही उपाय है कि शान्तिपूर्वक उसको सहन किया जाये और बदलेका ध्यान भी न हो। यदि सभी लोग भयानकसे भयानक उत्तेजना उपस्थित होनेपर भी पशुबल काममें न लायें, तो पशुबल न रहेगा। यह साधारणसी बात है कि बुराईसे बुराई दूर नहीं की जा सकती। पशुबलकी बुराई दूर करनेके लिये पशुबलसे काम न लेना होगा। जो पारस्परिक सहायताका महत्व स्वीकार करते हैं, वे निष्क्रिय

प्रतिरोध या सत्याग्रहको स्वीकार नहीं करते, जिसके बिना पारस्परिक सहायताका भवन ही नहीं खड़ा हो सकता।

लोग यही समझते रहे कि शान्तिपूर्वक बुराईका सहन किये बिना उत्तम जीवन-क्रम निश्चित किया जा सकता है। परन्तु ऐसा न हो सका। बुराईके लिये प्रतीकारकी इच्छा रखनेवाले एक दूसरेके विरोधमें अपनी शक्ति बराबर बढ़ाते चले गये और सरकारोंको एक दूसरेको हड़प करनेके लिये बड़ी तैयारी करनी पड़ी। घृणाका भाव यहांतक बढ़ता चला गया कि परस्परकी सहायताका सिद्धान्त ही हवा हो गया।

भावी क्रान्तिका प्रधान धार्मिक कारण यही है कि पारस्परिक सहायताके नियमके साथ निष्क्रिय प्रतिरोधकी भी आवश्यकता समझी गयी है।

बुराईके बदले बुराई करनेसे वह बढ़ती ही है। पशुबलके विरुद्ध पशुबलको काममें न लानेसे ही सच्ची स्वाधीनता प्राप्त हो सकती है जो मनुष्यके लिये स्वाभाविक है। जो मनुष्य मारकाट-का सामना मारकाटसे करनेके लिये तैयार होता है वह तुरन्त ही अपने आपको स्वतन्त्रतासे वञ्चित कर लेता है। जब वह स्वयं पशुबलका प्रयोग करता है तो यह बात भी स्वीकार कर लेता है कि दूसरे भी पशुबल काममें ला सकते हैं। वह जिस पशुबलके विरुद्ध लड़ता है उससे जीता जा सकता है। यदि वह स्वयं विजय प्राप्त करता है तो उसे भय रहता है कि भविष्यमें वह उससे हार जायेगा जो उससे अधिक पशुबल काममें लायेगा।

वही मनुष्य स्वतन्त्र हो सकता है जो सभी मनुष्योंमें समान प्रधान नियमका पालन करता है। इस नियमके पालनमें कोई बाधा भी नहीं है। पशुबलको चुपचाप सह लेनेसे संसारमें पशुबल घटता है और पूर्ण स्वाधीनता भी प्राप्त होती है। जो सर्वोच्च नियमको माननेवाले हैं, उन्हें किसी मनुष्यके बनाये हुए कानून को माननेकी जरूरत नहीं। वे शान्तिपूर्वक मनुष्यके पशुबलके शिर झुकाकर सह लेते हैं, परन्तु ऐसे किसी कानूनको नहीं मानते जो प्रधान नियमके विरुद्ध है।

सच्चे धार्मिक मनुष्य प्रधान नियमको मानते हुए कानूनोंके माननेसे इनकार कर देंगे। वे सब तरहके कष्ट सहेंगे, परन्तु एक ईश्वरकी आज्ञा मानेंगे और स्वतन्त्र रहेंगे। सरकारोंने बड़ी चालाकीसे लोगोंको अपने वशमें किया है। उन्होंने पहले पहल पशुबलकी इसलिये दुहाई दी कि दीन-दुखियोंकी रक्षा आवश्यक है। न्यायपूर्वक बदला लिया जा सकता है। जब लोगोंने उनके सिद्धान्तको मान लिया तो दिनपर दिन वे अपनी शक्ति बढ़ाती चली गयीं। लोगोंसे शपथ ली गयी कि वे सरकारोंकी आज्ञाएं हर हालतमें मानेंगे तब वे पशुबल और हत्याको निषिद्ध ही न समझने लगे। वे बुराईको चुपचाप सहनेके लिये तैयार न हुए, क्योंकि उन्हे यह रुख बड़ा अपमानजनक दिखाई दिया। वे सरकारोंकी आज्ञा मानना आवश्यक समझ गुलाम बनते चले गये। इस तरह प्राचीन प्रणालीके दास बनकर मनुष्य गुलामीके लिये लज्जित न हुए और अपनी सरकारोंकी

शक्तिका उल्टा अभिमान करने लगे जिस तरह गुलाम हमेशा ही अपने स्वामियोंके महत्वका अभिमान किया करते हैं।

सरकारोंने एक चाल नयी निकाली है। वे कहती हैं कि जो लोग हमारी आज्ञा मानते हैं वे अपनी ही आज्ञाका तो पालन करते हैं, क्योंकि सरकारें तो चुने हुए आदमियोंके झुण्डसे बनती है। जो लोग अपनेको हमारा दास समझते हैं, वे वास्तवमे स्वतन्त्र हैं। जिस देशमें अधिकसे अधिक प्रजातन्त्र शासन स्थापित है वहां भी जनता अपना मत प्रकट करनेमे असमर्थ है, क्योंकि लाखों आदमियोंकी राय क्या हो सकती है। इसके सिवा यदि ऐसा कोई मत हो भी तो वह बहुमतसे कम होनेके कारण प्रकट नहीं किया जा सकता। जनता स्वयं नही जान सकती कि वह क्या चाहती है। इसके सिवा जो प्रतिनिधि कानून बनाते हैं वे जनताके हितको ध्यानमें रखकर कानून नहीं बनाते, बल्कि इस दृष्टिसे कानून बनाते हैं कि दलवन्दियोंकी धूम-मे वे अपना पद कायम रख सकें। जनता स्वेच्छासे जो गुलामी स्वीकार करती है, वह और भी अधिक हानिकारक है। धोखे-बाजीमे पड़कर जनता और भी पतित बनती है। धोखेमें पड़ने-वाले समझते हैं कि हम अपनी आज्ञाओंका ही पालन कर रहे हैं और इस तरह उन कानूनोंको भी मानते हैं जो उनकी रुचि और कल्याणके ही नही, अन्तःकरण और ईश्वरीय नियमके भी विपरीत हैं। असल बात तो यह है कि जो अपनेको प्रजातन्त्र शासनके अधीन समझते हैं, वे उसी तरह अपनी इच्छाके अनुकूल काम

नहीं कर सकते जिस तरह निरंकुश शासनमें रहनेवाले नहीं कर सकते। यदि किसी जेलके कैदी जेलके शासनके लिये जेलरोंके निर्वाचनके वास्ते अपनी राय देने लग जायें, तो क्या वे कह सकते हैं कि हम स्वतन्त्र हैं? आखिरको वे जेलमें ही तो हैं।

किसी निरकुश सरकारकी प्रजा बिल्कुल स्वतन्त्र हो सकती है चाहे वह उन अधिकारियोंके पशुबलके अधीन भी हो जो उसने स्वयं नियुक्त नहीं किये, लेकिन प्रतिनिधि सरकारका मनुष्य सदा गुलाम है क्योंकि वह उस पशुबलको स्वीकार किये हुए है, जो उसपर काममें लाया जाता है। वह समझता है कि हम अपनी सरकारमें भाग ले सकते हैं इसीसे सरकारकी सभी आज्ञाएं मानता है। वह इस धोखेमें पड़कर असली स्वतन्त्रता का अर्थ ही भूल जाता है। इस प्रकारके लोग यद्यपि समझते हैं कि हम अधिकाधिक स्वतन्त्र हो रहे हैं, परन्तु वे वास्तवमें सरकारोंके गुलाम बन रहे हैं। जो साम्यवाद मनुष्यको और भी अधिक गुलामीकी ओर ले जानेवाला है, उसका अधिक प्रचार और सफलता देखकर ऊपरकी कल्पना मिथ्या नहीं रहती।

इस तरह किसी बुरी बातसे असहयोग न करनेके कारण स्वाधीनताका और भी अधिक नाश होता चला गया है। बुराईमें भाग लेनेसे बुराई और ज्यादा बढ़ती चली गयी है।

(६)

भावी क्रान्तिका साधारण कारण यह है कि संसार अनुभव कर रहा है कि बुराईसे असहयोग न करनेके कारण गुलामी

बढ़ रही है। सैनिक साधन बढ़ते जा रहे हैं और जनता जमीनसे वञ्चित होकर अधिक कष्टमें पड़ती जा रही है।

जनताका जमीनसे वञ्चित हो जाना भावी क्रान्तिका दूसरा बाह्य कारण है। जमीनके अभावसे लोग विशेष निर्धन और दुःखी बन गये हैं। वे उन लोगोंके प्रति अधिक क्रुद्ध हो रहे हैं जो उनके परिश्रमसे लाभ उठा रहे हैं। किसान इस परिणामपर पहुंचे हैं कि या तो वे अपना प्राचीन कृषिजीवन सदाके लिये त्याग दें जो उन्हें वास्तविक स्वतन्त्रता प्रदान कर सकता है या सरकारकी आज्ञा मानना बन्द कर दें जो उनसे जमीन छिनाकर जमींदारोंके अधिकारमें कर रही है।

आम तौरसे यह बात कही जाती है कि किसी दूसरे मनुष्यका गुलाम होना बड़ी भयानक बात है, क्योंकि गुलामको जो चाहे वही दण्ड दे सकता और उसके प्राण ले सकता है। किसीको जमीनसे वञ्चित करनेके कार्यको हम गुलामी न कहकर अन्याय-पूर्ण आर्थिक बुराई बताते हैं। यह मत बिल्कुल ही मिथ्यापूर्ण है। जमीनसे किसीको वञ्चित करना उसे मानो भयानक गुलामीमें डालना है। आदमी यदि किसीका गुलाम होता है तो उसे एककी ही गुलामी करनी पड़ती है, परन्तु जमीनसे वञ्चित मनुष्य सबका ही गुलाम है। गुलामोंके स्वामी अपने सेवकसे कभी इतना काम नहीं लेते थे कि वह दुःखी हो जाये, वे उसे सताते भी न थे और न भूखों ही मारते थे। जमीनसे वञ्चित हो जानेवाला व्यक्ति सदा ही अपनी शक्तिसे अधिक काम करता है,

वह भूखों भी मरता है और एक मिनटके लिये भी लालची आद मियोंके चंगुलसे छूटकर स्वतन्त्रता नहीं भोग सकता। उसका कष्ट इतना ही नहीं है, सबसे भयङ्कर बात तो यह है कि वह नैतिक जीवन ही व्यतीत नहीं कर सकता। जब उसे जमीनपर कुछ काम करने और प्रकृतिसे युद्ध करनेका मौका ही नहीं मिलता, तब वह उन आदमियोंसे युद्ध करनेके लिये वाध्य होता है जो धोखेसे दूसरोंके परिश्रम या जमीनसे लाभ उठा रहे हैं।

जमीनकी गुलामी पुरानी गुलामीका बचा हुआ अङ्ग नहीं, बल्कि प्रधान गुलामी है। इस गुलामीसे तरह तरहकी गुलामी पैदा होती है और वह व्यक्तिगत गुलामीसे कहीं भयानक है। व्यक्तिगत गुलामीसे मुक्त हो जानेपर भी जो जमीनकी गुलामीसे मुक्त नहीं होता, वह स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता। लोग जिस समय गुलाम बनाये जाते थे, उस समय भी अपनी आवश्यकताके अनुकूल जमीन काममे ला सकते थे। सरकार और जमींदार बढ़ती हुई जनसंख्याको अलग अलग जमीन दे दिया करते थे, इसलिये जमीनपर रहनेवाले व्यक्तिविशेषोंके अन्यायपूर्ण अधिकारका किसीको ज्ञान न होता था। जब गुलामी दूर हो गयी तब सरकारों और जमींदारोको गरीबोंके हितकी बात तो अलग रही, प्राणरक्षाकी भी चिन्ता न रही। लोगोंको जितनी जमीन दी गयी थी वह जरा भी न बढ़ायी गयी यद्यपि जनता बढ़ती चली गयी।

लोगोंको इस तरह जीवन व्यतीत करना असम्भव बिना

दिया। वे इस प्रतीक्षामें रहे कि सरकार उन कानूनोंको उठा देगी जो उन्हें जमीनसे वञ्चित रखते हैं। उन्होंने दस, बीस, तीस वर्षतक राह देखी, परन्तु जमीन बराबर ही जमीदारोंके हाथमे पहुंचती गयी। लोगोंके सामने दो मार्ग रह गये। या तो वे अपना कृषिजीवन त्याग देते या भूखो मरते। आधी शताब्दी व्यतीत हो गयी और उनकी स्थिति दिनपर दिन बिगड़ती चली गयी। सरकारोने उन्हे जमीन न देकर अपने पिट्ठुओंको दी। लोगोसे कहा गया कि जमीन न मिलेगी। उनका जीवन-क्रम नये ढङ्गसे शिल्पके आधारपर निश्चित किया गया।

जनताके कष्टका असली कारण जमीनका हाथसे निकल जाना है। श्रमजीवी जमीनसे वञ्चित होकर ही असन्तुष्ट हुए हैं। जमीन व्यक्तिविशेषोंकी सम्पत्ति मान ली गयी है। लोग इस अन्यायका पता नही पाते, क्योंकि वे अपनी दुखी अवस्थाका कारण कभी बाजारोकी कमी, कभी चुङ्गी, कभी अनुचित कर और कभी पैसेवालोकी ज्यादती समझते हैं, परन्तु यह नही समझ पाते कि हमारा स्वाभाविक अधिकार जो जमीनपर था, हमसे छीन लिया गया है और हमारे कष्ट बढ़ा रहा है।

अस्त्र-शस्त्रोकी भयानक वृद्धि, लड़ाइयां और जमीनका छीन लेना भावी क्रान्तिका कारण बन रहा है। रूस आदि देशोंमें यह क्रान्ति विशेष रूपसे अपने चिन्ह प्रकट कर रही है जहांपर कृषिजीवन बितानेवाले अधिक हैं।

(७)

लोग अनुभव कर रहे हैं कि पशुबलप्रधान सरकारोंके आज्ञापालनसे भीषण अवस्था उत्पन्न हो रही है। वे अपनेको उनसे मुक्त करना चाहते हैं, यही क्रान्तिका कारण है। पशुबलपर जो सरकारें स्थापित हैं, उनके द्वारा शासित लोग समझते हैं कि सरकारोंके नाशसे बड़ी भीषण अवस्था उत्पन्न होगी।

यह कहना या समझना सरासर भूल है कि इस समय लोगोंकी रक्षा सरकारोंके कारण हो रही है। हम लोग केवल उन्हीं लोगोंकी हालत जानते हैं जो सरकारोंकी अधीनीमें रहते हैं और उन लोगोंकी हालतका अनुभव करते हैं जो इन सरकारों के विना रहेंगे। हम नहीं जानते कि उनकी क्या दशा होगी। अब भी जो लोग सरकारोंकी अधीनीके बाहर जीवन व्यतीत कर रहे हैं, वे सामाजिक व्यवस्थासे पूरा लाभ उठा रहे हैं और उन कष्टोंका शतांश भी अनुभव नहीं करते, जो सरकारोंकी मातहतीमें रहनेवाले सह रहे हैं। शासकवर्गवाले ही कहा करते हैं कि सरकारोंके विना जीवन व्यतीत करना ही असम्भव है, क्योंकि वे सरकारोंसे लाभ उठाते हैं। उन बेचारे किसानोंसे पूछा जाये जो इन सरकारोंके लिये केवल भार सहते हैं, परन्तु उनसे कुछ भी लाभ नहीं उठाते। वे इन सरकारोंके कारण अपनेको विशेष रूपसे सुरक्षित भी नहीं समझते। यदि उनका वश चले, तो वे इन सरकारोंको कायम ही न रखें।

" यह बात पहले अच्छी तरह बता चुका हूं कि सरकारोंके

बिना किस तरह काम चल सकता है और वे सुख, शान्ति तथा रक्षा प्रदान करनेकी अपेक्षा अनेक दुःख, अशान्ति और मारकाट पैदा करनेवाली हैं।

सरकारोंकी तुलना उन मूर्तियोंसे की जा सकती है जो मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक शक्ति नष्ट कर रही हैं। लोग इन मूर्तियोंपर भक्ति प्रकट करना त्याग दें और वे फिर वही पत्थर बन जायेंगी। बड़ी बड़ी सरकारोंका समर्थन इस कारण किया जाता है कि छोटे छोटे राष्ट्र मिलकर जब बड़े बन जाते हैं तो वे आपसमें नहीं लड़ते और बड़े बड़े राष्ट्रोंके बीच बाहरी सीमान्त निश्चित हो जाते हैं जिससे युद्ध और रक्तपात मिट जाता है, परन्तु छोटे छोटे राष्ट्र अनेक वर्षोंमें भी उतना रक्तपात और नरसंहार नहीं कराते, जितना कि बड़े राष्ट्र एक या दो ही युद्धमें करा दिया करते हैं।

सरकारें अपना विस्तार इस सिद्धान्तपर बढ़ाना चाहती हैं कि सार्वभौमिक राज्यकी स्थापना हो जायेगी। उसके कारण फिर किसी तरहकी लड़ाईकी सम्भावना ही न रहेगी। सिकन्दर, नेपोलियन आदिने इस सार्वभौमिक राज्यकी स्थापना करनी चाही, परन्तु वे सफल न हुए। इन लोगोंकी चेष्टासे शान्ति तो स्थापित न हुई, मनुष्योंको और भी भयानक कष्टोंका सामना करना पड़ा। सरकारें अपना शासनक्षेत्र विस्तृत बनाकर मनुष्योंको शान्तिप्रदान नहीं कर सकतीं। शान्ति तो इसके विपरीत साधनसे प्राप्त हो सकती है यानी पशुबल-प्रधान सरकारोंका अस्तित्व नष्ट किया जाये।

प्राचीन कालमें मनुष्योंकी बलि हुआ करती थी, धार्मिक युद्ध छिड़ा करते थे तथा और भी अन्य प्रकारका अन्धविश्वास था, परन्तु वह सब अब दिखाई नहीं देता। सरकारोंके सम्बन्धमें ही अन्धविश्वास बाकी रह गया है। इस अन्धविश्वासके कारण इतनी नरबलि होती है, जितनी पहले कभी नहीं हुई थी। सरकारोंके सम्बन्धमें यह अन्धविश्वास बना हुआ है कि भिन्न स्थानों, जातियों और धर्मों तथा आदतोंके मनुष्य एक ही हैं, क्योंकि सबपर पशुबलका प्रयोग किया जाता है। सब लोग इस बातको मानकर इस बातका अभिमान किया करते हैं कि वे एक ही सङ्गठनमें भाग लेनेवाले हैं। जो लोग सङ्गठनसे लाभ उठाते हैं वही ऐसा विश्वास नहीं रखते, बल्कि वे लोग भी इसी मतको माननेवाले हैं जो इस सङ्गठनके कारण हानि उठानेवाले हैं।

यदि लोग इन सरकारी सङ्गठनोंके अधीन रहना त्याग दें, तो मनुष्योंके कष्ट कम हो जायें और लोग पारस्परिक सहायता के उच्च सिद्धान्तपर अपना जीवन व्यतीत करने लग जायें। जनताको इस समय पुराने विचारों या पुराने अनुभवके आधारपर अपना जीवन व्यतीत न कर स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना चाहिये, स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहिये। अपने आध्यात्मिक भण्डारसे जीवनका नया क्रम निश्चित करना चाहिये।

(८)

मनुष्योंपर जो नयी क्रान्ति आनेवाली है, उसका उद्देश्य

मानुषिक शासनके जालसे स्वतन्त्रता प्राप्त करना है। प्राचीन क्रान्तियोंका उद्देश्य नवीन क्रान्तिसे भिन्न था, इसलिये जो साधन पहले काममें लाये गये वे भी वर्तमान साधनोंसे भिन्न होने चाहिये। पहले पशुबलसे पशुबलका सामना किया जाता था, अब उस पशुबलसे हाथ खींचकर उद्देश्य प्राप्त करना होगा। सरकारोंके बिना जीवन-क्रम निश्चित करना होगा। प्राचीन क्रान्तियोंकी अपेक्षा नयी क्रान्तिमें भाग लेनेवाले भिन्न श्रेणीके हैं और उनकी संख्या भी अधिक है।

प्राचीन क्रान्तियोंमें उच्च श्रेणीके लोगोंने भाग लिया जो शारीरिक परिश्रम नहीं करते थे। नवीन क्रान्तिमें भाग लेनेवाले अधिकांश कृषक और श्रमजीवी होंगे। पहले क्रान्ति बड़े बड़े शहरोंमें हुई थी, अब ग्रामोंमें होगी। पहले समस्त जनसंख्यामेंसे १० या २० सैकड़ा आदमी ही क्रान्तिमें भाग लेनेवाले थे, परन्तु अब ८० या ९० सैकड़ा आदमी भाग लेंगे।

जो लोग इस समय क्रान्तिमें भाग लेनेके लिये हड़तालों, सभासमितियों, जुलूसों और यूनियनोंकी धूम मचाते हैं तथा हत्या करनेको तैयार हैं, वे क्रान्तिमें बाधा पहुचानेवाले और सरकारोंके मददगार हैं। इसलिये इस बातका बड़ा ध्यान रखना है कि लोग उद्धारका सच्चा मार्ग छोड़कर भ्रममें न पड़ जायें। लोगोंको दूसरोंकी नकल न कर इस समय आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये। दूसरोंके निश्चित कार्यक्रमको नहीं मानना चाहिये। वे केवल अपने ही अन्तःकरणसे उपदेश

ग्रहण करें। वे इस बातका अभिमान त्याग दें कि हम अमुक शासनकी मातहतीमें रहनेवाले नागरिक हैं और अपने अधिकारोंकी प्राप्तिकी चेष्टा कर रहे हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये इस समय यह काम या वह काम करना जरूरी नहीं, जिन कामोंमें सरकारें या क्रान्तिवादी या उदार दलवाले फंसाना चाहते हैं।

किसानोंको चाहिये कि वे कृषिजीवन व्यतीत करें और बिना किसी सङ्घर्षके सरकारी अत्याचार या मारकाट सहते रहें। वे केवल इस बातका ध्यान रखें कि सरकारकी कोई मांग स्वेच्छासे पूर्ण न की जायेगी। वे स्वेच्छासे कर न चुकायें और न सेना, पुलिस या जहाजी सेनामें नौकरी करें। इसी तरह वे किसी तरहकी मारकाटमें भी भाग न लें। किसान यदि जमींदारोंके विरुद्ध लड़ाई छेड़ेंगे, तो एक न एक तरहकी सरकार अवश्य स्थापित होगी जो उनपर अत्याचर कर सकेगी। सरकार यदि पशुबल-प्रधान होगी, तो वह जरूर ही लड़ाइयां छेड़ती रहेगी—चाहे वह प्रजातन्त्र ही क्यों न हो, जिस तरह युरोप और अमेरिकाकी सरकारें हैं। पशुबलप्रधान सरकारें जमीनको कभी सार्वजनिक सम्पत्ति न बनने देंगी। जनता जिस पशुबलसे कष्ट पा रही है, उससे छुटकारा पानेका एक ही उपाय है कि उसमें भाग लेकर उसका समर्थन न किया जाये। इस असहयोगके कारण अस्त्रशस्त्रकी धूम और लड़ाइयां बन्द न होंगी, जमीन भी सार्वजनिक सम्पत्ति बन जायेगी।

किसानोंको ऐसा उद्योग करना चाहिये, जिससे भावी क्रान्ति उन्हें लाभ पहुचा सके। शहरोंमें रहनेवाले व्यापारी, डाक्टर, लेखक, वैज्ञानिक, कारीगर इत्यादि इस बातका ध्यान रखें कि वे संख्यामें बहुत थोडे हैं। गांवोंमें रहनेवालोंकी संख्या उनसे कही अधिक है। नवीन क्रान्तिका उद्देश्य नयी शासनप्रणाली स्थापित करना नहीं जिसमें सब लोगोंका वोट हो। समस्त जनताका—अधिकांश जनताका जो गांवोंमें रहती है, उद्धार आवश्यक है। जनतापर किसी तरहका दवाव न रहना चाहिये। धन या जनकी मांग उससे जवर्दस्ती पूरी न करानी चाहिये और न उसे जमीनसे वञ्चितकर कुछ व्यक्तियोंको जमीं-दार बना देनेकी ही आवश्यकता है। इसके लिये नये ढङ्गसे उद्योग करना होगा। शहरवालोंको समझ लेना चाहिये कि नौविध वस्तुओंकी तरह क्रान्ति आज्ञा दे देनेसे ही तैयार नहीं हो सकती। एक सौ वर्ष पहले जो हो चुका है, उस नमूनेके अनुसार आज क्रान्ति नहीं हो सकती। क्रान्तिसे जनताको उसी समय लाभ पहुचता है जब कि वह वर्तमान जीवन-क्रमका अन्याय और हानि अनुभवकर नये सिद्धान्तोंपर अपना जीवन-क्रम निश्चित करे। नये उत्तम जीवनके नये आदर्शोंके बिना जनताका कल्याण नहीं हो सकता।

इस समय जो लोग युरोपीय देशोंके पुराने राजविद्रोहके अनुसार क्रान्ति कराना चाहते हैं वे कोई नया आदर्श नहीं रखते। वे एक पशुबलकी जगहपर दूसरे प्रकारका पशुबल स्थापित करना

चाहते हैं। वे पशुबलको प्राप्तिके लिये जोर-जुल्म काममें लाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि जनता इतना काम कर चुकनेपर भी अभीकी तरह सैनिक अत्याचार, कर-सम्बन्धी अत्याचार और जमीनसे वञ्चित होनेके अत्याचारसे पीड़ित बनी रहे।

जो क्रान्तिमें पशुबलसे भाग लेना चाहते हैं, वे ऐसा सङ्गठन तैयार करनेकी दुहाई देते हैं जो जनताकी बची हुई स्वतन्त्रता भी छीन लेगा। इससे स्पष्ट है कि उद्योग करनेवाले कोई नया आदर्श नहीं रखते। हमारे युगका आदर्श एक प्रणाली की जगह दूसरी नहीं, बल्कि उस प्रणालीका अन्त ही होना चाहिये जो मानुषिक शक्तिकी अधीनी न माननेसे उपस्थित हो जायेगा।

निर्धन जनता अपने कष्टोंका बोझ अपने शिरपरसे यदि उतार देना चाहती है, तो मनुष्योंकी आज्ञा माननी बन्द कर दे। शारीरिक और आत्मिक कल्याण एक ही उपायसे प्राप्त हो सकता है—चुपचाप पशुबलको सहने, उसमें भाग न लेने और अधिकारियोंकी आज्ञा न माननेसे काम चलेगा। शहरवाले यदि वास्तवमें अपने भाइयोंका हितसाधन करना चाहते हैं, तो गांवोंमें बसकर अपने भाइयोंके शारीरिक परिश्रममें भाग लें। वे लोगोंके धैर्य और परिश्रमको सीखे। उन्हें मारकाटके लिये उत्तेजित न करें जैसे कि अभी कर रहे हैं; बल्कि उन्हें यह सलाह दें कि वे पशुबलमें किसी तरह भाग न लें, किसी तरहकी

मानुषिक शक्ति न मानें, सरकारोंके नाश होनेपर जो प्रश्न उपस्थित होंगे, उन्हे हल करें।

(६)

यदि किसीको पुराने गिरते हुए मकानकी जगहपर नया मकान खडा करना है, तो उसे पुराने मकानकी दीवालकी एक एक ईंट और पत्थर उखाड फेंकना होगा और फिर नया मकान बनाना होगा।

जो लोग क्रान्तिके बाद भी सङ्गठन आवश्यक समझते हों, वे पहले सरकारोंके सङ्गठनका बिलकुल नाश कर दें और ऐसा सङ्गठन खडा करें, जो परस्परकी सहायताके आधारपर अवलम्बित हो।

बहुतसे लोग कहेंगे कि सरकारोंके न रहनेसे वह सभ्यता तो न रह सकेगी जो वर्षोंके उद्योगसे कायम हुई है। जो लोग इस सभ्यताकी रक्षाके लिये चिन्तित हैं, वे शहरोंके कुछ राजा, बादशाह, गवर्नर, व्यापारी, जमींदार, लेखक और धर्माचार्य हो सकते हैं। संसारके मनुष्योंका केवल दसवां भाग इस सभ्यता-का हिमायती है। बाकी आदमी सभ्यताकी जरा भी परवा न कर केवल जमीन, वर्षा, खाद, नहरें, जङ्गल और खेतोंके कुछ भाग चाहते हैं। वे जब सभ्यताको—शहरोंके अन्यायपूर्ण न्याया-लयों और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले जेलखानों, ऊंचे परन्तु अनावश्यक महलों, रङ्गभवनों, चीजोंके गमनागमनमे बाधा पहु-

चानेवाले चुड़ीघरों, तोप, बन्दूकों और सेनाओंको देखते हैं तो उन्हें अनावश्यक ही नहीं, हानिकारक भी मानते हैं।

सभ्यतासे जो लोग लाभ उठा रहे हैं वही चिल्लाते हैं कि वह तमाम मनुष्योंको लाभ पहुंचानेवाली है, परन्तु वे न तो जज हैं, न गवाह ही हैं, मुकद्दमेके असामी हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि वैज्ञानिक उन्नति इस युगमें अधिक हुई है, परन्तु उन्नतिके मार्गपर वास्तवमें कौन अग्रसर हुआ है? वही कुछ थोड़ेसे आदमी, जो दूसरोंके कन्धोंपर सवार हैं। बेचारे श्रमजीवी तो उसी तरह जीवन व्यतीत कर रहे हैं जिस तरह पांच सात सौ वर्ष पहले व्यतीत कर रहे थे। वे बेचारे तो बहुत ही कम सभ्यताके रद्दी भागसे लाभ उठा पाते हैं। यदि वे कुछ अच्छा जीवन व्यतीत करते हैं, तो उनका जीवन धनवानों के जीवनसे इतना भिन्न है जितना पांच सात सौ वर्ष पहले न था। मैं यह नहीं कहता कि चूंकि सभ्यतासे मनुष्योंका उपकार नहीं होता इसलिये प्रकृतिसे वर्षों युद्धकर जो वस्तुएं प्राप्त हुई हैं वे नष्ट कर दी जायें, परन्तु जब थोड़ेसे नहीं, अधिकांश आदमियोंको सभ्यतासे लाभ पहुचने लगे, तभी हमें उसे लाभदायक बताना चाहिये। यह आवश्यक है कि दूसरोंके लाभके लिये मनुष्योंका कल्याण नष्ट न किया जाये और वह इस आशामें कि वही लाभ किसी दिन उनकी सन्तानको प्राप्त हो जायेंगे।

जब हम मिश्रके स्मारकोंको देखते हैं, तब उन लोगोंकी निर्द तथा पागलपनसे भयभीत होते हैं जिन्होंने उन्हें खड़ा करने

की आज्ञा दी और जिन्होंने उन आज्ञाओंका पालन किया। शहरोंमें जो लोग दस और छत्तीस तल्लेका मकान बनवाते और उनके लिये अभिमान करते हैं, उनके सम्बन्धमें हमें क्या कहना चाहिये। चारों ओर हरी घासके मैदान, धूप, साफ हवा और पानी है, परन्तु लोग ऊंचे ऊंचे मकान बनवाकर दूसरोंको उस हवा, धूपसे वञ्चित कर देते हैं और भोजन भी गन्दा बना दिया जाता तथा जीवन स्वास्थ्यरहित बना दिया जाता है। इस प्रकारका अनर्थकर जो लोग लज्जित होनेकी जगह अभिमानी बनते हैं, वे पागल न कहे जाये तो क्या कहे जायें। मैंने एक उदाहरण दिया है। जरा निगाह डालकर देखो तो पता लगेगा कि इन्हीं छत्तीस तल्ले मकानोंकी तुलनामें क्या क्या मौजूद है।

सभ्यताके समर्थक बड़ी भूल यह करते हैं कि वे सभ्यताको साधन न मानकर जीवनका उद्देश्य मान लेते हैं और उसे सदा लाभदायक ही समझते हैं। सभ्यता लाभदायक हो सकती थी यदि समाज-शासक अच्छे होते। गेसोंसे चट्टानें तोड़ी जाती हैं इसलिये वे मार्ग तैयार करनेमें लाभदायक हैं, परन्तु बमोंमें वे हानिकारक हैं। लोहा हलोंमे लगनेसे लाभ पहुचाता है, परन्तु गोले और जेलखानोंकी देहियोंमें हानिकारक है।

समाचारपत्र अच्छे अच्छे विचारोंका प्रचार कर सकते हैं। परन्तु वे बुरी और झूठी बाते और भी अधिक सफलतासे फैला सकते हैं। सभ्यता अच्छी है या बुरी, यह इस विचारसे जाना जा सकता है कि किसी समाजमें भलाई अधिक है या बुराई

ज्यादा है। वर्तमान समाजमें थोड़े आदमी ज्यादा आदमियोंको दवाये हुए हैं इसलिये सभ्यता बुरी है। शासन करनेवालोंको अत्याचार करनेके लिये वह एक और अधिक अस्त्र प्राप्त है।

उच्च श्रेणीके मनुष्योंको अब समझ लेना चाहिये कि जिसे वे सभ्यता कहते हैं वह उस गुलामीका कारण और फल है जिसमे अधिकांश श्रमजीवी फंसे रहते हैं।

हमारा उद्धार पुराने मार्गपर चलनेसे न होगा। हमे यह बात स्वीकार करनी होगी कि हम ठीक रास्तेपर नहीं चले। हम ऐसे दलदलमें भी फंस गये हैं कि उससे निकलना जरूरी है। हमें उन अनावश्यक वस्तुओंको अपने ऊपरसे दूर फेककर किसी तरह मजबूत चट्टानपर पहुच जाना चाहिये।

बुद्धिमत्तापूर्ण और उत्तम जीवन मनुष्योंके लिये वही होगा जो बुद्धिमत्तापूर्ण और उत्तम कार्य करनेमे व्यतीत किया जाये। मनुष्योंके सामने इस समय दो मार्ग है। या तो वे उस सभ्यताको जारी रखे जो कुछ थोड़ेसे आदमियोंको लाभ पहुचानेवाली और अधिकांशको कष्टमें रखनेवाली है या बिना विलम्ब सभ्यताके उन लाभोको त्याग दें जो अधिकांशको गुलामीसे छुटकारा नहीं पाने देते।

(१०)

आजकलके लोग कहते हैं कि हमें लिखने, बोलने और एकत्र होनेकी स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये। इसका यह अर्थ है कि वे स्वतन्त्रताके उस सरल रूपसे परिचित नहीं, जिसके कारण

एक मनुष्यको दूसरे मनुष्यकी आज्ञाका पालन ही अपनी इच्छाके विरुद्ध नहीं करना पड़ता।

भयानक भूल यही हो रही है कि लोग स्वतन्त्रताके सीधे-सादे रूपको ही नहीं समझते और स्वतन्त्रताके नामपर दूसरोंसे कुछ अधिकार मांगते हैं। इस भूलका यह कारण है कि लोग समझते हैं कि पशुबलप्रधान सरकारोंके प्रति वर्तमान भक्ति प्रकट करना स्वाभाविक है और उनसे जो कुछ प्राप्त हो जाये, इसीका नाम आजादी है। इसका यह अर्थ है कि यदि किसी गुलामको किसी दिन बाजार या देवमन्दिरमें जानेकी स्वतन्त्रता मिल जाये, तो वह कहने लगे कि मुझे स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी। क्या इस प्रकारकी आज्ञा पा लेनेसे गुलाम अपनेको स्वतन्त्र मानने लगेगा?

लोगोंको एक क्षणके लिये पुराने जमानेसे जारी रीतिरिवाज और अन्धविश्वासको तावापर उठाकर रख देना चाहिये और फिर अपनी अवस्थापर विचार करना चाहिये। चाहे निरंकुश सरकारकी मातहतीमें रहनेवाला व्यक्ति हो या प्रजातन्त्र सरकारका आदमी हो, वह उस भयङ्कर गुलामीका अनुभव करने लगेगा जिसमें आजकल रह रहा है।

प्रत्येक व्यक्तिके ऊपर कुछ व्यक्तियोंका दल रहता है जिनसे वह परिचित नहीं होता। वह चाहे जहां उत्पन्न हुआ हो, यही दल उसका जीवन-क्रम निश्चित करता है। कानून बने हुए हैं कि कोई व्यक्ति किस तरह और कब विवाह करे, कब

अपनी स्त्रीका परित्याग कर सकता है, किस तरह वह अपने बच्चोंका पालन कर सकता है, किन धन्धोंको वह कानूनी और किन्हें गैरकानूनी समझे, किसकी सम्पत्तिका वह किस तरह अधिकारी बन सकता है, अदालतोंमे किस तरह हाजिर हो सकता है, किस तरहके आदमियोंसे कितने घण्टे हर रोज काम लेकर उन्हें क्या खानेको दे सकता है, अपने बच्चोंको रोगसे बचानेके लिये वह उनके कब टीका लगवाये, अपने बच्चोंको कहा पढ़नेके लिये भेजे, किस तरहका मकान बनवाये, किस तरह पानी काममें लाये इत्यादि। इन सब कानूनोंको न माननेसे दण्डकी भी व्यवस्था है। इतने कानून सब कोई जान नहीं सकता, परन्तु उनका न जानना निर्दोषितामें शामिल नहीं। जो उन्हें भङ्ग करनेवाला दिखाई देगा, उसे दण्ड मिलेगा। जो कोई आदमी खानेपीनेका जरूरी सामान खरीदेगा, उसे उस सामानके लिये कुछ अधिक मूल्य देना होगा जो ऐसे कामोंमें व्यय किया जायेगा जिनका उसे पता भी न हो। किसी दलने यदि उसके पितामह या प्रपितामहके समय किसीसे कर्ज लिया होगा, तो उस कर्जको अदा करनेके लिये उसे अपने परिश्रमके फलका कुछ अंश देना होगा। यही नहीं, यदि वह जमीन जोत बोकर अपना निर्वाह करना चाहेगा, तो उसे अपनी मिहनतका बहुतसा भाग दूसरोंके हवाले करना होगा। वह अपनी अवस्था न सुधार सकेगा, परन्तु उसे हर तरहके कर जरूर ही चुकाने होंगे।

कुछ देशोंमें तो इससे भी अधिक गुलामी है। किसी निश्चि

अवस्थामें प्रत्येक युवकको अपना घरद्वार, परिवार त्यागकर सेनामें अवश्य ही भर्ती होना पड़ेगा और समय आनेपर लड़ाईमें भी अपनी इच्छाके विरुद्ध जाना होगा। कुछ देशोंमें दूसरे आदमी भी लडनेके लिये किराया चुकाकर भेजने होंगे। इसपर भी मजा यह है कि लोग अभिमान करते हैं कि हम अमुक देशके स्वतन्त्र नागरिक हैं। ये लोग अपनी सरकारोंके उसी तरह अभिमानी हैं जिस तरह कोई साईस या कोचवान या पालकी ले जानेवाला अपने स्वामीके बडप्पनका अभिमान करनेवाला हो।

जिस मनुष्यका आत्मिक पतन नहीं हुआ, वह अपनेको इस घृणित गुलामीमें पाकर अवश्य ही कहेगा कि मैं अपनी इच्छाके अनुकूल उत्तम जीवन व्यतीत करना चाहता हूं। मैं अपने आप इस बातका निश्चय करूंगा कि मेरे लिये उत्तम जीवन क्या है। मुझे इन सरकारोंकी कुछ भी परवा नहीं। जबर्दस्ती मुझसे जो चाहे छीन ले जाये, मुझे मार भी डाले, परन्तु स्वेच्छासे मैं कभी इस गुलामीमें भाग नहीं ले सकता। ऐसा करना स्वाभाविक भी होगा, परन्तु आश्चर्य है कि इस तरह कोई काम नहीं करता।

किसी न किसी सरकारकी मातहतीमें रहनेका भाव इस हदतांक लाख मनुष्योंके हृदयमें स्थान पा गया है कि लोग अपनी बुद्धि या अन्तःकरणके अनुकूल काम ही नहीं कर सकते। वे अपने लाभका ध्यान रखकर कोई काम नहीं कर सकते। इस भावके कारण ही लोग गुलामीसे छुटकारा नहीं पाते और उन

चिड़ियोंकी अवस्थामें हैं, जो पिंजड़ेका द्वार खुला रहनेपर भी उनके भीतरसे बाहर नहीं आतीं। वे या तो अपनी आदतके कारण भीतर बैठी रहती हैं या यह समझती हैं कि आजाद नहीं। लोगोंकी यह भयानक भूल उन देशोंमें विशेष उल्लेखनीय है, जहांपर कृषिजीवन व्यतीत करनेका पूरा सुभीता है—जैसे कि जर्मनी, भारत और रूस आदि हैं। इन देशोंके लोगोंको तो स्वेच्छा से गुलाम बने रहनेमें कोई लाभ ही नहीं।

शहरके लोगोंका हित तो शासकोंके हितसे जुड़ा हुआ है, इसलिये वे तो गुलामीमें अवश्य ही रहेंगे। धनकुबेर राकफेलर भला कानून क्यों न माने, जब कि कानूनोंकी सहायतासे ही वे अरबों रुपया पा रहे हैं और उन्हें सुरक्षित समझते हैं। उनके कारखानोंके सञ्चालक, उन सञ्चालकोंके नौकर और इन नौकरोंके नौकर ही कानून माने विना नहीं रह सकते। शहरके अधिकांश लोगोंका यही हाल है। ये लोग किसानोंकी गुलामीसे लाभ उठा रहे हैं, फिर सरकारोंके कानूनोंसे किसानोंको गुलामीके फन्देमें रखनेका समर्थन क्यों न करें।

कृषिजीवन व्यतीत करनेवाले परिवारोंका सरकारी गुलामीसे क्या लाभ है जो वे अपनी कमाई और आदमी सरकारोंके हवाले करें? वे क्यों ऐसे कानून माने जो उन्होंने नहीं, दूसरोंने बनाये हैं? उनसे यदि यह कहा जाता है कि वे ऐसा करते हुए अपने ही कानून मान रहे हैं क्योंकि उन्होंने शासनके लिये प्रतिनिधि

हैं, तो वे इस धोखेमें क्यों आते हैं?

किसी भी सरकारका मातहत रहकर मनुष्य कभी स्वतन्त्र
नीं हो सकता । जितनी बड़ी सरकार होगी, उतना ही अधिक
का पशुबल होगा और उतनी ही कम स्वतन्त्रता होगी।
त्र जातियोंको एक सङ्गठनके मातहत रखनेके लिये विशेष
शुबलकी आवश्यकता है। छोटी सरकारोंको यद्यपि विशेष
शुबलकी आवश्यकता नहीं होती, परन्तु वहांके अधिवासी
धिकारियोंकी इच्छाके विपरीत काम करना और भी कठिन
ते हैं। इसलिये बड़ी सरकारोंकी तरह वहां भी आजादी
ी। जबतक सरकारें हैं और उन सरकारोंके अस्तित्वके
ये पशुबल है, तबतक वह स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त हो सकती जो
स्वाधीन समझमें आ जाती है। सरकारोंके अभावमें लोग
तन्त्रतासे वञ्चित किये जा सकते हैं, परन्तु सरकारोंके रहते
ए स्वतन्त्रताका अस्तित्व ही सम्भव नहीं।

जिस तरह कोई आदमी हथकड़ी बेड़ियां पसन्द नहीं करता
ाहे वे सोनेकी ही क्यों न बनी हों, उसी तरह किसी तरहकी
ासनप्रणाली पसन्द नहीं आनी चाहिये। किसी देशको अपनी
तन्त्रता दूसरे देशसे अलग रखनेकी जरूरत नहीं, जरूरत इस
ानकी है कि स्वतन्त्रता वास्तवमें हो।

बहुधा देखा गया है कि जो बात बड़ी कठिन मालूम होती
ै, वह बहुत ही आसानीसे हल हो जाती है। स्वतन्त्रता पानेके
लिये अब किसी सरकारसे लड़नेकी जरूरत नहीं। न इस
ातकी ही जरूरत है कि सरकारी गुलामी छिपानेके लिये किस

तरहकी शासनप्रणाली स्थापित की जाये। स्वतन्त्रता पाने लिये केवल एक सरल मार्गका अवलम्बन करना है—सरकारी कानून न माने जायें।

लोग केवल सरकारोंकी आज्ञा मानना छोड़ दें। फिर तो उन्हें किसी तरहका कर ही चुकाना पड़ेगा, न उनकी ज़मीन ही छिनेगी, न सेनामें ही भर्ती होना पड़ेगा और न लड़ाइयां होंगी। यह कितनी सीधी बात है! लोगोंने तब उसे अबतक क्यों नहीं माना या अब भी क्यों नहीं मान रहे हैं?

इसका यही कारण है कि जो मानुषीय आज्ञा नहीं मानना चाहता, उसे परमेश्वरकी आज्ञा माननी होगी यानी धार्मिक जीवन व्यतीत करना होगा। दूसरे, जितना ही मनुष्य ईश्वरकी आज्ञा मानता जायेगा वह उतना ही कम मनुष्योंकी आज्ञा मानेगा और स्वतन्त्र हो जायेगा। मनुष्योंकी आज्ञा तभी न मानी जायेगी जब कि ईश्वरीय आज्ञाका पालन किया जाता हो, जो सब मनुष्योंके लिये समान है। जो ईश्वरीय नियम यानी परस्परकी सहायताके सिद्धान्तको नहीं मानता, उसे बाध्य होकर सरकारी आज्ञा माननी होगी, जिस तरह कि दूसरोंकी मिहनतसे लाभ उठानेवाले धनी आदमी मानते हैं। जो जितना ईश्वरीय नियम मानेगा, वह उतना ही स्वतन्त्र होगा। शहरोंमें रहनेवालेोंके लिये ईश्वरीय नियमका पालन कठिन ही नहीं—असम्भव है, क्योंकि उन्हें दूसरे आदमियोंसे प्रतिद्वन्द्विताकर सफलता प्राप्त करनी है। जो लोग प्रकृतिसे युद्धकर कृषिजीवन

व्यतीत करनेवाले हैं, वे ईश्वरीय नियम मान सकते हैं। इसलिये जो लोग स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहेंगे, उन्हें ग्रामोंका कृषिजीवन व्यतीत करना होगा, जिस जीवनमें पारस्परिक सहायताके सिद्धान्तपर बनाये हुए न कि पशुबलपर ठहरे हुए कानून काममें आयेंगे।

भावी क्रान्ति इसी ढङ्गसे हो रही है। हम यह नहीं जानते कि वह किस किस मार्गसे होकर उपस्थित होगी, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसकी उपस्थितिके लक्षण प्रकट हो रहे हैं। मनुष्यका जीवन यही है कि जो वस्तु भूतकालमें छिपी हो, वह प्रकट होती जाये और अपने पुराने मार्गका असली या नकली रूप प्रकट होता जाये। पुराने जीवन-क्रमका मिथ्या स्वरूप प्रकट हो चुकनेपर नया क्रम स्थापित करना और उसके अनुसार काम करना ही जीवन है। पुरानी दशासे उन्नति कर लेनेका नाम जीवन है। इस उन्नतिके साथ ही साथ मनुष्यको पुरानी भूलोंका ज्ञान होता जाता है और वह उनसे मुक्ति पानेकी चेष्टा करता है।

जीवनका कोई ऐसा विभाग आता है जब कि मनुष्यको पुरानी भूलोंका ज्ञान अचानक हो जाता है और इन भूलोंको मिटानेका उद्योग सामने आ जाता है। यही क्रान्तिका समय कहलाता है। इस समय यही बात देखनेमें आ रही है।

मनुष्य बहुत दिनोंतक पशुबलप्रधान कानूनोंको मानते रहे। इसके बाद सुधारकोंने उन्हें बताया कि पारस्परिक सहायताके

सिद्धान्तको मानकर जीवन व्यतीत करना चाहिये; परन्तु, सिद्धान्तके अनुसार काम न हुआ, क्योंकि लोग पशुबल आ... समझते रहे। इसी कारण जीवनके अपराध बढ़ते चले। कुछ आदमियोंका सुख और अधिकांशका दुःख बढ़ता गया।

इधर यह भेद बहुत ज्यादा बढ़ा और उन देशोंके लोगो उसका विशेष अनुभव हुआ जो कृषिजीवन त्यागकर सर... बिछाये हुए जालमें फंस गये, जिसका नाम स्वायत्तशासन है ये लोग अपने उद्धारका मार्ग इधर उधर देखने लगे। ... सबकी आजमाइश की, परन्तु एक सीधी बात न मानी कि आप को सरकारोंके जालसे छुड़ाया जाये। किसी प्रकारकी स... कारकी आज्ञा न मानी जाये।

रूसमें कृषिजीवन अधिक होनेके कारण इस देशने ... पहले नयी क्रान्तिका स्वागत किया। क्रान्ति यद्यपि रूसमें उपस्थित हुई, परन्तु उससे कोई देश बच नहीं सकता। ... जिस मायाजालका ज्ञान हुआ है, उसका अनुभव सभी देश करेंगे बड़ी बड़ी सरकारोंके पशुबलमें भाग लेना स्वाधीनता स... नयी है, परन्तु यह गुलामी है और इस गुलामीके कारण जनता के कष्ट बढ़ गये हैं। यही कष्ट एक दिन सबको इस बातका अनुभव करायेंगे कि सरकारोंकी आज्ञा न मानी जाये। सरकारोंकी आज्ञा न माननेसे उनका नाश बड़ी आसानीसे हो जायेगा।

नयी क्रान्तिके लिये लोगोंको समझ लेना चाहिये कि सरकार, पितृभूमि आदि सब नकली वस्तुएं हैं और जीवन तथा सच्ची स्वतन्त्रता असली चीजें हैं। नकली चीजोंके लिये असली चीजोंको नष्ट न करना चाहिये। असली चीजोंके लिये मनुष्योंको सरकारोंपर अन्धविश्वास न रखना चाहिये और इस अन्धविश्वासके कारण मनुष्योंकी आज्ञा माननी पडती है उसे न मानना चाहिये।

राष्ट्र और अधिकारियोंके प्रति इस बदले हुए रुखको प्रकट करना ही युगान्तर है।

* श्री *

पुस्तकोंका नक्शा

सूचीपत्र

'विश्वमित्र' कार्यालय,

२१-१ हेमर लेन, कलकत्ता।

नियम और सूचनाएं।

१। पुस्तकोंके दाम नकद लिये जाते हैं। बिकी हुई पुस्तक वापस नहीं ली जाती है।

२। सार्वजनिक सभाओं तथा थोक खरीदारोंको २५) से अधिककी पुस्तकें लेनेपर उचित कमीशन दिया जाता है।

३। एक रुपयेसे कमका वी० पी० नहीं भेजा जाता। इससे कम दामकी पुस्तकें मंगानेवालोंको पुस्तकोंका दाम डाकव्यय सहित टिकटके रूपमें भेजना चाहिये।

४। पुस्तकोंका आर्डर देते समय पत्र हिन्दी या अंग्रेजीमें साफ साफ पते ठिकानेके सहित लिखना चाहिये।

५। वी० पी० में किसी प्रकारकी भूल जान पड़े तो वी० पी० वापस न कर हमें फौरन् लिखना चाहिये। लिखनेपर भूल सुधार दी जाती है।

६। यदि पुस्तकें रेलवेद्वारा मंगाना हो तो पासके रेलवे स्टेशनका नाम भी लिखना चाहिये।

७। अधिक पुस्तकें मंगानेवालोंको चौथाई रुपया पेशगी भेजना चाहिये।

८। पुस्तकें समयपर स्टाकमें नहीं भी रहती हैं। पुस्तकोंका मूल्य घटबढ़ भी सकता है।

९। यदि आर्डर भेजे १० दिन हो जायें और पुस्तकें या कोई उत्तर न मिले तो दूसरा आर्डर भेजना चाहिये।

मैनेजर,

'विश्वमित्र' कार्यालय,

कलकत्ता।

उत्तमोत्तम और शिक्षाप्रद पुस्तकोंका

सूचीपत्र

पञ्जाब-हत्याकाण्ड।

६ रोमाञ्चकारी चित्रोंसे सुसज्जित।

मार्शल-लाके दिनोंमें पञ्जाबके भाइयोंपर किये गये भयङ्कर अत्याचारोंका पूरा वर्णन यदि आप जानना चाहते हैं, तो इस पुस्तकको अवश्य मंगाकर पढ़िये। इसके पढ़नेसे आपको पता लगेगा, कि किस प्रकार सरेआम लोगोंके कोड़े लगाये गये, उन्हें पेटके बल रेंगनेको बाध्य किया गया तथा भले घरकी बहू-बेटियोंकी इज्जत खराब की गयी। प्रत्येक भारतवासीका कर्तव्य है कि वह इस पुस्तकको एक बार अवश्य पढ़े। हण्टर कमेटी और कांग्रेस कमेटीकी रिपोर्ट भी इसमें शामिल है। सर्वसाधारणके सुभीतेके लिये २०० पृष्ठोंकी पुस्तकका दाम केवल १) ही रखा गया है। महात्मा गान्धीका आदेश है कि प्रत्येक भारतवासी पञ्जाबकी घटनाओंका परिचय प्राप्त करे, इसीलिये यह पुस्तक इतने कम दाममें मिलती है। वास्तवमें इस पुस्तकको पढ़कर शायद ही कोई ऐसा अभागी भारतवासी हो जो देशको स्वतन्त्र करनेके पवित्र कार्यमें उत्साह दिखानेको तयार न होगा।

स्वराज्य संग्राम।

स्वराज्य और खिलाफतके सम्बन्धमें महात्मा गान्धीने समयपर जो प्रभावशाली लेख लिखे तथा अधिकारियोंकी परता और सङ्कीर्णनीतिकी जिस जोशीली भाषामें निन्दा वह भारतके वर्तमान इतिहासमे उल्लेखनीय बात समझी जाये महात्माजीके लेखोंका हिन्दी अनुवाद स्वल्प मूल्यमें सर्वसाधार को प्राप्त हो इसी उद्देश्यसे यह पुस्तक तैयार की गयी पुस्तककी भाषा इतनी सरल रखी गयी है कि साधारण ज्ञान रखनेवाले भी उसे बड़ी आसानीसे समझ सकते सुन्दर एण्टीक पेपरपर छापी गयी है और मुखपृष्ठपर महात्मा का चित्र भी दे दिया गया है। पुस्तकका मूल्य केवल आठ आना है।

राष्ट्रीय सिंहनाद।

यह क्या पुस्तक है। निर्जीव आत्माओंमे भी जान देनेवाली चुनी हुई जोरदार हिन्दी उर्दू कविताओंका अपूर्व है। इसे पढ़नेसे आपका दिल एक बार अवश्य ही फड़क उठे 'कृषक विलाप' पढ़ते ही भारतकी वर्तमान दुर्दशाका जागता चित्र आंखोंके सामने उपस्थित हो जायेगा। 'व मातरम्' गायन पढ़कर हृदयमे देशभक्तिकी तरंगें उत्पन्न जायेंगी। 'असहयोग', 'चरखा' और 'कारावास'के गान प स्वावलम्बनके भाव जागृत हो उठेंगे। पुस्तक सामग्र

और शिक्षाप्रद कविताओंसे परिपूर्ण है। 'हिन्दी बंगवासी' आदि पत्रोंने इस संग्रहकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है और हिन्दी पाठकोंसे अनुरोध किया है कि वे इसे पढ़कर अपना चित्त प्रफुल्लित करें। हिन्दी उर्दूके प्रायः सभी सुकवियोंकी कविताका स्वाद चखनेको मिल जायेगा। एण्टीक कागजपर छपी हुई तीन सौ पृष्ठकी सुनहली बढ़िया जिल्द बंधी पुस्तकका मूल्य २) है।

जेलके यात्री।

भारतके वर्तमान राजनीतिक क्षेत्रमें जिन जिन नेताओंने कार्य कर जेलयात्रा की है उनका जीवनचरित्र, जेलके अनुभव आदि बातें जाननेके लिये हिन्दी पाठक बड़े उत्सुक रहते हैं। एक एक नेताकी जीवनी अलग अलग मंगानेसे आठ आना, बारह आना और एक रुपया खर्च हो जाता है। डाक महसूल भी अधिक लग जाता है। इस असुविधा और अपव्ययको दूर करनेके लिये वर्तमान पुस्तकमें लोकमान्य तिलक, योगी अरविन्द, महात्मा गान्धी, पञ्जाबकेशरी ला० लाजपतराय, अहमदाबाद कांग्रेसके निर्वाचित अध्यक्ष देशबन्धु दास, मुसलमानोंके हृदयसम्राट अली भाई, पूज्यपाद पण्डित मोतीलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, डा० किचलू, बङ्गालके तपस्वी [illegible] श्यामसुन्दर चक्रवर्तीका जीवन विस्तारपूर्वक दे दिये गये हैं। प्रत्येक नेताके जीवनकी उल्लेखनीय घटनाका

समावेश इस पुस्तकमें किया गया है। नेताओंने ...
रहकर जो कष्ट सहे उनका भी उल्लेख इस पुस्तकमें किया
है तथा नेताओंके जोरदार सन्देश भी दे दिये गये हैं। ...
सामग्री देनेके बाद पुस्तकमें एक दर्जनके लगभग चित्र भी
जिससे पुस्तक संग्रह करने योग्य बन गयी है। पुस्तक ...
और लाभदायक होनेपर भी सर्वसाधारणको केवल १) में ...
है। पृष्ठसंख्या तीन सौसे भी अधिक होनेपर भी इतना ...
दाम केवल प्रचारकी दृष्टिसे रखा गया है। अब हिन्दी ...
अपने आराध्य नेताओंकी जीवनी अलग अलग न मंगाकर
इसी एक पुस्तकको मंगाकर पढ़ लेना चाहिये। उनका उ...
पूर्ण हो जायगा। महान् पुरुषोंकी जीवनीमें जादूकी शक्ति
करती है। मनुष्यके चरित्रपर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है
इसलिये इस पुस्तकको अवश्य पढ़ना चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीता।

भला ऐसा कौन भारतवासी होगा जो अपने पवित्र
गीताकी एक प्रति अपने घरमें रखनेकी इच्छा न रखता हो।
साधारण हिन्दीका ज्ञान रखनेवाले भी इसके गूढ़ अर्थको समझ
कर लाभ उठावें इसी उद्देश्यसे प्रत्येक श्लोकके नीचे उसका
सरल अर्थ भी दिया गया है। सुन्दर जिल्द बंधी पुस्तक केवल
में मिलती है।

गुलामीसे उद्धार।

जबसे भारतमें महात्मा गांधीने अहिंसात्मक असहयोग आरम्भ किया है लोगोंका ध्यान रूसके सुप्रसिद्ध असहयोगाचार्य महात्मा टालसटायकी ओर गया है, क्योंकि पशुबलसे स्थापित सरकारोंके प्रति अहिंसात्मक असहयोग करनेकी बात इन्हीं दार्शनिकने बड़ी अपूर्व युक्तियां पेश कर कही है। महात्मा गांधीने इनके विचारोंका प्रचार भारतमें अपने तपोबलसे कर दिखाया है। सरकारोंकी पोल महात्मा टालसटायने बड़े अपूर्व ढङ्गसे खोली है और वर्तमान गुलामीके अनेक कारण बड़े ही उत्तम ढङ्गसे बताये हैं। उनकी दलीलें बड़ी ही मनोरञ्जक मालूम होती हैं और उनकी लेखनशैली भी बड़ी जोरदार है। सरकारें स्वार्थसाधनके लिये जिन गुप्त उपायोंसे अनर्थ किया करती हैं उनका उल्लेख महात्मा टालसटायने बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें किया है। उन्होंने गुलामीसे उद्धार पानेके लिये अनेक उपाय बताये हैं। प्रस्तुत पुस्तकमे उनके अनेक लेखोंका संग्रह दे दिया गया है। साथ ही उनका संक्षिप्त जीवनचरित्र और चित्र भी जोड़ दिया गया है। महात्मा गांधीने भारतीयोंसे अनुरोध किया है कि वे टालसटायके इस ग्रन्थका अवश्य ही अवलोकन करें। अनुवादकी भाषा बड़ी सरल रखी गयी है और लेखकके मूलभावोंकी रक्षा की गयी है। पुस्तक वास्तव-में अपने ढङ्गकी निराली ही हुई है। दाम केवल १) । प्रत्येक

अध्यवसायीको यह किताब अवश्य पढ़ना चाहिये। महात्माजीकी कार्य-प्रणालीका पता इस पुस्तकके अध्ययनसे भली भांति लग जावेगा। भारत विरोधी गोरे पत्र इस बातसे बहुत बिगड़े हैं कि टाल्सटायके लेखोंके अनुवादोंका प्रचार भारतमें हो रहा है।

मेवाड़-गौरव।

हिन्दूसूर्य प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रतापकी जन्मभूमि मेवाड़का इतिहास भारतवासियोंके गौरवकी वस्तु है। एक महाराणा प्रतापका ही नहीं, उनके पूर्वजों और कई उत्तराधिकारियोंका शासनकाल अनेक उल्लेखनीय घटनाओंसे भरा हुआ है इसलिये जिन लोगोंने महाराणा प्रतापका जीवन पढ़ लिया है वे यह न समझें कि मेवाड़में स्वाधीनताप्रेमी यही एक वीर हुआ है। परन्तु पुस्तक पढ़ लेनेसे पता लगेगा कि मेवाड़ने कैसे कैसे वीर नरनारियोंको जन्म दिया। किस तरह महाराणाओंने [illegible] अपने [illegible] पुत्रोंका बलिदान कर दिया, किस तरह [illegible] प्रेरित होकर भीलोंने पेड़की छाल खायी। स्त्रियोंने किस तरह शस्त्र धारणकर मातृभूमिकी रक्षा की। वीर सरदारने किस तरह अपनी स्त्रीका कटा हुआ सिर गलेसे बांधकर [illegible] शुरू किया और कटे हुए सिरने किस तरह युद्ध जारी [illegible]। इस पुस्तकका एक एक पृष्ठ प्रभावोत्पादक घटनासे परिपूर्ण है। पुस्तक एक बार आरम्भ कर देनेसे उसे समाप्त [illegible] बिना [illegible] है। निर्जीव आत्मा जागृत हो जाती

है और भारतीयोंका आदर्श स्वातन्त्र्यप्रेम आंखोंके सामने नाचने लगता है। मेवाड़का भ्रमणकर बड़ी खोज और धनव्ययसे पुस्तक तैयार की गयी है और कई मनोहर चित्र भी दे दिये गये हैं। इसपर भी पुस्तकका मूल्य १) ही रखा गया है। भारतीय गौरवका नकशा इस पुस्तकमें जगह जगहपर मिलता है।

युगान्तर प्रदीपिका।

संसारमें सुख-शान्तिसे जीवन बिताना बड़ा ही दुर्लभ है। जिसके पास धन नहीं वह रातदिन दुखी रहता है और जिनके पास धन है वह भी चिन्तापूर्ण जीवन व्यतीत करता है। बहुतसे आदमी यह नहीं जानते कि आनन्द लाभ किस तरह होता है। देशके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, सम्मिलित जिम्मेदारी किस चीजका नाम है, सरकारका सङ्गठन देशोपयोगी होनेके लिये किस ढङ्गका होना चाहिये और स्वाधीन नागरिकके क्या कर्तव्य हैं, देशकी खोयी हुई स्वतन्त्रता किस तरह प्राप्त हो सकती है इत्यादि बहुतसी बातोंका साधारण ज्ञान न होनेसे मनुष्य अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर सकता। संसारी अनुभव न रहनेसे अनेक कष्ट झेलता है। प्रस्तुत पुस्तक इसलिये तैयार की गयी है कि लोग देशकालके अनुसार उत्तम जीवन व्यतीत कर सकें, अनेक राजनीतिक प्रश्नोंको सरलतासे हल कर सकें और नाना प्रकारके धर्मोंको स्पष्ट रूपसे समझकर संसारमें ... कर सके। अनेक पुस्तकोंकी छानबीन तथा अध्ययनके

अनन्तर यह समयोपयोगी पुस्तक तैयार की गयी है जिसे पढ़कर देशवासी अवश्य प्रसन्न होंगे। पुस्तक इस ढङ्गसे लिखी गयी है कि वह उपन्यासकी भांति पढ़ी जाती है और गम्भीर विषयोंको पढ़नेपर भी मानसिक थकावट नहीं होती। पुस्तकका मूल्य १)।

रमता योगी

अथवा

हास्यजनक शिक्षाप्रद लेखोंका संग्रह।

'विश्वमित्र पत्रके पाठक 'रमता योगी' पढ़कर बड़े प्रसन्न हुआ करते हैं, क्योंकि हास्यजनक व्यङ्गपूर्ण ढङ्गसे शिक्षाप्रद मार्मिक बात कही जाती हैं। गम्भीर विषय बहुत थोड़े आदमियोंको पसन्द आया करता है, परन्तु हास्यजनक लेख अधिकांश मनुष्य पसन्द करते हैं। विलायतमें पडीसनके व्यङ्गपूर्ण लेखोंका बड़ा भारी प्रचार हुआ और उसकी पुस्तक लाखोंकी संख्यामें बिकी। वर्तमान पुस्तक इसी शैलीपर लिखी गयी है और देशकी अनेक कुरीतियोंपर प्रकाश डाला गया है तथा कुरीतियोंकी अच्छी तरह खबर ली गयी है। पुस्तक आदिसे अन्ततक शिक्षाप्रद है। पुस्तक पढ़ते ही उदासी कोसों दूर भाग जायेगी और चित्त प्रफुल्लित होनेके साथ ही हृदयपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा। अनेक पाठकोंके अनुरोधसे पुस्तक तैयार की गयी है। मूल्य एक रुपया।

भारतीय विद्रोह

अथवा

बृटिश शासनके विरुद्ध राजनीतिक षड्यंत्रोंका इतिहास।

यह पुस्तक हिन्दी संसारमें सर्वथा नवीन है। पुस्तकमें बताया गया है कि बृटिश शासनको जड उखाड़नेके लिये भारत और विदेशोंमें किस तरह षड्यन्त्र रचे गये। बम फेंककर किस तरह अधिकारियोंको भयभीत किया गया। लन्दनमें किस तरह केन्द्र स्थापितकर कार्य किया गया। ला० हरदयालने भारतमें गदर करानेके लिये किस तरह उद्योग किया। बड़े लाट लार्ड हार्डिंजपर किस तरह बम फेंका गया। सावरकर किस तरह जहाजसे समुद्रमें कूदकर भागे और उन्होंने क्या क्या कार्य किया। कलकत्तेमें किस तरह युगान्तरका प्रचार हुआ और बङ्गालमें गुप्त समितियोंकी स्थापना किस तरह हुई और दिनदहाडे आम सड़कोंपर, हाईकोर्टमें और घर बैठे हुए पुलिसअधिकारियोंका खून किस तरह किया गया। नावोंपर सवार होकर किस तरह डाके डाले गये और लाखों रुपया एकत्र किया गया। खुदीराम बोस क्यों फांसीपर लटकाये गये और जेलके अस्पतालमें कन्हाईलाल दत्तने नरेन गोसाईंकी हत्या किस तरह की। जर्मन युद्धमें [illegible]ने भारतीयोंके साथ क्या क्या षड्यन्त्र रचे और मुसल

मान्होंने क्या क्या काम किये इत्यादि बहुतसी मनोरञ्जक बातें सन् १९०० से सन् १९१८ तककी बड़े अच्छे ढङ्गसे दी गयी हैं। कालेपानीमें भारतीयोंको जो भीषण कष्ट सहने पड़े, उनका भी वर्णन है। भारतीयोंने वहांपर किस तरह तीन-तीन और पांच-पांच महीने अन्न न खाकर बिताये जो संसारभरमें अभूतपूर्व घटना है। कालेपानीके यात्रियोंका चित्र जेलकी पोशाकमें ही बड़े प्रयत्नके बाद लेकर दिया गया है तथा और भी चित्र देकर पुस्तक मनोहर बनायी गयी है। यह सब होनेपर भी पुस्तकका दाम केवल १) रखा गया है। जो इस पुस्तकको न पढ़ेगा वह अवश्य पछतावेगा।

प्रेमाश्रम—ले० श्रीयुत "प्रेमचन्द्रजी" यह उपन्यास क्या है? भारतकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अवस्थाओंका जीता-जागता चित्र है। इसमें आपको भावा और भावोंके साथ साथ पश्चिमीय शिक्षाके कुपरिणाम, धार्मिकताके अभावका शोचनीय फल, धन-लोलुपताका हृदयविदारक दृश्य, और पाश्चिमात्योंके रोमाञ्चकारी दुष्परिणामका दिग्दर्शन हो सकता। धर्म, नीति, प्रेम और भारतीयताका मनोहर दृश्य आदि बातोंका रसास्वादन करना हो जो इसे अवश्य पढ़िये। [illegible] कितनी ही नयी नयी बातें एवं सामाजिक तथा राजनीतिक [illegible] स्थितियोंका पता चलेगा। ६५० पृष्ठ मूल्य ३॥)

सेवासदन—हिन्दीका सर्वोत्तम, सुप्रसिद्ध स्वतन्त्र उपन्यास। इसकी कुछ मनोहर बड़ी समालोचनाएं हुई हैं। इसे

पढ़कर पतितसे पतित भी सुधरना चाहेगा। मनोरञ्जनका तो कहना ही क्या। स्वदेशी गाढ़ेकी सुन्दर जिल्द। दूसरा सं० मूल्य २॥)

खरा सोना— बड़ा सरल और सुन्दर उपन्यास। प्रत्येक स्त्री और पुरुषको पढ़कर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। मू० १)

प्रेम-पूर्णिमा—१५ मनोहर गल्पे। ३ बढ़िया चित्र। रेशमी कपड़ेकी सुनहले अक्षरोंकी सुन्दर सजिल्द पुस्तक। मू०२) यह पुस्तक हिन्दी प्रसिद्ध लेखक प्रेमचन्दजीकी लिखी हुई है।

कर्म्म पथ

यह विचित्र राजनीतिक उपन्यास है। पढ़कर आप बड़े ही प्रसन्न होंगे। मूल्य २)

सुवर्ण-प्रतिमा

यह सामाजिक उपन्यास भी अपने ढङ्गका निराला है। यह उपन्यास बङ्गालके एक बड़े ही नामी उपन्यास-लेखककी रचना है। दार्शनिक पण्डित सुरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य्यका 'मिलन-मन्दिर' जिन्होंने पढ़ा है, उनसे बतलाना व्यर्थ है, कि वे किस तरहके कुशल उपन्यास-लेखक हैं। उन्हींके 'सुवर्ण कुटीर' नामक एक बड़े ही उत्तम सामाजिक उपन्यासका यह अनुवाद है। मूल्य तीन सौ पृष्ठकी सुनहरी जिल्द-बंधी पुस्तकका २॥)

इन्दुमती
वा
रत्न-द्वीप।

यह उपन्यास हिन्दीमें अपने ढङ्गका पहला और मनोरञ्जकता-में लासानी है। इसके एक एक पेजमें घटनाओंका ऐसा घटा-टोप है, कौतूहलका ऐसा छिपा हुआ खजाना है, भाषा और भावकी ऐसी मनोहर छटा है, कि क्या मजाल, कि आदमी किताब हाथमें लेकर बिना सम्पूर्ण पढ़े छोड़ दे? रेशमी जिल्द बंधी [illegible] मूल्य १॥)

सिराजुद्दौला।

भारतके प्रौढ़ इतिहासज्ञ बाबू अक्षय-कुमार मैत्रेय लिखित सिराजुद्दौलाके समयका सच्चा इतिहास। यदि आप कलकत्तेकी [illegible] कोठरीका सच्चा वृत्तान्त तथा उस समयके इतिहास [illegible] समालोचना देखना चाहते हों तो इसे देखिये। मूल्य २)

राज्य-सम्बन्धी-सिद्धान्त।

[illegible] है, कि राज्य-सम्बन्धी कोई [illegible] है। इसमें यह भली भांति समझाया [illegible] कि राजाका प्रजाके प्रति तथा प्रजाका राजाके प्रति क्या [illegible], राज्य कितने प्रकारके होते हैं, राज्य रचना कैसे और [illegible] [illegible] छपी हुई सजिल्द और सचित्र [illegible] [illegible]

अन्य सामयिक पुस्तकें।

पुस्तक	मूल्य
राजनीतिक षड्यन्त्र	१)
भारतीय देशभक्तोंकी कारावास कहानी	२॥)
महात्मा गान्धीकी गिरफ्तारी मुकद्दमा और जेलयात्रा	॥≈)
भारत और इङ्गलैण्ड	१॥)
सत्याग्रह और असहयोग	१॥)
बोलशेविज्म	१।≈)
रालट एक्ट	२)
भारतको स्वाधीनताका संदेश	१।)
देशबन्धुदासकी जीवनी	।≈)
लाला लाजपतरायकी जीवनी	॥)
पलासीका युद्ध	१॥)
हृदय तरङ्ग (पद्य)	१।)
जर्मनीका दांवपेंच	॥)
सिकन्दर शाह	१॥≈)
साम्यवाद	।≈)
संसार व्यापी असहयोग	॥≈)
त्रिशूल तरङ्ग	॥)
कनक रेखा	१)
देशभक्त अली भाई	≈)
पृथ्वीराज	१)
सिक्खोंका परिवर्तन	१)
स्वतन्त्रताके प्रेमी सिनफीनर	॥)
लोकमान्य तिलक	१)
रूसका राहु	।≈)
शेखावाटी पोलखाता	≈)
बोलशेविक जादूगर	॥)
भीष्म	१≈)
रूसकी राज्यक्रान्ति	२॥)
फिजीमें मेरे २१ वर्ष	॥)
उद्योगी पुरुष	।≈)
चांद बीबी	१)
माधोजीका स्वराज्य	≈)
फिजीमें प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा	१)
सत्य निबन्धावली	।≈)
गान्धी सिद्धान्त	॥)
स्वदेशी और स्वराज्य	।≈)

बाबू रामदयाल अग्रवाल

द्वारा 'विश्वमित्र' प्रेस,

२१।१ टेमर लेन, कलकत्तामें मुद्रित।
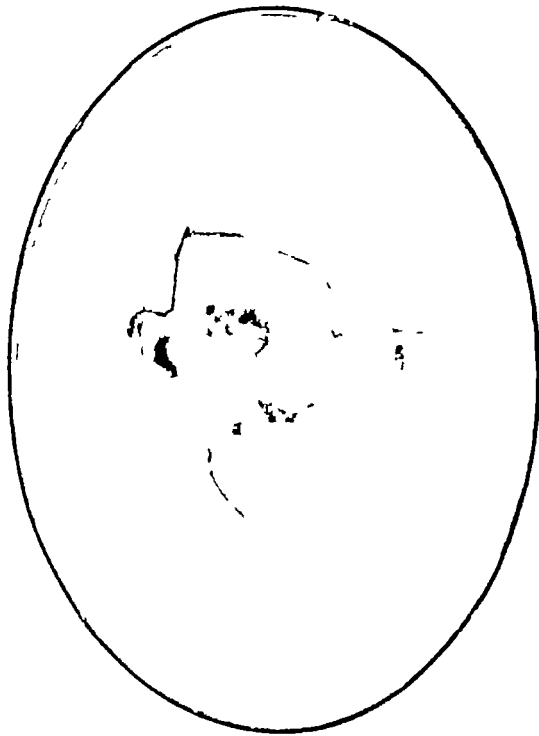
स्वराज्य संग्राम।

खिलाफत।

१—मैं क्यों आन्दोलनमें पड़ा।

दक्षिण अफ्रिकाके एक माननीय मित्रने, जो इस समय इङ्ग-लैण्डमें रहते हैं, मुझे एक पत्र लिखा है जिसका कुछ अंश मैं यहां देता हूं :

"निस्सन्देह आपको स्मरण होगा कि आप मुझे दक्षिण अ-फ्रिकामें उस समय मिले थे जब पादरी जे० जे० डोक आपकी [illegible] लड़ाईमें आपको सहायता दे रहे थे और पीछे मैं जब इङ्गलैण्ड लौटा था तब उस देशमें आपके साधुभावका मेरे हृदय-पर भारी प्रभाव हुआ था। युद्धके पहले महीनोंतक मैंने अनेक स्थानोंपर आपकी ओरसे भाषण और वार्त्तालाप किये तथा लेख लिखे थे जिनके लिये मुझे खेद नहीं है। युद्धसे लौटनेके पश्चात् मैं पत्रोंमें देखता हूं कि, आप और अधिक लड़ाका भाव ग्रहण कर रहे हैं [illegible] मैं 'टाइम्स' में एक रिपोर्ट देखता हूं कि आप हिन्दुओं और मुसलमानोंके ऐक्यका अनुमोदन करते और उस काममें

सहायता दे रहे हैं जिससे इङ्गलैण्ड और मित्रराष्ट्रोंको तुर्की साम्राज्यका अङ्गभङ्ग करने या तुर्क सरकारको कुस्तुन्तुनियासे निकाल बाहर करनेके मामलेमें परेशानी हो। मुझे आपकी न्याय बुद्धि और परोपकारशील स्वभावका पता है इसलिये मैं समझता हूं कि, इस ओर आपके लिये जो काम किये हैं उनके कारण मुझे यह पूछनेका अधिकार है कि, क्या यह रिपोर्ट सत्य है। मैं विश्वास नही कर सकता कि, आपने भूलसे ऐसे आन्दोलनमें सहायता दी है, जो तुर्क सरकारको निर्दय और अन्यायपूर्ण स्वेच्छाचारिताको मानव जातिके हितोंसे अधिक महत्त्व देनेवाला है। कारण यह कि पूर्वमें यदि इन हितोंको किसीने पददलित किया हैं, तो निश्चय ही वह देश तुर्की ही है। सीरिया और अर्मनियाकी अवस्थाओंका मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान है और मैं यही कल्पना कर सकता हूं कि यदि 'टाइम्स'में प्रकाशित रिपोर्ट सत्य है तो आपने अपनी नेतिक जिम्मेवारियोंको एकदम बाहर फेंक वर्तमान कालकी एक अराजकताका साथ दिया है। जो हो, जबतक मैं यह न सुन लूं कि यह आपका भाव नही है तबतक मैं अपने हृदयमें कोई खास विचार नहीं धारण कर सकता। कदाचित् इसका उत्तर देनेकी मेरे ऊपर आप कृपा करेंगे।"

मैं लेखकको उत्तर भेज चुका हूं। परन्तु सम्भव है कि इस अवतरणमें प्रकट किये हुए विचार मेरे अन्य कितने ही अंग्रेज मित्रोंके भी हों और क्योंकि जहांतक मुझसे हो सके मैं मित्रता सम्मान खोना नही चाहता हूं इसलिये खिलाफत प्रश्नके सम्ब-

न्धमे मैं अपनी स्थिति जहांतक मुझसे हो सकता है वहांतक स्पष्ट कर देनेका प्रयत्न करुंगा। पत्रसे प्रकट होता है कि दायित्वशून्य पत्रसम्पादकताके कारण सार्वजनिक कार्यकर्ताओंको कितने सकटमे पड़ना होता है। 'टाइम्स'की जिस रिपोर्टका उल्लेख मेरे मित्रने किया है, वह मैंने नही पढ़ी है। परन्तु यह स्पष्ट है कि, उससे मेरे मित्रको सन्देह हो गया है कि मैं 'वर्तमान अराजकताओंके साथ हो गया हू और वे सोचते हैं कि, मैंने अपनी 'नैतिक जिम्मेवारियोंको एक ओर फेंक दिया है।'

परन्तु सच तो यह है कि मेरी नैतिक जिम्मेवारियोंहीने मुझे खिलाफतका प्रश्न हाथमें लेने और मुसलमानोंका पूरा साथ देनेको बाध्य किया है। यह पूर्णतः सत्य है कि मैं हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच ऐक्य होनेमे सहायता दे रहा हूं, परन्तु इसलिये कदापि नही कि, "तुर्की साम्राज्यका अङ्गभङ्ग करनेके मामलेमे इङ्गलैण्ड और मित्रराष्ट्रोंको परेशानी हो।" गवर्नमेण्टों या अन्य किसीको परेशान करना मेरे सिद्धान्तके विरुद्ध बात है। तो भी इसका यह अर्थ नहीं कि मेरे किसी कामके परिणामस्वरूप परेशानी न हो। परन्तु परेशान करनेका दोषी मैं अपनेको न समझूंगा यदि मैं पापीको उसके पापकर्ममें सहायता देनेसे इनकार करता हूं। खिलाफत प्रश्नके सम्बन्धमे मैं प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवालोंका साथ देनेसे इनकार करता हूं। मि० लायड जार्जने जो गम्भीर प्रतिज्ञा की थी प्राय वही भारतीय मुसलमानोंका पक्ष है और जब धार्मिक आज्ञाओंसे भी उसकी पुष्टि होती है, तब वह

पक्ष अकाट्य हो जाता है। इसके सिवा यह कहना ठीक नहीं कि मैं ने "वर्तमान कालकी एक अराजकताका" पक्ष ले रखा है या मैंने भूलसे ऐसे आन्दोलनका अनुमोदन किया है जो तुर्की सरकारकी निर्दय और अन्याय्य स्वेच्छाचारिताको मानव जातिके हितोंसे अधिक महत्व देनेवाला है। तुर्की सरकारकी 'अन्यायपूर्ण स्वेच्छाचारिताकी जो बात कही जाती है मुसलमानोंकी मांगमें कोई ऐसी बात नही है जिसमे उसे बनाये रखनेका आग्रह हो। इसके विरुद्ध मुसलमानोने यह सिद्धान्त ग्रहण कर रखा है कि उस सरकारसे अल्पसंख्यक गैर-मुसलिम जातियोंकी रक्षाके सम्बन्धमे पूरी गारण्टी ले ली जाय। मैं नहीं जानता कि सीरिया और अर्मेनियाकी अवस्था कहांतक 'अराजकता'की समझी जा सकती है या उसके लिये तुर्क सरकार कहांतक जिम्मेवार है। मुझे बड़ा सन्देह है कि इन भागोकी रिपोर्टें बहुत अत्युक्तिपूर्ण हैं और युरोपीय शक्तियां ही कई अंशोंतक उस कुशासनकी जिम्मेवार हैं जो अर्मेनिया और सीरियामे है। परन्तु तुर्की या अन्य किसी अराजकताका समर्थन करनेमे मेरा कुछ भी अनुराग नही है। मित्रराष्ट्र तुर्की शासनका अन्त करने या तुर्की साम्राज्यका अङ्गभङ्ग करने अथवा उसे निर्बल करनेके सिवा अन्य उपायों-से यह अराजकता सहज ही रोक सकते हैं। मित्रराष्ट्रोंको किसी नयी अवस्थाका उपाय नही करना पड़ रहा है। यदि तुर्कीका बंटवारा करना था तो युद्धारम्भमें ही स्पष्ट बात कह देनी चाहिये तब प्रतिज्ञा भङ्ग करनेका कोई प्रश्न ही न उठता।

परन्तु वर्तमान अवस्थामें तो किसी भारतीय मुसलमानके हृदयमें ब्रिटिश मन्त्रियोंकी प्रतिज्ञाओंका कुछ भी मूल्य नहीं है। मेरी रायमें तुर्कोंके विरुद्ध जो चिल्लाहट मच रही है, वह इसलामके विरुद्ध ईसाई मतकी चिल्लाहट है और चिल्लाहट मचानेमें इङ्गलैंड नेता है। हालमें मि० मुहम्मदअलीका आया हुआ तार इस धारणाको दृढ़ करता है, क्योंकि वे कहते हैं कि फ्रेंच जनता और सरकारसे हमारे डेपुटेशनको बड़ी सहायता मिल रही है यद्यपि इङ्गलैंडमें सहायता नहीं प्राप्त हुई थी। इस तरह यदि यह सत्य है और मेरी धारणा है कि यह सत्य है कि मुसलमानोंका पक्ष न्यायवत है और उसका समर्थन धार्मिक आज्ञाओंसे होता है, तो हिन्दुओंके लिये अपनी पूरी शक्तिभर उनकी सहायता न करना कापुरुषतापूर्वक भाईका नाता तोड़ना होगा और फिर उन्हें अपने देशवासी मुसलमानोंसे आदर पानेका कुछ भी अधिकार न रह जायेगा। इसलिये सार्वजनिक सेवा करनेवाला होनेके कारण यदि मैं भारतीय मुसलमानोंको उनकी इस लड़ाईमें मदद न दूं जो उन्होंने खिलाफतको अपने धार्मिक विश्वासोंके अनुसार बनाये रखनेके लिये छेड़ रखी है, तो मैं उस पक्षके अयोग्य ठहरूंगा जो मैंने ग्रहण कर रखा है। मेरा विश्वास है कि उन्हें सहायता देनेमें मैं साम्राज्यकी सेवा कर रहा हूं, क्योंकि अपने देशवासी मुसलमानोंको उनके विचारोंको व्यवस्थित रूपसे प्रगट करनेमें सहायता देनेसे यह सम्भव हो जाता है कि आन्दोलन पूर्ण, व्यवस्थापूर्ण और सरल भी होगा।

पक्ष अकाट्य हो जाता है। इसके सिवा यह कहना ठीक नहीं कि मैंने "वर्तमान कालकी एक अराजकताका" पक्ष ले रखा है या मैंने भूलसे ऐसे आन्दोलनका अनुमोदन किया है जो तुर्की सरकारकी निर्दय और अन्याय्य स्वेच्छाचारिताको मानव जातिके हितोंसे अधिक महत्व देनेवाला है। तुर्की सरकारकी अन्यायपूर्ण स्वेच्छाचारिताकी जो बात कही जाती है मुसलमानोंकी मांगमें कोई ऐसी बात नही है जिसमे उसे बनाये रखनेका आग्रह हो। इसके विरुद्ध मुसलमानोंने यह सिद्धान्त ग्रहण कर रखा है कि उस सरकारसे अल्पसंख्यक गैर-मुसलिम जातियोंकी रक्षाके सम्बन्धमे पूरी गारण्टी ले ली जाय। मैं नहीं जानता कि सीरिया और अर्मेनियाकी अवस्था कहांतक 'अराजकता'की समझी जा सकती है या उसके लिये तुर्क सरकार कहांतक जिम्मेवार है। मुझे बड़ा सन्देह है कि इन भागोंकी रिपोर्टें बहुत अत्युक्तिपूर्ण हैं और युरोपीय शक्तियां ही कई अंशोंतक उस कुशासनकी जिम्मेवार हैं जो अर्मेनिया और सीरियामे है। परन्तु तुर्की या अन्य किसी अराजकताका समर्थन करनेमे मेरा कुछ भी अनुराग नहीं है। मित्रराष्ट्र तुर्की शासनका अन्त करने या तुर्की साम्राज्यका अङ्गभङ्ग करने अथवा उसे निर्बल करनेके सिवा अन्य उपायों से यह अराजकता सहज ही रोक सकते हैं। मित्रराष्ट्रोंको किसी नयी अवस्थाका उपाय नही करना पड़ रहा है। यदि तुर्कीका ... करना था तो युद्धारम्भमें ही स्पष्ट बात कह देनी चाहिये तब प्रतिज्ञा भङ्ग करनेका कोई प्रश्न ही न उठता।

परन्तु वर्तमान अवस्थामें तो किसी भारतीय मुसलमानके [illegible] ब्रिटिश मन्त्रियोंकी प्रतिज्ञाओंका कुछ भी मूल्य नहीं है। मेरी रायमे तुर्कीके विरुद्ध जो चिल्लाहट मच रही है, वह इसलामके विरुद्ध ईसाई मतकी चिल्लाहट है और चिल्लाहट मचानेमें [illegible] नेता है। हालमें मि० मुहम्मदअलीका आया हुआ तार इस धारणाको दृढ करता है, क्योंकि वे कहते हैं कि फ्रेंच सरकार और सरकारसे हमारे डेपुटेशनको बड़ी सहायता मिली है परन्तु इङ्गलैंडमे सहायता नहीं प्राप्त हुई थी। इस तरह यदि यह सच है और मेरी धारणा है कि यह सत्य है कि मुसलमानोंका [illegible] न्यायका है और उसका समर्थन धार्मिक आज्ञाओंसे होता है, तो हिन्दुओंके लिये अपनी पूरी शक्तिभर उनकी सहायता न करना कापुरुषतापूर्वक भाईका नाता तोडना होगा और फिर उन्हें अपने देशवासी मुसलमानोंसे आदर पानेका कुछ भी अधिकार न रह जायेगा। इसलिये सार्वजनिक सेवा करनेवाला होनेके कारण यदि मैं भारतीय मुसलमानोंको उनकी इस लड़ाईमें मदद न दूं जो उन्होंने खिलाफतको अपने धार्मिक विश्वासोंके अनुसार बनाये रखनेके लिये छेड़ रखी है, तो मैं उस पदके अयोग्य ठहरूंगा जो मैंने ग्रहण कर रखा है। मेरा विश्वास है कि उन्हें सहायता देनेमें मैं साम्राज्यकी सेवा कर रहा हूं, क्योंकि अपने देशवासी मुसलमानोंको उनके विचारोंको व्यवस्थित रूपसे प्रकट करनेमें सहायता देनेसे यह सम्भव हो जाता है कि आन्दोलन पूर्ण, व्यवस्थायुक्त और सफल भी होगा।

२—तुर्की सन्धि।

तुर्की सन्धिकी शर्तें १० वी मईको प्रकाशित हो जायेंगी। कहा जाता है कि उनमे डार्डेनलीजको सार्वराष्ट्रीय करने गेलीपोलीपर मित्रराष्ट्रोंका अधिकार होने, कुस्तुन्तुनियामें मित्रसेनाए बनाये रखने और तुर्कीकी आर्थिक व्यवस्थापर नियन्त्रण रखनेको एक कमीशन नियुक्त करनेकी व्यवस्था है। सान रीमो कानफरेन्सने मेसोपोटामिया (ईराक) और पैलेस्टिन (फिलिस्तीन) का शासन-प्रबन्ध ब्रिटेनको और सीरियाका फ्रान्सको सौंपा है। स्मिरनाके सम्बन्धकी प्राप्त सूचनाओंसे मालूम होता है कि उसपर तुर्की प्राधान्य इस तरहसे प्रकट किया जायगा कि वहांकी जनताको यूनानकी पार्लमेण्टके लिये प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार न होगा, परन्तु पांच वर्षके पश्चात् स्मिरनाकी पार्लमेण्टको यूनानमें मिलनेके पक्षमे वोट देनेका अधिकार होगा और ऐसी अवस्थामें स्मिरनापरसे तुर्कीका प्राधान्य हट जायेगा। चटलजाकी सीमाओंके भीतरकी भूमिपर ही तुर्कीका प्राधान्य रहेगा। अमीर फिजूलकी स्थितिके सम्बन्धमे इसके सिवा और कोई खबर नही है कि ब्रिटेन और फ्रान्सके मैंडेट उनके सैनिक पदको असैनिक पदके रूपमें बदल देते है।

× × × × ×

हमने ऊपर तुर्की सन्धिकी शर्तें दी हैं जो रूटरके तारोंमे कट की गयी हैं। ये सब खबरें अपूर्ण है और सभी समान प्रमाण नही हैं। किन्तु यदि ये शर्तें सच हैं, तो वे

मुसलमानोंकी मांगोंके विरुद्ध हैं। तुर्की साम्राज्य चटलजाकी सीमाओंतक ही परिमित हैं। इसका अर्थ यह है कि सुप्रीम कौंसिलके तीन बड़े राज्योंने थ्रेसको तुर्की राज्यसे अलग कर दिया है। यह स्पष्ट रूपसे इन तीन बड़े राज्योंमेंसे एककी अर्थात् ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीकी की हुई प्रतिज्ञाके विपरीत है। चटलजा सीमाओंके भीतर मित्रराष्ट्रोंके अधीन होकर रहना सुलतानके लिये अपमानजनक तथा कुरानकी आज्ञाओंके विरुद्ध है। यह अभीतक नही मालूम हुआ है कि सुप्रीम कौंसिलने एशियाई रूमकी उपजाऊ और समृद्धिपूर्ण भूमिकी क्या व्यवस्था की है। यदि इस सम्बन्धमें हालमे प्रकट किये हुए मि० लायड जार्जके विचार मित्रराष्ट्रोंने स्वीकार कर लिये हैं—और यह बहुत सम्भव है—तो सब मित्रराष्ट्रोंके नियन्त्रणसे कमकी आशा नही हो सकती। स्मिरनाके विषयमें किया हुआ निर्णय किसीको सन्तुष्ट नहीं कर सकता यद्यपि ऐसा जान पड़ता है कि मित्रराष्ट्रोंने अपने प्रबन्धके द्वारा सम्बन्ध रखनेवाले सभी पक्षोको प्रसन्न करनेका चतुरतापूर्ण प्रयत्न किया है। मि० लायड जार्जने खिलाफत डेपुटेशनको जो जवाब दिया है उसमें निष्पक्ष कमेटी-द्वारा सावधानतापूर्वक जांचकी बात कहते हुए कहा है, कि "जनताका बहुत ही बड़ा भाग निस्सन्देह तुर्कोंके शासनसे यूनानका शासन पसन्द करता है, ऐसा मैं समझता हूं।" परन्तु उनके इस निर्णयके अनुसार काम होना पांच वर्षके लिये स्थगित होता है।

× × × × ×

जब हम मैंडेटके प्रश्नको लेते हैं तो मित्रराष्ट्रोंके विचार और अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। अरब लोग स्वतन्त्रताका दावा करते हैं, यह तुर्क साम्राज्य बनाये रखनेके मार्गमें कठिनाई बनायी गयी है। इसका समर्थन स्वभाग्यनिर्णयके नामसे किया गया और ट्रांसलिवेनिया तथा अन्य प्रदेशोंका दृष्टान्त दिया गया है। जब अन्तिम घडी आयी तब मित्रराष्ट्रोंने लूटका माल आपसमे बांट लेनेका साहस किया है। ब्रिटेनको मेसोपोटामिया और फिलस्तीनका मेंडेट (शासनप्रबन्ध) सौंपा गया है और फ्रान्सको सीरियाका दिया गया है। हालमें अरबके प्रतिनिधियोंने जो पत्र प्रकाशित किया है उसमें मुक्त किये हुए अरब प्रदेशोंके सम्बन्धमे किये हुए सुप्रीम कौंसिलके निर्णयसे निराशा प्रकट की गयी है और यह निर्णय स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तके प्रतिकूल बताया गया है।

× × × × ×

इस तरह तुर्की सन्धिके विषयमें जो थोड़ीसी खबरें आयी हैं वे सब प्रकारसे असन्तोष पैदा करनेवाली हैं। मुसलमानोंको मित्रराष्ट्रोंसे अधिक रूसकी प्रतिष्ठा करनेके लिये काफी कारण मिल चुका है। रूसने खीवा और बुखाराकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली है। जैसा अफगानिस्तानके अमीर महोदयने अपने भाषणमे कहा है, मुसलमान संसार रूसका कृतज्ञ होगा यद्यपि चारों ओर अफवाह है कि वहां अराजकता और अव्यवस्था है।

कुल मुसलमान संसार अन्य यूरोपीय राष्ट्रोंकी

कारवाईसे क्रुद्ध होगा जो एक दूसरेसे मिलकर स्वभाग्य-निर्णयके नामपर और किसी अंशतक सभ्यताके हितके वहाने तुर्कीको सताना और उसका नामनिशान मिटाना चाहते हैं।

× × × × ×

तुर्की सन्धिकी शर्तें प्रधान मन्त्रीकी प्रतिज्ञा और स्वभाग्यनिर्णयके सिद्धान्तके विरुद्ध पाप ही नहीं है, वल्कि वे यह भी प्रकट करती हैं कि मित्रराष्ट्र कुरानकी आज्ञाओंकी अविचारपूर्ण उपेक्षा करते हैं। शर्तोंसे पता चलता है कि खिलाफतके सम्वन्धमे मि० लायड जार्जका जो गलत विचार है, उसे ही कौंसिलने स्वीकार किया है। मि० लायड जार्जकी तरह हा सान रीमोमें अन्य राजनीतिज्ञोंने भीखिलाफतकी तुलना पोपसे का है और कुरानमें जो आध्यात्मिक शक्तिके साथ ही सांसारिक शक्ति जोड़ रखी गयी है उसे भुला दिया है। ये मार्गभ्रष्ट राजनीतिज्ञ इतने अहङ्कारसे भरे हुए थे कि इन्होंने डेपुटेशनसे खिलाफतके सम्वन्धमें सच्ची वातें जाननेसे इनकार कर दिया। यदि उस विषयमें मि० मुहम्मद अलीकी वात सुनी होती तो ये अपनी गलती सुधार सकते थे। एसेक्स हालकी सभामें भाषण करते हुए मि० मुहम्मद अलीने खिलाफत और पोपके वीचका अन्तर वताया और स्पष्ट शब्दोंमें वता दिया कि खिलाफत-का क्या अर्थ है। उन्होंने कहा कि, "इसलाम राष्ट्रीय नहीं राष्ट्रीयसे ऊपर है। इसलामकी सहानुभूतिका आधार जीवनके सम्वन्धमें सर्व प्रकारकी दृष्टि और सव प्रकारकी सभ्यता है।

इसके दो केन्द्र हैं। वैयक्तिक केन्द्र अरबका द्वीप है। खलीफा इसलाम धर्मके अनुयायियोंके प्रधान नायक है और उनकी आज्ञाओंका पालन सभी मुसलमानोंको तबतक और केवल तब तक करना चाहिये, जबतक वे ईश्वरकी आज्ञाओं तथा नबी की परम्पराके प्रतिकूल न हों। परन्तु क्योंकि आध्यात्मिक और सांसारिक वस्तुओंमे कोई ऐसा भेद नही है जिससे वे एक दूसरेसे बिल्कुल ही पृथक् ठहरें इसलिये खलीफा पोपसे अधिक श्रेष्ठ है और वे पोपकी तरह नही कहे जा सकते। परन्तु वे पोपसे कम भी हैं, क्योकि वे निर्भ्रान्त नहीं हैं। यदि वे इस लामके विरुद्ध हठात् आचरण करे, तो हम उन्हें पदच्युत कर सकते हैं। हम अनेक बार उन्हे पदच्युत कर भी चुके हैं। परन्तु जबतक वे केवल वही आज्ञा करते हैं जो इसलाम चाहता है तबतक हम उनका समर्थन अवश्य करेंगे। हमारे धर्मके रक्षक वे ही हैं और उनके सिवा और कोई नही है।"

ये कुछ शब्द सान रीमोंमें एकत्र लोगोंके हृदयमे जड जमायी हुई भ्रान्तिको दूर कर सकते थे यदि वे ठीक ठीक निपटारेके हृदयसे इच्छा करते होते। परन्तु मि० मुहम्मद अलीके डेपुटेशनकी बात सन्धि-सभाने नही सुनी। उनसे कहा गया कि सन्धिसभा इस प्रश्नपर भारतके सरकारी प्रतिनिधियोंकी बात पहले ही सुन चुकी है। परन्तु खिलाफतके सम्बन्धमें मित्र राष्ट्रोंके अब जो भ्रमपूर्ण विचार हैं, वे ही यह प्रकट करते हैं कि -प्रतिनिधि मण्डलके कार्योंका क्या प्रभाव हुआ

है। इन भ्रमपूर्ण विचारोंका परिणाम वर्तमान निपटारा है और यह अन्यायपूर्ण निपटारा संसारमें अशान्ति पैदा करेगा। वे जो करते हैं उसे नही जानते।

३— तुर्की संधिकी शर्तें।

इस समय सबसे मुख्य प्रश्न खिलाफतका है जो अन्य शब्दोंमे तुर्की सन्धिकी शर्तोंके नामसे विख्यात है। वायसराय महोदयने इतनी देर करके भी जो संयुक्त डेपुटेशनसे भेंट की है इसके लिये वे हमारे धन्यवादके पात्र हैं खासकर ऐसे समय डेपुटेशनसे मिलनेके कारण जब कि वे भिन्न भिन्न प्रदेशोंके शासकोंसे मिलनेकी तैयारीमें लग रहे थे। जिस शिष्टाचारसे उन्होंने डेपुटेशनसे भेंट की तथा जिस भद्रोचित शब्दोंमे उन्होंने उत्तर दिया उसके लिये उन्हें धन्यवाद देना चाहिये। परन्तु इस विकट समयमे केवल शिष्टाचार ही काफी नहीं है यद्यपि शिष्टाचार सभी समय बहुमूल्य होता है और इस समय जितना बहुमूल्य है उतना और कभी नहीं। 'मीठे शब्द चुकन्दरको मक्खनयुक्त नही बना सकते' यह एक कहावत है जो इस समयके लिये जितनी उपयुक्त हैं उतनी और किसी समयके लिये न रही होगी। शिष्टाचारकी आड़में तुर्कोंको सजा देनेका दृढ़ निश्चय था। तुर्कोंको सजा देना एक ऐसी बात है जिसे मुसलमान एक क्षणभरके लिये भी नहीं सह सकते। युद्धका जो परिणाम हुआ है उसके जिम्मेवार मुसलमान सैनिक भी उसी

प्रकार हैं जिस प्रकार अन्य सैनिक। जब तुर्कोंने जर्मनी और आस्ट्रियासे मिलकर युद्धमें पड़नेका निश्चय किया था तब उन्हें ही सन्तुष्ट करनेको मि० आस्क्विथने कहा था कि, ब्रिटिश सरकारका तुर्कोंकी भूमि दबानेका कुछ भी विचार नहीं है और ब्रिटिश सरकार तुर्की कमेटीके बुरे कामोंके लिये सुलतानको सजा देनेकी बात कभी न सोचेगी। इस पैमानेसे जांच करनेसे वायसरायका जवाब केवल निराशाजनक ही नहीं, बल्कि सत्य और न्यायसे गिरा हुआ है।

यह ब्रिटिश साम्राज्य क्या है? यह उतना ही मुसलमान और हिन्दू है जितना ईसाई है। इसकी धार्मिक निरपेक्षिता कोई गुण नहीं है या है भी तो यह आवश्यकताका गुण है। इतना भारी साम्राज्य किसी और शर्तपर अखण्ड नहीं रह सकता। इसलिये ब्रिटिश मन्त्री मुसलमानोंके हितकी रक्षा करनेको उसी प्रकार कर्त्तव्यबद्ध हैं जिस प्रकार किसी अन्य जातिके स्वार्थकी रक्षा करनेके लिये। वास्तवमें मुसलमानोंके कथनानुसार मुसलमानोंका पक्ष उन्हें अपना पक्ष बनाना कर्त्तव्य है। वायसरायके मुसलमानोंके दावा सन्धि-सभाके सामने उपस्थित करनेसे क्या लाभ? यदि पक्षकी हार हुई तो मुसलमानोंको यह सोचनेका अधिकार है कि ब्रिटेनने उनके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं किया। वायसरायका उत्तर इस विचारकी पुष्टि करता है। जब वायसराय कहते हैं कि तुर्कोंको श्य कष्ट भोगना चाहिये, क्योंकि वह युद्धमें जर्मनी आदि

मध्य राष्ट्रोंके साथ मिल गया था, तब वे ब्रिटिश मन्त्रियोंके विचारमात्र प्रकट करते हैं। इसलिये हम मुसलिम प्रत्युत्तर लिखनेवालोंके साथ आशा करते है कि यदि कोई भूल की गयी है। तो ब्रिटिश मन्त्री उसे सुधारेंगे और ऐसा निपटारा करेंगे जो मुसलमानोंके भावके अनुकूल होगा। उनका भाव क्या मांग करता है? खिलाफतकी रक्षा हो और साथ ही तुर्क राज्यके भीतर रहनेवाली गैर-मुसलिम जातियोकी रक्षाकी गारण्टी ली जाय तथा अरब और पवित्र स्थानोपर खलीफाका नियन्त्रण रहे साथ ही यदि अरब लोग चाहें तो अरबोंके स्वराज्यकी गारण्टी-के लिये अ वश्यक प्रबन्ध किया जाय। इससे अधिक न्याय्यतासे दावा प्रकट करना असम्भव है। यह ऐसा दावा है जो न्याय, ब्रिटिश मन्त्रियोंकी घोषणाओं और हिन्दुओ तथा मुसलमानोके सयुक्त विचारोंसे अनुमोदित है। ऐसे दावेको नामंजूर करना या तोड़ना भारी पागलपनेका काम होगा।

४—अरबके ऊपर प्राधान्य।

"जैसा मैंने आपको अपने पिछले पत्रमें बताया है, मै समझता हूं कि मि० गान्धीने खिलाफतके मामलेमे भारी गलतो की है। भारतीय मुसलमामोंका दावा इस कथनके आधारपर है कि, इसलाम धर्म अरबपर तुर्कोंका शासन आवश्यक ठहराता है, परन्तु जब स्वयं अरब ही इस मामलेमें उनके विरुद्ध है तब यह सोचना असम्भव है कि भारतीय मुसलमानोंका मत इसलामके

लिये अत्यन्त आवश्यक है। जो भी हो यदि अरब इस्लामका प्रतिनिधित्व नहीं करते तो फिर कौन करता है? यह तो ठीक वैसा ही है जैसा जर्मन रोमन कैथलिकोंका रोमन कैथलिकोंके नामपर मांग करना होगा जब कि रोम और इटालियन उसके विरुद्ध मांग करते हैं। परन्तु यदि भारतीय मुसलमानोंका धर्म यह आवश्यक भी ठहराता हो कि अरबोंके ऊपर उनकी इच्छाके विरुद्ध भी तुर्क शासन होना चाहिये, तो भी आजकल कोई उसे धार्मिक मांग नहीं मान सकता जो एक जातिका दूसरी जातिपर लगातार अत्याचार करना आवश्यक ठहराती है। जब युद्धके प्रारम्भमें भारतीय मुसलमानोंको विश्वास दिलाया गया था कि उनके धर्मका सम्मान किया जायगा तब उसका यह अर्थ कदापि नहीं था कि एक सांसारिक राज्यका जिसने स्वभाग्यनिर्णयके सिद्धान्त तोड़ा है, समर्थन किया जायगा। अब हम एक ओर खड़े हो तुर्कोंको अरबोंपर फिर विजय प्राप्त करते नहीं देख सकते (क्योंकि अरब निश्चय ही तुर्कोंसे युद्ध करेंगे)। और यदि ऐसा करते हैं तो उन अरबोंके साथ भारी विश्वासघात करेंगे जिन्हें हम बचन दे चुके हैं। यह सच नहीं है कि केवल यूरोपियनोंके कहनेसे अरब तुर्कोंके दुश्मन हो रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि युद्धके समय हमने अरबोंकी तुर्कोंसे शत्रुतासे लाभ उठाया, क्योंकि हमें एक नये मित्र मिलते थे, परन्तु वह शत्रुता युद्धके बहुत पहलेसे वर्त्तमान थी। सुलतानकी जो प्रजा तुर्क नहीं है वह तुर्क शासनसे छुटकारा पाना

चाहती थी। यह भारतीय मुसलमान ही है जिन्हे उस शासनका कुछ अनुभव नहीं है और इसीसे वे वह शासन अन्योंपर जबर्दस्ती लादना चाहते हैं। सच तो यह है कि सीरिया या अरबमें फिर तुर्क शासन स्थापित करनेका विचार सब प्रकारकी सम्भावनाओंसे इतना परे है कि उसपर विचार करना पवित्र रोमन साम्राज्यकी पुनः स्थापनाका विचार करनेके समान जान पड़ता है। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि किस प्रकारकी घटनावलीसे यह सम्भव हो सकता है। निश्चय ही भारतीय मुसलमान स्वयं अरबमें जाकर सुलतानके लिये अरबोंपर विजय नहीं प्राप्त कर सकते। भारतमें चाहे जितना भी संकट उपस्थित हो उससे इङ्गलैण्ड अरबमें पुनः तुर्क शासन स्थापित करनेको नहीं तैयार हो सकता। इस मामलेमें भारतीय मुसलमानोंको अंग्रेज साम्राज्यवादियोंके नहीं, बलिक उदारदली तथा परोपकारशील और भारी अंग्रेजोंके मतके विरुद्ध खड़ा होना पड़ेगा जो चाहते हैं कि स्वभाग्य निर्णय बढ़कर भारतमें भी पहुंच जाय। यदि यह भी मान लिया जाय कि भारतीय मुसलमान भारतमे इतना प्रचण्ड आन्दोलन खड़ा कर सकते हैं जिससे भारतका ब्रिटिश साम्राज्यसे सम्बन्ध विच्छेद हो जाय, तो भी वे अपने उद्देश्यकी सिद्धिके निकट न पहुचेंगे। कारण यह कि आज अंग्रेजोंकी संसार सम्बन्धी नीतिपर उनका बहुत कुछ प्रभाव है। यद्यपि तुर्कोंकी सन्धिके सम्बन्धमें उनका प्रभाव इतना काफी नहीं पड़ा कि वह दूसरे भारी पलड़ेसे भारी ठहरता, तो भी इसने बहुत

कुछ काम किया है। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यसे सम्बन्ध न रहनेपर भारतीय मुसलमानोंका भारतके बाहर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। संसारकी राजनीतिमें उनकी गिनती चीनके मुसलमानोंसे अधिक न होगी। मैं समझता हूं कि यह बहुत सम्भव है कि भारतीय मुसलमानोंका प्रभाव कमसे कम इतना तो अवश्य काम कर सकता है कि सुलतानको कुस्तुन्तुनियामें बनाये रख सके। परन्तु वैसा करनेसे उन्हें कुछ लाभ होगा, इसमें मुझे सन्देह ही है। कारण यह कि एशियाई रूमतक ही सीमाबद्ध तुर्कोंके लिये कुस्तुन्तुनिया बड़े असुभीतेकी राजधानी होगी। मैं समझता हूं कि जो असुभीता होगा उसके मुकाबलेमें पुराने तुर्क साम्राज्यका आभास बनाये रखनेका काल्पनिक सन्तोष कुछ भी न होगा। परन्तु यदि भारतीय मुसलमान चाहते हैं कि सुल्तान कुस्तुन्तुनियामें बने रहें तो मैं समझता हूं कि भारतमें वायसरायने जो सरकारी तौरपर विश्वास दिलाये हैं वे ही अब हमें बाध्य करते हैं कि हम सुलतानके वहां रहनेके लिये जोर दें और मैं समझता हूं कि अमेरिकाके विरोध करनेपर भी वे वहां बने रहेंगे।"

यह एक अंग्रेजके भारतके अपने एक मित्रके पास भेजे हुए पत्रका अवतरण है और वे अंग्रेज ग्रेट ब्रिटेनमें एक अच्छे पदपर हैं। यह एक आदर्श पत्र है जो गम्भीर, सत्य और ऐसी ललित भाषामें है कि जहांपर आपके विरुद्ध कथन करता है वहां यह लालित्यसे ही आपकी प्रतिष्ठाका पात्र है। परन्तु ठीक यही

भाव है, जिसने अपर्याप्त या झूठी सूचनाके आधारपर होनेके कारण ब्रिटेनके भीतर कितने ही कामोको चौपट कर डाला है। बाहरी दिखावट, पक्षपात, अनृतता और प्रायः बेईमानी जो आधुनिक पत्रसम्पादकतामे घुस गयी है, वह निरन्तर उन ईमानदार आदमियोंको मार्गभ्रष्ट कर देती है जो न्याय होनेके सिवा और कुछ नही देखना चाहते। फिर स्वार्थियोंके दल भी हैं जिनका काम ही सदा बुरे या भले उपायोंसे अपना मतलब गांठना होता है। ईमानदार अंग्रेज जो न्यायके पक्षमे मत देना चाहता है वह परस्परविरोधी मतोंके चक्करमें फंस और तोड़-मरोडकर प्रकट की हुई घटनाओंके कारण प्रायः अन्याय करनेका साधन बन जाता है।

जिस पत्रका उल्लेख ऊपर किया गया है उसके लेखकने काल्पनिक बातोके आधारपर विश्वास करा देनेवाली दलील पेश की है। उसने सफलतापूर्वक दिखा दिया है कि, मुसलमानोंका पक्ष जिस रूपमें उसके सामने उपस्थित किया गया है वह दूषित है। भारतमें जहां खिलाफतके सम्बन्धमें तोड़मरोडकर बातें उपस्थित करना इतना सहज नही है वहां अंग्रेज मित्र भारतीय मुसलमानोंके दावेको पूर्ण न्याययुक्त स्वीकार करते हैं। परन्तु वे अपनी लाचारी प्रकट करते और कहते हैं कि भारत सरकार तथा मि० मांटेगूने मुसलमानोंके लिये वे सब बातें करनेमें कसर नही रखी जो मनुष्यके लिये सम्भव है। अब यदि निर्णय इसलामके विरुद्ध होता है तो भारतीय

मुसलमानोंको उसके आगे सिर झुका लेना चाहिये। यह अजीब हालत केवल वर्त्तमान झमेलेमें ही सम्भव है जब सभी जिम्मेदार लोग पक्षपातमें डूबे हुए हैं।

आइये ननिक लेखकके कल्पित पक्षकी परीक्षा तो करें। वे कहते हैं कि भारतीय मुसलमान अरबमें तुर्कोंका शासन चाहते हैं यद्यपि स्वयं अरब लोग उसके विरोधी हैं। यदि अरब तुर्कोंका शासन नहीं चाहते तो लेखककी दलील है कि किसी तरह धार्मिक कल्पनाद्वारा अरबोंके स्वभाग्यनिर्णयमें बाधा न पड़नी चाहिये जब कि भारत स्वयं उस स्वभाग्यनिर्णयकी स्थिति चाह रहा है। सच बात तो यह है कि मुसलमानोंने यह कभी नहीं कहा कि अरबोंके विरुद्ध अरबमें तुर्की शासन हो, यह बात मुसलमानोंके पक्षका कुछ भी ज्ञान रखनेवाले जानते हैं। यही क्यों, उन्होंने कहा है कि अरबोंके स्वराज्यका विरोध करनेका उनका कुछ भी विचार नहीं है। वे यही कहते हैं कि अरब तुर्कोंकी छत्रछायाके नीचे रहे जो अरबोंके लिये पूर्ण स्वराज्यकी गारण्टी करेगा। वे इसलामके पवित्र स्थान खलीफाके नियन्त्रणमें चाहते हैं। दूसरे शब्दोंमें वे उससे अधिक कुछ नहीं चाहते जिसकी गारण्टी मि० लायड जार्जने की थी और जिस बलपर मुसलमान सैनिकोंने मित्रराष्ट्रोंकी ओरसे अपना खून बहाया था। इसलिये उपर्युक्त अवतरणकी सारी दलीलें रद्द हो जाती हैं क्योंकि वे जिस बातके आधारपर है वह कभी थी ही नहीं।

प्रश्नमें अपने तनमनसे लग गया हूं, क्योंकि ब्रिटिश प्रति

मुसलमानोंको उसके आगे सिर झुका लेना चाहिये। यह अजाव हालत केवल वर्त्तमान झमेलेमें ही सम्भव है जब सभी जिम्मेवार लोग पक्षपातमें डूबे हुए हैं।

आइये तनिक लेखकके कल्पित पक्षकी परीक्षा तो करें। वे कहते हैं कि भारतीय मुसलमान अरबमें तुर्कोंका शासन चाहते हैं यद्यपि स्वयं अरब लोग उसके विरोधी हैं। यदि अरब तुर्कोंका शासन नहीं चाहते तो लेखककी दलील है कि किसी ... धार्मिक कल्पनाद्वारा अरबोंके स्वभाग्यनिर्णयमें बाधा न पडनी चाहिये जब कि भारत स्वयं उस स्वभाग्यनिर्णयको सिद्धि चाह रहा है। सच बात तो यह है कि मुसलमानोंने यह कभी नहीं कहा कि अरबोंके विरुद्ध अरबमें तुर्की शासन हो, यह ... मुसलमानोंके पक्षका कुछ भी ज्ञान रखनेवाले जानते हैं। यह क्यों, उन्होंने कहा है कि अरबोंके स्वराज्यका विरोध करनेका उनका कुछ भी विचार नहीं है। वे यही कहते हैं कि अरब तुर्कोंकी छत्रछायाके नीचे रहे जो अरबोंके लिये पूर्ण स्वराज्यकी गारण्टी करेगा। वे इसलामके पवित्र स्थान खलीफाके नियन्त्रणमें चाहते हैं। दूसरे शब्दोंमें वे उससे अधिक कुछ नहीं चाहते जिसकी गारण्टी मि० लायड जार्जने की थी और जिस बलपर मुसलमान सैनिकोंने मित्रराष्ट्रोंकी ओरसे अपना खून बहाया था। इसलिये उपर्युक्त अवतरणकी सारी दलीलें रद्द हो जाती हैं क्योंकि वे जिस बातके आधारपर है वह कभी थी ही नहीं।

प्रश्नमें अपने तनमनसे लग गया हूं, क्योंकि ब्रिटिश प्रति

(५) मुझे किसी दशामे असहयोगका समर्थन नही करना चाहिये जिसका अन्तिम अर्थ बलवेके सिवा और कुछ नही है, चाहे वह बलवा कितना ही शांतिपूर्ण क्यो न हो ।

(६) इसके सिवा गत वर्षके अनुभवसे मुझे मालूम हो जाना चाहिये कि देशमे उपद्रवकी जो शक्तियां गुप्तरूपसे विद्यमान् हैं उन्हे काबूमे रखना किसी एक मनुष्यकी शक्तिके बाहर है।

(७) असहयोग व्यर्थ है, क्योकि ठीक उत्सुकतापूर्वक लोग कभी उसके अनुसार काम न करेगे । पीछे ऐसी प्रतिक्रिया पैदा हो सकती है जो हमारी अबकी असहाय अवस्थासे भी अधिक बुरी होगी ।

(८) असहयोगसे अन्य सब कार्य यहातक कि सुधारोंके अनुसार काम होना भी रुक जायगा और इस तरह उन्नति रूपी घड़ीकी सुईको यह पीछे हटा देगा ।

(९) मेरा उद्देश्य चाहे कितना ही शुद्ध क्यों न हो, पर मुसलमानोंका बदला लेनेका है यह स्पष्ट हैं ।

अब जिस क्रमसे उपर्युक्त आक्षेप प्रकट किये गये हैं उसी क्रमसे मैं उनका उत्तर दूंगा ।

(१) मेरी रायमे तुर्कोंका दावा अनीति और अन्यायका नहीं है । इतना ही नहीं बल्कि यह बिलकुल ही न्याययुक्त है और नही यदि तुर्की उनको अपने पास रखना चाहता है जो उसके हैं । फिर मुसलमानोके घोषणापत्रमें निश्चित रूपसे

विस्तृत असहयोगको राय नहीं देता। और लोग कहते हैं मैं जानबूझ कर देशको प्रचण्ड तूफानमें झोंककर देशको कित हानि पहुंचा रहा हूं। सभी आलोचनाओंपर विचार करना मे लिये कठिन है, परन्तु मैं कुछ आक्षेपोंको संक्षेपमें बता अपन योग्यताके अनुसार उनका उत्तर दूंगा। ये उन आक्षेपों अतिरिक्त हैं जिनका उत्तर मैं दे चुका हूं.

(१) तुर्कोंका दावा अनीतिपूर्ण या अन्यायपूर्ण है। फि सत्य और न्यायसे प्रेम रखनेवाला होता हुआ भी मैं क्यों उसका समर्थन करता हूं?

(२) यदि सिद्धान्त रूपसे दावा ठीक भी हो तो भी तुर अत्यन्त अयोग्य, निर्बल और निर्दयी हैं। वे किसी प्रकारकी भ सहायताके पात्र नहीं हैं।

(३) तुर्कोंके लिये जिन बातोंका दावा किया जाता है उन सबका वह पात्र भी हो, तो भी मैं भारतको सार्वराष्ट्रीय झगडेमें क्यों डालता हूं?

(४) भारतीय मुसलमानोंका इस मामलेमें पड़ना कर्तव्य नहीं है। यदि उनका कोई राजनीतिक मनसूबा है तो उन्होंने प्रयत्न कर लिया और विफलमनोरथ हो गये। अब उन्हें चुप हो बैठ रहना चाहिये। यदि यह उनके लिये धार्मिक मामला है, तो जिस ढङ्गसे यह उपस्थित किया जाता है उससे हिन्दुओंपर प्रभाव नहीं पड़ सकता। किसी भी अवस्थामें हिन्दुओंको मुसलमानोंका उनके ईसाइयोंसे होनेवाले झगड़ेमें नहीं देना चाहिये।

(५) मुझे किसी दशामे असहयोगका समर्थन नही करना चाहिये जिसका अन्तिम अर्थ बलवेके सिवा और कुछ नहीं है, चाहे वह बलवा कितना ही शातिपूर्ण क्यो न हो।

(६) इसके सिवा गत वर्षके अनुभवसे मुझे मालूम हो जाना चाहिये कि देशमें उपद्रवको जो शक्तियां गुप्तरूपसे विद्यमान् हैं उन्हें काबूमे रखना किसी एक मनुष्यकी शक्तिके बाहर हैं।

(७) असहयोग व्यर्थ है, क्योंकि ठीक उत्सुकतापूर्वक लोग कभी उसके अनुसार काम न करेंगे। पीछे ऐसी प्रतिक्रिया पैदा हो सकती है जो हमारी अबकी असहाय अवस्थासे भी अधिक बुरी होगी।

(८) असहयोगसे अन्य सब कार्य यहातक कि सुधारोंके अनुसार काम होना भी रुक जायगा और इस तरह उन्नति रूपी घडीकी सुईको यह पीछे हटा देगा।

(९) मेरा उद्देश्य चाहे कितना ही शुद्ध क्यों न हो, पर मुसलमानोंका बदला लेनेका है यह स्पष्ट हैं।

अब जिस क्रमसे उपर्युक्त आक्षेप प्रकट किये गये हैं उसी क्रमसे मैं उनका उत्तर दूंगा।

(१) मेरी रायमे तुर्कोंका दावा अनीति और अन्यायका नहीं है। इतना ही नहीं बलिक यह बिलकुल ही न्याययुक्त है और नहीं यदि तुर्की उनको अपने पास रखना चाहता है जो उसके हैं। फिर मुसलमानोंके घोषणापत्रमें निश्चित रूपसे

घोषणा कर दी गयी है कि गैर-मुसलिम और गैर तुर्को जाति योंकी रक्षाके लिये जिन गारण्टियोंकी आवश्यकता हो वे ले ल जाय जिससे ईसाई और अन्य जातियोंको तुर्कोंकी छत्रछायाके नीचे स्वराज्य मिले।

(२) मैं विश्वास नहीं करता कि तुर्क निर्बल, अयोग्य और निर्दयी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वे अव्यवस्थित हैं और उनके अच्छे जेनरल नहीं हैं। उन्हें अपनेसे अधिक लड़ाके शत्रुओंसे लड़ना पडा था। निर्बलता, अयोग्यता और निर्दयता की दलील उन लोगोंके सम्बन्धमें प्राय पेश की जाया करती है जिनसे अधिकार छीन लेनेका विचार किया जाता है। हत्या ओंकी जो बात कही जाती है उनके सम्बन्धमें जाच करनेके लिये कमीशनकी नियुक्तिकी माग की गयी, पर वह कभी मजूर नहीं की गयी। किसी भी दशामें अत्याचार न हो, इसका पूर्ण प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

(३) मैं कह ही चुका हूं कि यदि भारतीय मुसलमानोंसे मेरा अनुराग न होता तो तुर्कोंकी भलाईके सम्बन्धमें मेरा अनुराग उससे अधिक न होता जितना आस्ट्रियनो और पोलोंके सम्बन्धमें है। पर मैं एक भारतीय हूं इसलिये मेरा परम कर्त्तव्य है कि मैं अपने अन्य भारतीय भाइयोंके कष्टों और परीक्षाओंमें हिस्सा बटाऊं। यदि मैं मुसलमानोंको अपना भाई समझता हूं, तो मेरा कर्त्तव्य है कि सङ्कटकी घड़ीमें मैं उनको अपनी शक्तिभर सहायता दूं यदि उनका पक्ष मुझे न्यायका जंचे।

(४) चौथेमे इस बातकी चर्चा है कि किस अंशतक हिन्दुओंको मुसलमानोका साथ देना चाहिये। इसलिये यह राय और अनुभवका विषय है। यह उचित है कि न्यायके कार्यमे अपने मुसलमान भाईके लिये जहांतक सम्भव हो कष्ट सहा जाय। इसलिये मैं उसके साथ पूरा रास्ता तबतक चलूंगा जबतक वह अपने उद्देश्यके समान ही उसके लिये प्रतिष्ठित साधन भी काममें लायेगा। मै मुसलमानोंके भावकी व्यवस्था नही कर सकता। मैं उनका यह कथन स्वीकार करूंगा कि उनके लिये खिलाफत इस अर्थमे धार्मिक प्रश्न है कि उसके लिये जान देकर भी लक्ष्यस्थानपर पहुचना उनका अवश्यकर्त्तव्य है।

(५) मै असहयोगको बलवा नही समझता, क्योंकि यह निरुपद्रव है। व्यापक अर्थमे तो किसी गवर्नमेण्टका सब प्रकारका विरोध बलवेके भीतर आ जाता है। उस अर्थमे न्याययुक्त कार्यके लिये बलवा कर्त्तव्य है और उतना अधिक विरोध हो सकता है जितना अन्याय किया जाता या जितना उसका अनुभव होता है।

(६) गत वर्षके मेरे अनुभवने मुझे दिखा दिया है कि यद्यपि भारतके किसी किसी भागमें लोग पथभ्रष्ट हो गये, किन्तु देश बिल्कुल ही नियन्त्रणमे है और सत्याग्रहका प्रभाव उसके लिये बहुत ही हितकर हुआ है। जहां उपद्रव हुआ भी वहां उसके प्रत्यक्ष हेतु स्थानिक कारण हुए हैं। तो भी मैं स्वीकार

करना हूं कि लोगोंने जो मारकाट की और कुछ भागोंमें निम्स न्देह जो उच्छृंखलता दिखायी उसका निरोध होना चाहिये था। मैंने उस समय जो गलत अन्दाज किया था वह काफी तौरपर स्वीकार कर चुका हूं। परन्तु उस समय जितनी भी दुःखपूर्ण अनुभव मैंने प्राप्त किया, उससे मेरा सत्याग्रहसे विश्वास तनिक भी नहीं विचलित हुआ। पहले जो गलतियां हो चुकी हैं उनसे बचनेके लिये इस बार काफी पूर्वोपाय किया जा रहा है। परन्तु मैं स्पष्ट मार्गसे विचलित होनेसे अवश्य इनकार करूंगा क्योंकि इससे उपद्रवकी सम्भावना है यद्यपि उसका बिल्कुल ही इरादा नहीं है और उसे रोकनेके लिये असाधारण पूर्वोपाय किये जा रहे हैं। साथ ही मै अपनी अवस्था स्पष्ट कर देना चाहता हूं। अधिकारियोंका भय किसी सत्याग्रहीको स्वकर्त्तव्य पालन करनेसे नहीं रोक सकता। आवश्यकता पडनेपर मैं दस लाख आदमियोंका जीवन खतरेमें डालनेको तैयार हूं यदि वे लोग निर्दोष और निरपराध हों और अपनी इच्छासे कष्ट सह रहे हों। सत्याग्रहकी लड़ाईमे लोगोंकी गलतीकी परवाह होती है। दृढ़ और शक्तिसम्पन्न लोगोंसे गलतियां यहांतक कि पागलपन भी हो सकता है। विजयका समय तभी आ जाता है जब शक्तिसम्पन्नके क्रोधके बदले क्रोध नही किया जाता और स्वेच्छासे चुपचाप उस क्रोधका सहन कर लिया जाता है, किन्तु अन्याय करनेवाले अधिकारीकी इच्छाके आगे सिर नहीं झुकाया जाता। इसलिये प्रत्येक अंग्रेज और सरकारी अफसरको

जीवन अपने प्यारे लोगोंके समान पवित्र मानना ही सफलता-की कुंजी है। लगभग ४० वर्षकी अपनी समझमें मुझे जितने आश्चर्यजनक अनुभव प्राप्त हुए हैं उनसे मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि जीवनके समान मूल्यवान् दान और कुछ नहीं है। मैं दावेके साथ कहता हूं कि जिस क्षण अंग्रेज जान जायेंगे कि यद्यपि वे भारतमें अत्यन्त न्यून संख्यामें हैं तो भी उनका जीवन सुरक्षित है—इसलिये नहीं कि उनके पास नाश करनेके अतुलनीय शस्त्रास्त्र हैं, बल्कि इसलिये कि भारतीय उन लोगोंकी भी जानें नहीं लेना चाहते जो बिल्कुल ही अन्याय करते हैं—उसी क्षण भारतके सम्बन्धमें अंग्रेजोंके स्वभावमें परिवर्तन हो जायगा और वही क्षण होगा कि भारतमें जितने नाशक शस्त्र मिल सकते हैं उनमें मुर्चा लगना शुरू हो जायगा। मैं जानता हूं कि ऐसी आशा दूरका स्वप्न है। इसकी मुझे कुछ परवाह नहीं हो सकती। मेरे लिये इतना ही बस है कि प्रकाशको देखूं और उसके अनुसार काम करूं और यह काफीसे भी ज्यादा है यदि आगे बढ़नेमें मुझे साथी मिल जायें। अंग्रेज मित्रोंसे मेरी प्राइवेटमें जो बातें हुई हैं उनमें मैंने दावा किया है कि मेरे लगातार अहिंसाके सिद्धान्तका प्रचार करने और सफलतापूर्वक उसकी क्रियात्मक उपयोगिता दिखा सकनेके कारण ही उपद्रवकी वे शक्तियां नियन्त्रणमें रही हैं जो खिलाफत आन्दोलनके कारण निस्सन्देह विद्यमान हैं।

(७) धार्मिक दृष्टिसे सातवां आक्षेप तो विचारणीय भी

नहीं है। यदि लोग असहयोग आन्दोलनके अनुसार काम नहीं करते तो यह खेदकी बात होगी, किन्तु यह कोई कारण नहीं कि सुधारक उसकी परीक्षा न करें। यह मेरे लिये एक आवि‌ष्कार होगा कि वर्तमान आशापूर्णताकी अवस्था किसी भीतरी दृढ़ता या ज्ञानके आधारपर नहीं है, बल्कि यह आशा अज्ञानता और मिथ्या विश्वाससे पैदा हुई है।

(८) यदि असहयोग उत्सुकतापूर्वक ग्रहण किया जाय तो अन्य सब कार्य तथा सुधारोंका काम रुक जायगा। परन्तु इसीसे उन्नति रूपी घड़ीकी सुईको यह पीछे कर देगा, यह परिणाम इससे मैं नहीं निकाल सकता। इसके विरुद्ध मैं असहयोगको ऐसा दृढ़ और शुद्ध साधन समझता हूं कि यदि यह उत्सुकतापूर्वक काममे लाया जाय, तो पहले ईश्वरके राज्यकी तलाश करनेके समान होगा जिसके बाद और सब बाते अपने आप हो जायेंगी। तब लोगोंको अपनी सच्ची शक्तिका ज्ञान हो जायगा। उन्हें व्यवस्था, आत्मनिरोध, मिलकर काम करने अहिंसा, सङ्गठन तथा उन सभी बातोंका मूल्य मालूम हो जायगा जो किसी राष्ट्रको केवल महान् ही नहीं, बल्कि महान् और अच्छा बनाती हैं।

(६) मैं नहीं जानता कि अपने मुसलमान भाइयोंकी अपेक्षा मुझे अपनी अधिक पवित्रताका दावा करनेका अधिकार है। पर यह मैं स्वीकार करता हूं कि वे पूरे तौरपर मेरे अहिंसाके ...न्तमे विश्वास नहीं रखते। उनके लिये यह निर्बलोंका

अस्त्र और आवश्यकताकी वस्तु है। वे समझते हैं कि वर्तमान स्थितिमे उपद्रवरहित असहयोगहीका एकमात्र मार्ग उनके लिये खुला हुआ है। मैं जानता हूं कि यदि उनमेसे कुछ लोग सफलतापूर्वक मारकाट कर सके तो वे आज ही करेंगे। परन्तु उनको दृढ निश्चय हो गया है कि यह असम्भव है। इसलिये उनके लिये असहयोग केवल कर्त्तव्य ही नही, वलिक वदला लेनेकी भी बात है। इसके विरुद्ध मैं सरकारके विरुद्ध असहयोग उसी तरह करता हू जिस तरह मैंने अपने कुटुम्बके लोगोंके विरुद्ध कार्यरूपमे किया है। ब्रिटिश शासनपद्धतिके लिये मेरे हृदयमे वड़ी प्रतिष्ठाका भाव है। अंग्रेजोके विरुद्ध मैं वैर-भाव नहीं रखता। इतना ही नही, मै समझता हूं कि उनके स्वभावमे वहुतसी वातें ऐसी हैं जिनका मुझे अनुकरण करना चाहिये। अंग्रेजोंमे मेरे वहुतसे मित्र है। किसीको भी शत्रु समझना मेरे धर्मके विरुद्ध है। यही भाव मुसलमानोंके संवन्धमे भी मेरे हैं। मै उनका पक्ष न्याययुक्त और शुद्ध देखता हूं। इसलिये यद्यपि उनके विचारके ढङ्ग मुझसे भिन्न हैं, तो भी उनका साथ देने और उन्हें मैं अपने ढङ्गका परीक्षण करनेके लिये कहनेमे नही हिचकता। कारण यह कि मेरा विश्वास है कि शुद्ध साधन चाहे गलत इरादेसे भी काममें लाया जाय, तो उससे कुछ लाभ हुए विना नही रह सकता जैसे यदि सच वोलना इसी समयके लिये भी सबसे अच्छी नीति हो तो वह इतना ही अच्छा है।

६— मि० कैंडलरकी खुली चिट्ठी।

इस मुख्य प्रश्नके सम्बन्धमे मि० कैंडलरने एक पत्र मेरे पास भेजा है जो समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हो चुका है। मैं मि० कैंडलरकी अवस्था समझता हूं जैसा मैं चाहता हूं कि वे तथा अन्य अंग्रेज मेरी तथा मेरे समान अनुभव करनेवाले अन्य सैकड़ों हिन्दुओंकी अवस्था समझें। मि० केण्डलरके पत्रमें यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि सन्धिकी शर्त्तों से मि० लायड जार्जकी प्रतिज्ञाएं किसी प्रकार नहीं टूटती है। मैं उनसे इस बातमें बिलकुल ही सहमत हूं कि मुसलमानोंके दावेको पुष्ट करनेके लिये मि० लायड जार्जके शब्दोंको उनके प्रकरणसे अलग न करना चाहिये। वायसरायका हालका जो सन्देशा निकला है उसमे मि० लायड जार्जके शब्द इस प्रकार उद्धृत किये गये हैं— "न तो हम आस्ट्रिया-हंगरीको बर्बाद करने या तुर्कोंको उनकी राजधानी या एशियाई रूम और थ्रेसकी उपजाऊ और बहुमूल्य भूमिसे वञ्चित करनेके लिये लड़ रहे हैं जहांकी जनताका बहुत ही बड़ा भाग तुर्क जातिका है।" मि० केण्डलर 'जहांकी जनताका बहुत ही बड़ा भाग तुर्क जातिका है', इसका अर्थ इस प्रकार लेते हैं कि, 'यदि वहांकी जनताका बहुत ही बड़ा भाग तुर्क जातिका हो' परन्तु मैं इसका साधारण ही अर्थ लगाता हूं। अर्थात् प्रधान मन्त्री १९१८ ई० में जानते थे कि जिन प्रदेशोंकी उन्होंने चर्चा की है वहांकी जनताका बहुत ही बड़ा भाग तुर्क है। यदि यही अर्थ है तो मैं दावेसे कहूंगा कि प्रतिज्ञा

स्पष्ट रूपसे तोड़ी गयी है, क्योंकि एशियाई रूम और थ्रेसकी उपजाऊ और बहुमूल्य भूमिका कुछ भी अंश तुर्कोंके लिये नहीं छोडा गया है। सुलतानको कुस्तुन्तुनियामें बनाये रखनेके सम्बन्धमे मैं अपने विचार प्रकट ही कर चुका हूं। यह कहना कि सन्धिकी शर्त्तोंसे तुर्की साम्राज्य अभङ्ग बना हुआ है मनुष्यकी बुद्धिका अपमान करना है। मि० कैंडलरके लिये मैं मि० लायड जार्जके भाषणका एक वाक्य और उद्धृत करता हूं और वह यह है·—"जहां तुर्क जातिके निवासके देशमे तुर्क साम्राज्यके बना रखने और कुस्तुन्तुनियाको उसकी राजधानी बना रखनेमे हमे आपत्ति नहीं है, वहां भूमध्य सागर और काला सागरके बीचका जलमार्ग सार्वराष्ट्रीय होना चाहिये और हमारी समझसे अर्मेनिया, मेसोपोटामिया, सीरिया और फिलस्तीनकी पृथक् राष्ट्रीयता स्वीकार करना योग्य है।"

क्या इसका अर्थ यह है कि तुर्की प्रभाव एकदम हटा दिया जाय, तुर्कोंका आधिपत्य दूर कर दिया जाय और मैंडेटके रूपमें यूरोपियन ईसाइयोंका प्रभाव स्थापित किया जाय? अरब, अर्मेनिया, मेसोपोटामिया, सीरिया और फिलस्तीनके मुसलमानोंसे राय ली गयी है या जो नया प्रबन्ध होरहा है यह मित्रराष्ट्र न्याय से नहीं, वल्कि अपने पशुबलके अभिमानसे स्वेच्छासे उनके ऊपर लाद रहे हैं। मैं अरबोंके स्वतन्त्रताके भावको पुष्टि सभी प्रकारके उचित उपायोंसे करूंगा। परन्तु यह सोच मेरा हृदय काँप उठता है कि जिन शक्तियोंको उनका शासन-प्रबन्ध सौंपा

जायगा उनसे सुरक्षित लोभी पूंजीवालोंकी उनके देशका दोहन करनेकी स्कीमके कारण उनको क्या गति होगी। यदि प्रतिज्ञा पूरी करनी है तो जैसा 'टाइम्स आफ इण्डिया' ने राय दी है इन स्थानोंको पूर्ण स्वराज्य दे दिया जाय और इनके ऊपर तुर्कोंकी छत्रछाया बनी रहने दी जाय। अरबोंकी भीतरी स्वतन्त्रताके सम्बन्धमे तुर्कोंसे जो गारण्टी आवश्यक हो वह ले ली जाय, परन्तु वह छत्रछाया हटा देना और पवित्र स्थानोंकी रक्षासे खलीफाको वञ्चित कर देना खिलाफतको तिरस्कृत करना है जिसे सम्भवत: कोई मुसलमान समभावसे नहीं देख सकता। प्रतिज्ञाका ऐसा अर्थ मैं ही अकेला नहीं लगाता हूं। राइट आनरेबल मि० अमीर अली सन्धिकी शर्त्तों को विश्वासघात कहते हैं। मि० चार्ल्स राबर्टस ब्रिटिश जनताको याद दिलाते हैं कि भारतीय मुसलमानोंका तुर्की सन्धिके सम्बन्धमे जो आग्रह है वह प्रधान मन्त्रीकी थ्रेस, कुस्तुन्तुनिया और एशियाई रूमके सम्बन्धसे की हुई प्रतिज्ञाके आधारपर है जिसे गत २६ वीं फरवरीको मि० लायड जार्जने समझ बूझकर दुहराया है। मि० राबर्टसका मत है कि पूरी प्रतिज्ञा निभानी चाहिये और वह केवल कुस्तुन्तुनियाके सम्बन्धमे नही, बल्कि थ्रेस और एशियाई रूमके सम्बन्धमे भी अवश्यमान्य है। वे कहते हैं कि प्रतिज्ञा कुल ब्रिटिश जातिके लिये अवश्य पालनीय है और किसी भी अंशमें उसे भङ्ग करना ब्रिटिश साम्राज्यकी ओरसे भारी [illegible] काम होगा। वे कहते हैं कि विश्वासघातके

अभियोगके विरुद्ध यदि कोई अकाट्य उत्तर हो तो देना चाहिये। प्रधानमन्त्री चाहे तो अपने शब्दोंको लघु समझ सकते है, परन्तु उन्हे ऐसी प्रतिज्ञा तोड़नेका कोई अधिकार नहीं है जो राष्ट्रकी ओरसे की गयी है। अन्तमे वे कहते हैं कि यह ठीक नहीं है कि ऐसी प्रतिज्ञाका पालन अक्षरशः न किया जाय। वे यह भी कहते हैं कि, "यह विश्वास करनेका कारण है कि मन्त्रिमण्डलके मुख्य मेम्बरोंके भी ठीक यही विचार हैं।"

मुझे आश्चर्य है कि मि० कैंडलर जानते हैं कि नहीं कि इस समय इंगलैण्डमें क्या हो रहा है। मि० पिकथाल 'न्यू एज'मे लिखते है कि, "जबसे तुर्कोंके साथ क्षणिक सन्धि हुई है तबसे इतना समय बीत गया, पर अर्मेनियाकी हत्याओंके सम्बन्धमे किसी प्रकारकी सार्वराष्ट्रीय जांच नहीं करायी गयी। तुर्की सरकारने ऐसी जांच करानेके लिये कहा था। परन्तु अर्मेनियनोंकी संस्थाएं और उनके पक्षपाती ऐसी बात नहीं सुनना चाहते और कहते हैं कि ब्राइस और लेपसनकी रिपोर्ट ही तुर्कोंकी निन्दा करनेके लिये काफी हैं। दूसरे शब्दोंमें केवल मामला चलानेवालोंकी बाते सुनकर ही मुकदमेका फैसला कर देना चाहिये। जिस सार्वराष्ट्रीय कमीशनने गत वर्षकी स्मिरनाकी शोचनीय दुर्घटनाके सम्बन्धमे जांच की थी उसने यूनानियोंके दावेके विरुद्ध रिपोर्ट दी। इसलिये वह रिपोर्ट यहां इंगलैण्डमे नहीं प्रकाशित की गयी यद्यपि अन्य देशोंमें यह कभीकी प्रकाशित हो चुकी है।" फिर वे यह दिखाते हैं कि अर्मेनिया और यूनानके

एजेण्ट अपने पक्षको सर्वमान्य बनानेके लिये किस प्रकार पा नीकी तरह रुपया बहा रहे हैं और कहते है कि, "घोर अन्याय और चालबाजीकी झूठका यह मेल ब्रिटिश राज्यके लिये तुरन्त सङ्कट उपस्थित कर सकता है।" अन्तमें वे कहते हैं कि 'वह सरकार और जनता जिसकी नीतिका और वैदेशिक नीतिका आधार सत्य बातें नहीं, बल्कि स्वमत प्रचार है स्वतः निन्दनीय है।"

मैंने ऊपर जो अवतरण दिया है वह यह दिखानेके लिये है कि वर्त्तमान ब्रिटिश नीति अज्ञानताके प्रचारसे प्रभावित है। १३ वीं शताब्दीमें जिस तुर्कीका एशिया, अफ्रिका और यूरोपका २० लाख वर्गमील भूमिपर प्राधान्य था वह 'लण्डन क्रानिकल' के कथनानुसार सन्धिकी शर्तों के कारण केवल एक हजारसे कुछ ही अधिक वर्गमील भूमिका मालिक रह गया है। उक्त पत्र कहना है कि, "अब कुल यूरोपियन तुर्की सरलतासे लैंड्स एण्ड और टामारके बीच रखा जा सकता है और इसके क्षेत्र फलसे अधिक एक कार्नवालका ही क्षेत्रफल है। यदि तुर्कीने जर्मनीसे मित्रता न की होती तो निश्चय था कि उसके पास पूर्वी बालकनका कमसे कम ६० हजार वर्गमील भूमि रहती।" मैं नहीं जानता कि साधारणतः लोग क्रानिकलकेसे विचार रखते हैं। तुर्कीको सजा देनेके कारण इतनी हानि पहुचानी है या न्याय यही चाहता है? यदि तुर्की जर्मनीसे न मिला होता क्या तब भी अर्मेनिया, अरब, मेसापोटामिया और फिलस्तीनके मे राष्ट्रीयताका सिद्धान्त काममें लाया जाता? मैं उन

लोगोंको याद दिलाना चाहता हूं जो मि० कैंडलरकी तरह यह समझते हैं कि मि० लायड जार्जने यह समझकर प्रतिज्ञा नहीं की थी कि इससे रंगरूट मिलते रहेंगे। अपने वक्तव्यके पक्षमें मि० लायड जार्जने कहा था:—

"भारतमें वक्तव्यका यह प्रभाव हुआ कि उसी क्षणसे रङ्गरूट अधिक संख्यामें भर्ती होने लगे। वे सब तो नहीं, पर उनमेंसे बहुतसे मुसलमान थे। अब हमसे कहा जाता है कि तुर्कोंको साथ मिलानेके लिये वह बात कही गयी थी, पर उसने नामंजूर किया इसलिये हम पूर्ण स्वतन्त्र हैं। यह बात नहीं हैं। यह बात प्रायः भुला दी जाती है कि हम संसारमें सबसे बड़ी मुसलमान शक्ति हैं और ब्रिटिश साम्राज्यकी जनताका एक चतुर्थांश मुसलमान है। मुसलमानोंसे अधिक राजभक्त तथा संकटकालमें साम्राज्यका उनसे बढ़कर समर्थक और कोई नहीं रहा है। हमने गम्भीरतापूर्ण प्रतिज्ञा की और उन्होंने उसे स्वीकार किया। वे यह सोच व्यग्र हो गये हैं कि हम उनका पालन नहीं करेंगे।"

उस प्रतिज्ञाका कौन और किस प्रकार अर्थ करेगा? स्वयं भारत सरकारने किस प्रकार अर्थ किया? खलीफाका इसलामके पवित्र स्थानोंपर नियन्त्रण हो, इस दावेका उसने सोत्साह समर्थन किया या नहीं? क्या भारत सरकारने कहा कि प्रतिज्ञाके अनुसार कुल जजीरातुल अरब खलीफाके प्रभावक्षेत्रसे निकालकर मित्रराष्ट्रोंको मेंडेटरी पावर्स (शासन प्रबन्धक) की हैसियतसे सौंपा जा सकता है? यदि सब शर्तें ऐसी हैं जैसी होनी

चाहिये तो भारत सरकार क्यों भारतीय मुसलमानोंके साथ सहा नुभूति रखती है ? इतनी बात तो प्रतिज्ञाके सम्बन्धकी हुई। कहीं कोई मेरे इस कथनसे यह न समझ ले कि मैं मि० लायड जार्जकी घोषणाको सर्वांशमें ठीक मानता हूं। मैंने उनके लिये 'प्रायः' विशेषणका प्रयोग जानबूझ कर किया है जो महत्वका है।

मालूम होता है कि मि० कैंडलरका कथन है कि मेरा लक्ष्य खिलाफतके सम्बन्धमें न्याय प्राप्त करनेके सिवा और कुछ भी है। यदि ऐसा है, तो उनकी समझ ठीक है। न्याय प्राप्त करना एक आवश्यक बात है, इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु मुझे मालूम हो जाय कि इस सम्बन्धमें मैंने जिसे न्याय समझ रखा है वह ठीक नहीं है, तो तुरन्त अपना पग पीछे हटानेका साहस हम करेंगे। परन्तु भारतीय मुसलमानोंको उनके इतिहासके सङ्कट-कालमें सहायता देनेके द्वारा मैं उनकी मित्रता प्राप्त करना चाहता हूं। इतना ही नहीं, यदि मुसलमानोंको मैं अपने साथ चला सकूं तो आशा करता हूं कि मैं ग्रेट ब्रटेनको नीचेकी ओर जानेवाले रास्तेसे रोक सकता हूं जिसपर प्रधानमन्त्री मेरी समझसे उसे ले जाते जान पड़ते हैं। मुझे यह भी आशा है कि मैं भारत और साम्राज्यको दिखा सकता हूं कि यदि आत्मत्याग-की थोड़ी भी योग्यता हो तो अंग्रेज और भारतीयोंमें मनो मालिन्य पैदा किये या बढ़ाये विना अत्यन्त शान्तिपूर्ण और शुद्ध उपायोंसे न्याय प्राप्त किया जा सकता है। कारण यह कि मेरे

अस्थायी प्रभाव चाहे जो भी हो मैं भली भांति समझता

हूं कि एकमात्र वे ही स्थायी मनोमालिन्यसे बने हुए हैं। घृणा, औचित्य या असत्यका रङ्ग उनपर नहीं चढ़ा है।

७— प्रतिज्ञाका पालन।

'टाइम्स आफ इण्डिया'मे करेंट टापिक्सके लेखकने मेरे उस वक्तव्यका प्रतिवाद करनेकी चेष्टा करते हुए मि० आस्क्विथकी १९१४ की १० वीं नवम्बरकी गिल्डहालवाली वक्तृताका उल्लेख किया है जो मेरे खिलाफतवाले लेखमें मन्त्रियोंकी प्रतिज्ञाओंके सम्बन्धमे है। वह लेख लिखनेके समय मि० आस्क्विथकी वक्तृताका मुझे ध्यान था। मुझे खेद है कि उन्होंने कभी वैसी वक्तृता दी थी। कारण यह कि मेरी तुच्छ रायमें वह विचारकी गड़बड़ पैदा करती है। क्या वे तुर्क जनताको तुर्क सरकारसे पृथक् समझ सकते थे? यूरोप और एशियामे तुर्कोंके साम्राज्यका अन्तिम समयका अर्थ यदि तुर्क जनताकी स्वतन्त्रता और शासक जाति होनेका अन्तिम समय नहीं तो क्या है? फिर क्या यह इतिहाससे सिद्ध है कि "तुर्की शासन सदैव नाशक सिद्ध हुआ है जिसने पृथ्वीके कितने ही सर्वोत्तम प्रदेश वर्बाद कर दिये?" उसके वाद कही हुई उनकी इस वातका क्या अर्थ है कि उनके (मुसलमानोंके) धर्मके विरुद्ध धार्मिक युद्ध छेड़ना हमारे विचारसे जितनी दूर है उतनी और कोई वात नहीं है।" यदि शब्दोंका कोई अर्थ होता है, तो मि० आस्क्विथके भाषणका यही अर्थ हो सकता है कि भारतीय मुसलमानोंके भावका विचारपूर्वक सम्मान

किया जायगा। यदि यही उनके भाषणका अर्थ है, तो अपने पक्षकी पुष्टिके लिये विना अन्य किसी वातका आश्रय लिये ही मैं दावेसे कहूंगा कि, यदि सान रीमों कान्फरेन्सके प्रस्तावोंके अनुसार काम हुआ, तो मि० आस्क्विथने जो विश्वास दिलाये हैं वे भी निरर्थक सिद्ध होंगे। परन्तु मैं जो वातें कहता हूं उन्हें मि० आस्क्विथके उत्तराधिकारीके दो वर्ष वादकी वक्तृताके आधारपर कहता हू जब कि १९१४ से अधिक भयङ्कर अवस्था उपस्थित थी और जब १९१४की अपेक्षा भारतीयोंकी सहायताकी वहुत अधिक आवश्यकता थी। उनकी प्रतिज्ञा जवतक पूरी नहीं की जाती तवतक वारवार दुहरायी जायगी। उन्होंने कहा था कि, "न हम इसलिये लड रहे हैं कि तुर्कीको उसकी राजधानी या एशियाई रूम और थ्रेसकी उस वहुमूल्य और उपजाऊ भूमिसे वञ्चित कर दें, जहांकी जनताका वहुत ही वड़ा भाग तुर्क जातिका है।" "हमें कुछ भी आपत्ति नहीं है यदि तुर्क साम्राज्य तुर्क जातियोंके निवासकी भूमिपर वना रहे और उसकी राजधानी कुस्तुन्तुनिया रहे।" यदि और नहीं तो इस प्रतिज्ञाको अक्षरशः पूर्ति की जाय, तो झगड़ेके लिये कोई भी वात न रह जाये। जिस अंशतक मि० आस्क्विथकी घोषणा भारतीय मुसलमानोंके दावेके विरुद्ध समझी जा सकती है उसका निराकरण पीछेकी अधिक विचारपूर्ण मि० लायड जार्जकी घोषणासे हो जाता है जो इसलिये और क अभङ्गनीय हो गयी है कि जिस विचारसे वह की गयी

थी वह पूरा हो गया है अर्थात् वीर मुसलमान सैनिकोंने सेनामें भर्त्ती हो उसी स्थानपर युद्ध किया जिसका उक्त प्रतिज्ञाके विरुद्ध बटवारा किया जा रहा है। परन्तु 'करेण्ट टापिक'का लेखक कहता है कि मि० लायड जार्ज अब अपनी प्रतिज्ञा पालन करनेके उपायमे हैं। मैं आशा करता हूं कि उसका कथन ठीक है। परन्तु जो कुछ हो चुका है उससे ऐसी आशा करनेका कुछभी कारण नही दिखता। कारण यह कि खलीफाको उनको राजधानीमे कैदी या नजरबन्द बनाकर रखना केवल प्रतिज्ञा पालन करनेका ढोंग ही नहीं, बलिक कटेपर नमक छिड़कना है। तुर्क जातिके निवासको भूमिपर तुर्क साम्राज्य और उसकी राजधानी कुस्तुन्तुनियामें रखनी है या नही? यदि रखनी है तो उसे भारतीय मुसलमानोके सामने प्रकाश रूपसे उपस्थित कर देना चाहिये। और यदि साम्राज्यका अङ्गभङ्ग करना है, तो धूर्त्तताका परदा उठा दिया जाय जिससे भारतको यथातथ्य बातें मालूम हो जायं। इसलिये खिलाफत आन्दोलनमें सम्मिलित होना एक ऐसे आन्दोलनमे शामिल होना है जो एक ब्रिटिश मन्त्रीको प्रतिज्ञा अभग बनाये रखनेके लिये हो रहा है। निश्चय ही ऐसा आन्दोलन उससे कही अधिक स्वार्थत्याग करनेके योग्य है जितना त्याग असहयोगके कारण करना पडेगा।

८—वायसरायसे अपील।

महोदय,

मैं एक ऐसा आदमी हूं जिसपर आपका किसी अंशतक

विश्वास है और जो ब्रिटिश साम्राज्यका शुभचिन्तक होनेका दावा करता है। इसलिये आपके प्रति और आपके द्वारा महाराजके मन्त्रियोंके प्रति मैं यह बताना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि खिलाफतके प्रश्नसे मेरा क्या सम्बन्ध है और उसके विषयमें मैं क्या करता हूं। युद्धके बिल्कुल ही प्रारम्भमें यहांतक कि जब मैं लण्डनमें भारतीय वालण्टियर एम्बुलेन्स कोरका सगठन कर रहा था तभी खिलाफतके सम्बन्धमें मेरा अनुराग शुरू हुआ था। मैंने देखा कि जिस समय तुर्कोंने जर्मनोंके साथ मिलकर युद्धमें पडनेका निश्चय किया था, उस समय लण्डनमें जो अल्पवयस्क मुसलमान थे उनका हृदय कितना हिल गया था। जब मैं १९१५ की जनवरीमें भारत आया तब वही चिन्ता मुझे उन मुसलमानोंमें देख पड़ी जिनसे मैं मिला। जब गुप्त सन्धियोंकी खबर उन्हें मिली तब वह चिन्ता और भी गहरी हो गयी। ब्रिटिश इरादोंके सम्बन्धमें उनके हृदयमें अविश्वास भर गया और वे बड़े ही निराश हुए। उस समय भी मैंने अपने मुसलमान भाइयोंको राय दी थी कि निराश मत होओ, बल्कि अपने भय और आशाओंको व्यवस्थित ढङ्गसे प्रकट करो। यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भारतके कुल मुसलमानोंने पिछले पांच वर्षोंमें अद्भुत निरोधके साथ वर्त्ताव किया है और नेताओंने जाति के उपद्रवी भागको पूरे तौरपर काबूमें रखा है। सन्धिकी शर्त्तों और आपके उनका समर्थन करनेसे भारतीय मुसलमान इतने [illegible] हुए हैं जिससे छूटना कठिन होगा। शर्त्तें मन्त्रि-

योकी प्रतिज्ञाएं तोड़तीं और मुसलमानोके भावकी विल्कुल ही उपेक्षा करती हैं। मैं समझता हूं कि मै एक ऐसा कट्टर हिन्दू हू जो अपने मुसलमान देशवासियोका अत्यन्त घनिष्ट मित्र वनकर रहना चाहता हूं। इसलिये यदि मैं उनके परीक्षाकालमे उनका साथ नही देता तो मैं भारतका अयोग्य लड़का ठहरूंगा। मेरी तुच्छ रायमे उनका पक्ष न्याय्य है। वे कहते हैं कि यदि मुसलमानोंके भावका सम्मान करना है, तो तुर्कोंको सजा हर्गिज न देनी चाहिये। मुसलमान सैनिकोंने स्वयम् अपने खलीफाको सजा देने या उनके प्रदेशोसे वञ्चित करनेको युद्ध किया था। इन पांच वर्षोंके भीतर मुसलमानोंका भाव एक समान वना रहा है।

मैं जिस साम्राज्यका भक्त हू उसके प्रति मेरा कर्त्तव्य उस निर्दय चोटका प्रतिकार करनेको कहता है जो मुसलमानोंके भावको पहुचायी गयी है। जहांतक मुझे पता है कुल मुसलमानो और हिन्दुओंका ब्रिटिश न्याय और प्रतिष्ठासे विल्कुल ही विश्वास उठ गया है। हटर कमेटीके वहुपक्षकी रिपोर्ट, उसपर आपके खरीते और मि० माटेगूके उत्तरने उस अविश्वासको और भी दृढ़ कर दिया है। ऐसी अवस्थामें मुझ जैसे आदमीके लिये दो ही मार्ग रह गये है। या तो हताश होनेके कारण मैं ब्रिटिश शासनसे सब प्रकारका अपना सम्बन्ध तोड़ लूं या यदि अब भी वर्त्तमान सभी शासनपद्धतियोंकी अपेक्षा ब्रिटिश शासनपद्धतिकी स्वाभाविक उत्कृष्टतामे विश्वास वना हुआ है, तो ऐसा उपाय काममे

लाऊं जो किये हुए अन्याय दूर करेगा और फिर विश्वास पैदा करेगा। ऐसी उत्कृष्टतासे मेरा विश्वास नहीं उठा है और मैं इस वातसे निराश नहीं हुआ हू कि यदि हम सहिष्णुताकी आवश्यक योग्यता दिखायें तो किसो न किसी प्रकार न्याय किया जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि उस शासनपद्धतिके वारेमें मेरा विचार है कि यह केवल उन्हींको सहायता देती है जो स्वयम् अपनी सहायता करनेको तैयार हैं। यह निर्वलकी रक्षा करती है, ऐसा मेरा विश्वास नहीं है। यह मजबूतोंको अपनी शक्ति वनाये रखने और उसे वढ़ानेके लिये पूरा सुभीता देती है। इसके भीतर निर्वलको भारी सकट होता है। इस तरह मैंने जो सलाह दी है कि यदि सन्धिकी शर्त्तोंमें मन्त्रियोंकी प्रतिज्ञाओं और मुसलमानोंके भावके अनुसार सुधार न हो, तो मुसलमान आपकी सरकारको सहायता देना वन्द कर दें और हिन्दूभीउनका साथ दें इसका कारण यही है कि मेरा त्रिटिश शासनपद्धतिमें विश्वास हैं। मुसलमानोके लिये उस घोर अन्यायके प्रति विरोध-भाव दर्शानेके लिये तीन राह खुले हुए हैं जो करनेमें महाराजके मन्त्रियोंने भाग अवश्य लिया है यदि वे प्रधान अन्याय करनेवाले नहीं हैं:—(१) मारकाटका आश्रय लेना (२) देश छोड़कर सवका वाहर चले जाना और (३) गवर्नमेण्टको सहयोग देना वन्दकर अन्यायका पक्ष न लेना।

आपको अवश्य पता होगा कि एक समय था जव अत्यन्त यद्यपि विचारशून्य मुसलमान मारकाटका पक्ष करते

थे और 'हिजरत' करनेकी पुकार अब भी बनी हुई है। मैं दावा कर सकता हू कि शान्तिपूर्वक समझानेसे मैंने मारकाटके पक्षपातियोंको उनके रास्तोंसे अलग कर दिया है। मैं स्वीकार करता हू कि नैतिक कारण बताकर नही, बल्कि कार्य-सिद्धिका कारण पेशकर मैंने उन्हे मारकाटके रास्तेसे अलग करनेका प्रयत्न किया था। परिणाम कमसे कम इस समयके लिये यह हुआ है कि मारकाट रुक गयी है। हिजरतवालोंका काम एकदम नही बन्द हुआ है तो भी उसकी रोक हो गयी है। मेरा विश्वास है कि किसी प्रकारके दमनसे मारकाटका होना नही रुक सकता था यदि लोगोंके सामने एक प्रकारका अपने आप करनेको काम न रखा जाता जिसमें बहुत त्याग करनेको है और सफलता भी निश्चित है यदि जनताका बहुत बडा भाग ऐसा काम अङ्गीकार कर ले। इस प्रकारके कामका वैध और प्रतिष्ठित मार्ग एक असहयोग ही था। कारण यह कि प्रजाका यह अधिकार अनादि कालसे स्वीकार किया गया है कि, जो शासक बुरा शासन करता है उसे सहायता करनेसे वह इनकार कर दे। साथ ही मैं स्वीकार करता हूं कि जनसाधारणद्वारा असहयोगका प्रयोग होनेसे भारी सङ्कटोंकी सम्भावना है। भारतके मुसलमानोंके सामने जैसा विकट समय उपस्थित है इसमें किसी ऐसे कार्यसे इच्छित परिवर्त्तन नहीं हो सकता जो भारी सङ्कटोंसे पूर्ण नहीं है। इस समय थोड़े सङ्कटोंमे न पडनेका फल यदि वास्तवमे कानून और शान्तिका नाश न होगा,

तो इससे भी बहुत बड़े सङ्कटोंका कारण अवश्य होगा। परन्तु असहयोगसे बचनेका एक मार्ग है। मुसल्मानोंने जो प्रार्थना पत्र दिया है उसमें आपसे प्रार्थना की गयी है कि जिस तरह आपके पहलेके वायसरायने दक्षिण अफ्रिकाके सङ्कटके समय नेतृत्व किया था, वैसे ही आप स्वयम् इस आन्दोलनका नेतृत्व करें। परन्तु यदि आप ऐसा करना नहीं चाहते और असहयोग अत्यन्त आवश्यक हो जाता है, तो मुझे आशा है कि आप इस बातका श्रेय तो मुझे तथा जिन्होंने मेरी सलाह मानी है उन्हें देंगे ही, कि हम लोग अपना परम कर्त्तव्य समझकर ही ऐसा काम कर रहे हैं।

लेबूरनम रोड,
ग्राम देवी, बम्बई।
२२ जून १९२० ई०

आपका—
मोहनदास कर्मचन्द,
गांधी।

६—प्रधानमंत्रीका उत्तर।

अङ्गरेजी डाकसे खिलाफत डेपुटेशनके उत्तरमें दी हुई प्रधान मंत्रीकी वक्तृताकी पूरी और सरकारी रिपोर्ट हमें मिली है। वायसरायने यहां डेपुटेशनको जो जवाब दिया है इससे प्रधान मन्त्रीकी वक्तृता अधिक निश्चित और इसी लिये अधिक निराश करनेवाली है। उन्होंने जिन उच्च सिद्धान्तोंके आधारपर दो पहले अपनी प्रतिज्ञा की थी उन्हींसे वे अब बिल्कुल अनुचित

परिणाम निकालते है। वे कहते है कि तुर्कोंकी हार हुई है इसलिये उसे जुर्मानेकी रकम जरूर चुकानी होगी। तुर्कोंको सजा देनेका यह दृढ़ निश्चय एक ऐसे आदमीके लिये शोभा नहीं देता जिसके पहलेके अधिकारीने मुसलमान सैनिकोंको सन्तुष्ट करनेके लिये प्रतिज्ञा की थी कि ब्रिटिश गवर्नमेण्टका विचार तुर्कोंकी जमीन दबानेका नही है और तुर्की कमेटीके कुकर्मोंके लिये सुलतानको सजा देनेका वह कभी विचार न करेगी। मि० लायड जार्जने अपना विचार प्रकट किया है कि तुर्कोंकी जनताका अधिकांश वास्तवमे ब्रिटेनसे नही लड़ना चाहता था और तुर्कोंके शासकोंने तुर्कोंको पथभ्रष्ट किया था। ऐसा दृढ़ विश्वास होने और मि० आस्क्विथके ऐसी प्रतिज्ञा करनेपर भी मि० लायड जार्ज तुर्कोंको न्यायके नामपर सजा देने जा रहे हैं। वे स्वभाग्यनिर्णय सिद्धान्तकी व्याख्या करते और तुर्कोंको एक एक करके उसके प्रदेशोंसे वञ्चित करनेकी स्कीमको न्यायपूर्ण बताते है। अपनी स्कीमकी न्याय्यता प्रतिपादित करते हुए वे थ्रेसको भी नही छोड़ते हैं जो पाठकोंको अत्यन्त आश्चर्यचकित करनेवाली बात है, क्योंकि इसी थ्रेसके बारेमे उन्होंने अपनी प्रतिज्ञामे कहा है कि इसके बहुत अधिक भागमे तुर्क जातिके लोग हैं। अब वे हमसे कहते हैं कि तुर्की और यूनानी दोनो ही मनुष्यगणनाओंसे प्रकट होता है कि थ्रेसकी जनताका बहुत कम भाग मुसलमान है। मि० याकूबहुसेनने मद्रास खिलाफत कानफरेन्सके अपने भाषणमे इस कथनको असत्य बताया है। प्रधान-

मन्त्री अन्योंके साथ ही स्मिरनाका उदाहरण पेश करते हैं और कहते हैं कि एक बहुत ही पक्षपातरहित कमेटीसे हमने वहाकी जाच करायी तो पता चला है कि गैर-तुर्क जातिवालोंकी सख्या तुर्कोंकी अपेक्षा वहा अधिक है। जबतक यह असत्य न सिद्ध किया जाय कि हजारों मुसलमान मार डाले गये और हजारों अपने घरोंसे मारकर भगा दिये गये हैं, तबतक एक पक्षकी कमेटीकी पक्षपातरहित जाचपर कौन विश्वास करेगा? आश्चर्य की बात तो यह है कि मि० लायड जार्ज स्मिरनाके सम्बन्धमें सच्ची रिपोर्ट मिलनेके लिये जांच करनेको एक खास कमेटीकी नियुक्ति चाहते हैं जब कि अर्मेनियाकी हत्याओंकी जाचके लिये मि० मुहम्मदअलीके पक्षपातरहित कमीशन नियुक्त करनेके प्रस्तावको वे नहीं स्वीकार करना चाहते! सन्देहपूर्ण तथा इकतर्फी बातों और अङ्कोंसे वे यहातक परिणाम निकालते हैं कि तुर्क सरकार अपनी प्रजाकी रक्षा करनेके अयोग्य है। वे यह भी राय देते हैं कि सभ्यताके हितके लिये एशियाई तुर्कपर शासन करनेमें विदेशी हस्तक्षेपकी आवश्यकता है। इस बातसे वे सुलतानकी स्वतन्त्रताकी जड़ काटते हैं। निरीक्षणका अधिकार लेनेका यह प्रस्ताव स्पष्टतः अन्य शत्रु राज्योंके साथ किये हुए वर्त्तावसे भिन्न है।

सुलतानके राज्याधिकारको कम करना इस बातका प्रमाण है कि, मुसलमानोंका खिलाफतके सम्बन्धमें जो विचार है, प्रधान मन्त्री उसकी उपेक्षा करते हैं। जब वे इस तरह अविचारपूर्ण

खिलाफतके प्रश्नका प्रवन्ध करते हैं तव तुर्की प्रश्नके सम्बन्धमे प्रधानमन्त्रीका अन्याय और भी अधिक भयङ्कर हो जाता है। ऐसे भी अवसर उपस्थित हो चुके हैं जव अङ्गरेजोंने अपने सुभीते या लाभके लिये मुसलमानोका खलीफाकी अध्यात्मिक शक्तिके साथ सासारिक शक्ति मिली हुई होनेका विचार काममें लाया था। अव वडे राजनीतिज्ञ दोनो शक्तियोके एक साथ होनेकी बातको विवादग्रस्त बात बताते हैं। इससे ग्रेटब्रिटेनकी ख्याति बढ़ेगी या घटेगी? जिन लोगोंने अङ्गरेजोकी ईमानदारीमे पूरा विश्वास रखकर तुर्कीसे युद्ध किया था क्या वे यह सहन कर सकते हैं?, केवल प्रकट की हुई कृतज्ञता मुसलमानोंके जख्मी हृदयोको शान्त नही कर सकती। दो मैंडेट (शासन) उपस्थित है, एक तो कुछ तुर्की प्रदेशोंका शासन है जिससे कुल ससारमे गडवड़ होना निश्चित है और दूसरा मुसलमानोंके हृदयपर शासन जमाना है जिससे ब्रिटेनकी प्रतिज्ञाका पालन होगा। अब यह इङ्गलैण्डका काम है कि इन दो शासनोंमेंसे एकको पसन्द करे। प्रधानमन्त्रीने जो पसन्द किया है वह बुद्धिमत्ताशून्य है। यह सकीर्ण विचार ब्रिटिश कूटनीतिज्ञताके हालके स्वभावका परिचय देता है।

१०—मुसलमानोंकी प्रार्थना।

मुसलमानोके सामने जो युद्ध है उसके लिये वे धीरे धीरे परन्तु निश्चयके साथ तैयार हो रहे हैं। उन्हे अपनेसे भारी शक्तियोका सामना करना है, परंतु वे इतनी विषम नही हैं जितनी

कि कही किसी नौकरीमे भर्त्ती होनेसे हम अन्यायके साधन तो नही वनते। खिलाफतके प्रश्न और इस अमूर्त्त न्यायकी वातके सिवा भी तो अंग्रेजोका मेसोपोटामियापर अधिकार रखनेका कोई अधिकार नही है। हमारी राजभक्ति इसमे नही है कि साम्राज्य सरकारको हम उस काममे मदद दें जो स्पष्ट शब्दोमे दिनदहाडे चोरी करनेका हैं। इसलिये यदि हम मेसोपोटामियामे सैनिक या असैनिक नौकरी ढूंढ़ते हैं, तो वह रोजीके लिये करते हैं। यह देखना हमारा कर्त्तव्य है कि जड सदोप नही है। यह देख मुझे आश्चर्य होता है कि इतने अधिक आदमी असहयोगका नाम सुनकर ही पीछे हट रहे हैं। असहयोगके समान शुद्ध, हानि-रहित और साथ ही प्रभावपूर्ण साधन और कोई नही है। न्याया-नुसार इसे चलानेसे बुरे परिणाम नही पैदा होने चाहिये। जितने ही लोग त्यागकी योग्यता दिखायेंगे उतनी हो इसकी जड़ नीचे जायेगी।

मुख्य वात असहयोगके लिये वायुमण्डल तैयार करना है। प्रत्येक समझदार प्रजाजनको निश्चय ही यह कहनेका अधिकार और कर्त्तव्य है कि "हम तुम्हारे अन्यायमे तुम्हें सहयोग नहीं देंगे।" यदि हम एकदम गुलाम, असहाय और आत्मविश्वास-शून्य न होते तो निश्चय ही हम इस शुद्ध अस्त्रको ग्रहणकर इससे प्रभावपूर्ण काम लेते। अत्यन्त स्वेच्छाचारी सरकार भी शासि-तोकी मर्जीके विना नही रह सकती और वह मर्जी स्वेच्छाचारी उससे प्रायः जवर्दस्ती प्राप्त किया करता है। ज्योंही प्रजा स्वे-

उनके नवीके विरुद्ध था। उन्होंने कितनी अधिक बार अपना जीवन सङ्कटमें नहीं डाला था? परन्तु परमात्मामें उनका विश्वास अटल था। वे निश्चिन्त हृदयसे आगे बढ़ते थे, क्योंकि वे सत्य बात कहते थे जिससे परमात्मा उनके पक्षमें था। नबी का जितना विश्वास परमात्मामें था, यदि उनके अनुयायियोंका उसका आधा भी हो और उसमें उनके आधा भी त्याग हो, तो विषमता तुरन्त समानतामें परिणत हो जायगी और थोड़ी ही देरमें वह तुर्कीको बर्बाद करनेवालोंके विरुद्ध हो जायेगी। मित्रराष्ट्रोंकी असदाचरबुद्धि अभीसे उनके विरुद्ध प्रभाव पैदा करने लगी है। फ्रान्सको अपना काम कठिन जान पड़ता है। यूनानने बुरी तरहसे जो प्राप्त किया है उसे वह हजम नहीं कर सकता। इङ्गलैंडको मेसोपोटामिया लोहेका चना मालूम हो रहा है। मासलका तेल उस आगके लिये आहुतिका काम कर सकता है जो उसने अविचारपूर्वक जलायी है और उसकी अंगुलियां जला सकता है। समाचारपत्र कहते हैं कि अरब लोग अपने बीच भारतीय सैनिकोंका रहना नहीं पसन्द कर सकते हैं। इससे मुझे कुछ आश्चर्य नहीं होता। वे बहादुर और उग्र जातिके हैं। वे नहीं समझते कि भारतीय सैनिक क्यों मेसोपोटामियामें रहें। असहयोगका चाहे जो परिणाम हो, मैं चाहता हूं कि मेसोपोटामियाके सैनिक या मुल्की किसी भी विभागके लिये एक भी भारतीय भर्ती न हो। हमें अपने लिये सोचना सीखना चाहिये और किसी नोकरीमें भर्ती होनेसे पहले यह देखना चाहिये

क कही किसी नौकरीमे भर्ती होनेसे हम अन्यायके साधन तो
ही बनते। खिलाफतके प्रश्न और इस अमूर्त्त न्यायकी बातके
सिवाभी तो अंग्रेजोका मेसोपोटामियापर अधिकार रखनेका कोई
अधिकार नही है। हमारी राजभक्ति इसमे नही है कि साम्राज्य
सरकारको हम उस काममें मदद दें जो स्पष्ट शब्दोमे दिनदहाडे
चोरी करनेका हैं। इसलिये यदि हम मेसोपोटामियामे सैनिक
या असैनिक नौकरी ढूंढ़ते हैं, तो वह रोजीके लिये करते हैं। यह
देखना हमारा कर्त्तव्य है कि जड सदोष नही है। यह देख मुझे
आश्चर्य होता है कि इतने अधिक आदमी असहयोगका नाम
सुनकर ही पीछे हट रहे हैं। असहयोगके समान शुद्ध, हानि-
रहित और साथ ही प्रभावपूर्ण साधन और कोई नही है। न्याया-
नुसार इसे चलानेसे बुरे परिणाम नही पैदा होने चाहिये। जितने
ही लोग त्यागकी योग्यता दिखायेंगे उतनी हो इसकी जड़ नीचे
जायेगी।

मुख्य बात असहयोगके लिये वायुमण्डल तैयार करना है।
प्रत्येक समझदार प्रजाजनको निश्चय ही यह कहनेका अधिकार
और कर्त्तव्य है कि "हम तुम्हारे अन्यायमें तुम्हें सहयोग नहीं
देंगे।' यदि हम एकदम गुलाम, असहाय और आत्मविश्वास-
शून्य न होते तो निश्चय ही हम इस शुद्ध अस्त्रको ग्रहणकर इससे
प्रभावपूर्ण काम लेते। अत्यन्त स्वेच्छाचारी सरकार भी शासि-
तोकी मर्जीके बिना नही रह सकती और वह मर्जी स्वेच्छाचारी
उससे प्राय. जबर्दस्ती प्राप्त किया करता है। ज्योंही प्रजा स्वे-

च्छाचारोंको शक्तिसे डरना छोड़ देती है, त्यों ही उसकी शक्ति जाती रहती है। परन्तु ब्रिटिश सरकार कभी कहीं भी पूर्णरूपसे पशुबलके आधारपर नहीं है। यह शासितोंकी सदिच्छा प्राप्त करनेके लिये सच्चे दिलसे प्रयत्न करती है। पर शासितोंसे जबर्दस्ती उनकी मर्जी प्राप्त करनेके लिये अविचारपूर्ण साधन काममें लानेसे नहीं हिचकती। 'सचाई सर्वोत्तम नीति है' इस विचारके बाहर यह नहीं गयी है। यह अपनी इच्छा तुमसे स्वीकार करानेके लिये तुम्हें पदवियां, पदक और नौकरियां देती और अपनी उत्कृष्ट आर्थिक योग्यतासे अपने नौकरोंके धनी होनेके लिये मार्ग खोलती और जब इन सबसे काम नहीं चलता तब अन्तमें पशुबल काममें लाती है। ऐसा ही सर माइकल ओडायरने किया था और निश्चय ही ऐसा प्रत्येक ब्रिटिश शासक आवश्यकता समझनेपर करेगा। तब यदि हम लोभी न बनें और पदवियों, पदकों और उन अवैतनिक पदोंके लिये न दौड़ें जिनसे देशका कुछ हित नहीं होता, तो आधी लड़ाई जीती जा चुकी। मेरे परामर्शदाता सदैव मुझसे कहते हैं कि यदि तुर्की सन्धिकी शर्त्तें बदली भी गयीं, तो असहयोग उसका कारण न होगा। मैं उनसे कहता हूं कि शर्त्तें बदलवानेके सिवा असहयोगका और भी उच्च उद्देश्य है। यदि मैं शर्त्तें नहीं बदलवा सकता तो कमसे कम इतना तो अवश्य करूंगा कि ऐसी सरकारको मदद देना बन्द कर दूंगा जो बलापहार करनेमें भाग लेती है। यदि असहयोगको उसकी अन्तिम श्रेणीतक पहुंचानेमें सफल हुआ, मैं सरकारको भारत और बलापहरण—इन दोमेंसे एक चुन

लेनेको बाध्य कर दूंगा। मेरा विश्वास इङ्गलैण्डमे इतना अधिक है कि मैं जानता हू कि उस समय इङ्गलैण्ड अपने वर्त्तमान खिन्न मन्त्रियोको निकाल वाहरकर अन्योको नियुक्त करेगा जो जागृत भारतसे रायकर शर्त्तोंको रद्दोकी टोकरीमे डाल ऐसी शर्त्तें तैयार करेंगे जो उसके तथा तुर्कोंके लिये सम्माननीय और भारतके लिये स्वीकार करने योग्य होंगी। परन्तु मैं अपने समालोचकोको यह कहते हुए सुनता हूं कि भारतमे ऐसा सुन्दर उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये इच्छाशक्ति और त्यागकी योग्यता नहीं है। उनका कथन किसी अशतक ठीक है। भारतमे ये गुण नहीं है क्योंकि हममें नही हैं। क्या हम इनका विस्तारकर राष्ट्रकी नसोंमें इन गुणोंको न भरेंगे? क्या ऐसा प्रयत्न करने योग्य नही है? इतना महान् उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये क्या कोई त्याग अति अधिक है?

११—मुसलमानोंके सूचनापत्रकी आलोचना।

खिलाफतके सम्बन्धमें वायसरायके पास जो निवेदनपत्र तथा उसी विषयमे मेरा जो पत्र भेजा गया है, इन दोनोकी ऐंग्लो इण्डियन पत्रोंने वड़ी कड़ी आलोचना की है। 'दी टाइम्स आफ इण्डिया'ने जो साधारणत: निष्पक्ष भाव ग्रहण करता है मुसलमानोके सूचनापत्रमे कही हुई कई वातोपर कड़ा आक्षेप किया है और मेरे जो राय दी है कि यदि सन्धिकी शर्त्तें न सुधारी जाय तो वायसरायको इस्तीफा दे देना चाहिये, इसपर उसने

अपने लेखके एक पैरेमें विरुद्ध आलोचना की है। जो यह कहा गया है कि ब्रिटिश साम्राज्यको तुर्कोंके साथ एक शत्रुके समान वर्त्ताव न करना चाहिये, टाइम्स आफ इण्डिया'ने इसपर आपत्ति की है। पत्रपर दस्तखत करनेवालोंने मेरी समझमें इसका सर्वोत्तम हेतु उपस्थित किया है। वे कहते हैं कि, " हम प्रतिष्ठा पूर्वक निवेदन करते हैं कि तुर्कोंके साथ वर्त्ताव करनेमें ब्रिटिश सरकारको भारतीय मुसलमानोंके भावकी वहांतक प्रतिष्ठा करनी ही चाहिये जहांतक वह न तो न्यायरहित हो और न अनुचित।' यदि सात करोड़ मुसलमान साम्राज्यमें हिस्सेदार है, तो मेरा कहना है कि उनकी इच्छाको ही तुर्कोंको सजा देनेसे अलग रहनेके लिये काफी समझना चाहिये। तुर्कोंने युद्धकालमें क्या किया, यह कहना अप्रासङ्गिक है। उसने जो कुछ किया उसके लिये वह कष्ट उठा चुका है। 'टाइम्स' पूछता है कि किस बातमें तुर्कोंके साथ अन्य शक्तियोंसे बुरा वर्त्ताव किया गया है। मैं समझता था कि यह स्वयंसिद्ध बात है। जिस तरह तुर्कोंके साथ वर्त्ताव किया गया है उस तरह न तो जर्मनीके साथ किया गया है और न आस्ट्रिया और हङ्गरीके साथ। कुल साम्राज्य छीनकर सुलतानकी विडम्बना करनेके लिये राजधानीके एक भागपर उनका अधिकार बना रखा गया है और वह भी ऐसी शर्तोंके साथ किया गया है जो इतनी अपमानजनक हैं कि सम्भवत कोई आत्माभिमानी मनुष्य उन्हे नहीं स्वीकार कर सकता, शासन एक बादशाहके स्वीकार करनेकी तो बात ही क्या?

'टाइम्स'ने इस बातपर बहुत जोर दिया है कि निवेदनपत्रमे तुर्कोंके मित्रराष्ट्रोंके पक्षमे न मिलनेके कारणपर विचार नही किया गया है। यह कोई गूढ़ बात नही है। रूस एक मित्रराष्ट्र था. यही बात तुर्कोंका मित्रराष्ट्रोंसे मिलना रोकनेवाली थी। युद्धके समय रूसको अपने दर्वाजेपर टक्कर मारते देख तुर्कोंके लिये मित्रराष्ट्रोंके साथ मिलना साधारण बात नहीं थी। परन्तु स्वयं ब्रिटेनपर भी सन्देह करनेका तुर्कोंके लिये कारण था। वह जानता था कि बलगेरियन युद्धके समय इङ्गलैंडने उसके साथ मित्रोचित व्यवहार नही किया। तो भी तुर्कोंका जर्मनी आदिसे मिलना बुरा हुआ। भारतीय मुसलमान जाग्रत और उसे मदद देनेको तैयार थे। ऐसी दशामे उसके राजनीतिज्ञोंको विश्वास रखना था कि यदि मित्रराष्ट्रोंसे मिलेंगे तो तुर्कोंको ब्रिटेन हानि न पहुंचने देगा। तुर्कोंने बुरा निश्चय किया जिसके लिये उसे सजा मिली। अब उसे अपमानित करना भारतीय मुसलमानोंके भावकी उपेक्षा करना है। ब्रिटेनका एस। न करके भारतके जाग्रत मुसलमानोंको राजभक्त बनाये रखना चाहिये। 'टाइम्स'का यह कहना कि सन्धिकी शर्तें पूर्णरूपसे स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तके अनुसार हैं, अपने पाठकोंकी आंखमे धूल झोंकनेके समान है। क्या यह स्वभाग्यनिर्णयका सिद्धान्त है जिसके कारण एड्रियानोपल और थ्रेस तुर्कोंसे अलगकर यूनानको दे दिये गये हैं? स्वभाग्यनिर्णयके किस सिद्धान्तके अनुसार स्मिरना यूनानको सौंपा गया है? यूनानकी अधीनता-

ने जानेके सम्बन्धमें क्या थ्रेस और स्मिरनाके निवासियोंसे पूछा गया है? मैं यह विश्वास नहीं करता कि अरबोंके सम्बन्धमें जो व्यवस्था की गयी है उसे अरब लोग पसन्द करते हैं। हिजाजके राजा कौन हैं और अमीर फिजूल कौन है? क्या अरबोंने इन राजाओं और मुखियोंको चुना है? क्या अरब पसन्द करते हैं कि मैंडेट (शासन प्रबन्ध) इङ्गलैण्ड ग्रहण करे? जिस समय सब बातें पूरी हो जायेंगी उस समय स्वभाग्यनिर्णयका नाम भी लोगोंको चुभेगा। अब भी ऐसे लक्षणोंकी कमी नहीं है कि अरबों और थ्रेसवासियों तथा स्मिरनाके निवासियोंके भाग्यका जो निपटारा किया गया है उसके वे लोग विरुद्ध हैं। सम्भव है कि वे तुर्क शासन न पसन्द करते हों, किन्तु वर्त्तमान प्रबन्ध वे और भी कम पसन्द करते हैं। वे अपनी ओरसे तुर्कोंके साथ प्रतिष्ठापूर्ण शर्तें कर सकते थे, परन्तु स्वभाग्यनिर्णय करने वाले ये लोग अब मित्रराष्ट्रोंकी 'अद्वितीय शक्ति' अर्थात् ब्रिटिश सेनाओंके अधीन रखे जायेंगे। ब्रिटेनके लिये तुर्की साम्राज्यको अभङ्ग बनाये रखने और सुशासनके लिये काफी गारण्टी करानेके लिये सीधा रास्ता खुला हुआ था। परन्तु उसके प्रधानमन्त्रीने गुप्त सन्धियों, माया और दम्भपूर्ण छलका टेढ़ा रास्ता पकड़ा।

अब भी बाहर निकलनेका एक मार्ग है। वह (ब्रिटेन) भारतको वास्तविक हिस्सेदार समझे। वह मुसलमानोंके सच्चे प्रतिनिधियोंको बुलावे उन्हें अरब तथा तुर्की साम्राज्यके अन्य भागोंमें ... दे और वह ऐसी स्कीम तैयार करे जो मुसलमानोंके न्याय

पूर्ण भावके अनुकूल हो और जिससे उस साम्राज्यकी जातियोको वास्तविक स्वभाग्यनिर्णय प्राप्त हो। यदि कनाडा, आस्ट्रेलिया या दक्षिण अफ्रिकाको सन्तुष्ट करनेका प्रश्न होता, तो मि० लायड जार्जको उनकी उपेक्षा करनेका साहस न होता। उन्हे साम्राज्यसे अलग हो जानेकी शक्ति प्राप्त है। भारतको वह शक्ति नही प्राप्त है। यदि उसके भावोकी कुछ परवाह नही की जाती, तो उन्हे भारतको फिर हिस्सेदार कहकर उसका अपमान न करना चाहिये। मैं 'टाइम्स आफ इण्डिया'से कहता हूं कि वह अपनी बातपर पुन विचार करे और एक ऐसे प्रतिष्ठित आन्दोलनमें सम्मिलित हो जिसमे उच्च आत्मावाली जाति न्यायके सिवा और कुछ नहीं चाहती हैं। मैं सम्मानपूर्वक फिर भी कहता हू कि यदि मन्त्री लोग भारतके पुत्रोंके पवित्र भावोकी प्रतिष्ठा नही करते, तो लार्ड चेम्सफोर्डको कमसे कम पदत्याग कर देना चाहिये। 'टाइम्स' शासनपद्धतिकी दुहाई देकर कहता है कि इसके भीतर वायसरायको महाराजके मन्त्रियोंके निर्णयोंके विरुद्ध काम करनेका मार्ग नहीं है। निश्चय ही वायसरायके लिये ऐसा मार्ग नही है कि पदपर बने रहकर मन्त्रियोंके निर्णयोका विरोध करें। परन्तु पद्धतिमे किसी वायसरायको पूरा अधिकार प्राप्त है कि वह अपने पदसे इस्तीफा दे दे जब उसे ऐसे निर्णयके अनुसार काम करना पडे जो सन्धिकी शर्तोंकी तरह अनीतिपूर्ण या इनकी तरह ऐसे हैं जो उन लोगोंके हृदयको हिला देनेवाले है जिनके मामलेका शासनप्रबन्ध वह वर्तमानमें कर रहा है

२९—मुसलमानोंका निश्चय।

इलाहाबादकी खिलाफत सभाने फिरसे असहयोगका सिद्धान्त सर्वसम्मतिसे स्वीकार किया है और कार्यक्रम निश्चित करने तथा उसको कार्यमें परिणत करनेके लिये एक कार्यकारिणी कमेटी नियुक्त की है। उक्त सभाके पहले हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एक सम्मिलित बैठक हुई थी जिसमें अपने विचार प्रकट करनेके लिये हिन्दू नेता बुलाये गये थे। उनमें मिसेज बेसेण्ट, माननीय मालवीयजी, डा० सप्रू, पं० मोतीलाल नेहरू, मि० चिन्तामणि तथा अन्य लोग सम्मिलित हुए थे। खिलाफत कमेटीने सब तरहके विचारोंके हिन्दुओंको उनके विचार जाननेके लिये बुलाकर बड़ी बुद्धिमानीका काम किया। मिसेज बेसेण्ट और डा० सप्रूने उपस्थित मुसलमानोंको असहयोगकी नीतिसे विरत करनेके लिये बड़ा जोर लगाया। अन्य हिन्दू वक्ताओंने ऐसे व्याख्यान दिये जिसमें उन्होंने किसी पक्ष विशेषसे अपनेको बद्ध नहीं किया। जहां अन्य हिन्दू वक्ताओंने सिद्धान्त रूपसे असहयोगके सिद्धान्तका समर्थन किया वहां कार्यमें अनेक कठिनाइयां उन्हें दिखाई दीं। उन्होंने यह भी भय प्रकट किया कि यदि मुसलमानोंने भारतपर चढ़ाई करने वाले अफगानोंका स्वागत किया, तो पेचीली अवस्था पैदा हो जायेगी। मुसलमान वक्ताओंने अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें पूर्ण रूपसे विश्वास दिलाया कि कोई भी आक्रमणकारी जो भारत जीतनेके

लिये आक्रमण करेगा उससे मुसलमान बच्चा बच्चा युद्ध करेगा। परन्तु उन्होंने उतने ही स्पष्ट शब्दोंमें यह भी कहा कि बाहरसे यदि इसलामके गौरव और न्यायकी रक्षाके लिये कोई आक्रमण होगा, तब यदि वास्तविक सहायता न दी जायेगी तो भी उसके साथ उनकी पूरी सहानुभूति होगी। हिन्दुओंकी सावधानताको समझना और न्यायानुकूल बताना अत्यन्त सहज है। मुसलमानोंके पक्षका प्रतिवाद करना कठिन है। मेरी रायमें तो भारतको अङ्गरेजों और इसलामकी सेनाओंका युद्धक्षेत्र होनेसे रोकनेका सर्वोत्तम उपाय हिन्दुओंके लिये यह है कि वे असहयोगको तुरन्त पूर्ण रूपसे सफल बनावें और मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि यदि मुसलमान अपने प्रकट किये हुए विचारपर दृढ़ रहे और आत्मनिरोध और त्याग करनेमें समर्थ हुए, तो हिन्दू अपना कर्त्तव्य पूरा करेंगे और असहयोगकी लड़ाईमें उनका साथ देंगे। इसी तरह मुझे यह भी निश्चय मालूम होता है कि, हिन्दू ब्रिटिश सरकार तथा उसके मित्रराष्ट्रों और अफगानिस्तानके बीच युद्ध करानेमें मुसलमानोंको मदद न देंगे। ब्रिटिश सेना इतनी सुसंगठित है कि, भारतीय सीमापर सफलतापूर्वक कोई आक्रमण होना असम्भव है। इसलिये मुसलमानोंके सामने इसलामकी प्रतिष्ठाके लिये प्रभावपूर्ण लड़ाईका एकमात्र मार्ग यही है कि सच्चे दिलसे असहयोग करें। यदि जनताके बड़े भागने इसे अङ्गीकार किया तो यह पूर्णरूपसे प्रभावपूर्ण ही न होगा, बल्कि इससे व्यक्तियोंको अपने अन्तःकरणके आदेशानुसार

काम करनेका पूरा अवसर मिलेगा। यदि मैं किसी व्यक्ति या व्यक्तिसमूहका किया हुआ अन्याय नहीं सह सकता और न प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे उस व्यक्ति या व्यक्तिसमुहको दृढ़ करनेका कारण होता हूं, तो मुझे इसके लिये अपने रचनेवालेके सामने अवश्य जवाब देना पडेगा। परन्तु ऊपर कहे हुए ढङ्गसे यदि मैं अन्यायका समर्थन करना बन्द कर देता हूं, तो मेरे लिये अपने उस नैतिक नियमके अनुसार जो कुछ करना सम्भव था मैं कर चुका जो अन्यायकारीको भी चोट पहुचानेसे इनकार करता है। इसलिये इतनी बड़ी शक्तिको काममें लानेमें न तो जल्दी होनी चाहिये और न आवेश दिखाना चाहिये। असहयोग स्वेच्छाका उद्योग होना चाहिये। इस तरह सारी बाते स्वयम् मुसलमानोपर ही निर्भर करती हैं। यदि वे अपनी मदद स्वय करेंगे, तो हिन्दुओंकी सहायता प्राप्त होगी और यद्यपि गवर्नमेण्ट बड़ी शक्तिसम्पन्न है, पर उसे इस अनिवार्य शक्तिके सामने झुकना पड़ेगा। पूरे राष्ट्रके रक्तरहित विरोधका सम्भवतः कोई गवर्नमेण्ट प्रतिकार नहीं कर सकती।

१३—मि० ऐंड्रूजकी कठिनाई।

मि० ऐंड्रूजने जिनका भारतप्रेम केवल उनके इङ्गलैण्ड-प्रेमके समान है और जिनके जीवनका मुख्य कार्य भारतके द्वारा परमात्मा या मानव जातिकी सेवा करना हैं, 'बाम्बेक्रानिकल'में

खिलाफत आन्दोलनके सम्बन्धमे मार्कके लेख लिखे हैं। उन्होने इङ्गलैण्ड, फ्रांस या इटाली किसीको नहीं छोड़ा है। उन्होने दिखाया है कि किस प्रकार तुर्कीके साथ अत्यन्त अन्यायपूर्वक वर्त्ताव किया गया है और किस तरह प्रधानमन्त्रीकी प्रतिज्ञा तोड़ी गयी है। अपने अन्तिम लेखमे उन्होने मि० मुहम्मद-अलीके सुलतानको भेजे हुए पत्रपर विचार किया है और वे इस परिणामपर पहुचे है कि मि० मुहम्मदअलीने अपने वक्तव्यमे जो दावा किया है वह उस दावेके विपरीत है जो हालमें वायसरायके पास भेजे हुए खिलाफत कमेटीके निवेदनपत्रमे प्रकट किया गया है जिसका वे पूर्णरूपसे अनुमोदन करते हैं। मैंने इस प्रश्नपर मि० ऐंड्रूजके साथ इतनी पूर्णतासे विचार किया है जितना सम्भव था। उन्होंने मुझसे कहा कि आप सर्वसाधारणके सामने अपना पक्ष और भी अधिक पूर्णताके साथ प्रकट करिये। विचार करनेका उनका एकमात्र उद्देश्य ऐसे पक्षको दृढ बनानेका है जिसे वे वास्तवमें न्याय्य मानते हैं और जिससे यूरोपके अत्यन्त उत्तम विचारवाले इसका समर्थन करें और मित्रराष्ट्र खासकर इङ्गलैण्ड और नहीं तो लज्जाके कारण ही शर्त्तें सुधारनेको लाचार हो जाय। मैं मि० ऐंड्रूजकी वातका प्रसन्नतापूर्वक उत्तर देता हू। पहले हो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि मैं ऐसा धार्मिक सिद्धान्त अस्वीकार करता हूं जो विवेकसे प्रमाणित नहीं है और जो सदाचारके विरुद्ध है। मैं अनुचित धर्मभाव सहन कर सकता हू यदि वह अनीतिपूर्ण न हो।

मेरी धारणा है कि खिलाफतका दावा न्याययुक्त और उचित है इसलिये यह बहुत अधिक जोरदार है क्योंकि उसके पीछे मुसलमान मनुष्योंका धार्मिक भाव है। मेरी रायमें मि० मुहम्मद अलीका वक्तव्य आपत्तिशून्य है। उसमें सन्देह नहीं कि यह राजनीतिक भावोंसे है। परन्तु मैं मांगोंके लिये झगड़नेको तैयार नहीं हूं जबतक वह सारगर्भ है।

मि० ऐन्ड्रूज समझते हैं कि मि० मुहम्मदअलीकी मांगसे पता चलता है कि वे अर्मेनियनोंके विरुद्ध अर्मेनियाको और अरबोंके विरुद्ध अरबकी स्वतन्त्रताका विरोध करेंगे। मैं उसका ऐसा अर्थ नहीं समझता। वे, कुल मुसलमान और इसलिये हिन्दू लोग इङ्गलैण्ड तथा अन्य राष्ट्रोंके उस निर्लज्जतापूर्ण प्रयत्नका विरोध करते हैं जो वे स्वभाग्यनिर्णयकी आड़में तुर्कोंको अङ्गभङ्ग और शक्तिहीन करनेके लिये कर रहे हैं। यदि मैं इसलामके विचार ठीक तौरपर समझता हूं, तो वे विचार प्रजातन्त्रके सिद्धान्तोंकेसे हैं। इसलिये यदि अर्मेनिया और अरब तुर्कोंसे स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें अवश्य मिलनी चाहिये। अरबके सम्बन्धमें अरबकी पूरी स्वतन्त्रताका अर्थ खिलाफत अरबके किसी मुखियाके अधिकारमें होना है। अरब लोग कुल मुसलमानोंकी रायके विरुद्ध जबतक वे मुसलमान हैं तबतक अरबपर अधिकार नहीं रख सकते। पवित्र स्थानोंका संरक्षक होना खलीफाके लिये आवश्यक है इसलिये उन स्थानोंके मार्गोंपर भी उसका अधिकार होना चाहिये। उसे

इतना योग्य होना चाहिये कि वह कुल संसारके विरुद्ध उनकी रक्षा कर सके। यदि कोई अरब मुखिया खड़ा हो जो तुर्कोंके सुलतानसे अधिक अच्छी तरह उक्त कार्य करनेमे समर्थ हो, तो मुझे कुछ भी सन्देह नही कि वह खलीफा माना जायेगा। सच बात तो यह है कि न तो मुसलमान और न हिन्दू ही अङ्गरेज मन्त्रियोकी बातोपर विश्वास करते हैं। उन्हे विश्वास नही कि अरब या अर्मेनियन पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं। वे स्वराज्य चाहते है, इसमे कुछ भी सन्देह नही है। उस दावेके सम्बन्धमे किसीको आपत्ति नही है। परन्तु यह पता ठीक ठीक किसीने नही लगाया है कि अरब और अर्मेनियन तुर्कोंसे सब प्रकार यहांतक कि नाममात्रका भी सम्बन्ध तोड़ना चाहते हैं।

प्रश्न हमारे बुद्धिमत्तापूर्वक विचारोंसे हल नही होगा, बल्कि इसे हल करनेका मार्ग यह है कि बिल्कुल ही स्वतन्त्र विचारोके मुसलमानो और हिन्दुओ तथा स्वतन्त्र विचारोंके यूरोपियनोका एक संयुक्त कमीशन अर्मेनियनो और अरबोंको वास्तविक इच्छाकी जाच करनेके लिये नियुक्त किया जाय और फिर ऐसा प्रबन्ध किया जाय जिससे जातीयता और इसलाम दोनोके दावोका ठीक और सन्तोषजनक उपाय हो जाय। यह सभी जानते है कि स्मिरना और थ्रेस तथा एड्रियानोपिल बेईमानीसे तुर्कोंसे छीन लिये गये है और सीरिया तथा मेसोपोटामियामे अविचारके साथ मैंडेट स्थापित किये गये और हजाजमे अङ्गरेजोका नियुक्त किया हुआ एक आदमी रखा गया है जो

ब्रिटिश तोपोंके नीचे है। यह अवस्था असह्य और अन्यायपूर्ण है। इसलिये आर्मेनिया और अरबके प्रश्नोंके सिवा जिस बेईमानी और दम्भने सन्धिकी शर्त्तें अपवित्र कर रखी हैं उन्हें शीघ्र ही दूर कर देना चाहिये। यदि वहांकी जनताकी इच्छाका निश्चय पूर्वक पता लगाया जा सके, तो आर्मेनिया और अरबकी स्वतन्त्रताका प्रश्न न्यायपूर्वक निपट सकता है जिससे कोई इन्कार नहीं करता और जिसकी कार्यरूपमें सहज ही गारण्टी जा सकती है।

१४—खिलाफत आन्दोलन।

मेरे एक मित्रने जो मेरे व्याख्यान सुनते रहे हैं एक बार मुझसे पूछा कि क्या मैं इण्डियन पेनल कोड (ताजीरात हिन्द) के राजद्रोहवाली दफाके भीतर नहीं आता। यद्यपि इसपर मैंने पूर्णरूपसे विचार नहीं किया था तो भी मैंने उनसे कहा कि बहुत सम्भव है कि मैं आता हू और यदि मुझपर इस दफाका अभियोग लगाया जाय, तो मैं अपनेको निर्दोष नहीं कह सकता। कारण यह कि मै यह बात स्वीकार करूंगा कि वर्त्तमान सरकारके लिये मैं 'प्रेम'का किसी प्रकारका दावा नहीं कर सकता। मेरे व्याख्यान ऐसा 'अप्रेम' फैलानेके विचारसे होते है जिससे लोग ऐसी सरकारको सहयोग या सहायता देना शर्मकी बात समझें जो विश्वास, प्रतिष्ठा या सहायताका सब प्रकारका स्वत्व खो चुकी है। मैं ब्रिटिश सरकार और भारत सरकारमे कुछ भेद

नहीं बताता। खिलाफतके सम्बन्धमें भारत सरकारने ब्रिटिश सरकारकी लादी हुई नीति स्वीकार की है। पञ्जाबके मामलेमें ब्रिटिश सरकारने भारत सरकारकी शुरू की हुई एक वीर जातिके लोगोंको पुंसत्वहीन और भयभीत करनेकी नीतिका समर्थन किया है। ब्रिटिश मन्त्रियोंने अपनी की हुई प्रतिज्ञाएं तोड़ी और जान बूझकर भारतके सात करोड़ मुसलमानोंके भावोंपर आघात किया है। पञ्जाब सरकारके मदोन्मत्त अफसरोंने निर-पराध पुरुषों और स्त्रियोंका अपमान किया है। उनके अन्याय दूर नहीं किये गये हैं। इसके विरुद्ध जिन अफसरोंने इतनी निर्दयतासे लोगोंका असभ्यतापूर्वक अपमान किया वे सरकारी पदोंपर अभीतक बने हुए हैं।

गत वर्ष जब मैंने अपनी शक्तिभर उत्सुकतापूर्वक गवर्न-मेण्टको सहयोग देने और राजकीय घोषणामें प्रकट की हुई इच्छाओंको पूरा करनेके लिये जोर दिया था, तब वैसा इसलिये किया था, क्योंकि मैं सच्चे दिलसे विश्वास करता था कि नया युग प्रारम्भ होनेको है और डर, अविश्वास तथा परिणामस्वरूप स्वेच्छाचारके पुराने भावका स्थान प्रतिष्ठा, विश्वास और सदिच्छाका नया भाव लेनेको है। मैंने सच्चे दिलसे विश्वास किया था कि मुसलमानोंके भावकी शान्ति की जायेगी और जिन अफसरोंने पञ्जाबमें मार्शल लाके शासनकालमें बुरे बर्ताव किये हैं, वे कमसे कम बर्खास्त किये जायेंगे और अन्य प्रकारसे जनताको अनुभव करा दिया जायेगा कि जो सरकार लोगोंकी ज्यादतियोंके लिये

उन्हें सजा देनेको सदा तेज (और ठीक ही) देखी जाती है अ
अपने एजेण्टोंको उनके कुकर्मोंके लिये सजा देनेसे न चूकेगी।
परन्तु यह देख मुझे निराशा हुई है कि साम्राज्यके वर्त्तमान
प्रतिनिधि बेईमान और विचारशून्य हो गये हैं। भारतीय ज
ताकी इच्छाओंके लिये उनके हृदयमें वास्तविक सम्मान नहीं है
और वे भारतीय प्रतिष्ठाको कुछ भी नहीं समझते। मैं अ
अधिक समयतक ऐसी सरकारके लिये प्रेम नहीं रख सकता
जिसके आजकलके जैसे इतने बुरे नौकर हैं। मेरे लिये य
अपमानजनक है कि मैं स्वतन्त्र रहकर होते हुए अन्याय
देखता रहूं। मि० माण्टेगूने वास्तवमें मुझे जो धमकी दी है कि
यदि मैं सरकारका अस्तित्व संकटमें डालनेको जिद पकड़े
रहूंगा तो मेरी स्वतन्त्रता छीन ली जायेगी, यह ठीक ही है।
कारण यह कि यदि मेरा कार्य सफल हुआ तो निश्चय ही उसका
यही परिणाम होना है। मुझे खेद है तो केवल यह कि जिस
प्रकार मि० माण्टेगू मेरी पहलेकी सेवाओंको स्वीकार करते हैं उसी
प्रकार वे यह नहीं सोच सकते कि सरकारमें कोई बड़ी
साधारण बुराई होगी तब तो मुझ जैसा शुभचिन्तक उससे और
अधिक प्रेम नहीं कर सका। मुझे इसलिये सजाकी धमकी
देनेसे कि जिससे अन्याय सदाके लिये बना रहे यह कहीं सरल
था कि मुसलमानों और पंजाबके साथ न्याय करनेके लिये आग्रह
किया जाता। वास्तवमें मुझे पूर्ण आशा है कि यह पता चल
जायगा कि एक अन्यायी सरकारके प्रति अप्रेम फैलानेमें ना

ने साम्राज्यकी उनसे अधिक सेवाएं की हैं जिनके करनेका
िये मुझे दिया जा चुका है।

इस समय उन लोगोंका कर्त्तव्य स्पष्ट है जो मेरे कार्यको
पसन्द करते हैं। यदि भारत सरकार मेरी स्वतन्त्रताका हरण
कर लेना अपना कर्त्तव्य समझे, तो वे किसी भी हालतमें क्रुद्ध
न हों। एक नागरिकको ऐसे प्रतिबन्धका प्रतिकार करनेका
कुछ भी अधिकार नहीं है जो उस राज्यके कानूनोंके अनुसार
लगाया जाता है जिसकी वह प्रजा है। उससे सहानुभूति रखने-
वालोंको तो और भी इसका अधिकार नहीं है। मेरे विषयमें
सहानुभूतिका कोई प्रश्न नहीं हो सकता। कारण यह कि मैं
जानबूझकर सरकारका विरोध यहांतक कर रहा हूं कि उसका
अस्तित्व ही खतरेमें डालनेके प्रयत्नमें हूं। इसलिये मेरे सहा-
यकोंके लिये वह प्रसन्नताकी घड़ी होगी जब मैं जेलमें बन्द कर
दिया जाऊं। उसका अर्थ सफलताका प्रारम्भ होगा यदि
समर्थक लोग केवल मेरी ग्रहण की हुई नीतिको जारी रखें।
यदि सरकार मुझे पकड़ेगी तो उस असहयोगकी वृद्धि रोकनेके
लिये पकड़ेगी जिसका मैं उपदेश करता हूं। इससे यह परि-
णाम निकलता है कि यदि मेरी गिरफ्तारीके बाद भी असहयोग
अविचलित उत्साहसे जारी रहेगा, तो सरकार या तो औरोंको
भी जेल भेजेगी या सहयोग प्राप्त करनेके लिये जनताकी इच्छा
पूरी करेगी। जनता चाहे अत्यन्त उत्तेजित किये जानेपर ही
मारकाट मचाये, पर मारकाटके परिणामस्वरूप सकट उपस्थित

होगा। इसलिये आन्दोलनके समयमें चाहे मैं पकड़ा जाऊं या दूसरा कोई, सफलताकी पहली शर्त यह है कि उसके विरुद्ध क्रोध न प्रकट किया जाये। हम ऐसा नहीं कर सकते कि एक ओर तो गवर्नमेण्टका अस्तित्व खतरेमें डालें और दूसरी ओर उससे लड़ें जब वह अपनेको संकटमें डालनेवालोंको सजा देकर अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करे।

१५—हिजरत और उसका अर्थ।

भारत एक महाद्वीप है। इसके हजारों समझदार जानते हैं कि इसके लाखों नासमझ लोग क्या करते और सोचते हैं। सरकार और शिक्षित भारतीयोंकी समझ हो सकती है कि खिलाफत आन्दोलन जानेवाली वस्तु है। करोड़ों मुसलमान इसके विरुद्ध समझते हैं। मुसलमान देश छोड़कर भागे जा रहे हैं। समाचारपत्रोंके अमुख्य स्थानोंपर खबर छपी रहती है कि एक ट्रेनमें जिसमें एक वैरिस्टर थे, ६० स्त्रियों ४० बच्चों सहित कुल ७०० जन अफगानिस्तानके लिये रवाना हुए हैं। रास्तेमें करतल ध्वनिद्वारा उनका स्वागत किया जाता है। उनको नकदी, खानेकी चीजें तथा अन्य वस्तुएं भेंट की गयीं और रास्तेमें और भी महाजरीन उनके साथ हो लिये। शौकतअलीका धर्मोन्मत्तताका व्याख्यान लोगोंको अपने घर छोड़ अज्ञात स्थानमें ...को तैयार नहीं कर सकता। उनके भीतर अवश्य स्थायी

धर्मविश्वास होगा कि उनके लिये एक ऐसे राज्यको छोड़ फकीरीका जीवन बिताना शाही ठाठबाटके जीवनसे अच्छा है जो उनके धार्मिक भावका कुछ आदर नहीं करता। शक्तिके अभिमानके सिवा और कोई वस्तु भारत सरकारकी आंखें इस दृश्यसे अंधी नहीं कर सकती। परन्तु आन्दोलनका दूसरा पहलू भी है। और भी बातें हैं जो १९२० ई० की १० वीं जुलाईके निम्नाङ्कित सरकारी कम्यूनिकमें कही गयी हैं :—

"महाजरीनके सम्बन्धमे ८ वींको पेशावर और जमरूदके बीच कच्चागढ़ी स्टेशनपर एक शोचनीय घटना हो गयी है। अभीतक ये बातें मालूम हुई हैं। एक ट्रेनसे जो महाजरीन जमरूद जा रहे थे उनमेंसे दोको ब्रिटिश सैनिक पुलिसने बिना टिकट यात्रा करते हुए पकड़ा। इसलामिया कालेज स्टेशनपर कलह हुई, पर ट्रेन कच्चागढ़ीके लिये रवाना हुई। इन महाजरीनको ट्रेनसे उतारनेका प्रयत्न किया गया, इसपर कोई ४० महाजरीनने सैनिक पुलिसपर हमला किया और जिस ब्रिटिश अफसरने हस्तक्षेप किया वह एक कुदालसे बुरी तरह घायल किया गया। इसपर कच्चागढ़ीके भारतीय सैनिकोंके एक दस्तेने ब्रिटिश अफसरपर हत्याकारी चोट करनेके कारण महाजरीनपर दो तीन फैरें कीं। एक महाजरीन मारा गया और एक घायल हुआ तथा तीन गिरफ्तार किये गये। सेना और पुलिसके लोग जख्मी हुए। महाजरीनकी लाश पेशावर भेजी गयी और ९ वींको सवेरे दफनायी गयी। इस घटनासे पेशावर शहरमें बड़ी हलचल

मच गयी है और खिलाफत हिजरत कमेटी लोगोंको आपेसे वाहर होनेसे रोक रही है। ६ वींको सबेरे दूकानें वन्द कर दी गयीं। पूरी जाच की जा रही है।"

पेशावरसे जमरूद कुछ ही मीलोपर है। सेनाका स्पष्ट कर्त्तव्य यह था कि कुछ आने पैसेके लिये वह विना टिकट सफर करने वाले महाजरीनको उतारनेका प्रयत्न न करती। परन्तु उसने तो वास्तवमे जवर्दस्तीसे काम लिया। फिर तो यह निश्चित ही था कि अन्य लोग भी वीचमें पड़ेंगे। झगड़ा हुआ और एक अंगरेज अफसरपर कुदालसे हमला किया गया जिसके फलस्वरूप फैर की गयी और एक महाजरीनकी जान गयी। क्या इस दुर्घटनासे अंग्रेजोका रोव वढ़ गया? जव धर्मसे प्रेरित हो लोग देश छोड़े :जा रहे हैं, तव सरकारने सीमापर दक्ष अफसर क्यो नहीं नियत किये हैं? सेनाकी करतूत एक एकको जवान से भारत तथा चारो ओरके मुसलमान जगत्मे फैल जायेगी। इस तरह फैलनेमे इसमें सन्देह नहीं कि जानतः और अजानत इसके सम्वन्धमे अत्युक्ति की जायेगी जिससे वर्त्तमान मनोमालिन्य और भी गहरा हो जायेगा। कम्यूनिकमे कहा गया है कि सरकार और भी अधिक जाच कर रही है। हमें आशा करनी चाहिये कि वह पूरी होगी और ऐसा प्रवन्ध किया जायेगा जिससे फिर ऐसा काम न हो जो सेनाका अविचारपूर्ण काम जान पड़ता है। क्या मैं उन लोगोका ध्यान आकृष्ट कर सकता जो असहयोगका विरोध कर रहे हैं कि जवतक उन्हें कोई

दूसरा उपाय हाथ नहीं लगता वे या तो असहयोग आन्दोलनमें सम्मिलित हो या ऐसी भीतरी असङ्गठित गड़बड़से सामना करनेको तैयार हों जिसके प्रभावका कोई अनुमान नही कर सकता और जिसका बढ़ना रोकना या व्यवस्थित करना असम्भव होगा ?

पञ्जाबके अन्याय ।

१—राजनीतिक फ्रीमैसनरी ।

फ्रीमैसनरी एक गुप्त समाज है जिसमें हमारे कुछ सर्वोत्तम मस्तिष्कके लोग भी सम्मिलित हैं । इसका कारण मानवजातिके प्रति उसकी सेवासे भी अधिक उसके गुप्त और कड़े नियम हैं। इसी प्रकार भारतके अफसरोंकी श्रेणीके आचरणका भी कुछ गुप्त नियम जान पड़ता है जिसके सामने ब्रिटिश जातिके रत्न भी साष्टाङ्ग गिर जाते और ऐसे अन्यायके साधन बनते हैं जिसे वैयक्तिक रूपसे करनेके लिये वे लज्जित होंगे । हण्टर कमेटीके बहुपक्षकी रिपोर्ट, भारत सरकारका खरीता और भारतसचिवका उसका उत्तर अन्य किसी प्रकारसे समझना किसीके लिये सम्भव नही है । यद्यपि एक श्रेणीके पत्रोंने कमेटीके मेम्बरोंके सम्बन्धमें घोर विरोध किया था, तो भी यह कहा जा सकता है कि साधारणतः जनता उसका विश्वास करनेको तैयार थी खासकर इसलिये कि उसमें तीन भारतीय मेम्बर ऐसे थे जिन्हे बहुत कुछ स्वतन्त्र कहा जा सकता है। इस विश्वासको सबसे भारी धक्का हण्टर कमेटीने यह दिया कि उसने कांग्रेस कमेटीकी यह साधारण मांग भी स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया कि जेलमें भेजे पञ्जाबी नेता उसके सामने अपने वकीलोंको बातें बतानेके

लिये हाजिर होने पाये। किसी आदमीके हृदयमे यदि कोई सन्देह बाकी रह गया था तो उसे कमेटीके बहुपक्षकी रिपोर्टने निकालकर बाहर कर दिया है। परिणामसे कांग्रेस कमेटीके भावकी युक्तियुक्तता प्रमाणित हो गयी है। इसके एकत्र किये हुए प्रमाण वह बात सिद्ध करते हैं जिससे लार्ड हण्टरकी कमेटीने जानबूझकर इनकार किया था। अल्प पक्षकी रिपोर्ट उस उपजाऊ स्थलके समान है जो मरुभूमिमें होता है। भारी विरुद्ध पक्षके होते हुए भी भारतीय मेम्बरोंने जो कर्त्तव्य पालन किया है उसके लिये वे देशवासियोकी बधाईके पात्र हैं। क्या ही अच्छा होता कि उन्होने सत्याग्रहके सभ्यतापूर्वक कानून तोड़नेके सम्बन्धमे इस परिवर्त्तित ढङ्गसे भी बहुमतका समर्थन करनेसे इनकार किया होता। १६१६ ई० की ३० वी मार्चको दिल्लीकी भीड़ने उद्धत भाव दिखाया था उससे एक महान् आध्यात्मिक आन्दोलनकी निन्दा नहीं की जा सकती जिसके सम्बन्धमे यह स्वीकार किया गया और स्पष्ट भी हो गया है कि वह उपद्रवी भीड़वालोंकी उपद्रवकी प्रवृत्तियोंको रोकने और अपराधपूर्ण अनियमताके स्थानपर उस शासनकी आज्ञाओंको सभ्यतापूर्वक भङ्ग करनेके लिये है जो प्रतिष्ठाका सब अधिकार खो चुकी है। ३० वीं मार्चको तो सभ्यतापूर्वक कानून तोड़नेका प्रारम्भ भी नहीं किया गया था। संसारभरमें प्रायः जितने बड़े सार्वजनिक विरोधप्रदर्शन हुए हैं उनके साथ कुछ न कुछ अनियमता प्रायः सर्वत्र देखनेमे आयी है। जिस तरह सत्याग्रहके समय ३० वीं मार्च

और ६ ठी अप्रेलका विरोधप्रदर्शन हुआ वह अन्य किसी समयमें भी हुआ ही होता। मेरी धारणा है कि यदि नम्रता और व्यवस्थितताका इतना भाव न पैदा हुआ होता, तो दिल्लीमें आज्ञा भङ्ग करनेसे जो उपद्रव हुआ उससे बहुत अधिक भयंकर उपद्रव हो गया होता। लोगोंने असाधारण तेजीसे सत्याग्रहका सिद्धान्त स्वीकार किया था। इसीने देशके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक उपद्रव मचनेमें रुकावट खड़ी की। लोगोंके ऊपर सत्याग्रहने जो अधिकार जमा रखा है—हो सकता है कि वह उनकी इच्छाके विरुद्ध ही हो—यही अशान्ति और उपद्रवकी शक्तियोंको रोके हुए हैं। परन्तु सत्याग्रहपर अन्यायपूर्ण जो आक्रमण होते हैं उनके विरुद्ध सफाई पेशकर मैं पाठकोंका अधिक समय नहीं लेना चाहता। यदि इसने भारतमें अपना पैर जमा लिया है, तो यह हण्टर कमेटीके अल्पपक्ष द्वारा किसी अंशतक समर्थित बहुपक्षके किये हुए आक्रमणोंसे बहुत अधिक भयंकर आक्रमण होनेपर भी जीवित रहेगा। यदि इसी बातमें हण्टर कमेटीके बहुपक्षकी रिपोर्ट सदोष होती और अन्य सभी बातोंमें ठीक होती तो इसकी प्रशंसा होनेके सिवा और कुछ न होता। आखिर राजनीतिक क्षेत्रमें सत्याग्रह तो एक नया परीक्षण ही है। इस लिये लोगोंकी किसी अव्यवस्थाका शीघ्रतामें इसे कारण बता देना क्षम्य होता।

रिपोर्ट और खरीतोंकी जो सर्वत्र निन्दा की गयी है वह बहुत दुःखपूर्ण विवरणोंके आधारपर है। जरा देखिये तो कि

अफसरोके प्रत्येक अमानुषिक कार्यका—सिवा उन कार्योंके
जिन्हे उनके करनेवालोने धृष्टतापूर्वक स्वीकार किया था इसलिये
जिसकी निन्दा किये विना नही बचाव हो सकता था—पक्ष
करनेका किस प्रकार परिश्रम किया हुआ स्पष्ट दिख रहा है।
जरा देखिये तो कि जेनरल डायरके स्वीकार करनेपर भी उसका
पक्ष ठीक सिद्ध करनेके लिये कितना प्रयत्न किया गया है।
देखिये तो सही कि सर माइकेल ओडायरकी किस प्रकार व्यर्थ
प्रशंसा की गयी है यद्यपि यह उसीका भाव था जिससे प्रेरित हो-
कर उसके अधीन निम्न अफसरोंने अपराधके प्रत्येक कार्य किये थे।
देखिये तो सही कि किस तरह जानवूझकर अप्रेलकी घटनाओंके
पहलेके उसके कार्योंकी जाच करनेसे अस्वीकृति प्रकट की गयी।
उसके कार्य खुले तौरपर हुए थे जिनपर न्यायकी दृष्टिसे विचार
करना कमेटीका कर्त्तव्य था। अफसरोंकी कही हुई सारी बातें
मान लेनेके स्थानमें कमेटीका स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वह दङ्गोंके
वास्तविक कारण जाननेके लिये कष्ट उठाती। उसे घटनाओकी
भीतरी बातोंको ढूंढ़ना चाहिये था। सरकारी कागजपत्रोकी
कड़ी तहके पीछे धैर्यपूर्वक जानेके स्थानमे कमेटीने केवल सर-
कारी गवाही सुनकर ही अपनी उद्योगशून्यताका परिचय दिया।
मेरी तुच्छ रायमें रिपोर्ट और खरीतोंमे सरकारी अनियमताओं-
को क्षमा करनेका प्रयत्न किया गया है। जेनरल डायरकी नर-
हत्या तथा पेटके बल चलनेके हुक्मकी जिस प्रकार सावधानी
रखते हुए वेमनकी निन्दा की गयी है, उससे पाठकोंकी निराशा

और भी गहरी हो जाती हैं जब वे बहुत पतली सरकारी कलई चढ़ाई हुई रिपोर्टके पन्नेके बाद पन्ने पढ़ते हैं। किन्तु रिपोर्टको सविस्तर परीक्षा करनेकी मुझे बिल्कुल ही आवश्यकता नहीं जान पड़ती जिसकी निन्दा माडरेट और एक्सट्रीमिस्ट सभी विचारोंके राष्ट्रीय पत्रोंने की हैं। विचार करनेकी बात है तो यही कि अफसरोंके पापका समर्थन करनेके लिये जो गुप्त षड्यन्त्र हैं यह क्योंकर तोड़ा जाय। राष्ट्र इतना भारी अपमान नहीं सह सकता यदि इसे अपनी आत्मप्रतिष्ठाकी रक्षा करनी और साम्राज्यका साझीदार बनना है। आल इण्डिया कांग्रेस कमेटीने एक स्पेशल कांग्रेस करनेका विचार अन्य बातोंके सिवा इस रिपोर्टसे पैदा होनेवाली अवस्थापर विचार करनेके लिये किया है। मेरी रायमें समय आ गया है जब हमें पार्लमेण्टको अर्जी देनेका भरोसा छोड़ प्रभावपूर्ण काम करना चाहिये। अर्जियोंका मूल्य तब होगा जब उनके पीछे राष्ट्रको अपनी इच्छाके अनुसार काम करा लेनेकी इच्छाशक्ति हो। फिर हमारे पास कौनसी शक्ति है? जब हमारी दृढ़ सम्मति है कि हमारे ऊपर घोर अन्याय किया गया है और जब सर्वोच्च अधिकारीसे अपील करनेपर भी हम अन्याय दूर नहीं करा सकते, तब उस अन्यायको मिटानेके लिये हमारे पास कोई शक्ति अवश्य होनी चाहिये। यह सच है कि बहुत ही अधिक अवसरोंपर प्रजाका यह कर्त्तव्य होता है कि साधारण कारखाइयोंके निष्फल अन्यायके आगे सिर झुका ले जबतक उस अन्यायसे

उसकी आत्मापर बुरा प्रभाव न पड़ता हो। परन्तु प्रत्येक राष्ट्र और व्यक्तिको अधिकार है और यह उसका कर्तव्य है कि असह्य अन्यायके विरुद्ध सिर उठावे। हथियार लेकर खड़े होनेमें मेरा विश्वास नहीं है। वह ऐसी दवा है जो उस रोगसे भी बुरी है जिसका इलाज करना है। वह बदला लेनेके भाव, अधैर्य और क्रोधका चिन्ह है। हिंसात्मक उपाय अन्तमें लाभ नहीं पहुचा सकते। देखिये जर्मनीके साथ मित्रराष्ट्र हथियार बाधकर खड़े हुए तो उसका प्रभाव क्या हुआ। क्या वे भी जर्मनीकी तरह ही नही बन गये जिनकी वे हमारे सामने इतनी निन्दा करते थे ?

हमारे पास एक अच्छा उपाय है। इसमें सन्देह नहीं कि इसमे निरोध और धैर्य से काम लेनेकी आवश्यकता होती है जो हिंसात्मक उपाय काममें लानेमें आवश्यक नहीं होते। परन्तु इसके लिये इच्छाशक्तिकी दृढ़ता आवश्यक होती है। यह उपाय यही है कि अन्यायका साथ देनेसे इनकार करें। कोई अत्याचारी अपने उद्देश्यमे अत्याचारपीड़ितको साथ लिये विना सफल नहीं हुआ है। हो सकता है जैसा प्रायः होता है कि वहपशुबलसे उसे अपने साथ ले। अधिकांश मनुष्य अत्याचारीकी इच्छाके आगे सिर झुकाना पसन्द करते हैं और उसका विरोधकर उसके परिणामस्वरूप होनेवाले कष्ट सहनेको तैयार नहीं होते। इसीसे अत्याचारी अपने कार्यके लिये भयसंचार किया करता है। परन्तु इतिहासमें हमे ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें भय

सचारकको अपनी इच्छाके अनुसार काम करानेके लिये भय सचारसे सफलता नहीं प्राप्त हुई है। अब भारतके सामने अपना रास्ता चुन लेनेका समय है। यदि पञ्जाब गवर्नमेण्टके कार्य असह्य अन्याय हैं और यदि लार्ड हण्टरकी कमेटीकी रिपोर्ट और उसके सम्बन्धके दो खरीते उससे भी बढ़कर अन्याय हैं क्योंकि उनमें उन अन्यायोंको बुरी तरहसे क्षमा किया गया है, तो यह स्पष्ट है कि हमें इस सरकारी उद्दण्डताके आगे सिर झुकानेसे इनकार करना चाहिये। आवश्यक हो तो सब प्रकारसे पार्लमेंटसे प्रार्थना करिये, परन्तु यदि पार्लमेण्ट हमको निराश करती है और हम अपनेको एक राष्ट्र कहनेके योग्य हैं, तो हमें सरकारको मदद देनेसे इनकारकर उससे सहयोग लौटा लेना चाहिये।

२—पंजाबियोंका कर्त्तव्य।

इलाहाबादके 'लीडर'ने मि० बोसवर्थ स्मिथके सम्बन्धके पत्र व्यवहारको प्रकाशितकर प्रशसनीय कार्य किया है। मि० स्मिथ मार्शल लाका एक अफसर था जिसके लगातार बुरे बर्ताव करनेकी सबसे अधिक शिकायतें हैं। पत्रव्यवहारसे पता चलता है कि मि० बोसवर्थ स्मिथको जहां बर्खास्त करना चाहिये था वहां उसकी तरक्की की गयी है। मार्शल लाके कुछ समय पहले उसका पद घटाया गया था। 'लीडर'का संवाददाता कहता है कि, अब वह फिर डिपटी कमिशनरके दूसरे ग्रेडमें नियुक्त किया हैं जहांसे वह गिराया गया था और अब उसे जाब्ता फौज

दारीकी धारा ३० का भी अधिकार दिया गया है। उसके आनेके समयसे अम्बाला छावनीकी गरीब जनता भय और अत्याचारके नीचे बसती है। संवाददाताका यह भी कहना है कि मै इन दो शब्दोंका व्यवहार जानबूझकर इसलिये कर रहा हूं जिससे मेरा जो भाव है वह प्रकट हो जाय। भय और अत्याचारका अर्थ समझानेके लिये मैं इस पत्रसे कुछ वाक्य यहां देता हूं :—“ प्राइवेट नालिशोंमें वह कभी फर्यादीका बयान नही लेता। अदालत उठ जानेपर वह बयान रीडर लेता और दूसरे दिन उसपर मजिस्ट्रेटसे सही कराता है। ऐसी अर्जियोंपर जो रिपोर्ट आती है वह चाहे फर्यादीके पक्षमे हो या विरुद्ध, उसे मजिस्ट्रेट कभी नही पढ़ता और दर्खास्तें विना उचित जांचके ही खारिज कर दी जाती हैं। यह प्राइवेट नालिशोकी गति होती है। अब पुलिसके चलानी मामलोंकी सुनिये। जिन अभियुक्तोंपर मामला चलता रहता है और जो पुलिसकी हिरासतमे होते हैं उनसे बातचीत करनेकी आज्ञा उनके वकीलोको नही दी जाती। सरकारी वकीलोसे जिरह करनेकी आज्ञा उन्हें नहीं दी जाती।... . सरकारी गवाहोंसे ऐसे प्रश्न पूछे जाते है जिनसे उत्तर स्पष्ट रहता है। इस तरह सरकारी पक्षकी सब बातें पुलिसके मुहसे कहा ली जाती हैं। अभियुक्त पक्षके गवाह यद्यपि बुलाये जाते हैं, किन्तु अभियुक्तोके वकीलको उनसे प्रश्न पूछनेकी आज्ञा नही दी जाती। . यदि अभियुक्त अपनी रक्षाके लिये कोई बात कहनेका साहस करे तो वह चुप करा दिया जाता है।.....

छावनीका कोई भी नौकर छावनीके किसी भी नागरिकको एक कागजके टुकड़ेपर उसका नाम लिखकर दूसरे दिन अदालतमें हाजिर होनेको कह सकता है। यही सम्मन है। ....ऐसा हुक्म पाकर यदि कोई अदालतमें नहीं हाजिर होता, तो उसके विरुद्ध गिरफ्तारीके लिये फौजदारीका वारण्ट निकाला जाता है।" पत्रोंमें ऐसी बहुतसी बातें उद्धृत करने योग्य हैं, किन्तु लेखकका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये मैंने काफी वाक्य दे दिये हैं। आइये जरा इस अफसरके मार्शल लाके समयके कारनामोंकी ओर ध्यान दें। यही अफसर था जिसने दलके दल आदमियोंपर दिखावटी मामला चला सजाएं दी थीं। गवाहोंने बयान किया है कि वह लोगोंको इकट्ठा कर लेता, उनसे झूठी गवाही देनेको कहता, स्त्रियोंके घूंघट उठाता, उन्हे मक्खियां, कुत्तिया और गधे कहता और उनके ऊपर थूकता था। उसीने शेखूपुराके निरपराध वकीलोंको अवर्णनीय कष्ट दिये थे। मि० एंड्रूजने स्वयम् इस अफसरके विरुद्ध की हुई शिकायतोंकी जांच की थी और वे इस परिणामको पहुंचे हैं कि मि० स्मिथसे अधिक बुरा वर्त्ताव और किसी अफसरने नहीं किया था। उसने शेखूपुराके लोगोंको एकत्र किया, उनका अनेक प्रकारसे अपमान किया और उन्हें 'सुअर लोग' और 'गन्दी मक्खी' कहा था। हण्टर कमीशनके सामने उसने जो गवाही दी है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि सत्यकी उसे बिल्कुल परवाह नहीं और यदि संवाददाताकी सच हैं तो यही अफसर है जिसकी तरक्की की गयी है।

किन्तु प्रश्न तो यह है कि वह सरकारी नौकरीमे है ही क्यों और उसपर निरपराध स्त्रियो और पुरुषोंको गाली देने और मारनेके लिये मामला क्यों नहीं चलाया गया ?

मैं देखता हूं कि लोगोकी इच्छा जेनरल डायर और सर माइकेल ओडायरपर मामला चलानेकी हो रही है। मैं यहां इस वातपर विचार नहीं करता हूं कि ऐसा सम्भव है कि नहीं। मुझे यह देख दुःख हुआ कि मि० शास्त्रियर भी जे० डायरपर मामला चलानेके पक्षमे हैं। यदि अङ्गरेज लोग अपनी खुशीसे वैसा करें तो मैं ऐसे मामलोंसे प्रसन्न होऊंगा और समझूंगा कि वे जालयानावाला वागके अत्याचारको नापसन्द करते हैं। किन्तु वास्तवमें इन लोगोंको सजा दिलानेके व्यर्थ प्रयत्नमे मेरी इच्छा एक पाई भी खर्च करनेकी नहीं है। प्रायः सभी अङ्गरेज पत्रोने मानव जातिके विरुद्ध अपराध किये हुए इन अपराधियोंके पापोपर परदा डालनेका षड्यन्त्र कर रखा है। प्राइवेट या सरकारी तौरपर उनपर जो मामला चलानेकी चिल्लाहट मचायी जा रही है उसमे शामिल होकर मैं उन्हें वीर पुरुष नहीं वनाना चाहता। यदि मैं भारतको अपने मतमें ला उन अफसरोंको विल्कुल वर्खास्त कर देनेके लिये हठ करनेको तैयार कर सकूं, तो मुझे सन्तोष हो जायेगा। परन्तु सर ओडायर और जेनरल डायरके वर्खास्त करनेसे अधिक आवश्यक है कि कर्नल ओब्रायन और मि० वोसवर्थस्मिथ, राय श्रीराम तथा कांग्रेस-सब कमेटीकी रिपोर्टमे प्रकट किये हुए अन्य अफसरोंपर मामला

न भी चलाया जाय तो वे प्रकट रूपसे वर्खास्त कर दिये जायं। जेनरल डायर तो बुरा है ही, किन्तु मि० स्मिथको मैं उससे बहुत ही अधिक बुरा और उसके अपराधोंको जालयानवाला बागकी नरहत्यासे बहुत ही अधिक भयङ्कर समझता हूं। जेनरल डायरने सच्चे दिलसे विश्वास किया था कि लोगोंको गोलियोंका शिकार बना भयभीत करना सैनिक कर्त्तव्य है। किन्तु मि० स्मिथने जानबूझकर निर्दयता, असभ्यता और नीचता प्रकट की। यदि उसके विरुद्ध गवाहियोंमें कही हुई सब बातें सच हैं, तो उसमें मनुष्यताका लेश भी नहीं है। जेनरल डायरकी भांति उसमें अपने कियेकी पुष्टि करनेका साहस नहीं और जब उससे प्रश्न किये गये तब उसने इधर उधरकी बातें कहीं। यह अफसर ऐसे लोगोंके ऊपर नियुक्त किया गया है जिन्होंने इसके साथ कुछ बुराई नहीं की है और उसे वर्त्तमान शासनको कलंकित करनेका अवसर दिया गया है।

पञ्जाब क्या कर रहा है? क्या यह पञ्जावियोंका साफ कर्त्तव्य नहीं है कि जबतक वे मि० स्मिथ तथा उस जैसे अन्य अफसरोंको वर्खास्त न करा लें तबतक आरामसे न बैठें? पञ्जाबके नेता व्यर्थ ही छोड़े गये यदि वे अपनी प्राप्त स्वतन्त्रताको मेसर्स बोसवर्थ ऐण्ड कम्पनीसे शासनको शुद्ध करनेके काममें न लायें। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि वे दृढ़ प्रतिज्ञ हो आन्दोलन शुरू कर देंगे, तो देखेंगे कि कुल भारत उनके साथ है। मैं यह राय देनेका साहस करता हूं कि जे० डायरको फांसीपर भेजनेके

योग्य होनेका सर्वोत्तम मार्ग यह है कि हम उससे सरल और अधिक आवश्यक यह काम करें कि उन अफसरोंका उपद्रव रोके जो अबतक जारी है जिनके विरुद्ध प्रचुर परिमाणमें प्रमाण संग्रह करनेमें उन्होंने सहायता दी है।

३—जेनरल डायर।

आर्मी कौंसिलने निश्चय किया कि जेनरल डायर समझकी भूलका अपराधी है इसलिये उसे कोई सरकारी नौकरी न मिले। मि० माटेगूने जेनरल डायरके आचरणको जी खोल करके निन्दा की है। किन्तु यह सोचे विना फिर भी मुझसे नहीं रहा जाता कि जेनरल डायर किसी प्रकारसे सबसे बड़ा अपराधी नहीं है। उसकी निर्दयता स्पष्ट है। उसने आर्मी कौंसिलके सामने जो अद्‌भुत बयान दिया है उसकी एक एक पंक्तिसे उसकी अधम तथा सैनिकोंके अयोग्य कापुरुषता प्रकट हो रही है। उसने निरस्त्र पुरुषों और लडकोंकी भीड़को जिसमें बहुत करके छुट्टी मनानेवाले लोग थे, 'बागी सेना' कहा है। वह अपनेको पञ्जाब-का परित्राता समझता है, क्योंकि वह घेरेके भीतर बन्द किये हुए आदमियोंको खरहोंकी तरह मार डालनेमें समर्थ हुआ। उसके कार्यमें कुछ वीरता नहीं थी, क्योंकि उसने अपनेको किसी खतरेमें नहीं डाला। उसने विना सूचना दिये ही फैर की और किसीने उसका कुछ विरोध नहीं किया। यह 'समझकी भूल'

नहीं है। यह काल्पनिक सङ्कटके कारण समझा जड़ हो जाना है। यह अपराधपूर्ण अयोग्यता और हृदयशून्यताका प्रमाण है। परन्तु जो क्रोध जे० डायरपर प्रकट किया गया है, मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह ठीक निशानेपर नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि नरहत्या भयंकर और निरपराध व्यक्तियोंका वध शोचनीय है। परन्तु पीछे जो धीरे धीरे लोगोंको शारीरक कष्ट पहुंचाये गये, उनका अपमान किया गया और वे वधिया किये गये, वह अधिक बुरा और हृदयको पीड़ित करनेवाला है और उसके करनेवाले लोग जे० डायरकी जालियानवाला बागकी नरहत्याकी अपेक्षा अधिक निन्दाके पात्र हैं। जे० डायरने तो केवल कुछ आदमियोंको ही शारीरिक कष्ट दिये, किन्तु उन लोगोंने तो राष्ट्रकी आत्माका ही वध करनेका प्रयत्न किया। कर्नल फ्रैंक जानसनकी चर्चा कौन करता है जो सबसे बुरा अपराधी था? उसने निरपराध लाहोरको भयभीत कर डाला और अपने दयारहित हुक्मोंसे सब मार्शल लाके अफसरों के सामने आदर्श रख दिया। परन्तु कर्नल जानसनसे भी मेरा कोई वास्ता नहीं है। पञ्जाव तथा भारतके लोगोंका पहला कर्त्तव्य यह है कि वे कर्नल ओब्रायन, मि० बोसवर्थ स्मिथ, राय श्री राम और मि० मलिक खांको सरकारी नौकरीसे निकलवायें। वे अभीतक नौकरीपर बहाल रखे गये हैं। उनका अपराध भी जे० डायरके समान ही सिद्ध हो चुका है। यदि हम जे० डायरकी निन्दा करके ही सन्तोष कर लेंगे और पञ्जावके

शासनको शुद्ध करनेके स्पष्ट कर्त्तव्यकी उपेक्षा करेंगे, तो अपने कर्तव्यसे पतित होंगे। यह कार्य सभाओंमे आलंकारिक भाषण करने या प्रस्ताव पास करनेमात्रसे न पूरा होगा। यदि हमे सफलता प्राप्त करनी है तो अफसरोंके हृदयपर यह अंकित करा देना है कि वे अपनेको जनताके मालिक नही बल्कि उसके प्रवन्धक और नौकर समझें, और यह भी समझें कि यदि वे बुरा वर्त्ताव करेंगे और जो कार्य उन्हे दिया गया है उसके अयोग्य सिद्ध होंगे, तो अपने पदपर नहीं बने रह सकते, तो हमे खूब डटकर काम करना पड़ेगा।

८—पंजाबकी सजाएं

कांग्रेस पञ्जाब सब-कमेटीके नियुक्त किये हुए कमिश्नरोंने अपनी रिपोर्टमे वायसरायपर यह अभियोग लगाया है कि उनमे कल्पनाशक्तिका अपराधमूलक अभाव है। पांचमें दो फांसोकी सजाएं बदलनेसे इनकार करना उक्त अभियोगका सुन्दर दृष्टान्त है। प्रिवी कौंसिलका उनकी अपील अस्वीकार करना उससे अधिक उच्च अपराध नहीं सिद्ध करता जितना मार्शल ला न्यायालयके सामनेका मामला रद्द करनेसे उनकी निर्दोषिता सिद्ध हो सकती थी। इसके सिवा जिस प्रकार पञ्जाब सरकारने घोषणाका अर्थ लगाया है उससे तो ये मामले स्पष्ट राजकीय घोषणाके भीतर आ जाते हैं। अमृतसरमें जो

हत्याएं हुईं उनका कारण हत्या करनेवालों और मारनेवालोंका कोई निजू झगड़ा नहीं था। अपराध यद्यपि भयङ्कर था, किन्तु था वह बिल्कुल राजनीतिक और उत्तेजनाके समय किया गया। हत्या और अग्निकाण्डके लिये काफीसे अधिक बदला चुका लिया गया है। ऐसी अवस्थामें साधारण विवेक मृत्युदण्डकी सजाएं घटानेको कहता है। जनताकी धारणा है कि सजा पाये हुए लोग निरपराध हैं और उनके ऊपर न्यायपूर्वक मामला नहीं चलाया गया है। उन्हें फांसी देनेमें इतनी अधिक देर का गयी है कि इस समय उन्हें फांसीपर लटकानेसे भारतीय समाज बुरी तरहसे हिल जायेगा। कोई कल्पना शक्तिवाला वायसराय होता तो वह तुरन्त ही फांसीके बदलनेकी घोषणा कर देता, परन्तु लार्ड चेम्सफोर्ड नहीं। उनकी समझ ऐसी जान पड़ती है कि न्यायकी मांग पूरी न होगी यदि कमसे कम सजा पाये हुए कुछ लोग फांसीपर न चढ़ाये जायं। उनके लिये लोकमतका कुछ मूल्य नहीं है। फिर भी आशा करेंगे कि या तो वायसराय या मि० मांटेगू फांसीकी सजाएं बदल देंगे। किन्तु यदि सरकार भयङ्कर भूल करेगी और फांसी दिला देगी, तब यदि उससे लोग क्रुद्ध या दुखी होंगे तो वे भी वैसी ही भूल करेंगे। राष्ट्रोंकी सभाओंमें प्रभावपूर्ण मत प्रकट करने योग्य राष्ट्र बननेके पहले हमें केवल एक हजार निरपराध पुरुषों और स्त्रियोंकी ही हत्या नहीं बल्कि ऐसे कई हजारकी हत्याको समभावसे विचार करनेको तैयार होना पड़ेगा। तब हम संसारमें ऐसा पद प्राप्त

करेंगे जिससे बढ़कर और किसी राष्ट्रका पद न होगा। इस-
लिये हम आशा करते हैं कि जिनका इन बातोंसे सम्बन्ध है वे
साहसको हाथसे न जाने देंगे और फांसीको जीवनकी साधारण
घटनाकी तरह समझेंगे।

स्वराज्य ।

१—एक वर्षमें स्वराज्य।

मैंने कलकत्ता कांग्रेसमें उपस्थित लोगोंके सामने कहा था कि यदि मेरे असहयोगके प्रोग्रामके अनुसार काफी सच्चे लोगोंने कार्य किया, तो एक वर्षमें स्वराज्य प्राप्त कर लिया जायेगा। यह कहनेके लिये मेरे मत्थे खूब हास्य किया गया है। कुछ लोगोंने तो मेरी शर्त्तकी उपेक्षा की और वे इसलिये हंसे हैं क्योंकि वे समझते हैं कि एक वर्षमें किसी प्रकारसे भी स्वराज्य मिलना असम्भव है। अन्य लोगोंने मेरे 'यदि' शब्दकी खिल्ली उड़ायी है और कहा है कि अगर बहसमें 'यदि' का कोई मूल्य हो, तो इसके द्वारा कोई भी असम्भव सम्भव सिद्ध किया जा सकता है। किन्तु मेरी प्रतिज्ञा गणितके हिसाबके आधारपर है। मैं गर्वके साथ कहता हूं कि शर्त्तें उचित रूपसे पूरी हुए बिना वास्तविक स्वराज्य एक प्रकारसे असम्भव है। स्वराज्यका अर्थ ऐसी अवस्था है कि हम अंग्रेजोंकी उपस्थितिके बिना भी अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रख सकें। यदि साझीदार होकर रहना हो, तो भी साझीदार बनना हमारी इच्छापर हो। जबतक हम अंग्रेजोंके सामने

पनेको न समझे और न हो तबतक स्वराज्य नही हो सकता।
ाज हम समझते हैं कि अपनी भीतरी और बाहरी रक्षा, हिन्दू
ुसलमानोंके बीच शान्ति, अपनी शिक्षा और अपनी नित्यकी
ावश्यक वस्तुओ और यहांतक कि अपने धार्मिक झगडोंके
नपटारेके लिये भी अंग्रेजोंके आसरे हैं। राजा लोग अपने
कारो और लक्षपती लाखोंके लिये अंग्रेजोंके आश्रित हैं।
ग्रेज हमारी असहाय अवस्था जानते हैं और सर टामस हालैंड
सहयोगवादियोंके अत्थे सर्वथा उचित हंसी उड़ाते हैं। तब
राज्य पानेका अर्थ अपनी असह्य अवस्थासे छुटकारा पाना है।
ग्र उसी प्रकार विस्मयकारक है जिस प्रकार कहानीके बच्च
रहके लिये अपनेको सिंह समझना भी असम्भव प्रतीत हुआ
ा जो बकरोंके साथ पाला गया था। जैसा टालस्टाय प्रायः कहा
करते थे, मनुष्य प्राय. मोहनी विद्याके चक्करमे पड़ कष्ट उठाते हैं।
सके प्रभावके कारण ही हम बराबर अपनेको असहाय समझते
ं। स्वय अंग्रेजोंसे भी यह आशा नहीं की जा सकती कि वे
में इसके बाहर निकालेंगे। इसके विरुद्ध वे बराबर हमारे
कानोंमे कहते रहते हैं कि हम केवल धीरे धीरे सीखनेके उपायों-
द्वारा ही अपना शासन आप करनेके योग्य होंगे। 'टाइम्स' ने कहा
ा कि यदि हम कौंसिलोंका बायकाट (बहिष्कार) कर देंगे
ो स्वराज्यकी शिक्षा पानेका अवसर खो देंगे। मुझे इसमें कुछ
भी सन्देह नहीं है कि कितने ही ऐसे लोग हैं जिनका 'टाइम्स' के
कथनमे विश्वास है। उसने एक झूठका भी आश्रय लिया है। वह

धृष्टतापूर्वक कहता हैं कि लार्ड मिलनरके मिशनने मिश्रवासियोंकी बातें तभी सुनीं जब वे मिश्रकी कौंसिलका बायकाट उठानेको तैयार हुए थे। मेरे लिये तो स्वराज्यमें हमें शिक्षा पानेकी एकमात्र आवश्यकता यही है कि हम कुल संसारके विरुद्ध अपनी रक्षा करनेके योग्य हों और अपना प्राकृतिक जीवन पूर्ण स्वतन्त्रतासे बिता सकें चाहे वह दोषोंसे पूर्ण क्यों न हो। सुशासन स्वराज्य नहीं है। अफगानोंके ऊपर अच्छा शासन नहीं है, पर वह स्वराज्य है। मैं उन्हें सिहाता (ईर्षा करता) हूं। जापानियोंने खून की नदियां बहाकर स्वराज्य करनेको विद्या सीखी। यदि आज हममें ऐसी शक्ति होती कि उनसे उत्कृष्ट पशुबलद्वारा अंग्रेजोंको देशसे निकाल भगा सकते, तो हम उनसे उत्कृष्ट समझे जाते। फिर चाहे हमें कौंसिलमें वादविवाद करने या शासनके पदोंका काम चलानेका अनुभव भी न होता तो भी हम स्वराज्य करनेके योग्य माने जाते। कारण यह कि एकमात्र पशुबलकी ही परीक्षा अबतक पश्चिमको मान्य हुई है। जर्मन इसलिये नहीं हराये गये कि अवश्य ही उनका पक्ष अधर्मका था, बल्कि इसलिये कि मित्रराष्ट्र पशुबलमें उनसे बढ़ चढ़ निकले। इसलिये अन्तमें भारतको या तो युद्धविद्या अवश्य सीखनी पड़ेगी जो अंग्रेज उसे सिखायेंगे नहीं, या उसे असहयोगके द्वारा अपने ढंगसे व्यवस्था और त्यागके मार्गपर चलना होगा। यह जितने अपमानकी उतने ही आश्चर्यकी बात है कि एक लाखसे भी कम गोरे ३१॥ करोड़ भारतीयोंपर शासन कर सकें। इसमें सन्देह नहीं कि वे कुछ तो शक्तिद्वारा

शासन करते हैं, परन्तु उससे अधिक वे हजारों प्रकारसे हमारा सहयोग प्राप्त करने तथा ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है त्यों त्यो हमें अधिकाधिक अपने आश्रित बनानेके द्वारा हमपर शासन करते हैं। हमे वास्तविक स्वतन्त्रता या शक्ति सुधरी हुई कौंसिलों, अधिक अदालतो और गवर्नरीका ही समझनेकी भूल न करनी चाहिये। बधिया करनेके ये और भी अधिक चतुरतापूर्ण ढग हैं। अंग्रेज केवल पशुबलसे हमपर शासन नही कर सकते। इसलिये वे भारतपर अपना अधिकार बनाये रखनेके लिये सब प्रकारके योग्य और अयोग्य उपाय काममे लाते हैं। वे अपनी साम्राज्यलोलुपताकी पूर्त्तिके लिये भारतके अरबों और करोड़ों रुपये तथा भारतका जनबल चाहते हैं। यदि हम उन्हे अपना धनजन देनेसे इनकार कर दे तो हम अपना उद्देश्य अर्थात् स्वराज्य, समानता और मनुष्यत्व प्राप्त कर लेंगे।

वायसरायकी कौंसिलके अन्तमे जो दृश्य घटित हुए उनसे हमारे अपमानका प्याला भर गया। मि० शास्त्री पजाबवाला अपना प्रस्ताव नहीं पेश कर सके। जालियानवाला बागके आहत भारतीयोंके लिये १२५०) दिये गये और उपद्रवी भीड़के शिकार हुए अंग्रेजोंके लिये लाखो मिले। जो अफसर उन लोगोंके विरुद्ध अपराध करनेके दोषी थे जिनके वे नौकर हैं उनकी वचनसे निन्दा की गयी और कौंसिलके मेम्बर सन्तुष्ट हो गये। यदि भारत शक्तिसम्पन्न होता तो वह कटेपर इस तरह नमक न छिड़कने देता। मै अंग्रेजोंको दोष नहीं देता। यदि हमारी भी

संख्या उनकी तरह कम होती तो कदाचित् हमने भी वे ही उपाय काममें लाये होते जो वे ला रहे हैं। भय संचार करना और धोखा देना मजबूतोंका नहीं, कमजोरोंका शस्त्र है। अंग्रेज संख्यामें कमजोर हैं। और हम अधिक संख्यामें होनेपर भी कमजोर हैं। फल यह हो रहा है कि एक दूसरेको नीचेको खींच रहा है। यह साधारण अनुभव है कि भारतमें रहनेके बाद अंग्रेजोंका सौजन्य कम हो जाता है और अंग्रेजोंके संसर्गसे भारतके साहस और मनुष्यत्वकी हानि होती है। कमजोर बननेका यह कार्य न तो हम दो राष्ट्रोंहीके लिये अच्छा है और न संसारके लिये ही। परन्तु यदि हम भारतीय अपनी खबर ले तो बाकी दुनिया अपनी खबर कर लेगी। इसलिये संसारकी उन्नति करनेके लिये हमें अपने घर भरको सुव्यवस्था करनी चाहिये।

इस समय हथियारोंकी शिक्षाका कोई प्रश्न ही नहीं है। मैं एक पग और आगे बढ़ता तथा विश्वास करता हूं कि भारतका संसारके लिये एक और भी अच्छा मिशन है। यह दिखाना उसकी शक्तिके भीतर है कि, वह एकमात्र स्वार्थत्याग अर्थात् आत्मशुद्धि द्वारा अपना भाग्य सिद्ध कर सकता है। यह केवल असहयोगसे ही हो सकता है। असहयोग तभी सम्भव है जब जिन लोगोंने सहयोग देना प्रारम्भ किया था वे सहयोग लौटाना शुरू कर दें। यदि हम सरकार द्वारा नियन्त्रित स्कूलों, सरकारी अदालतों और व्यवस्था सभाओं (कौंसिलों) की मायासे अपनेको स्वतन्त्रकर अपनी शिक्षाका नियन्त्रण, अपने झगड़ोंका

निपटारा और उनकी व्यवस्थाकी उपेक्षा कर सकें तो हम स्वराज्य करनेको तैयार हैं और केवल तभी हम सरकारी सैनिक तथा असैनिक नौकरोंसे नौकरी छोडने और करदाताओंसे कर चुकाना बन्द करनेके लिये तैयार होंगे। क्या यह ऐसा अशक्य सिद्धान्त है कि हम आशा न करें कि माता पिता अपने लड़कोंको स्कूलों और कालेजोंसे निकाल अपने स्कूल कालेज खोलें या वकीलोंसे उनकी वकालत छोड़ अपना कुल समय आवश्यकता होनेसे निर्वाह खर्च लेकर राष्ट्रसेवामें लगानेके लिये न कहें या कौंसिलोंके उम्मेदवारोंसे न कहें कि कौंसिलोंमें न जाओ क्योंकि वहां जानेसे उस कानूनी यन्त्रको क्रियात्मक या अक्रियात्मक रूपसे सहायता देनी पड़ती है जिसके द्वारा सब नियन्त्रण काममें लाया जाता है। असहयोग आन्दोलन इस प्रयत्नके सिवा और कुछ नहीं है कि अंग्रेजोंका पशुबल उन सब आवरणोंसे अलग कर दिया जाय जिनसे वह ढका हुआ है और दिखा दिया जाय कि केवल पशुबल क्षणभरके लिये भी भारतको अधिकारमें नहीं रख सकता। किन्तु मैं स्पष्ट रूपसे स्वीकार करता हूं कि जबतक मेरी प्रकट की हुई तीनों शर्त्तें नहीं पूरी होंगी तबतक स्वराज्य न होगा। ऐसा नहीं हो सकता कि एक ओर तो हम कालेजोंसे अपनी डिग्रियां लेते रहें, ऐसे मामलोंके लिये अपने मुवक्किलोंसे हजारों रुपये ऐंठते रहें जो पांच मिनटमें खतम किये जा सकते हैं तथा कौंसिलोंमें राष्ट्रका समय नष्ट करनेमें प्रसन्नता प्राप्त करते रहें तो भी राष्ट्रीय आत्मगौरव प्राप्त करनेकी

निपटारा और उनकी व्यवस्थाकी उपेक्षा कर सकें तो हम स्वराज्य करनेको तैयार है और केवल तभी हम सरकारी सैनिक तथा असैनिक नौकरोंसे नौकरी छोड़ने और करदाताओसे कर चुकाना बन्द करनेके लिये तैयार होगे। क्या यह ऐसा अशक्य सिद्धान्त है कि हम आशा न करे कि माता पिता अपने लडकोको स्कूलो और कालेजोसे निकाल अपने स्कूल कालेज खोलें या वकीलोसे उनकी वकालत छोड़ अपना कुल समय आवश्यकता होनेसे निर्वाह खर्च लेकर राष्ट्रसेवामे लगानेके लिये न कहे या कौंसिलोंके उम्मेदवारोसे न कहे कि कौंसिलोमे न जाओ क्योंकि वहा जानेसे उस कानूनी यन्त्रको क्रियात्मक या अक्रियात्मक रूपसे सहायता देनी पड़ती है जिसके द्वारा सब नियन्त्रण काममें लाया जाता है। असहयोग आन्दोलन इस प्रयत्नके सिवा और कुछ नही है कि अंग्रेजोका पशुबल उन सब आवरणोंसे अलग कर दिया जाय जिनसे वह ढका हुआ है और दिखा दिया जाय कि केवल पशुबल क्षणभरके लिये भी भारतको अधिकारमे नहीं रख सकता। किन्तु मैं स्पष्ट रूपसे स्वीकार करता हूं कि जबतक मेरी प्रकट की हुई तीनों शर्तें नही पूरी होगी तबतक स्वराज्य न होगा। ऐसा नही हो सकता कि एक ओर तो हम कालेजोसे अपनी डिग्रिया लेते रहे, ऐसे मामलोंके लिये अपने मुवक्किलोसे हजारो रुपये ऐंठते रहे जो पाच मिनटमे खतम किये जा सकते हैं तथा कौंसिलोमे राष्ट्रका समय नष्ट करनेमे प्रसन्नता प्राप्त करते रहे तो भी राष्ट्रीय आत्मगौरव प्राप्त करनेकी

आशा करें। अन्तिम किन्तु महत्वमें अन्योंसे किसी प्रकार कम नहीं है मायाके उस भागपर अभीतक विचार नहीं किया गया। वह स्वदेशी है। यदि हमने स्वदेशी न छोड़ा होता तो इस गिरी हुई अवस्थामें न होते। यदि हमें आर्थिक दासत्वसे छुटकारा पाना है तो हमें अपने कपड़े आप तैयार करने होंगे और इस समय केवल हाथसे सूत कातकर और हाथसे ही बुनकर करने होंगे। इन सबके लिये व्यवस्था, आत्मत्याग, अहङ्कारत्याग, सङ्गठनकी योग्यता, विश्वास और साहस चाहिये। यदि हम गिनतीमें आनेवाली श्रेणियोंमें ये बातें एक वर्षमें दिखा सकें और लोकमत बना लें तो निश्चय ही हम एक वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे यदि हमसे कहा जाता है कि हम जो नेतृत्व करते हैं ऐसे लोगोंमें भी ये गुण नहीं हैं, तो निश्चय ही भारतमें कभी स्वराज्य न होगा और फिर हमें अंग्रेजोंके कामोंके लिये उन्हें दोष देनेका कोई अधिकार न होगा। हमारा छुटकारा और उसका समय एकमात्र हमारे ही ऊपर अवलम्बित है।

२—ब्रिटिश शासन एक पाप है

"क्या मि० गान्धीकी किसी शर्त या सन्देहके बिना यह राय है कि भारतमें ब्रिटिश शासन बिल्कुल ही बुरा है और भारतवासियोंको इसे ऐसा ही समझनेकी शिक्षा देना है? उनका यह अवश्य मत होगा कि यह इतना बुरा है कि इससे लाभकी अपेक्षा

हानियां ही बहुत हैं, क्योंकि केवल उसी अवस्थामें अन्तःकरण या ईसा मसीहके न्यायालयके सामने यह न्यायोचित ठहराया जा सकता है। ” इस प्रश्नका उत्तर मैं जोरदार ‘हां’ मे देता हूं। जबतक मेरा विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्यका कुल व्यवसाय ठीक है तबतक मुझे उसपर आशा थी यद्यपि ऐसी बातें होती थीं जिन्हे मैं क्षणिक् पथभ्रष्टताके कारण हुई समझता था। मैंने वैसा किया, इसके लिये मुझे दुःख नही है। परन्तु अब जब मेरी आंखें खुल गयी हैं तब मेरे लिये यह पाप होगा यदि मैं इस साम्राज्यका साथ दूं जबतक यह अपना दूषित स्वभाव त्याग शुद्ध न हो जाय। यह मै खेदके साथ लिख रहा हूं और मुझे यह पता चल जानेसे हर्ष होगा कि मै भूल करता था और मेरा वर्तमान भाव सुधार-विरोधी है। लगातार धनका दोहन, पंजाबको बधिया करना और मुसलमानोंके भावके साथ धोखा करना मेरी तुच्छ रायमे भारतकी तिगुनी लूट है। इस लिये ‘ब्रिटिश शान्तिके सुखोंको’ मैं एक कटक समझता हूं। यदि ब्रिटनने शस्त्रबलसे हमारे ऊपर शान्तिका टोकरा न लादा होता, तो कमसे कम यह तो होता कि हम भी अन्य राष्ट्रोंकी तरह वीर पुरुष और स्त्री बने रहते और इस तरह अपनेको बिल्कुल ही असहाय न समझते। हमारी जो अधोगति हुई है इसके बदलेमे सड़कों और रेलवेका ‘सुख’ मिला है जिसे कोई भी आत्मगौरवी राष्ट्र नहीं स्वीकार कर सकता। शिक्षाका जो ‘सुख’ मिला है वह हमारे स्वतन्त्रताकी ओर उन्नति करनेमें सबसे बड़ी रुकावट सिद्ध हो रहा है।

३—भारत क्यों खोया गया ?

(महात्मा गांधीकी 'इण्डियन होमरूल' या भारतीय स्वराज्यमें पाठक और सम्पादककी बातचीत)

पाठक—आप सभ्यताके सम्बन्धमे मेरे विचार करनेके लिये काफी कह चुके हैं। मैं नहीं जानता कि यूरोपके राष्ट्रोंसे मुझे क्या ग्रहण करना चाहिये और किससे बचना चाहिये, किन्तु एक प्रश्न मेरे मुहसे तुरन्त निकला पडता है। यदि सभ्यता रोग है और यदि इसने इङ्गलैंडपर आक्रमण किया है, तो वह क्योंकर भारतको ले सका और क्योंकर वह इसे अधिकारमें बनाये रख सका है ?

सम्पादक—आपके प्रश्नका उत्तर देना कठिन नहीं है। थोडी ही देरमें हम स्वराज्यके वास्तविक स्वरूपकी जाच कर सकेंगे, क्योंकि मुझे पता है कि अभी मुझे उस प्रश्नका उत्तर देना है। किन्तु मैं पहले आपका पहला प्रश्न ही लूगा। अंग्रेजोंने भारत नहीं लिया है, हमने उन्हे इसे दिया है। वे अपनी शक्तिके कारण नही, बल्कि भारतमे इस लिये हैं, क्योंकि हम उन्हें रखते हैं। अब देखना है कि क्या ये बातें सत्य सिद्ध की जा सकती हैं। अंग्रेज पहले पहल व्यापारके लिये हमारे देशमें आये थे। कम्पनी बहादुरकी याद करिये। उसे बहादुर किसने बनाया था ? उस समय उसका राज्य स्थापित करनेका तनिक भी विचार नहीं था। अफसरोंकी मदद किसने की थी ? उनकी चांदी देख

नका मन ललचाया था ? किसने उनके माल खरीदे थे ? हास साक्षी है कि ये सब काम हमने किये थे । तुरन्त धनी नेके विचारसे हमने खुले हाथो कम्पनीके अफसरोका स्वागत या था । हमने उन्हें मदद दी । यदि मेरी भांग खानेकी लत है और भाग बेचनेवाला मेरे हाथ भांग बेचता है, तो क्या मैं से दोष दूंगा या स्वयं अपनेको ? बेंचनेवालेको दोष देकर क्या म अपनी लत छोड सकेंगे ? यदि एक खुदरा फरोश खदेड़ा ाता है, तो क्या दूसरा उसका स्थान न ग्रहण कर लेगा ? ारतके सच्चे सेवकको प्रश्नकी जडमे पहुचना होगा । यदि रिमाणमे अधिक खा जानेसे मुझे अजीर्ण हो गया है, तो निश्चय- मैं पानीको दोष दे उससे नही बच सकता । वही सच्चा वैद्य है जो रोगके कारणका अनुसधान करता है । यदि आप भारतके रोगके लिये वैद्य होनेका दम भरते हैं, तो आपको उसके वास्तविक कारणका पता लगाना होगा ।

पाठक——आपका कहना ठीक है । अब मैं समझता हूं कि अपनी बातें मेरे हृदयमे अंकित करनेके लिये मेरे साथ आपको बहुत विवाद करना न पड़ेगा । मैं आपके और विचारोंको जाननेके लिये उत्सुक हूं । अब हम एक अत्यन्त मनोरजक चर्चा छेडे हुए है । इस लिये मैं आपके प्रकट किये हुए विचारोंको समझनेकी चेष्टा करूंगा और जहां सन्देह होगा वहां मैं टोक दूंगा ।

सम्पादक— —आपका उत्साह होनेपर भी मुझे भय है कि आगे चलकर हममें मतभेद पैदा होगा। तो भी मैं तभी बहस करूंगा जब आप मुझे रोकेंगे। हम देख चुके हैं कि अंग्रेज व्यापारी भारतमें पांव इसी लिये जमा सके थे, क्योंकि हमने उन्हें उत्साहित किया था। जब हमारे राजा लोग आपसमें लड़ते थे तब वे कम्पनी बहादुरकी मदद ढूंढते थे। वह कम्पनी व्यापार और युद्ध दोनोंमें निपुण थी। सदाचारका प्रश्न उसके मार्गमें तनिक भी बाधक नहीं था। उसका उद्देश्य अपना व्यापार बढाना और धन कमाना था। उसने हमारी सहायता स्वीकार की और मालगुदामोंकी संख्या बढ़ायी। उनकी रक्षाके लिये उसने एक सेना रखी जिससे हम भी काम लेते थे। इस लिये हमने उस समय जो काम किया उसके लिये अंग्रेजोंको दोष देना क्या व्यर्थ नहीं है? हिन्दुओं और मुसलमानोंमें गहरी लड़ाई थी। इसने भी कम्पनीको अवसर दिया और इस तरह हमने ऐसी परिस्थिति बना दी थी जिसने कम्पनीका भारतपर अधिकार जमा दिया। इस लिये भारत खो गया, यह कहनेकी अपेक्षा यह कहना अधिक सत्य है कि हमने अंग्रेजोंको भारत दिया था।

पाठक——क्या कृपाकर मुझे आप बतावेंगे कि अंग्रेज क्योंकर भारतको अपने अधीन बनाये रखनेमें समर्थ हैं?

सम्पादक——जिन कारणोंसे उन्हें भारत मिला है उन्हींके वश वे अब इसे अपने हाथमें बनाये रखनेमें भी समर्थ हैं।

कुछ अंग्रेज कहते हैं कि उन्होने तलवारसे भारतको लिया और अब उसपर अधिकार बना रखा है। ये दोनो ही कथन असत्य है। केवल हम ही उन्हे रखते है। कहते हैं कि नेपोलियन अंग्रेजोको बनियोकी जाति कहा करता था। यह कथन ठीक है। उनके अधिकारमें जो भी भूमि है उसे वे अपने व्यापारके लिये अधिकारमे रखे हुए हैं। उनको जलसेना और सेना उसको रक्षा करनेके विचारसे हैं। जब ट्रांसवालमें ऐसे प्रलोभन नही रहे तब स्वर्गीय मि० ग्लैडस्टनको मालूम हुआ कि उसपर अधिकार रखना अंग्रेजोंके लिये ठीक नही है। जब वह लाभका प्रश्न हुआ तब उसके विरोधके कारण युद्ध छिड़ा। मि० चेम्बरलेनको शीघ्र ही मालूम हुआ कि इङ्गलैण्डकी छत्रछाया ट्रासवालके ऊपर थी। कहते हैं कि किसीने स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूजरसे पूछा था कि चद्रमामे सोना है कि नही। उन्होंने जवाब दिया था कि, उसमे सोना होनेकी बहुत कम सम्भावना है क्यो-कि यदि सोना होता, तो अंग्रेजोने उसे अपने राज्यमे मिला लिया होता। अंग्रेज टकेको ही अपना परमेश्वर समझते है, यह याद रखनेसे बहुतसे प्रश्न हल हो सकते हैं। इससे सिद्ध होता है कि हम अपने अधम स्वार्थके लिये अंग्रेजोंको भारतमे रखते है। हम उनका व्यापार पसन्द करते हैं और वे अपनी चालाकियोसे हमे प्रसन्नकर जो चाहते है हमसे ले लेते है। इसके लिये उन्हें दोष देना उनकी शक्तिको स्थायी बनाना है। उनकी जड़-को हम आपसमे लड़कर और मजबूत बनाते हैं। यदि आप

ऊपरकी बाते स्वीकार करते हैं, तो यह सिद्ध हो जाता है कि अंग्रेज व्यापारके लिये भारतमे आये थे। वे यहा उसी उद्देश्य रहते और हम उन्हे बने रहनेमे सहायता देते हैं। उनके हथियार और गोलाबारूद सब बिलकुल ही निकम्मे है। इस सम्बन्धमें म आपको स्मरण दिलाता हूं कि जापानमें जो झण्डा फहरा रहा है वह जापानी नहीं, बल्कि अंग्रेजी झंडा है। अंग्रेजोंने अपने व्यापारके लिये जापानसे सन्धि कर रखी है। आप देखेंगे कि यदि वे प्रबन्ध कर सकेंगे, तो उस देशमे उनका व्यापार बहुत बढेगा। वे कुल संसारको अपने मालके लिये बाजारके रूपमे कर देना चाहते हैं। यह सच है कि वे वैसा कर नहीं सकते, किन्तु इसके लिये दोषी वे न होंगे। वे लक्ष्यपर पहुचनेके लिये कोई उपाय बाकी न रखेंगे।

हमारा भयानक पतन

हिन्दू-जाति के पतन का ताण्डव-नृत्य और उसके सुधारने की योजना

हिन्दू-जाति मरणासन्न है ! सदियों की सामाजिक सङ्कीर्णता और अत्याचारों से पीड़ित होकर त्रस्त है। इस छोटी पुस्तक में हमारे उग्र भीषण पतन का हृदय-वेधी चित्र तथा उसके दूर करने का उपाय अङ्कित किया गया है। यह मार्च सन् १९२७ ई० के 'चाँद' में "सम्पादकीय विचार" के रूप में निकला था। इसे आद्योपान्त स्वयं पढ़ना तथा अपने इष्ट-मित्रों, सम्बन्धियों और माता-बहिनों को पढ़ाना एवं इसके अनुसार अपना आचरण करना आपका परम पुनीत कर्त्तव्य है।

हमारा भयानक पतन

[मार्च के "चाँद" में प्रकाशित दो
अग्र-लेखों का संग्रह]

प्रकाशक—

"चाँद" कार्यालय,

इलाहाबाद

मूल्य

[illegible] पढ़िए और इष्ट-मित्रों को पढ़ाइए, यही इस पुस्तक का मूल्य है।
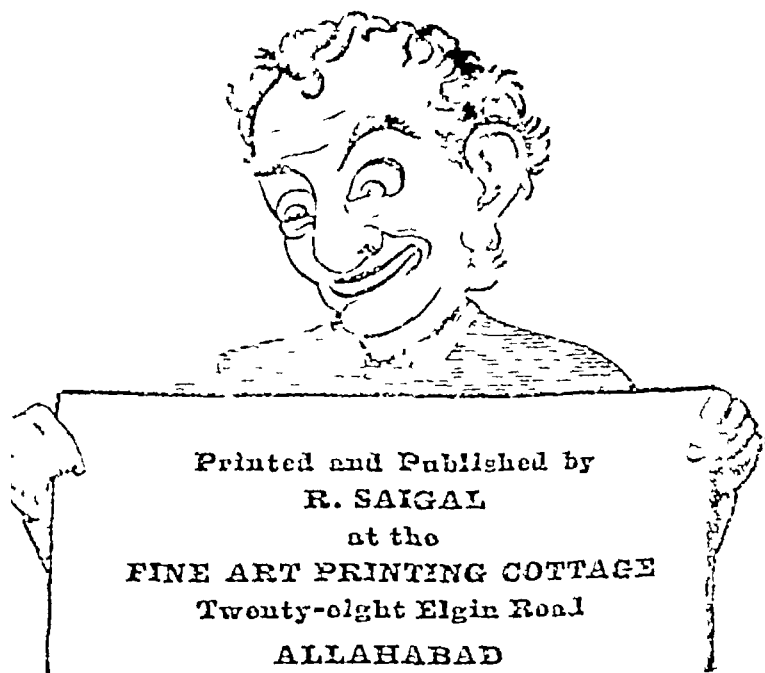
Printed and Published by
R. SAIGAL
at the
FINE ART PRINTING COTTAGE
Twenty-eight Elgin Road
ALLAHABAD

निवेदन

गत मार्च, १९२७ ई० के 'चाँद' में "रोग और उसका निदान" तथा "निदान और उसकी औषधि" शीर्षक दो सम्पादकीय अग्र-लेख प्रकाशित हुए थे। हमें हर्ष है, जनता ने इन दोनों ही लेखों का बड़ा आदर किया। हमारे पास प्रशंसा के सैकड़ों पत्र आए। यहाँ तक कि परतावगढ के सुयोग्य डिप्टी-कमिश्नर मि० एन० सी० मेहता, आई० सी० एस० महोदय ने भी हमें इस लेख के लिए बधाई का पत्र भेजा था।

अन्य प्रतिष्ठित सज्जनों ने भी पुस्तिका-रूप में इन अग्र-लेखों को जनता में बँटवाने का परामर्श दिया, पर हम आर्थिक कठिनाइयों के कारण ऐसा करने से असमर्थ थे। जिस

हीं की उदारता का शुभ-परिणाम है कि इस पुस्तक की १०.००० प्रतियाँ वितीर्ण की जा रही हैं। यदि अन्य सम्पन्न सज्जन भी इस ओर ध्यान दें तो निश्चय ही समाज का भारी कल्याण हो सकता है। इस पुस्तक-प्रकाशन के लिए हम नहीं. मोहता जी धन्यवाद के पात्र हैं।

"चाँद" कार्यालय,
इलाहाबाद
१—४—२७

—विद्यावती सहगल

रोग और उसका निदान
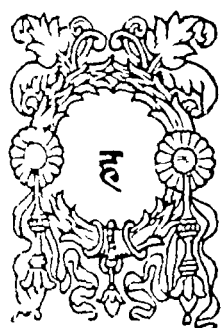
हमारा रोग पुराना और भयङ्कर है। यह शताव्दियो की दासता और पापो का फल है। यह हमारी दुर्वलता, हमारी अन्याय-प्रियता, हमारी सामाजिक-सङ्कीर्णता, हमारे परस्पर विद्वेष-फूट, हमारी लज्जास्पद कायरता और अवलाओ पर हमारे अविरत अत्याचारो का परिणाम है। शताव्दियाँ व्यतीत हो गईं, पर हमारी दासता का अन्त न हुआ, हमारे उद्धार की कोई आयोजना न हो सकी। हो भी कैसे? दासता की मनोवृत्तियो ने हमारी पाप-वृत्तियो को और भी प्रवल कर दिया। दासता की प्रवल वेड़ियो की कर्ण-भेदी झङ्कार ने हमे वहरा वना दिया। द्वेष और फूट के दूषित विकारो ने हमारा आँखो पर परदा डाल दिया। जाति-पाँति एव रूढ़ियो के मिथ्याभिमान ने हमारे आत्म-गौरव को नष्ट कर दिया। करोडो असहाय विधवाओ के करुण-रुदन से आकाश काँप उठा, पर उस मर्मस्पर्शी रोदन को हम न सुन सके! हिन्दू-समाज की हजारो ललनाएँ इसके अत्याचारो से पिस कर गुलवदन वेगम और ताज वीवियाँ हो गईं, पर हमने देख-देख कर भी आँखे वन्द कर ली। हजारो मन्दिर मिट्टी मे मिला दिए

गए, पर हमने कुछ भी नहीं देखा। फारस और यारकन्द, गज़नी और कन्धार के बाजारों में हमारी लाखों बहुएँ दासियों के रूप में बिक गईं। पर, हमारी मूँछों का ताव उसी प्रकार बना रहा, और हमारी निर्लज्जता ने हमारे सिरों को कभी भी ग्लानि और सन्ताप की भावनाओं में नीचा नहीं होने दिया। हाँ, बीच-बीच में, इन पापों के प्रायश्चित्त के निमित्त हमारी पतित भावनाओं और दूषित एवं पापमय मनोवृत्तियों को उदार, उन्नत और पावन करने के लिए, कई बार नहीं, बार-बार हमारे भस्मावशेष जातीय जीवन से भी चिनगारियाँ निकलीं और जिन्होंने निकल-निकल कर अपनी अपूर्व ज्योति से हमारे अन्धकार का शमन भी कर दिया। ये चिनगारियाँ प्रताप और शिवा जी, छत्रसाल और राजसिंह, गुरु गोविन्दसिंह और बन्दा वैरागी आदि प्रातःस्मरणीय आत्माओं के रूप में उत्पन्न हुई थीं। हमारी चिर-निद्रा भङ्ग करने के लिए, हमारे पापों को धोने के लिए, हमारी कालिमा को दूर करने के निमित्त इन महापुरुषों ने अखण्ड तप की साधना की। हम कुछ काल के लिए जग उठे, परन्तु यह जागरण अस्थायी था। इसके बाद जो नींद आई वह आज तक भी न टूट सकी। आज भी हिन्दू-समाज त्रस्त और सशङ्कित है। उसका रोग पुराना है। इस रोग ने उसे निस्तेज और दुर्बल बना दिया है, और यदि शीघ्र ही उसका उचित निदान न किया गया तो आने वाले कुछ वर्षों में ही हिन्दू-जाति मृत्यु के चिर-आलिङ्गन में आबद्ध हो जाए!

जातीय जीवन के अतीत की इन दबी और बिखरी हुई स्मृतियों को उखाड़ने से विशेष लाभ न होगा। परन्तु, हमारे समाज के पतन की चरम-सीमा तथा इसका भयानक रूप हमें ऐसा करने को विवश करता है। हमारे इस वर्तमान रोग का, भूत की परिस्थितियों से एक गहरा सम्बन्ध रहा है, इस कारण ही हमने प्रसङ्गवश कुछ पिछली बातों की चर्चा कर दी है। इससे हमारा अभिप्राय किसी जाति विशेष, और खासकर मुसलमानो के विरुद्ध कुछ कहना नहीं है। मुस्लिम-इतिहास चाहे कितना ही रक्त-रञ्जित क्यो न हो, मुस्लिम-समाज चाहे कितना ही बुरा क्यो न हो, पर हमारे हृदय में उसके प्रति आदर और सम्मान है। हम तो मुस्लिम-समाज को हिन्दू-समाज से ज्यादा शरीफ, ज्यादा सङ्गठित, ज्यादा मेहरबान और हर तरह से ज्यादा बेहतर समझते है। यह सम्भव है कि अधिकांश मुसलमानो का सङ्गठन, उनकी मेहरबानियाँ, उनकी शराफ्त पूर्णरूप से विकसित न होकर, जातीयता के सङ्कुचित दायरे में भले ही आबद्ध हो, पर फिर भी हमारी निगाहों में उनकी बहुत ज्यादा कद्र है; क्योंकि अपने मजहब और जाति के लिए ही सही, परन्तु उनमे हिन्दुओं से ज्यादा त्याग, ज्यादा इत्तफाक, ज्यादा जोश और कुर्बानियो की भावनाएँ हैं। कम से कम वे अपने भाइयो को ठुकरा कर विधर्मी नहीं होने देते। वे अपनी औरतो की इज्जत करना जानते हैं। इस्लाम को खतरे में देखकर उनके दिलो में कुर्बानियों के भीषण भाव उमड़ आते हैं। वे अपनी बेकस बेवाओं के साथ शैतानी जुल्म नहीं करते!

वे अपनी औरतो को अपने घर से निकाल कर दूसरो के सुपुर्द नही कर देते। वे अपने दायरे मे आने वाले नीच से नीच मनुष्य को भी गले लगाने को तैयार रहते है। इस्लाम कबूल करने वाले पापी से पापी मनुष्य को भी प्रेम से गले लगाने के लिए उनका बाहु-पाश सदा खुला रहता है। उनकी मस्जिदे हर मुसलमान के लिए खुली है। वे भूखो भले ही मरे, पर अपनी सूखी रोटी के टुकड़ो को मिल-जुल और बॉट कर खाना जानते हैं। छोटे से छोटा और गरीब से गरीब मुसलमान यह समझता है कि उसको प्रत्येक मनुष्योचित अधिकार प्राप्त हैं, और उसकी मदद के लिए उसके पीछे एक विशाल शक्ति सर्वदा तैयार है। वह हमेशा इस बात का अनुभव करता है कि सङ्कट के समय सारा मुस्लिम-समाज उसकी रक्षा मे अपनी जानोमाल कुर्बान करने को तैयार हो जावेगा। हम मुसलमानो के इन सद्‌गुणो के कारण उनकी प्रशंसा किए बिना नही रह सकते। हिन्दू-धर्म हमे न्याय, सत्य और स्पष्टवादिता की परम पुनीत शिक्षा देता है और इस महान शिक्षा के महत्व को समझते हुए हम मुसलमानो के गुणो को तिरस्कार और हेयपूर्ण दृष्टि से नही देख सकते। यह बात सत्य है कि मुसलमान भी बुराइयो से बरी नहीं है, हो भी कैसे सकते हैं? वे मनुष्य है और उनमे मानवी दुर्बलताऍ सहज और प्राकृतिक हैं। पर, हमे उन बुराइयो की जड़ मे जाकर उनकी पूर्णरूप से विश्लेषणा करनी होगी। हमे उन बुराइयो का यथार्थ अनुसन्धान कर, उनके प्रमुख कारणो का पता लगाना होगा।

हिन्दुओ का कहना है कि मुसलमान गुण्डे है, बदमाश हैं, शैतान हैं, दगाबाज़ है, फरेबी हैं और ज़ालिम हैं। दूसरी ओर मुसलमानो का कहना है कि हिन्दू काफ़िर है, चोर हैं, बुज़दिल है, क़ायर हैं। इस समय हम मुसलमानो की बातो पर विचार नही करेंगे। इस सम्बन्ध मे हम सुविधानुसार 'चॉद' के किसी आगामी अङ्क मे अपना विचार प्रकट करेंगे, क्योकि इससे प्रस्तुत विषय का कोई सम्बन्ध नही। इस समय हमारा उद्देश्य विशाल हिन्दू-जाति के जातीय प्रसून पर लगे हुए विनाशकारी कीटाणुओ का परिचय कराना है। अस्तु। हमारे मुसलमान भाई यदि हमारी धृष्टता क्षमा करें, तो हम थोड़ी देर के लिए हिन्दुओ के कथन का समर्थन करते है। हिन्दू कहते हैं कि मुसलमान हमारी बहू-बेटियो को भगा ले जाते हैं। परन्तु, प्रश्न यहाँ यह उठता है कि वे ऐसा क्यो करते हैं? भारतीय हिन्दू, भारतीय मुसलमानो से अधिक धनी, अधिक विद्वान और अधिक बलशाली भी हैं, फिर ऐसा क्यो होता है? पञ्जाब में मुसलमानो की आबादी सिक्खो से लगभग चौगुनी है, फिर भी हमें विरला ही कोई ऐसा दृष्टान्त सुनने मे आता है कि वहाँ मुसलमानो ने सिक्खों को लूटा तथा उनकी बहू-बेटियों पर बलात्कार किया हो। पञ्जाब के मुसलमान भारत के अन्य प्रान्तो के मुसलमानों से अधिक कट्टर और बलशाली है। इस दशा मे भी शायद ही उस प्रान्त में बदमाश से बदमाश मुसलमान किसी सिक्ख-महिला की ओर बुरी और अपमान-भरी दृष्टि से देखे। वहाँ किसी भी सिक्ख-महिला का

अपमान करना अपने प्राणों पर खेलना है। सच बात तो यह है कि प्रत्येक सिक्ख के हृदय में अपनी देवियों के लिए पूजा का भाव है। प्रत्येक सिक्ख अपनी देवियों की मान-रक्षा तथा उनकी प्रतिष्ठा के लिए हँसते-हँसते अपने प्राण को निछावर कर सकता है। सिक्ख-कौम मजबूत है, बहादुर है, मरने से नहीं डरती। वह अपनी देवियों की मर्यादा के लिए खून की नदियाँ बहा देने को तैयार है। वह पबना के हिन्दुओं की तरह अपनी माता और बहिनों को गुण्डों की दया पर छोड़ कर भाग खड़ी नहीं होती।

सिक्ख-सम्प्रदाय, सिक्ख-समाज किसी प्रकार की आपत्ति की आशङ्का से विचलित नहीं होता। प्रत्येक सिक्ख, आपत्तियों का, हृदय के सारे धैर्य और मन की प्रत्येक सहिष्णुता से सामना करता है। सिक्खों के लिए आपत्तियाँ तो हर्ष की वस्तु है। मृत्यु का स्वरूप प्रत्येक सिक्ख बहुत उत्फुल्ल हृदय से देखता है। शहीद हो जाना सिक्खों के लिए सर्वोत्कृष्ट वस्तु है। मृत्यु के सामने भी प्रत्येक सिक्ख 'वाह्य गुरु जी दी खालसा, वाह्य गुरु जी दी फतेह' के बुलन्द नारों से रणचण्डिका का आह्वान करता है, और उस भयङ्कर आह्वान के प्रलयकारी प्रकम्पन में संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी एक बार काँप उठती है। सिक्खों का सारा इतिहास इन आह्वानों से भरा पड़ा है। अधिक दिनों की बात कौन कहे, अभी हाल की ही घटनाएँ हमारे इस कथन की पुष्टि करेंगी। नानकाना के भयानक हत्या-काण्ड की घटना की पुण्यमयी कहानियाँ भारतीय इतिहास के स्वतन्त्रता के युग की रोचक सामग्री

बनेगा। वीर अकालियो को बाध-बॉध कर उन्हे मिट्टी के तेल से नहलाया गया। वे मूक थे। उनकी वृत्तियाँ अहिंसात्मक थी। उनके शरीरो मे आग लगा दी गई। अग्नि-शिखाएँ आकाश को चूमने लगी, पर बहादुरो के मुँह पर शोक और ग्लानि का कोई चिन्ह न था। उनके अधरो की मृदुल मुसकान अग्नि की क्रूर अरुणिमा से भी अधिक अरुण थी। थोड़ी देर के पश्चात् उस प्रफुल्ल मुसकान के नीचे नश्वर शरीर का भस्मावशेष ही रह गया। गुरु के बाग की घटना और जैतो के शहीदी जत्थाओ का उदाहरण हम विस्तार-भय से नही दे सकते। फिर भी हम यह कहेगे कि सिक्ख-समुदाय अपने सङ्गठन और अपनी सामाजिक उदारता के कारण ही आज इतना पराक्रमशाली है तथा प्रत्येक सिक्ख आदर और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है।

इसके विपरीत हिन्दू असङ्गठित और इसलिए दुर्बल हैं कि उनके भीतर सिक्खो की तरह त्याग और वीरता के सामूहिक भाव नहीं हैं। हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि प्रत्येक हिन्दू के भीतर त्याग, साहस एव वीरता का अभाव है। ऐसा समझना हमारे साथ अन्याय करना होगा। हमारा तो कहना यह है कि उच्चकोटि के त्यागी, वीर और साहसी हिन्दुओं की संख्या जितनी है उतनी शायद ही भारत मे अन्य किसी जाति में हो। भारत ही क्यो ससार मे गॉधी और अरविन्द, श्रद्धानन्द और दास, सावरकर और भाई परमानन्द, महेन्द्रप्रताप और हरदयाल कितने है? परन्तु, फिर भी हम यही कहेगे कि हिन्दू-समाज मे

योग्य और साहसी, वीर तथा त्यागी मनुष्यों के होते हुए भी यह बहुत पीछे है। हमारा रोग हमें अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान नहीं होने देता। हम परिस्थितियों की परीक्षा अच्छी तरह नहीं कर सकते। हमारी आँखों के सामने परदा पड़ा है और इस कारण हम अपने अपराधों के लिए मुसलमानों को दोषी बतलाते हैं। हम इस बात को मानते हैं कि अधिकांश मुसलमान हमारी देवियों का सतीत्व अपहरण करते हैं। फिर भी वे बहुत हद तक निर्दोष हैं। असल दोषी तो हम हैं। हिन्दू-समाज अपने कच्चे चिट्ठों की ओर ध्यान नहीं देता। उसे अपने हृदय पर हाथ रख कर अपनी अन्तरात्मा से पूछना चाहिए कि वास्तविक अपराधी कौन है? जिस समय हम निष्पक्ष-भाव से इस बात पर विचार करते हैं, उस समय हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि वास्तविक अपराधी हम ही हैं। गुण्डे वे नहीं हैं जो हमारी स्त्रियों को भगाते हैं—गुण्डे वे हैं जो अपनी दुर्बलता से ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करते हैं और उन्हें इस कार्य की ओर प्रवृत्त होने का साहस और उत्साह प्रदान करते हैं। गुण्डे वे नहीं हैं जो हमारी देवियों पर बलात्कार करते हैं—गुण्डे वे हैं जो अपनी आँखों के सामने अपनी देवियों पर किए जाने वाले बलात्कार के घृणित दृश्य को देख कर अपनी आँखें बन्द कर लेते हैं और बलात्कार करने वालों को समुचित दण्ड नहीं देते। गुण्डे वे नहीं हैं जो हमारी देवियों पर आक्रमण करते हैं—गुण्डे वे हैं जो अपनी देवियों पर किए जाने वाले आक्रमणों को देख, दुम दबा कर भाग

जाते हैं और अपने प्राण के भय से अपनी प्रतिष्ठा और मर्यादा बेच देते है। गुण्डे वे नहीं है जो हमारी अबलाओ को इज्जत के साथ विधर्मी बनाकर अपने घरो मे खुशियो के चिराग़ जलाते हैं—गुण्डे वे हैं जो अपने घर मे अक्षत-योनि विधवाओ को रख कर उन पर सारी दुनिया का अत्याचार, जुल्म और सितम ढाह देते हैं। वे हरगिज़ गुण्डे नहीं हैं जो हमारी ललनाओ को दिन-दहाड़े हमारे घरों से भगा ले जाते है। भयङ्कर गुण्डे वे है, जो वृद्ध-विवाह कर उन महिलाओ का जीवन नारकीय एवं असह्य बना देते हैं और जो काम-तृप्ति की प्रबल उत्तेजना से अपने घरो अथवा पास-पड़ोस की सतियो का सतीत्व नष्ट कर अन्त में उन्हे बहिष्कृत कर देते हैं। गुण्डे वे नहीं हैं जो जुल्म करते है, दूसरो के अधिकारो का अपहरण करते हैं और जो दूसरो पर अपना स्वत्व जमाना चाहते है—गुण्डे वे हैं जो दूसरो का अत्याचार सहते हैं, जो दूसरो की दया पर अपने मनुष्योचित एव नागरिक अधिकारो को त्याग देते हैं और जो अपनी सारी दुर्बलता के कारण दूसरो को अपने भाग्य का निर्णायक बनाते हैं। गुण्डे वे नहीं है जो सङ्गठित हो दूसरो को प्रलोभन के द्वारा अथवा बलपूर्वक विधर्मी कर देते है—गुण्डे वे हैं जो अपने भाइयो को, अपने सहधर्मियो को तिरस्कार और घृणा की दृष्टि से देखते हैं, अपनी स्वतन्त्रता के प्रत्येक भाव को पद-दलित करते है और जो धर्म के लिए हँसते-हँसते अपना जीवन बलिदान नहीं कर सकते। इस दशा मे हिन्दुओ का मुसलमानो पर यह आक्षेप कि वे **गुण्डे,**

बदमाश, शोहदे, शैतान, दगाबाज़, फरेबी और ज़ालिम हैं, बहुत अंशो मे निर्मूल तथा निराधार है। हम तो उन्हे यही कहेगे कि पहले अपनी बुराइयो की ओर ध्यान दो, पहले अपनी ओर देख लो, पहले अपने अत्याचारो को सोच लो, फिर मुसलमानो के बारे मे सोचना। हम हिन्दुओ का ध्यान उनकी सामाजिक बुराइयो की ओर आकर्षित करते हैं। हम उन्हे अपने सैकडो तीर्थ-स्थानो की ओर देखने का सङ्केत करते है, जहाँ दिन-दहाडे धर्म की आड़ मे सतियो का सतीत्व नष्ट किया जाता है। हम उनका ध्यान उन बहुसंख्यक महन्तो की ओर आकर्षित करते हैं जिनके जीवन का केवल उद्देश्य अभागी, भोली-भोली हिन्दू-जनता के रुपयो से मौज उड़ाना है और जिनकी सारी साधना दिन-रात वेश्या-वारुणी मे लिप्त रहना ही है। हम उनका ध्यान बहुसख्यक पुजारियो, पण्डों तथा पुरोहितो की ओर आकर्षित करते है जो केवल हराम की कमाई खाकर सात करोड़ धर्म के सच्चे लालो को अछूत और अन्त्यज घोषित करते है, और उन्हे मन्दिरो तथा भाँति-भाँति के धार्मिक उत्सवो मे भाग नहीं लेने देते। हिन्दू-धर्म के वृहत् सिद्धान्तो मे ही राजनीति एवं समाज के गुह्य तत्व और सर्वोत्कृष्ट नियम मौजूद है। हिन्दू-धर्म से राजनीति तथा समाज-धर्म पृथक् नहीं किया जा सकता। हमारे अधिकांश देवालय, मठ और मन्दिर निरक्षर, मूर्ख, बदमाश और लम्पट पण्डो, पुजारियो तथा पुरोहितो की पेट-पूजा और काम-वासनाओ की तृप्ति के लिए नहीं बने थे। उनका उद्देश्य यह था कि इनके द्वारा हिन्दू-समाज

लौकिक और पारलौकिक ज्ञानों का उपार्जन कर सकेगा, और उसके द्वारा हिन्दू-जनता तथा विश्व की सुचारु सेवा में अपने उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन को सुफल कर सकेगा। हमारी धार्मिक संस्थाएँ इसलिए नहीं बनी थीं कि उनके कोषों से पाखण्डियों की गृहस्थी चले, वरन् इनकी स्थापना इसलिए हुई थी कि उनके द्वारा प्रत्येक हिन्दू अपने विशाल एवं परम पुनीत धर्म की मर्यादा समझे, अपनी आध्यात्मिक पिपासा शान्त करे और विश्व के अन्य प्राणियों के धार्मिक जिज्ञासाओं को शान्त कर संसार भर की मनुष्य-जाति में विश्व-धर्म का प्रचार करे। पर, आज क्या हो रहा है? दूसरों में शिक्षा एवं धर्म-प्रचार की बात कौन कहे, आज हमारे भीतर ही अज्ञान-तम का अखण्ड राज्य स्थापित है। आज धार्मिकता से हीन तथा समाज के अत्याचारों से पद-दलित हो प्रति दिन सैकड़ों हिन्दू अपनी शिखा कटा कर ईसाइयत और इस्लाम की गोद में शरण ले रहे हैं। आज हमारे धर्म-गुरु, हमारे पण्डे, हमारे पुरोहित-गण कहाँ हैं? धर्म के इस भयङ्कर पतन-लीला के ताण्डव-नृत्य से हमारा जातीय एवं सामाजिक जीवन त्रस्त और सशङ्कित है। हिन्दू-धर्म आज मृत्यु का द्वार खटखटा रहा है, पर इसके उद्धारक साधु और महन्त, ब्राह्मण और गुरुजन कहाँ हैं? भारत-धर्म-महामण्डल जिसे धर्मोद्धार के निमित्त प्रति वर्ष भोले भोले राजा-महाराजाओं से लाखों रुपयों की आमदनी हो रही है, आज कहाँ है? क्या इसकी स्थिति, इसका अस्तित्व दान लेकर रुपये जमा करने के लिए ही है? क्या वह... हम अधिक कहना उचित नहीं समझते।

आज हिन्दू-समाज, हिन्दू-धर्म, पतन-पथ की ओर अत्यन्त सत्वर गति से प्रधावित हो रहा है। इसका कारण हमारा जातीय रोग है। हमारे नाश करने वाले मुसलमान और ईसाई नहीं, उफ! वे तो हिन्दुओ से ज्यादा समझदार, योग्य, शरीफ और उदार हैं। हम स्वयं अपना नाश कर रहे है! हमारे नाश के 'कर्त्ता' और 'कारण' आज हम स्वयं हैं—अधिकांश पण्डे और पुजारियो के रूप मे, बहुसंख्यक महन्तो और साधुओ के वेष मे . । इसीलिए हम कहते हैं कि हमारा रोग पुराना और भयङ्कर है। हमारी मृत्यु की सामग्री हमारे जातीय एवं सामाजिक जीवनो मे ही मौजूद है, और जब तक हम उसे दूर न करेंगे, तब तक हमारा कल्याण नहीं, और जब हमारा ही कल्याण न रहा तो हमारे धर्म के ठेकेदारो की कौन कहे ? वे तो हमे मिटाने के पहिले स्वय ही मिट जावेंगे।

हमारे रोग का यही निदान है। हम अपने उत्साही और नवयुवक पाठक-पाठिकाओ का ध्यान अपने धार्मिक और जातीय पतन-लीला की ओर आकृष्ट करते है, और उनसे अनुरोध करते है कि वे रोगी हिन्दू-जाति की औषधि कर, इसका उद्धार करे। हमारा, उनकी शक्ति, उनके साहस और उनके त्याग मे पूर्ण विश्वास है। हमारी अन्तरात्मा से एक ध्वनि उठती है कि इस मरणोन्मुख हिन्दू-जाति का उद्धार उसके उत्साही, वीर नवयुवको तथा देवियो से ही होगा।
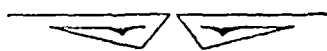
निदान और उसकी औषधि

परोक्त लेख मे अपनी दयनीय दशा पर विचार करते हुए हमने कहा है कि हमारे जातीय एवं धार्मिक जीवन के नाश की सामग्री औरो मे न होकर, हम मे ही है। साथ ही अपनी धार्मिक संस्थाओ की चर्चा करते हुए हमने अपने वहुसंख्यक उत्तरदायित्वहीन पण्डो, पुजारियो, साधुओं और ब्राह्मणो के सम्वन्ध में भी कुछ स्पष्ट वाते कही हैं। इससे हमारा अभिप्राय यही नही कि हम सनातन-धर्म तथा मन्दिर और मठो से चिढ़ है, और हम उसके विरुद्ध वगावत का झण्डा उठाना चाहते हैं। ऐसा समझना न्याय की त्या कर, हमारी सच्ची धार्मिक भावनाओं को कुचलना होगा। वास्तव मे हम मन्दिरो को हिन्दू-जाति के धार्मिक और सामाजिक जीवन का एक प्रधान, आवश्यकीय और महत्वपूर्ण अङ्ग समझते हैं। हम मूर्ति-पूजा को बुरा नहीं समझते। हमारा विश्वास है कि आध्यात्मिकता का प्रधान अङ्ग, अनन्त-प्राप्ति का एकमात्र साधन, चित्त की वृत्तियो का निरोध करना ही है। हमारा यह भी विश्वास है कि चित्त-वृत्तियो के निरोध के सर्वोत्कृष्ट और ...न साधनो मे प्रतिमा-पूजन भी एक है। हम इस वात का

भली-भाँति अनुभव करते हैं कि मन्दिर मे प्रवेश करते ही प्रत्येक धार्मिक हिन्दू अपने हृदय मे एक अननुभूत पवित्रता और शान्ति का अनुभव करता है। यह तो हुई धार्मिकता की वात। सामाजिक दृष्टि से भी तीर्थ-स्थानो का कम महत्त्व नहीं। भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे जगद्गुरु शङ्कराचार्य के मठ हिन्दू-जाति और हिन्दू-सभ्यता की ऐक्य भावनाओ के द्योतक है। सामाजिक रूप मे सब धामो का अभिप्राय यह था कि हिन्दू लोग पर्यटन कर विवेक और बुद्धि प्राप्त करे। मठो और देवालयो की आय को सामाजिक कार्यों मे व्यय किया जाता था तथा उसका कुछ भाग निस्पृह एवं स्वार्थ-रहित मठाधिपतियो और पुरोहितो को इसलिए मिलता था, जिससे वे अपने निर्वाह की चिन्ता से निवृत्त होकर सार्वजनिक सेवा मे अपना जीवन व्यतीत करें। मन्दिरो और मठो के साथ पाठशालाएँ रहती थी, जिसमे साधारण जनता नि शुल्क शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। इसी प्रकार के भिन्न-भिन्न कार्य इन संस्थाओ के द्वारा सम्पन्न होते थे, पर आज वात ठीक विपरीत है। आज अधिकतर उन संस्थाओ की आय पण्डे, पुजारियो और महन्तो की स्वार्थ-सिद्धि में लगती है और जिसके परिणाम-स्वरूप उनमे अधिकांश व्यभिचार, झूठ, प्रपञ्च और भाँति-भाँति की बुराइयों का बीज वपन कर समाज को पतन की ओर ले जा रहे हैं। विश्वनाथ के मन्दिर मे पूजा के भावो से मनुष्यमात्र प्रवेश कर सकता है। विश्वनाथ की अनन्त कृपा एवं उनकी अपार भक्ति का रसास्वादन प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। सर्व-शक्तिशाली भगवान समदर्शी

हैं और उनकी कृपा केवल उच्चवंश के हिन्दुओ मे ही परिमित नहीं है। भगवान के दर्शन का अधिकार, उनकी अर्चना और उन पर पुष्पाञ्जलि चढ़ाने का विशिष्ट स्वत्व एक महादरिद्र भङ्गी और चमार को भी उतना ही है जितना कि उच्चकुल के वड़े से वड़े राजो-महाराजों को। भगवान की वात्सल्यमयी दृष्टि तथा अपार करुणा मे किसी प्रकार का भेद-विभेद और पक्षपात नहीं है। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश, चन्द्रमा की ज्योत्स्ना, सरिता का जल एवं प्रकृति की भाँति-भाँति की सुविधाओं का उपभोग विश्व का सब प्राणी कर सकता है, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य चाहे वह राजा हो या रङ्क, ब्राह्मण हो अथवा शूद्र, विश्वनाथ जी की परम उपासना की दिव्य विभूति का अधिकारी है। शूद्र ही क्यो, यदि कोई मुसलमान अथवा ईसाई, पारसी अथवा यहूदी भी श्रद्धा और भक्ति के सच्चे भावों से भगवान का दर्शन कर, उन पर जल-पुष्प चढ़ाना चाहे तो वह भी इस कार्य का अधिकारी है।

सनातन-धर्म विश्व-व्यापी, सर्वशक्तिमान, समदर्शी एवं अनन्त भगवान की कल्पित प्रतिमा बना कर उसकी आराधना करता है, यह उपासना का एक निगूढ़ एवं गुह्य तत्व है। पर, हम साथ ही इस बात विस्मरण नहीं कर सकते कि इस आराधना का शूद्र भी उतना ही अधिकारी है जितना कोई ब्राह्मण। और दुर्भाग्यवश यदि विश्वनाथ जी एक शूद्र की पुष्पाञ्जलि से अपवित्र हो जाते हैं तो हम ऐसे भगवान की अर्चना नहीं कर सकते। हिन्दू-धर्म हमे उस भगवान की आराधना करने की शिक्षा देता है जो परम पवित्र है, जो

अपवित्रतम वस्तुओ को भी अपनी तरह पुनीत बना देता है और जिसे सृष्टि की कोई भी शक्ति अपवित्र नहीं कर सकती। हिन्दू-धर्म हमें उस भगवान की परम उपासना का उपदेश देता है जो अनन्त, निर्विकार, पक्षपातहीन और समदर्शी है, जो ब्राह्मण-शूद्र, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन, राजा-रङ्क सबको ही एक दृष्टि से देखता है और जो अपने प्रकाश-पुञ्ज से संसार के सारे अघ का नाश करता है, इसलिए यह हमारा परम पुनीत कर्त्तव्य है और हम उस पावन कर्त्तव्य की ओर 'चॉद' के सुयोग्य पाठक-पाठिकाओ का ध्यान आकर्षित करते है कि उन्हे उन मन्दिरो और तीर्थ स्थानो मे कदापि पैर नही रखना चाहिए जहॉ के भगवान परिमित, सङ्कुचित, पक्षपातपूर्ण और मिथ्यावादी हो। यदि सचमुच विश्वनाथ जी एक शूद्र को पवित्र करने के बदले उसकी पुष्पाञ्जलि से स्वत अपवित्र हो जाते हैं तो हम ऐसे दुर्बल भगवान को अपने हृदय की भावनाओ का सार समर्पित करने मे उपासना का अपमान समझते हैं। इस दशा मे प्रत्येक हिन्दू का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह उन मन्दिरो मे कदापि न प्रवेश करे जहॉ अछूतो के लिए प्रवेशाधिकार नही है। प्रत्येक हिन्दू का यह महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व होना चाहिए कि वे उन मन्दिरो मे तब तक न प्रवेश करे, जब तक वहॉ अधिकांश पण्डो के द्वारा सतियो का सतीत्व नष्ट करने करने की कुत्सित-क्रियाएँ वर्तमान हैं, तथा जब तक विश्वनाथ जी वेश्याओ और नर्तकियो के नाच-गान से प्रसन्न होते हैं। हम सनातन-धर्म के शत्रु नही। हम तो इसे विश्व का परमोच्च धर्म

समझते है। यह लोकोत्तर धर्म है। इसकी परमपावन वेदो पर अशान्त आत्माएँ मोक्ष पाती है। इसकी शान्तिमयी मन्दाकिनी मे स्नान कर जिज्ञासुओ की आध्यात्मिक पिपासा शान्त हो जाती है। इसकी प्रोज्ज्वल प्रभा मे अज्ञान, पाप और मिथ्यावाद के अन्धकार नष्ट हो जाते है! यह भक्ति की जीवित प्रतिमा है। यह उपासना का पुण्य-भण्डार है। यह रागमय विरक्ति की आर्ष कविता है। सनातनधर्म अनन्त और अपरिमित को परिमित मे व्यक्त करता है और परिमित मे अनन्त का समुचित साधन उपस्थित करता है! यह विश्व मे साम्य और प्रेममय मातृत्व की सुहावनी सरिता परिप्लावित करता है। यह वाणी का पूर्ण विकास और विकास की स्फुट और अव्यक्त वाणी है। यह भावो का उच्चतम सङ्गीत और सङ्गीत का सर्व-श्रेष्ठ भाव है। सनातनधर्म आध्यात्मिकता का चरम विकास है। यह वीतराग का स्वर्ण-मन्दिर है, जहाँ निस्पृहता की हल्की-हल्की और मीठी थपकियाँ मानवीय भावनाओं को चिरनिद्रा मे आविर्भूत कर देती हैं। सनातनधर्म ब्राह्मण और शूद्र मे एक ही ब्रह्म का अस्तित्व पाता है। यह विश्व को ब्रह्ममय और ब्रह्म को विश्वमय कर देता है। यहाँ निराशाएँ आशाओं मे और तमोगुण सतोधर्म मे परिणत हो जाता है। यह विचारो का चैतन्य और चैतन्यता की विचारावली है। यह मानव-हृदय मे उठती हुई अधीर और आकुल भावनाओं से अनन्त का [illegible] संयोग है, जिसमे मनुष्य आत्म-विस्मृत हो सांसारिकता से [illegible] ऊँचा हो आध्यात्म-लोक मे विश्राम करता है! यह मान-

वीय और ईश्वरीय सत्ताओं का चिरमिलन है, जहाँ इन्द्रीय-तत्व नत हो जाते है। सनातनधर्म अखिल ब्रह्माण्ड को ईश्वर की एकता मे निरूपित करता है। यह साधना की श्रेष्ठ आराधना और आराधना की अखिल साधना है। इस कारण हम सनातनधर्म की हृदय की सारी उत्कण्ठाओं से उपासना करते है। हम इसे विश्व का सर्वोच्च धर्म मानते है। हमारा मस्तक इस विश्व धर्म के सम्मुख नत हो जाता है और हमारे हृदय की प्रत्येक भावना अबाध गति से इसकी ओर झुकती है, परन्तु जिस समय हमारा ध्यान सनातनधर्म के आधुनिक रूप की ओर जाता है, उस समय हमारा हृदय ग्लानि से भर जाता है। भारत के लगभग तीन चौथाई हिन्दू सनातनी हैं और शेष आर्यसमाज, जैन तथा और कई सम्प्रदायो के। इस दशा मे हमारे जातीय एवॅ धार्मिक उत्थान और पतन का सबसे अधिक उत्तरदायित्व सनातनधर्मावलम्बो पर ही है। हिन्दू-सङ्गठन एक प्रकार से सनातनियो का सङ्गठन है और सनातनियों का जीवन तथा उनकी मृत्यु हिन्दू-जाति का जीवन और मृत्यु है, परन्तु जिस समय हमारा ध्यान हिन्दू-जाति की ओर जाता है, उस समय हमारे हृदय मे क्षोभ और सन्ताप की सीमा नहीं रहती। समाज की सारी सङ्कीर्णता, समाज के सारे अत्याचार और समाज का सारा पतन आज सनातनधर्मावलम्बियो मे ही व्यक्त हैं। आज का सनातनधर्म पाखण्ड से पूर्ण हो रहा है। आज सनातनधर्म की आड मे मिथ्यावाद और प्रपञ्चो की भयानक लीलाएँ हो रही है। आज सनातनधर्म के सुन्दर और ज्योतिर्मय परदे के

भीतर पाखण्ड और दम्भ का दूषित अन्धकार फैल रहा है। आज सनातनधर्म की सुखदा, शान्तिदा, वरदा छाया के नीचे अभागी हिन्दू-जाति की चिता प्रज्ज्वलित हो रही है। आज सनातनधर्म की वाह्य पवित्रता के अन्तराल मे पाप के व्यभिचार का भीषण नृत्य हो रहा है। हमारी आँखे इस दृश्य को देख रही है, हमारे कान इन पैशाचिक लीलाओ के भयानक हाहाकार को सुन रहे है और हमारा हृदय हिन्दू-जाति के इस पतनकाण्ड को अनुभव कर रहा है। आजकल वाल और वृद्धविवाहादि सनातनधर्म के एक मुख्य अङ्ग समझे जाते है। आज का सनातनधर्म अछूतो को अधिकार देने का कट्टर विरोधी है। यदि भक्ति-भाव से कोई शूद्र भगवान् के मन्दिर मे प्रविष्ट हो जाय, तो सनातनी-फतवे के अनुसार भगवान् की अप्रतिष्ठा और अपमान हो जाता है। जिन मन्दिरो मे वेश्याएँ नृत्य कर सकती है, जिन मन्दिरो मे अधिकांश पण्डो के द्वारा हमारी अनेको सती वहिने भ्रष्ट होती रहती हैं, उन मन्दिरो मे हिन्दूधर्म का एक जवरदस्त और दृढ़ अङ्ग भक्ति की सारी व्याकुल भावनाओ से केवल इसलिए नही प्रवेश कर सकता कि वह शूद्र है। अक्षतयोनि युवती विधवाएँ काम के उद्दाम परिपीड़न से भले ही वेश्या होजायँ, पर सनातनियो के कानो पर जूँ तक नही रेंगती। सनातनधर्म के दायरे मे पुरुष चाहे अस्सी वर्ष की भी अवस्था मे चौथा पाँचवाँ छठा विवाह कर सकता है, पर वाल-विधवाएँ यदि पुनर्विवाह का नाम भी ले तो धर्म का सत्यानाश हो जाता है। इस समय हिन्दू-समाज मे एक-दो नही, वरन् सैकड़ो बुराइयाँ है,

जिनके कारण यह अत्यन्त तीव्र और अबाध गति से पतन की ओर प्रधावित हो रहा है। आज हमारे पतन का ठिकाना नहीं। हम स्वयं अपनी आत्मा को प्रवञ्चित कर रहे है। मिथ्यावाद हमारी अन्तरात्मा की जड़ तक पहुँच गया है। हम प्रतिक्षण अपने आप को स्वयं धोखा दे रहे है! जो ब्राह्मण, पण्डे, पुजारी हमारे धर्म-गुरु थे, जिनका उत्तरदायित्व हमे सुपथ पर लाना था; उनमे से अधिकांश स्वयं कुपथगामी हो रहे हैं और प्रकाश्य अथवा गुप्तरूप से हमारे धर्म और हमारी जाति का नाश कर रहे है। सहयोगी 'आर्यमित्र' के गत १३ वी जनवरी मे 'भयानक भण्डा-फोड़' शीर्षक एक लेख छपा है। हम उसको अविकल रूप से नीचे उद्धृत कर रहे है :—

"भारतधर्म-महामण्डल के मुखपत्र सहयोगी "भारतधर्म" की जनवरी १९२७ की संख्या इस समय हमारे सामने है। इस अङ्क में मुद्रित एक समाचार को पढ़ कर हमे अत्यन्त खेद हुआ। पं० कालूराम और पं० अखिलानन्द का 'हिन्दूद्रोह' शीर्षक लेख देख कर पहले तो हम सन्न रह गए और सोचने लगे कि क्या सचमुच उपर्युक्त दोनो पण्डित नामधारी प्रचार-कार्य के लिए ख्वाजा हसननिज़ामी से वेतन लेते है। इस समाचार को सुन कर हमे सहसा विश्वास न हुआ, परन्तु जब आगे चल कर पीलीभीत सनातनधर्म सभा के मन्त्री श्री० प० भगवानदीन शुक्ल द्वारा भेजी हसननिज़ामी की चिट्ठी की नकल उस पत्र में पढ़ी, तो हमारे आश्चर्य की सीमा न रही। देखिए, ख्वाजा हसन-

निज़ामी पं० कालूराम साहब को 'धर्मसभा' पीलीभीत के पते से क्या लिखते हैं :—

ख़्वाजा साहब की चिट्ठी

जनाब प० साहब, तसलीम।

आप का पत्र आज ही मिला। आप के काम से मैं निहायत ख़ुश हूँ, आप की तहरीर के बमूजिब ख़त का जवाब पीलीभीत के पते पर रवाना कर रहा हूँ। इन्हीं अय्याम में मैं ने कारख़ास के लिए हाफ़िज़ करीमुद्दीन, ख़्वाजा अरमान हुसेन व मुशी रहमतुल्ला को भी तयनात कर दिया है। ग़ालिबन वह भी पहुँचे होंगे, जो हकीम सईदुलरहमानख़ाँ व मुहम्मद अर्शाद के मशविरे से तबलीग़ी काम कर रहे होंगे। आप का आयन्दा का प्रोग्राम अभी मेरे पास नहीं आया है, बराए मिहरबानी फ़ौरन भेज दीजिए, जिससे ख़तोकिताबत में दिक्कत न हो। आप ने तरक्की तनख़्वाह की निस्बत जो लिखा, उसमें मुझे कतई इन्कार नहीं है, क्योंकि आप का काम वाक़ई में तारीफ के क़ाबिल है। साल आयन्दा के बजट में आप का ख़ास ख़्याल रक्खा जावेगा। आप का सफ़र-ख़र्च मीर साहब के पते से रवाना कर दिया गया है। जनाब प० अखिलानन्द साहब का १८ मई से कोई हाल नहीं मालूम हुआ है, न मालूम किस तरफ़ काम कर रहे हैं। अगर आप को कुछ पता मालूम हो, तो लिखिए, बाकी [illegible]। मगर उन बातों का ख़्याल रखना।

ख़ैरंदेश—

—ख़्वाजा हसन निज़ामी

हम सहसा सहयोगी में प्रकाशित पत्र पर विश्वास नहीं करते, परन्तु यदि वास्तव में यह बात सच्ची हो, तो हमें कोई आश्चर्य भी नहीं होता। आज हमारे अधिकांश सनातनधर्मी भाई, हमारे अधिकांश धर्मरक्षक हमारे धर्म के भक्षक हो रहे हैं। सच बात तो यह है कि धर्म और जाति के दुर्भाग्य से आज हम स्वयं अपने शत्रु हो रहे हैं। मुसलमान और ईसाई हमारे शत्रु नहीं, हम आप ही अपने शत्रु हैं। मुसलमान और ईसाई हमारा नाश नहीं करते हैं—हम तो स्वयं ही अपना नाश कर रहे हैं। हमारे पास धन, जन, विद्या, बुद्धि सब ही कुछ है, पर फिर भी हम मृत्यु के भयङ्कर गह्वर में पतित हो रहे हैं। इसका कारण हमारी दुर्बलता, हम में जातीय एवं धार्मिक जीवन का अभाव और हमारा मिथ्यावाद है। यही हमारा रोग है और इस रोग की एकमात्र अचूक औषधि "हिन्दू-सङ्गठन" का परम पुनीत और उपादेय कार्य है। यदि हम इस औषधि को देने में विलम्ब करें, तो हम कुछ दिनों के भीतर ही विधर्मियों के रूप में हतभागिनी हिन्दू-जाति को मृत्यु की भीषण चिता में प्रज्वलित होते देखेंगे।

परन्तु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि इस सङ्गठन का रूप क्या होना चाहिए। यह विचारणीय प्रश्न है और इसकी उचित मीमांसा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हमारे विचार में, हिन्दू-सङ्गठन की परम पवित्र उत्तेजना एवं त्याग की सर्वोत्तम भावनाओं में द्वेष, घृणा, लोभ और मिथ्यावाद का तनिक भी लेश न हो। संसार का इतिहास हमारी अन्तरात्मा में एक भयङ्कर निनाद से

यह चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा है कि द्वेष एव घृणा की नींव पर स्थापित किया हुआ कोई भी आन्दोलन स्थायी नही रह सकता। सम्भव है कि कुछ समय के लिए यह अपनी आभा छिटका दे, पर यह प्रकाश क्षणिक होता है और तत्पश्चात् उसका एक लोमहर्षक पतन हो जाता है। औरङ्गजेब का विशाल मुस्लिम-साम्राज्य हमारे कथन की पुष्टि के लिए पर्याप्त है! इसलिए यदि हम हिन्दू-सङ्गठन की तपोमयी साधना मे अहिन्दुओ के लिए किसी प्रकार का द्वेष अथवा घृणा का भाव रक्खें, तो यह हमारे लिए अत्यन्त हानिकारक होगा। दूसरी महत्वपूर्ण बात जो हमारे सामने है, वह यह कि हिन्दू-सङ्गठन मे किसी प्रकार के व्यक्तिगत स्वार्थ का समावेश कर, उसे भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रलोभनो और मिथ्यावाद से अपवित्र न करे। हम हिन्दू-सङ्गठन के विश्वव्यापी आन्दोलन को स्वार्थ की अपवित्र और सङ्कुचित कल्पनाओ से बहुत ऊंचा रखना चाहते है। हिन्दू-सङ्गठन महामना मालवीय जी के हिन्दू-सङ्गठन से अत्यन्त भिन्न होगा। हमारा हिन्दू-सङ्गठन कौन्सिलो मे प्रवेश करने की दूषित स्वार्थसिद्धि का घृणित साधन न होगा। हमारा हिन्दू-सङ्गठन परमात्मा मे अटल विश्वास और विश्व-प्रेम की अक्षुण्ण भावनाओ की नींव पर स्थापित होगा। हमारे हिन्दू-सङ्गठन मे मुसलमानो के प्रति घृणा के दूषित विचार न होंगे परन्तु साथ ही हमारा प्रयत्न अधिकांश धर्मान्ध मुल्लाओ और मौलवियो की शरारतो को दबाना होगा, और भारतीय इतिहास के पन्नो से शरारती, बदमाश, गुण्डे, बदजात और खूनी अब्दुल-

रशीदो का नाम मिटाना होगा। हमारे सङ्गठन मे बड़ा और छोटा, धनी और दरिद्र—प्रत्येक हिन्दू साम्य और मातृभाव से एक दूसरे के गले मिलेगे। हमारे हिन्दू-सङ्गठन में बड़ो का छोटो पर, धनियो का गरीबो पर और पुरुषो का अबलाओ पर कोई भी अत्याचार न होगा। इस हिन्दू-सङ्गठन मे अधिकांश पण्डो और पुजारियो की पाखण्डलीला त्रस्त हो जावेगी और स्वेच्छाचार की उत्तेजित भावनाएँ न्याय के सम्मुख नत हो जावेंगी। इस हिन्दू-सङ्गठन मे अपनी अथवा पराई, अबलामात्र की रक्षा करनी होगी और अबलाओ पर आक्रमण करने वाले गुण्डो को, चाहे वे किसी धर्म और जाति के हो, समुचित दण्ड देना होगा। इस हिन्दू-सङ्गठन मे अपनी देवियो की मर्यादा रखने के लिए, ख़ून की नदियाँ बहानी होगी और गुण्डा-समाज को दिखलाना होगा कि हम अपनी ललनाओ के सतीत्व और उनकी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए हँसते-हँसते प्राण निछावर करना जानते है। इसके पश्चात् पाखण्डियो का सारा प्रपञ्च नष्ट हो जावेगा और उनकी समाधि पर हिन्दू-जाति के आशामय भविष्य का सारा उत्कर्ष एक अनियन्त्रित गति से उत्पन्न होगा।

पर, यह पथ दुर्गम है! यह निरी कपोल-कल्पना नहीं इस पथ मे बहुत तीखे घाव सहने होगे। हिन्दू-सङ्गठन के इस पुण्यतम उत्तरदायित्व को सम्पन्न करना पुष्पो की शय्या पर लेटना नहीं है, यह वाक्पटुता की कला का प्रदर्शन नहीं है। इस पथ के चलने वाले पथिको को तलवार की धार पर चलना है। इस पुनीत पथ

मे स्वधर्मियो का अपमान, उनका तिरस्कार, उनके व्यङ्ग, उनका घृणा तथा उनका अवरोध और साथ ही विधर्मियो की कूटनीति, उनके आक्रमण, गुप्त षड्यन्त्रो द्वारा उनकी हत्याएँ तथा उनकी सारी पैशाचिक मनोवृत्तियो को हृदय से आलिङ्गन करना होगा। हम ने 'गुप्त षड्यन्त्रो' की चर्चा जान कर ही की है। हमे मालूम हो रहा है कि कोई हमारे कानो मे कह रहा हो कि हिन्दुओ के खिलाफ़ मुसलमानो का एक वृहत् गुप्त षड्यन्त्र है, जिसका अभिप्राय हर अनुचित तरीके से हिन्दुओ को दवाना और उन्हे मुसलमान वनाना है। हाल ही मे डेराइस्माइलखॉ मे मुसलमानो के द्वारा हिन्दुओ पर होने वाले .जुल्मो ने हमे इस षड्यन्त्र के अस्तित्व पर कुछ विश्वास करने को लाचार किया है।

इसके पश्चात् पहली दिसम्बर, सन् १९२६ के 'दरवेश' अखबार १३ वे पृष्ठ पर हसननिजामी के लेख ने हमारी इस धारणा को और भी दृढ़ कर दिया था। 'चॉद' के सुयोग्य पाठक-पाठिकाओ के मनोरञ्जनार्थ हम उस लेख के कुछ भागो को यहॉ उद्धृत करते है —

हसन बिन सुब्बा की षड्यन्त्र कमेटियो पर इतिहास मे सदा लानत की जा रही है। और अब भी लोग उसे नफरत की निगाह से देखते है; परन्तु मै उन कार्रवाइयो को नफरत की निगाह से नहीं देखता। काश मेरे [illegible] मे भी यह काबिलियत होती और मै उससे भी बढ़ कर गुप्त षड्यन्त्र कमेटियां बनाता हसन की जीवनी पढ़ने के

बाद मे इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यदि मै हसन बिन सुब्बा बनने की महत्वाकाक्षा करूँ, तो यह नैतिक पतन नहीं है।"

आगे चल कर निज़ामी साहब फ़रमाते है :—

"यदि मै हसन बिन सुब्बा की पदवी पर पहुँचने की कोशिश करूँ, तो मेरे पास उस समय के साधनों की अपेक्षा अधिक साधन विद्यमान है। पाश्चात्य शस्त्र-विद्या को धन्यवाद है कि उसने हसन बिन सुब्बा बनने की बडी सहूलियते पैदा कर दी। यदि आर्यसमाजी चाहते है कि मै हसन बिन सुब्बा बनूँ, तो उनकी मन्शा पूरी हो जावेगी।

इस लेख के प्रकाशित होने के ठीक २२ दिन के बाद अर्थात् २३ दिसम्बर सन् १९२६ ई० की सन्ध्या को स्वामी श्रद्धानन्द जी का खून हुआ। इतना ही नहीं, हाल ही मे रावलपिण्डी के एक प्रमुख हिन्दू-नेता को इस आशय का एक गुमनाम पत्र मिला है कि तुम तैयार हो जाओ। हमारी कमेटी ने इस बात का निश्चय कर लिया है कि तुम्हारा और तुम्हारे बाल-बच्चो का कत्ल हो और इसके पश्चात तुम्हारे घर मे आग लगा दी जाय। शुद्धि-सभा के मन्त्री स्वामी चिदानन्द जी को भी इसी आशय का एक गुमनाम पत्र मिला है। स्वामी श्रद्धानन्द जी की शोक-सभाओ के सयोजको को भी धमकियाँ दी जा रही है कि खबरदार! अगर तुम अपनी हरकतो से बाज़ न आए, तो ठीक कर दिए जाओगे। हाल मे ही बलिया नगर मे धमकीपूर्ण विज्ञापनो के चिपकाए जाने की सूचना मिली है, जिनकी अविकल लिपि इस प्रकार है :—

"आर्यसमाजी लोग इन साल जलसा किया था। उन

जल्सा में आर्यसमाजी लोग ईसलाम पर गाली दिया था, ये आर्यसमाजी लोग आर्य समाजें बन्द कर दें, नही तो यही होगा जो पनडित लेखराम और स्वा० शरधानन्द का हुआ है। दिन क़रीब आने वाला है।"

इन बातो से कोई भी समझदार व्यक्ति, जिस को परमात्मा ने तनिक भी बुद्धि दी है, इसी परिणाम पर पहुँचेगा कि सारे भारत में और विशेष कर सीमान्त-प्रदेश, पञ्जाब, सयुक्त-प्रान्त, दिल्ली और बिहार में धर्मोन्मत्त मुसलमानो का एक गुप्त षड्यन्त्र है, जो भारत में मुस्लिम-साम्राज्य का स्वप्न देखता है। यहाँ हम उस विचार वाले इस्लाम के कट्टर मुरीदो को यह कह देना अपना धर्म समझते है कि वे अपने घरो में बैठ कर अपने पागलपन के ख्यालातो में हजार खुशियाँ भले ही मनाएँ, पर अब हिन्दू-जाति में काया-पलट हो गई है। जो हिन्दू-जाति नादिरशाह के जुल्मो और औरङ्गजेब की खूँख्वार तलवार की साया में पल कर आज तक जीवित है, वह कुछ मजहब के दीवानो की साजिशो से नही मर सकती। ऐसी साजिशें इस्लाम को खतरे में डाल देंगी। कौन कह सकता है कि लेखराम और श्रद्धानन्द पर किये गये [illegible] कारनामो और इनके अनुकरणो में छुपी हुई आग के शोलो [illegible] जजबात निकले, जो कि मुल्क हिन्दुस्तान से मुसलमानो [illegible] उसी तरह मिटा दे, जिस तरह कि स्पेन में हुआ था। [illegible] हम हिन्दुओ से और विशेष कर हिन्दू-नवयुवक और

युवतियो से सानुरोध निवेदन करना चाहते है कि उन पर ही उनकी मरती हुई जाति का कल्याण निर्भर है। उन्हे युक्ति और सङ्गठन के पवित्र कार्य मे लग जाना चाहिए। उन्हे सिक्खो की कुर्बानियो से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। संसार के सङ्ग्राम मे वे ही जातियाँ जीवित रह सकती हैं, जिनके नवयुवक त्यागी हो। किसी भी विशाल राष्ट्र का निर्माण उसके शहीदो की भित्ति पर ही होता है! हिन्दू-जाति का उद्धार, इसका उत्थान और इसका पुण्यमय उत्कर्ष वीर हिन्दुओ के त्याग और बलिदान से ही होगा!
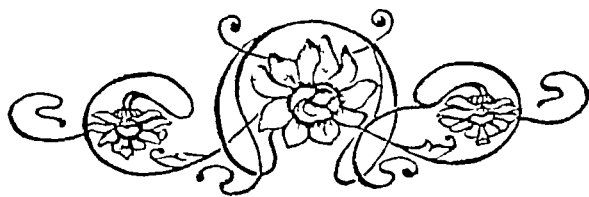
विद्या-विनोद-ग्रन्थ-माला

के

ग्राहक बनिए !

इस ग्रन्थ-माला का एकमात्र उद्देश्य सामाजिक जीवन में पैदा करा देना, स्त्रियों के स्वत्वों के लिए अन्यायी समाज झगड़ना और स्त्रियों के हित की बात उन्हें बतलाना है। इन्हीं बातों को सामने रख कर इसमें बराबर नई-नई और उत्तमोत्तम प्रकाशित होती हैं। यही कारण है कि, इसके स्थायी-टकटकी लगाए हमारी नई पुस्तकों की राह देखा करते हैं। भी इस ग्रन्थ-माला के स्थायी ग्राहक बन कर उसके लाभ देख ।

नियमावली

लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है। परन्तु, आगे निकलने वाले ग्रन्थ उन्हें लेने पड़ते हैं।

४—वर्ष भर में कम से कम बारह रुपयों के मूल्य के (कमीशन काट कर) नवीन ग्रन्थ प्रत्येक स्थायी ग्राहक को लेने पड़ते हैं। बारह रुपये से अधिक मूल्य की पुस्तकें, यदि एक वर्ष मे तो १२) रुपये की किताबें लेकर शेष ग्रन्थों के लेने से ग्राहक, यदि वे चाहें, तो इन्कार कर सकते हैं।

५—किसी उचित कारण के विना, यदि किसी पुस्तक की वी० पी० वापस आती है, तो उसका डाक-ख़र्च आदि ग्राहक को देना पड़ता है। वी० पी० वापस करने वालों का नाम ग्राहक-श्रेणी से अलग कर दिया जाता है।

६—'प्रवेश-फ़ीस' के आठ आने पेशगी मनीऑर्डर से भेजना चाहिए।

७—स्थायी ग्राहक पुस्तकों की चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जितनी बार, पौनी क़ीमत में मँगा सकते हैं।

८—स्थायी ग्राहकों को अपनी पुस्तकों के अलावा हम हिन्दी-पुस्तकों पर, जो हमारे यहाँ विक्रयार्थ प्रस्तुत रहती हैं, एक आना फ़ी रुपया कमीशन भी देते हैं।

पत्र-व्यवहार करने का पता :—

व्यवस्थापिका—

'चाँद' कार्यालय, २८ एलगिन रोड, इलाहाबाद

प्रेम-प्रमोद

[ले० श्री० प्रेमचन्द जी]

...त बड़े बड़े विद्वानों और अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने एक
... स्वीकार कर ली है कि, श्री० प्रेमचन्द जी की सर्वोत्कृष्ट
रचनाएँ "चाँद" ही मे प्रकाशित हुई हैं। प्रेमचन्द जी
... में क्या स्थान है, सो हमे बतलाना न होगा।
रचनाएँ बड़े-बड़े विद्वान् तक बड़े चाव और आदर से
हैं। हिन्दी-संसार में मनोविज्ञान का जितना अच्छा अध्ययन
...जी ने किया है, वैसा किसी ने नहीं किया। यही कारण
आपकी कहानियाँ और उपन्यासों को पढ़ने से जादू का-सा
पड़ता है, बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी आपकी रचनाओं को
... पढ़ते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचन्द जी की उन सभी
... का संग्रह किया गया है, जो "चाँद" मे पिछले तीन-चार
... प्रकाशित हुई हैं। इसमें कुछ नई कहानियाँ भी जोड़ दी
जिससे पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया है। प्रकाशित
... का भी फिर से सम्पादन किया गया है। प्रत्येक घर में
... की एक प्रति होनी चाहिए। जब कभी कार्य की
... से जी ऊब आवे, एक कहानी पढ़ लीजिए, सारी थकान
... और तबियत एक बार फड़क उठेगी। कहानियाँ

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

-माला की विख्यात पुस्तकें

अधिक खोज से लिखा जा सकता था, लिखा गया है।
... देकर हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि,
और अनमोल पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक भारतीय
... रखनी चाहिए और ख़ास कर स्त्रियों को इसे पढ़ कर
... रखनी चाहिए। मूल्य ॥।) बारह आने; पर स्थायी ग्राहकों
... केवल ॥-) नौ आने।

*
* *

विधवा-विवाह-मीमांसा

[नवीन परिवर्द्धित संस्करण]

[ले० श्री० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०]

में ? (३) पुरुषों का पुनर्विवाह और बहु-विवाह धर्मानुकूल या धर्म-विरुद्ध ? शास्त्र इस विषय में क्या कहता है ? (४) का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है या अनुचित ? (वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि। (६) स्मृतियों की सम्मति (७) पुराणों की साक्षी। (८) अङ्गरेज़ी-क़ानून (English Law की आज्ञा। (९) अन्य युक्तियाँ। (१०) विधवा-विवाह के विरु आक्षेपों का उत्तर :— (अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विव के विरुद्ध हैं ? (आ) विधवाएँ और उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा (इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं, (ई) कलि और विधवा विवाह, (उ) कन्यादानविषयक आक्षेप, (ऊ) गो विषयक प्रश्न, (ऋ) कन्यादान होने पर विवाह वर्जित है, (बाल-विवाह रोकना चाहिए, न कि विधवा-विवाह की प्रथा चला (ऌ) विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है, (ॡ) हम आर्य-समाजी हैं, जो विधवा-विवाह में योग दें ? (११ विधवा-विवाह के न होने से हानियाँ :—

(क) व्यभिचार का आधिक्य, (ख) वेश्याओं की वृ (ग) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या, (घ) अन्य क्रूरताएँ, (जाति का ह्रास और (१२) विधवाओं का कच्चा चिट्ठा।

इस पुस्तक में बारह अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः उपर्यु

की विख्यात पुस्तकें

की आलोचना बड़े ही ओजस्वी एवं मार्मिक ढङ्ग से की
[illegible] तिरङ्गे और सादे चित्र भी हैं।
मोटी-ताज़ी सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल
[illegible] पर स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् २।) रु० में
!

*
* *

शान्ता

(नवीन-संस्करण)

शिक्षाप्रद सामयिक उपन्यास

[ले० श्री० रामकिशोर जी मालवीय, सहकारी-सम्पादक 'अभ्युदय']

इस पुस्तक में देश-भक्ति और समाज-सेवा का सजीव वर्णन [illegible] है। देश की वर्तमान अवस्था में हमें कौन-कौन सुधार करने की परमावश्यकता है और वे सुधार किस [illegible] आ सकते हैं आदि आवश्यक एवं उपयोगी विषयों का [illegible] बड़ी योग्यता के साथ दिग्दर्शन कराया है। उपन्यास [illegible], यह पुस्तक एक व्याख्यान है और इसके पढ़ने से देश [illegible] स्थिति आँखों के सामने चित्रित हो जाती है। शान्ता [illegible] का शुद्ध और आदर्श प्रेम देख कर हृदय गद्गद् हो [illegible] है। [illegible] इस दम्पति का सत्चरित्र और समाज-सेवा

की लगन का भाव ऐसी उत्तमता से वर्णन किया गया है पुस्तक छोड़ने की इच्छा नहीं होती। साथ ही साथ हिन्दू के अत्याचार और षड़यन्त्र से शान्ता का उद्धार देख कर साहस, धैर्य और स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा करते ही बनती है। पाठक-बालिकाएँ, स्त्री-पुरुष सभी के लिए शिक्षाप्रद हैं। सफ़ाई अत्युत्तम और पृष्ठ-संख्या १२५ होने पर भी इसका ।।।) बारह आने हैं। स्थायी ग्राहकों से ।।-) ही लिए जाते हैं।

*

* *

उमासुन्दरी

(नवीन-संस्करण)

[स्त्रियोपयोगी सामाजिक उपन्यास]

(ले० श्रीमती शैलकुमारी देवी)

इस उपन्यास की लेखिका छपरा से निकलने वाले 'महिला-दर्पण' की सञ्चालिका हैं। इस पुस्तक में पुरुष-समाज की विषय-वासना, अन्याय तथा भारतीय रमणियों के स्वार्थ-त्याग और पातिव्रत का ऐसा सुन्दर और मनोहर वर्णन किया गया है कि उसे पढ़ते ही बनता है। सुन्दरी सुशीला का अपने पति सतीश पर अगाध प्रेम एवं विश्वास, उसके विपरीत सतीश बाबू का [illegible]

स्तम्भित रह जायँगे ! मानिक का अपूर्व चातुर्य आपको
कर देगा ! मानिक के अद्भुत कार्य-कलाप पर आपका हृदय
उछलने लगेगा। मानिक के अप्रतिम कृत्यों से आपको ज्ञात
जायगा कि, उसका हृदय कायर नहीं था ! अत्याचार सह
वह चुपचाप बैठ रहने वाली स्त्री न थी। अपने शत्रुओं से
लेने का उसने भरसक प्रयत्न किया और कृतकार्य हुई !

साथ ही साथ अनुचित प्रेम से मनुष्य की अधोगति के
से आपकी आँखें खुल जायँगी। उलझाने वाली मनोरञ्जक
नाओं के साथ ही साथ इसमें ऐसी उपयोगी बातों का समा
आवेगा, जो बिगड़े का सुधार और बिगड़ने वालों को
कर देगा। स्त्रियों का सुधार बहुत कुछ पुरुषों की सच्चरित्रता
उनकी विज्ञता पर निर्भर है; किन्तु, इससे मालूम होगा कि,
यदि चाहें तो अपनी शक्ति को पहिचान कर लम्पट और
पुरुषों के दाँत खट्टे कर सकती हैं और इस प्रकार उन्हें
पर लाकर समाज तथा देश का मुखोज्ज्वल कर सकती हैं।

यह उत्तम और गुणकारी रत्न प्रत्येक स्त्री-पुरुष को
पास रखना चाहिए। हमारा आपसे विशेष अनुरोध है कि,
ज़रूर पढ़ें ! इसको पढ़ कर आप अवश्य प्रसन्न
किञ्चित्मात्र भी सन्देह नहीं है। सर्वसाधारण की पहुँच से
न होने पावे—इस विचार से, सर्वगुण-सम्पन्न रहने पर

की विख्यात पुस्तकें

केवल २) रुपए। स्थायी ग्राहकों से इसके १॥) रु०
। है।

*
* *

वनमाला

[ले० श्री० चण्डीप्रसाद जी, 'हृदयेश', बी० ए०]

लक की उपयोगिता और सरसता को आप लेखक के
मालूम कर सकते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है
श' जी ने अपनी लेखन-शैली द्वारा हिन्दी-संसार को
किया है और वे स्वर्ण-पदक भी प्राप्त कर चुके हैं।
पुस्तक में 'हृदयेश' जी की लिखी हुई "चाँद" में
सभी गल्पों का संग्रह किया गया है। इन गल्पों-द्वारा
अत्याचारों तथा कुरीतियों का हृदय-विदारक दिग्दर्शन
गया है और इस विश्व के रङ्ग-मञ्च पर होने वाले पाप
कर्मों का मधुर और सुन्दर विवेचन किया गया
सज्जनों ने 'हृदयेश' जी के उपन्यासों और गल्पों को
उनसे हमारी प्रार्थना है कि, इन छोटी परन्तु, सारगर्भित
भावपूर्ण गल्पों को भी पढ़कर अवश्य लाभ उठावें।
के अन्त में २ छोटे-छोटे रूपक (नाटक) भी दिए गए हैं।
पुस्तक की छपाई-सफ़ाई अत्यन्त सुन्दर और पृष्ठ-संख्या

लगभग ५५० है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३) रु०।

*

* *

अबलाओं पर अत्याचार

(स्त्री-समाज पर होने वाले अत्याचारों का हृदय-विदारक

[ले० श्री० जी० एस० पथिक, बी० ए०, बी० (कॉम)]

इस पुस्तक में भारतीय स्त्री-समाज का इतिहास बड़ी भाषा में लिखा गया है। इसके साथ स्त्री-जाति के महत्व उससे होने वाले उपकार, जागृति एवं सुधार को बड़ी और विद्वत्ता से प्रदर्शित किया गया है। पुस्तक में वर्णित जाति की पहिली अवस्था, उन्नति एवं जागृति को देख कर छटपटा उठता है और उस काल को देखने के लिए लालायित जाता है!

साथ ही साथ वर्तमान स्त्री-समाज की करुणाजनक का जो सच्चा और नग्न चित्र चित्रित किया गया है, वह हृदय क्रान्ति पैदा करता और करुणा एवं घृणा का मिश्रित भाव में अङ्कित कर देता है।

इतना ही नहीं, स्त्री-समाज के प्रत्येक पहलू को लेखक ने योग्यता से प्रतिपादित किया है। अधिक न कह कर, यदि

ग्रन्थ-माला की विख्यात पुस्तकें

पुस्तक स्त्री-समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी है, ना कोई नहीं होगी। इस पुस्तक को प्रत्येक गृहस्थी मे चाहिए।

ई-सफ़ाई अत्युत्तम। लगभग ५०० पृष्ठ की। सजिल्द मूल्य केवल ३), स्थायी ग्राहकों से २।) मात्र!

*

* *

मंगल-प्रभात

[ले० श्रीयुत चण्डीप्रसाद जी, बी० ए० 'हृदयेश']

सुन्दर उपन्यास में मानव-हृदय की रङ्गभूमि पर वासना का दृश्य दिखलाया गया है सामाजिक अत्याचार और विवाह का भयङ्कर परिणाम पढ़कर जहाँ हृदय काँप वहाँ विशुद्ध प्रेम, अतुल सहानुभूति और समाज की इत्यादि के सुन्दर दृश्यों को देखकर हृदय में एक शान्ति का स्रोत बहने लगता है। कहने का तात्पर्य है, प्रस्तुत उपन्यास मे इस विश्व की रङ्गभूमि पर अभिनीत पाप और पुण्य के कृत्यों का बड़ा ही मधुर-सुन्दर किया गया है।

भाषा, सरल एवं कवित्वमयी है। ग्रन्थ-माला के प्रेम-

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

बैंग अगणित उपन्यासों की तो गिनती ही क्या, प्रस्तुत बँगला के अच्छे उपन्यासों से भी श्रेष्ठ सिद्ध हुई है।

छपाई-सफ़ाई बहुत ही सुन्दर है, साथ ही मनोहर, समस्त कपड़े की जिल्द से भी पुस्तक अलंकृत की गई है। संख्या लगभग ८००, काग़ज़ ४० पाउण्ड एण्टिक, मूल्य ५) स्थायी ग्राहकों से ३॥।) रु० ! आज ही एक प्रति मँगा कर उठाइए, केवल २०० कापियाँ शेष बची हैं !

* * *

शैलकुमारी

(नवीन-संस्करण)

(सचित्र सामाजिक उपन्यास)

[ले० प० रामकिशोर जी मालवीय, सहकारी-सम्पादक 'अभ्युदय'

यह उपन्यास अपनी मौलिकता, मनोरञ्जकता, शिक्षा, लेखन-शैली तथा भाषा की सरलता और लालित्य के कारण हि संसार में विशेष स्थान प्राप्त कर चुका है। अपने ढङ्ग के अनोखे उपन्यास में यह दिखाया गया है कि, आजकल एम० बी० ए० और एफ़० ए० की डिग्री-प्राप्त स्त्रियाँ किस प्रकार विद्या के अभिमान में अपने योग्य पति तक का अनादर कर

है। आपने यह पुस्तक बहुत दिनों के कठिन परिश्रम के बाद है। इस पुस्तक में कुल १७ छोटी-छोटी शिक्षाप्रद, रोचक सुन्दर हवाई कहानियाँ हैं जिन्हें बालक-बालिकाएँ बड़े से सुनेंगे। बड़े-बूढ़ों का भी इससे यथेष्ट मनोरञ्जन हो

पृष्ठ-संख्या २०० से अधिक, छपाई-सफ़ाई अच्छी, केवल १), स्थायी ग्राहकों से ॥)

*

* *

मनोरमा

(एक क्रान्तिकारी मौलिक सामाजिक उपन्यास)

[ले० श्रीयुत चण्डीप्रसाद जी, बी० ए०, 'हृदयेश']

यह उपन्यास निस्सन्देह हिन्दू-समाज में क्रान्ति देगा। समाज का नङ्गा चित्र जिस योग्यता से इस अङ्कित किया गया है, हम दावे के साथ कह सकते हैं कि एक भी उपन्यास अब तक हिन्दी-संसार में नहीं निकला है विवाह और वृद्ध-विवाह के भयङ्कर दुष्परिणामों के भारतीय हिन्दू-विधवाओं का जीवन जैसा आदर्श और दिखलाया गया है, वह बड़ा ही स्वाभाविक है।

इस पुस्तक के लेखक हिन्दी-संसार के रत्न हैं, अतएव के सम्बन्ध में कुछ भी कहना वृथा है! पुस्तक की भाषा

पुस्तक कैसी और कितनी उपयोगी होगी। हमें आशा है, देश वासी इस पुस्तक को अपना कर हमारे उद्देश्य को सफल करेंगे।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई देखने योग्य है। २५० पृष्ठ की समस्त कपड़े की जिल्द सहित पुस्तक का मूल्य केवल १॥) रु०, स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र! आज ही एक प्रति मँगा लीजिए!

*

* *

ग्रह का फेर

[मूल-लेखक श्री० योगेन्द्रनाथ चौधरी, एम० ए०]

इस पुस्तक की विशेषता लेखक के नाम ही से प्रकट हो जाती है। यह बङ्गला के एक प्रसिद्ध उपन्यास का अनुवाद है। लड़के-लड़कियों की शादी-विवाह में असावधानी करने से जो भयङ्कर परिणाम होता है, उसका इसमें अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। इसके अतिरिक्त यह बात भी इसमें अङ्कित की गई है कि, अनाथ हिन्दू-बालिकाएँ किस प्रकार ठुकराई जाती हैं और उन्हें किस प्रकार ईसाई अपने चङ्गुल मे फँसाते हैं। पुस्तक पढ़ने से पाठकों को जो आनन्द आता है, वह अकथनीय है। छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर होते हुए भी पुस्तक का मूल्य केवल आठ आने तथा स्थायी ग्राहकों से छः आने मात्र!

*

* *

आशा पर पानी

[लेखक श्री० जगदीश झा, 'विमल']

यह एक शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। मनुष्य के जीवन में सुख-दुख का दौरा किस प्रकार होता है, विपत्ति के समय मनुष्य को कैसी-कैसी कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं, किस प्रकार घर की फूट के कारण परस्पर वैमनस्य हो जाता है और उसका कैसा दुखदाई परिणाम होता है, यह सब बातें आपको इस उपन्यास में मिलेंगी। इसमें क्षमा-शीलता, स्वार्थ-त्याग और परोपकार का अच्छा चित्र खींचा गया है। एक बार अवश्य पढ़िए! छपाई-सफाई उत्तम है। मूल्य केवल आठ आने, स्थायी ग्राहकों से छः आने मात्र!

* *

देवदास

[सामाजिक उपन्यास]

देवदास को उपन्यास न कह कर यदि विविध अवस्थाओं के [illegible] नारों का जीता-जागता चित्र कहें, तो विशेष सार्थक होगा। देवदास पर पार्वती का अगाध प्रेम तथा धनी और निर्धन के [illegible] के कारण पार्वती का देवदास के साथ विवाह न

होने पर भी उसका देवदास पर अपने पति से अधिक दावा देखकर दाँतों तले ऊँगली दबानी पड़ती है ! पार्वती के वियोग के कारण देवदास का विक्षिप्तावस्था में करुणाजनक पतन पढ़कर हृदय व्याकुल हो जाता है। सच्चे प्रेम के अद्भुत प्रभाव के कारण चन्द्रमुखी नाम की एक पतिता वेश्या को धर्ममय जीवन को अपनाते देख कर चमत्कृत हो जाना पड़ता है। अधिक प्रशंसा कर काग़ज़ काला करने से कोई लाभ नहीं। पुस्तक पढ़ने ही से सच्चा आनन्द मिलेगा और उसका महत्व मालूम होगा। पुस्तक की भाषा भी सरल, ललित और मुहावरेदार लिखी गई है। लगभग पौने दो-सौ पृष्ठ की इस उत्तम पुस्तक का मूल्य केवल १) रु० है; पर, ग्रन्थ-माला के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् ॥।) में ही दी जाती है।

*

* *

राष्ट्रीय गान

यह पुस्तक चौथी बार छप कर तैयार हुई है। इसी से इसकी लोक-प्रियता का अनुमान हो सकता है। इसमें वीर-रस में सने हुए देश-भक्ति पूर्ण सुन्दर गानों का अपूर्व संग्रह है ; जिन्हे पढ़ कर आपका दिल फड़क उठेगा। यह गाने हारमोनियम पर भी गाने क़ाबिल हैं और हर समय भी गुनगुनाए जा सकते हैं। शादी-

करना आदि-आदि अनेक रोचक विषयों का प्रतिपादन बड़ी योग्यता से किया गया है। पुस्तक इतनी रोचक है कि, उठा कर छोड़ने को दिल नहीं चाहता।

टाइटिल पेज पर वृद्ध-विवाह का एक तिरङ्गा चित्र भी दिया गया है। पृष्ठ-संख्या २००, काग़ज़ बहुत चिकना २८ पाउण्ड का, छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर होते हुए भी मूल्य केवल एक रुपया रक्खा गया है; पर, स्थायी ग्राहकों को पुस्तक पौने मूल्य अर्थात् केवल बारह आने में ही दी जाती है।

*
* *

प्राणनाथ

(नवीन संस्करण)

[लेखक श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

श्रीवास्तव महोदय का परिचय हिन्दी-संसार को कराना लेखक का अपमान करना है। पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि, हास्य-रस के नामी लेखक होने के अलावा श्रीवास्तव महोदय कट्टर समाज-सुधारक भी हैं। "लम्बी दाढ़ी" आदि अनेक पुस्तकों में भी लेखक ने सामाजिक कुरीतियों का नङ्गा चित्र जनता के सामने रक्खा है।

इस वर्तमान पुस्तक (प्राणनाथ) में भी समाज में होने वाले

विद्या-विनोद-ग्रन्थ-माला की विख्यात पुस्तकें

...क अन्याय-अत्याचार लेखक ने बड़ी योग्यता से अङ्कित किए हैं। ...-शिक्षा और सामाजिक सुधारों से परिपूर्ण होने के कारण यह एक

अनूठा उन्यास

। चार भागों के इस सुन्दर रेशमी जिल्द से मण्डित, स्वर्णाक्षरों ... अङ्कित उपन्यास का मूल्य केवल २॥।) (दो रुपया ...ग्यारह आने) ही रक्खा गया है। काग़ज़ और छपाई आदि बहुत सुन्दर है। फिर भी स्थायी ग्राहकों को पुस्तक पौने मूल्य अर्थात् ...) में मिलेगी। शीघ्र स्थायी ग्राहकों में नाम लिखा लीजिए !!

*

* *

पाक-चन्द्रिका

[लेखक स्वर्गीय प० मणिराम जी शर्मा]

[सम्पादिका श्रीमती विद्यावती जी सहगल]

यह पुस्तक हमने विशेष कर हिन्दी जानने वाली महिलाओं के ...लाभार्थ प्रकाशित की है। इस पुस्तक में प्रत्येक अन्न तथा मसालों ...के गुण और अवगुण वर्णन करने के अतिरिक्त, पाक-सम्बन्धी सभी वस्तुओं का सविस्तार सरल भाषा में वर्णन किया गया है। प्र...क [illegible] के बनाने की विधि सविस्तार और सरल भाषा में [illegible]। इस पुस्तक से थोड़ी भी हिन्दी जानने वाली

भरपूर लाभ उठा सकती हैं। मन चाहा पदार्थ पुस्तक सामने रख कर आसानी से तैयार किया जा सकता है। दाल, चावल, रोटी, पुलाव, मीठे, नमकीन चावल, भाँति-भाँति के शाक, सब तरह की मिठाइयाँ, नमकीन, बङ्गला-मिठाई, पकवान, सैकड़ों तरह की चटनी रायते, आचार-मुरब्बे आदि बनाने की विधि बड़ी उत्तमता से इस पुस्तक मे लिखी गई है। प्रत्येक महिला को यह पुस्तक सदैव पास रखनी चाहिए। लगभग ८०० पृष्ठ की सुन्दर सजिल्द पुस्तक की क़ीमत केवल ५) रु० । स्थायी ग्राहकों से ३।।।) रु० !

*

* *

सती-दाह

[लेखक श्री० शिवसहाय जी चतुर्वेदी]

हिन्दी में 'सती' विषय की यह पहली ही पुस्तक है। 'सती प्रथा' का इतिहास इस पुस्तक मे बड़ी उत्तमता से सप्रमाण अङ्कित किया गया है। इसके अतिरिक्त 'सती-प्रथा' द्वारा होने वाले अनर्थ आदि का दिग्दर्शन भी कराया गया है। इस पुस्तक को पढ़ने से हृदय में करुणा का स्रोत उमड़ आता है। पुस्तक-लेखन की प्रणाली और भाषा इतनी उत्तम और प्रभावोत्पादक है कि, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को पढ़नी चाहिए। २०० पृष्ठ की सचित्र और उत्तम सजिल्द

विद्या-विनोद-ग्रन्थ-माला की विख्यात पुस्तकें

पतिगतप्राणा मेहरुन्निसा सतीत्व धर्म को खूब पहचानती थी। पर हाय, उसका रूप ही उसका काल हुआ! वह अबला जहाँगीर के अन्तःपुर में लाई गई। उसने सम्राट् को अपना मुँह तक दिखाना उचित नहीं समझा। जहाँगीर ने क्षोभ और क्रोध से उसकी उपेक्षा की। मेहरुन्निसा ने दुखी होकर अपनी प्यारी सखी कल्याणी के आग्रह से सम्राट् की सम्राज्ञी होना स्वीकार कर लिया। फिर भी सम्राट् ने उपेक्षा की। एक दिन मेहरुन्निसा ने अत्यन्त दुखित होकर, बड़े ही करुणापूर्ण शब्दों में कहा—"आज सभी शान्त होकर सो रहे हैं। बाँदियों को आनन्द मनाने के लिए कह चुकी हूँ। इसकी अपेक्षा और सुन्दर सुयोग कहाँ मिलेगा! आज मरूँगी। हे जगदीश्वर! हे दयामय! हे अशान्ति की गति! तुम साक्षी हो। यह अविश्रान्त दुख अब नहीं सहा जाता। अब यह घृणित अवस्था अच्छी नहीं लगती। कहाँ हो तुम हृदयेश्वर! बड़े आदर के साथ हृदय में रखते थे—एक पहर के लिए भी मुझे न छोड़ते थे! आज तुम्हारी समाधि के पास सुख के साथ वर्द्धमान में नहीं मर सकी। यही बड़ा दुख है। और तुम दुनिया के बादशाह, असीम क्षमताशाली दिल्लीश्वर! तुम्हारी करुणा को धन्य है! तुम्हारे प्रेम को धन्य है! तुम्हारे मनुष्यत्व को धन्य है!"

आत्माभिमानिनी वैधव्य-दुख-कातरा, प्रताड़िता हताशी

मेहरुन्निसा का यह करुण-रस-पूर्ण चरित्र एक बार दिल को दहला देता है। इसके पश्चात् यह उदात्त-चित्ता मेहरुन्निसा सम्राट् की प्रेयसी और श्रेयसी बनकर किस प्रकार नूरजहाँ के नाम से भारत की सम्राज्ञी बनी—ये सब घटनाएँ इस उपाख्यान में बड़े ही कवित्वपूर्ण शब्दों में वर्णित हैं। प्रत्येक रमणी को इस रमणी-रत्न का चरित्र पढ़कर अपूर्व लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

*
* *

स्मृति-कुञ्ज

(छप रही है)

[लेखक "एक निर्वासित ग्रेजुएट"]

नायक और नायिका के पत्रों के रूप में यह एक दुःखान्त कहानी है। प्रणय-पथ में निराशा के मार्मिक प्रतिघातों से उत्पन्न मानव-हृदय में जो-जो कल्पनाएँ उठती हैं और उठ-उठ कर चिन्ता-लोक के अस्फुट साम्राज्य में विलीन हो जाती हैं—वे इस पुस्तक में भली-भाँति व्यक्त की गई हैं। हृदय के अन्तः प्रदेश में प्रणय का उद्भव, उसका विकास और उसकी अविरत आराधना की अनन्त तथा अविच्छिन्न साधना में मनुष्य कहाँ तक अपने

विद्या-विनोद-ग्रन्थ-माला की विख्यात पुस्तकें

जीवन के सारे सुखों की आहुति कर सकता है, य बात इस पुस्तक मे एक अत्यन्त रोचक और चित्ताकर्षक रूप से वर्णन की गई है। जीवन-संग्राम की जटिल समस्याओं मे मानवी उत्कण्ठाएँ किस प्रकार विधि के कठोर विधान से एक अनन्त अन्धकार मे अन्तर्हित हो जाती हैं एवं चित्त की सारी सञ्चित आशाएँ किस प्रकार निराशा के भयानक गह्वर मे पतित हो जाती हैं—इनका जो हृदय-विदारक वर्णन इस पुस्तक मे किया गया है, वह सर्वथा मौलिक एवं नवीन है। आशा, निराशा, सुख-दुख, लाञ्छन, उत्सर्ग एवं उच्चतम आराधना का सात्त्विक चित्र पुस्तक पढ़ते ही कल्पना की सजीव प्रतिमा में चारों ओर दीख पड़ने लगता है। फिर भी यह पुस्तक मौलिक और हिन्दी-संसार के लिए नवीन उपहार है। यह एक अनन्त रोदन का अनन्त सङ्गीत है, जो प्राय: प्रत्येक भावुक हृदय मे व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप मे [illegible] [illegible] [illegible] या तो आजीवन बजता रहता है अथवा कुछ [illegible] पर्यन्त [illegible] पुन: विस्मृति के विशाल साम्राज्य मे अन्तर्हित हो जाता है। इस पुस्तक मे व्यक्त वाणी की अनुपम [illegible] [illegible] [illegible] के उच्चतम सङ्गीत का एक हृदयग्राही [illegible] है [illegible] पुस्तक हाथ मे लेते ही आप इसे बिना पढ़े नहीं छोड़ सकेंगे [illegible] हिन्दी-संसार मे यह पुस्तक एक क्रान्ति उपस्थित कर देगी।

पुस्तक का मूल्य [illegible] [illegible] होगा।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

प्रचुर धन-व्यय करते हैं, किस प्रकार वे अपनी वामाङ्गना षोडशी नवयुवती नवल लावण्य सम्पन्ना के कोमल अरुण वर्ण अधरों का सुधा रस शोषण करने की उद्भ्रान्त चेष्टा में अपना विष उसमें प्रविष्ट करके, उस युवती का नाश करते हैं, किस प्रकार गृहस्थी के परम पुनीत प्राङ्गण में कौरव-काण्ड प्रारम्भ हो जाता है, और किस प्रकार ये वृद्ध अपने साथ ही साथ दूसरों को लेकर डूब मरते हैं, किस प्रकार उद्भ्रान्ति की प्रमत्त सुखद कल्पना में उनका अवशेष ध्वंस हो जाता है—यह सब इस उपन्यास में बड़े मार्मिक ढङ्ग से अङ्कित किया गया है। 'चाँद' के अनेक मर्मज्ञ पाठकों के निरन्तर अनुरोध से यह पुस्तकाकार में प्रकाशित किया गया है।

प्रचार की दृष्टि से इसका मूल्य लगभग २) रु० रक्खा जायगा। शीघ्रता कीजिए। विलम्ब करने से पछताना पड़ेगा।
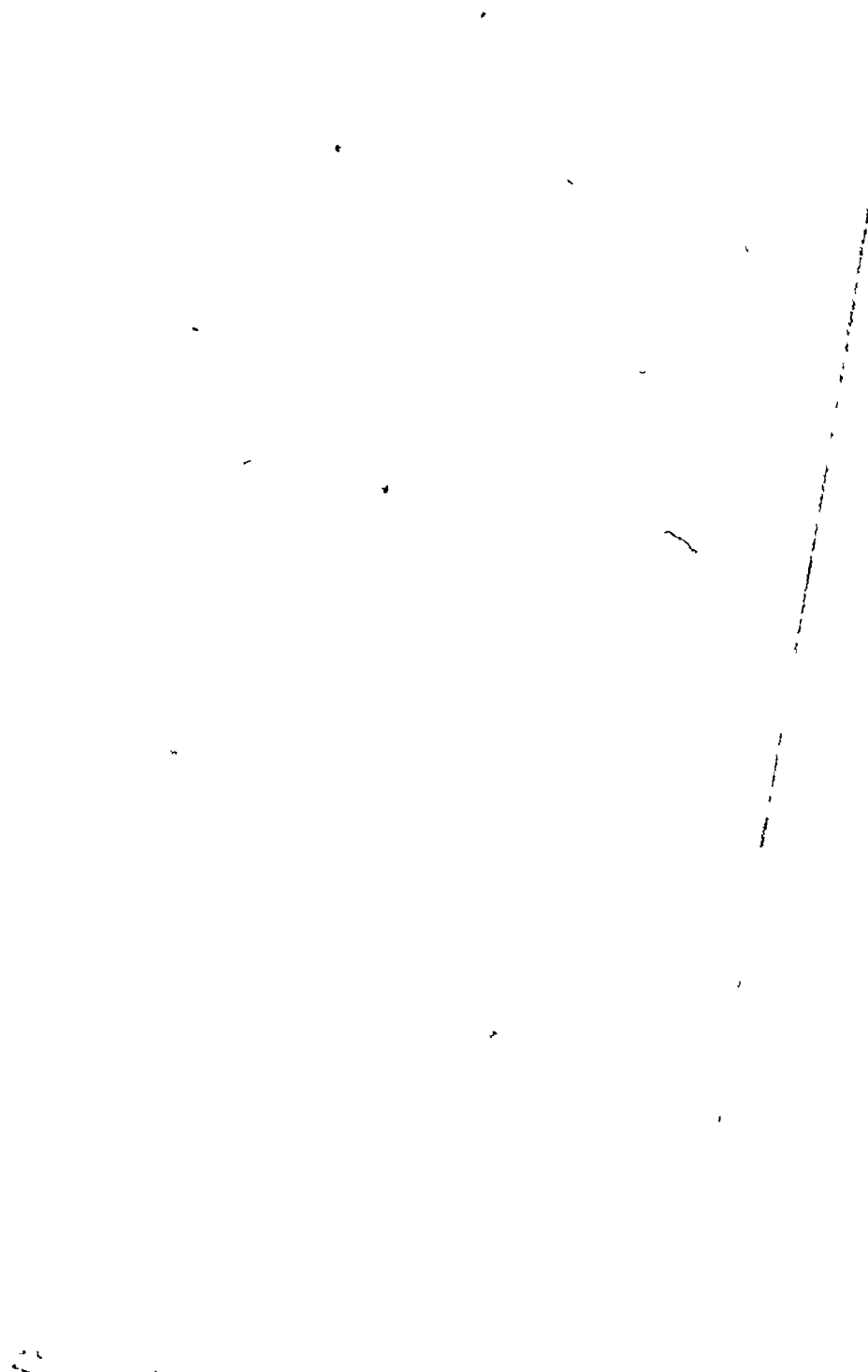
विना मूल्य ! अमूल्य उपहार !!

सात्विक जीवन

लेखक—

श्री० रावबहादुर सेठ गोवर्द्धनदास जी मोहता,
ओ० बी० ई० के सुयोग्य पुत्र

श्री० सेठ रामगोपाल जी मोहता

मोहता जी अनन्य समाज-सुधारक और देश का कल्याण चाहने वाली आत्माओं में से हैं। आपने केवल परोपकार की सद्भावना से प्रेरित होकर ही १०० पृष्ठ की यह सुन्दर पुस्तक लिखी है। दार्शनिक जैसे गम्भीर विषय पर ऐसी सरल और सुन्दर पुस्तक हिन्दी मे अब तक प्रकाशित नहीं हुई थी। जो लोग सात्विकता के उपासक हों, जिन्हें सात्विक जीवन से प्रेम हो और गीता के उपदेशों का सुन्दर आस्वादन करना चाहते हों, केवल ऐसे लोगों के पास, दो आने का टिकट डाक-खर्च के लिए आने से, पुस्तक मुफ्त भेजी जावेगी। जो सज्जन रजिस्ट्री से मँगाना चाहें, उन्हें चार आने का टिकट भेजना चाहिए। पुस्तकालयों को भी पुस्तक मुफ्त दी जायगी। निम्न-लिखित पतों में से पुस्तक चाहे जहाँ से मँगाई जा सकती है:—

(१) श्री० सेठ रामगोपाल जी मोहता,
बीकानेर (राजपूताना)

(२) व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,
इलाहाबाद

फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज ('चाँद' का प्रेस) इलाहाबाद से छपकर प्रकाशित

पॉलिसी और उन्नति !!

"कटुतामें पटुता मिली, है हित-मधु फल नीम ।
दल है नर-दुख-दलन-रत, फल है फलद अनीम ॥"
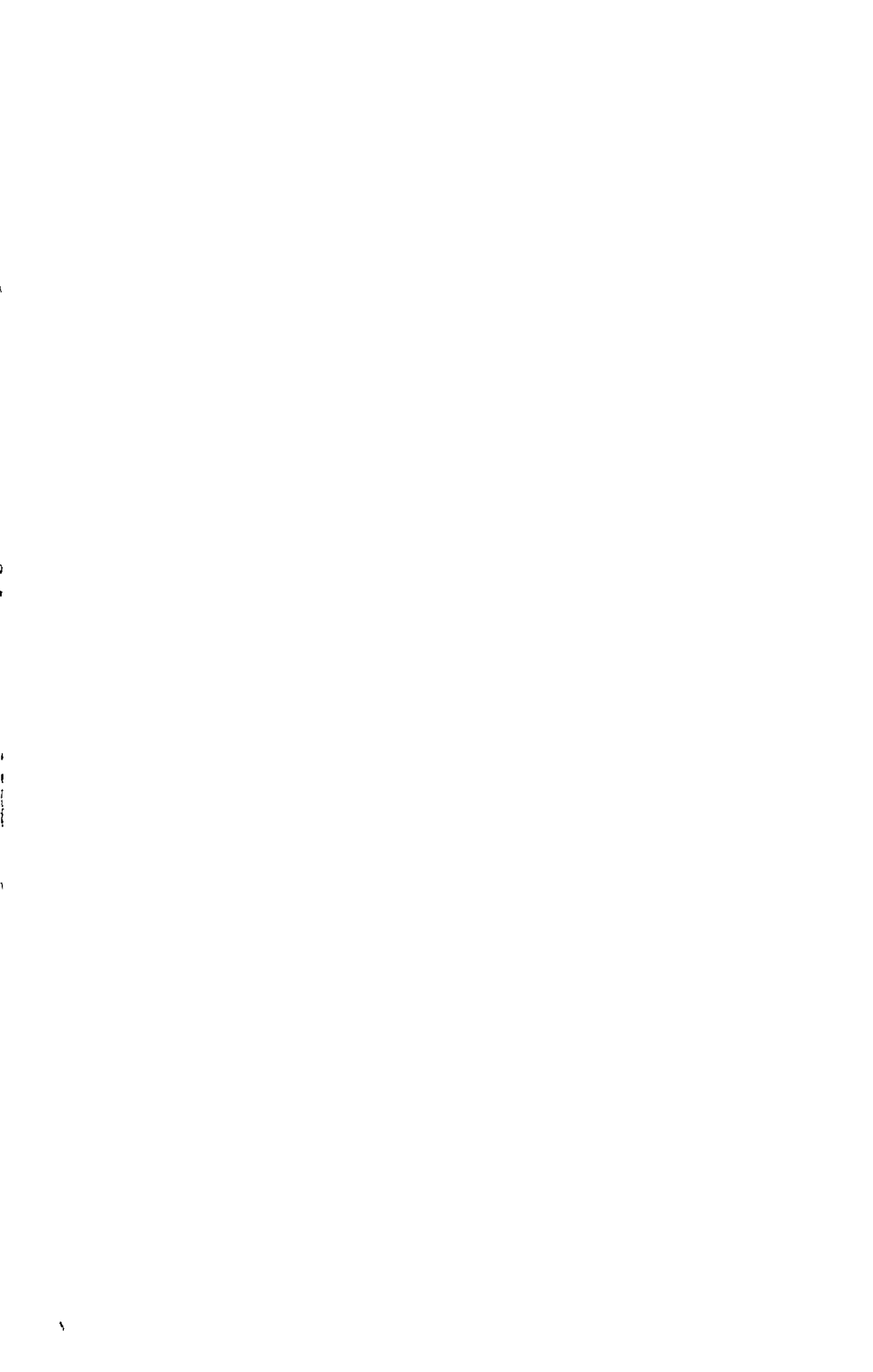
—हरिऔध

लेखक —

रामलोचनप्रसाद 'विशारद'

॥ ओ३म् ॥

पॉलिसी और उन्नति !!

"सत्यमेव जयते नानृतम् ।"

"... may languish, but cannot Pe[illegible]"

लेखक और प्रकाशक—

रामलौटनप्रसाद् "विशारद्"

आर्य्य-भवन बीकानेर

[illegible] दिसम्बर सन् १९२८ ई०

पहली बार

प्रकाशक—
रामलौटनप्रसाद "विशारद"
आर्य्य-भवन, बीकानेर।

मुद्रक—
किशोरीलाल केडिया
वणिक् प्रेस
१, सरकार लेन, कलकत्ता।

ईश-प्रार्थना

हे प्रभो! तुम तेजमय हो तेजमय जग कीजिये,
हो अटल सब सत्य पथ पर दिव्य दृष्टी दीजिये।
सत्य-पथ परसे डिगानेके लिये परमात्मा!
कोई भी शक्तिसे हमको जगमें किंचित भय न हो।
न्यायके आगे हमारा आपही सिर जा झुके,
पर प्रभो! अन्यायकी तोपोंका हमको डर न हो।
पापका फल पापियोंको होय निर्दय दीजिये,
जो क्षमाकी याचना पर दण्ड उनका टालिये।

ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

रामलोटनप्रसाद।

भूमिका

आजकलकी परिपाटी यह है कि चाहे दो ही पृष्ठकी पुस्तिका क्यों न लिखी जाय परन्तु उसमें भूमिकाकी आवश्यकता होती है। यह परिपाटी अच्छी हो अथवा बुरी इस वाद-विवादका यहाँ समय नहीं। किन्तु हिन्दीमें भी इस प्रणालीके प्रचलित होनेके कारण मैं भी उसकी रक्षा-हेतु कुछ लिखना आवश्यक समझता हूँ।

आधुनिक समयमें उपन्यासोंके पढ़नेका बहुत शौक़ हो रहा है और अशिक्षित ही नहीं, किन्तु शिक्षित पुरुष भी उसीमें अपना समय बिताते हैं। उपन्यासोंकी घटनाएं चाहे सत्य न हों, किन्तु समाजमें कलियुगी प्रचार होनेके कारण सत्यसी प्रतीत होती हैं। प्रस्तुत पुस्तिका उपन्यास नहीं, किन्तु सच्ची घटना और व्यवहारका जीता-जागता चित्र है। यह पुस्तिका किसी पुस्तकके आधारपर नहीं लिखी गयी है, इसलिये यदि इसमें पाठकोंके लिये मनोरंजनकी सामग्री न हो तो कोई आश्चर्य नहीं; क्योंकि सच्चे वृत्तमें मनोरंजकताका अंश नहीं होता, किन्तु उसमें प्रभाव अवश्य होता है।

प्रातःकालीन सूर्यकी प्रभापूर्ण किरणें, सोमदेव का शीतल, शान्तमय प्रकाश और सन्ध्याकी सुखद सुगन्धयुत समीरके [illegible] अभिलाषी आजकल प्रायः दिखायी देते हैं। परन्तु वे [illegible] उत्पात तरङ्गों और घोर वर्षाकी [illegible] व [illegible]

विक रमणीयता (निस्तब्धता) का आनन्द उठानेमें असमर्थ होते हैं, क्योंकि प्रकृतिके आनन्दमें प्रवेश करने अथवा मनुष्य-की विविध लीलाओंको जाँचनेकी उनमें या तो, योग्यता नहीं होती या यों कहना चाहिये कि वे जानबूझकर ही इस ओरसे अनभिज्ञ रहा करते हैं।

संसारमें पशु-पक्षी और स्वयं मनुष्य भी एक व्यापक नियमका प्रत्यक्ष स्वरूप है। और सब वस्तुओंका एक ही बन्धन है जिसके हम सब अधीन हैं। वह बन्धन केवल स्वतंत्रताका तत्व है जिसके दूसरे स्वरूपको यदि परमात्माके नामसे कहा जाय तो अनुचित न होगा। सांसारिक जीवन व्यतीत करने-के लिये प्राणीमात्रको इसकी अनिवार्य आवश्यकता है, परन्तु आधुनिक समयमें स्वेच्छाचार और अत्याचारको भ्रमवश "स्वतंत्रता" कहने लगे हैं जो सर्वथा विपरीत है। स्वतंत्रता किसीके अधिकार छीनने या ईश्वरीय आज्ञोल्लंघन करनेकी शिक्षा नहीं देती और न अन्यायपूर्वक ग़ुलामी (दासता) की बेडियो-में आततायीकी भाँति किसीको जकड़ना चाहती है, वरन् इसको घोर महापाप बतलाती है; क्योंकि दुःख, दरिद्रता तथा अवनति आदि समस्त सांसारिक क्लेशोंका मूल कारण केवल स्वच्छन्दता तथा स्वेच्छाचारिता ही हुआ करती है। स्वतंत्रता-का व्यवहार सुख, उन्नति तथा समृद्धिका राज्य स्थापित कर देता है, जो चिरस्थायी और शान्तिमय रहा करता है। जहाँ यह नहीं होती वहाँ ख़ूनकी नदियाँ बहती हैं, सिविल वॉर (घरेलू

झगड़े) और अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। चीनमे रक्तपात, फ्रान्सकी राज्यक्रान्ति और रूसमे खूनकी नदियोंका बहना स्वतंत्रताके अभावहीका कारण था और भारतकी वर्तमान दुर्दशा तथा अशान्तिका भी यही एकमात्र प्रधान कारण है। उन्नत जातियोंका इतिहास इस सिद्धान्तका साक्षी है। अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें अमेरिकाके उपनिवेशोंने भी स्वेच्छाचारपूर्ण शासनसे बचनेके लिये इसीकी आराधना की थी।

स्वतंत्रताका अभाव केवल तभी होता है जब मनुष्य धर्म-[illegible] तथा कर्त्तव्यहीन हो जाता है और यह अभाव केवल अशिक्षा तथा कुशिक्षाका ही हुआ करता है। इसलिये यदि कोई संस्था अथवा जाति स्वतन्त्रताके शिखरपर चढ़ना चाहती है तो उसका कर्त्तव्य है कि वह शिक्षारूपी पहली सीढ़ीपर [illegible] पैर जमाये और फिर कर्त्तव्यरूपी दूसरी सीढ़ीपर सावधानीसे पैर रक्खे। क्योंकि सीढ़ियोंपर असावधानी करनेका फल यही होगा कि बजाय ऊपर चढ़नेके अकस्मात् नीचे गिर पड़ेगा और [illegible] चढ़नेका साहस कदापि न हो सकेगा।

उपर्युक्त बातोंको ध्यानमे रखते हुए मैंने इस पुस्तिकाको [illegible] समक्ष रखनेकी धृष्टता की है और इसमें यही दिखलानेकी चेष्टा की है कि नींवके बिगड़नेसे उसपर अच्छी [illegible] नहीं उठायी जा सकती, और न जड़ खोखली होनेसे [illegible] सकता है।

[illegible] आशा है कि पाठकगण मेरी इस धृष्टतापर ध्यान न

देते हुए पुस्तिकाको आद्योपान्त पढ़नेका कष्ट उठावेंगे और यदि इससे पाठकोंको कुछ भी लाभ हुआ तो मैं अपने प्रयत्नको सफल समझूँगा।

इन तमाम बातोंके लिये मैं श्रीमान् मेजर-जेनरल, हिज़ हाइनेस, महाराजाधिराज, राजराजेश्वर, नरेन्द्रशिरोमणि, श्री सर गङ्गासिंहजी बहादुर, जी० सी० एस० आई, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० वी० ओ०, जी० वी० ई०, के० सी० वी०, ए० डी० सी०, एलएल० डी० श्री जय जङ्गलधर बादशाह श्री बीकानेर-नरेशको, जिनकी छत्रछायामे मुझे अपने विचारोंको निर्विघ्नतापूर्वक प्रकट करनेकी स्वतंत्रता मिली हुई है, कोटिशः हार्दिक धन्यवाद देते हुए ईश्वरसे प्रार्थी हूँ कि श्रीअन्नदाताजी, श्री महाराज कुमार साहिब बहादुर तथा दुलारे श्री भँवरजी साहिब बहादुर आदि सकुटुम्ब चिरायु हों और अपने शान्तिमय शुभ साम्राज्यमें धार्मिक तथा सामाजिक स्वतंत्रताकी उत्तरोत्तर वृद्धि कर तथा प्रजाको कृतार्थ कर स्वर्गानन्द प्रदान करें।

अन्तमें यद्यपि मैं धनवान नहीं हूँ तथापि ऐसा कृपण भी नहीं हूँ कि अपने कृपालुओंको धन्यवाद (Thanks) दिये बिना रहो सकूँ कि जो आधुनिक सभ्यताका सबसे बड़ा पुरस्कार है

रामलौटन प्रसाद।

पॉलिसी और उन्नति

सग तथा पॉलिसीयुत उपदेशका प्रभाव !

मन्थरा और कैकयी

हाव-भाव तथा कथापर पूर्ण ध्यान !!

समर्पण

आनन्दकन्द, सच्चिदानन्द, नन्दनन्दन, कंस-निकन्दन व्रजचन्द्र, यदुपते, कृष्णमुरारे! तूने स्वेच्छाचारिता और निरंकुशताको समूल नष्ट करनेहीके लिये इस भारत-भूमिको अपना क्रीडा-स्थल बनाया था। आज तेरी उस पवित्र जन्मभूमिकी दुर्गति तुझसे छिपी नहीं है, फिर भी न जाने क्यों तू इसकी सुधि नहीं लेता है।

भगवन्! आज तो पापीने, स्वेच्छाचारिता और निरंकुशताको पॉलिसीके आवरणमें ढक तुझे मिटानेका साहस कर, अशान्ति और क्रन्दन मचा रक्खा है। ऐसी ही पॉलिसीका नग्न स्वरूप दिखानेहीके लिये यह पुस्तिका टूटे-फूटे शब्दोंमें लिखी गई है जो तेरे सिवाय और किसको समर्पण की जाय? अतः यह तुच्छ भेंट स्वीकार कर कृतार्थ कर! त्वदम्।

सत्य-दर्शनाभिलाषी —

रामलोटनप्रसाद

पॉलिसी और उन्नति

सग तथा पॉलिसीयुत उपदेशका प्रभाव !

मन्थरा और केकयी

हाव-भाव तथा कथापर पूर्ण ध्यान ॥

समर्पण

आनन्दकन्द, सच्चिदानन्द, नन्दनन्दन, कंस-निकन्दन, व्रजचन्द्र, यदुपते, कृष्णमुरारे ! तूने स्वेच्छाचारिता और निरंकुशताको समूल नष्ट करनेहीके लिये इस भारत-भूमिको अपना क्रीड़ा-स्थल बनाया था। आज तेरी उस पवित्र जन्मभूमिकी दुर्गति तुझसे छिपी नहीं है, फिर भी न जाने क्यो तू इसकी सुधि नहीं लेता है।

भगवन् ! आज तो धींगोंने, स्वेच्छाचारिता और निरंकुशताको पॉलिसीके आवरणसे ढक खुले खेलनेका साहस कर, अशान्ति और ऊधम मचा रक्खा है। ऐसी ही पॉलिसीका नग्न स्वरूप ससारको दिखानेहीके लिये यह पुस्तिका टूटे-फूटे शब्दोंमें लिखी गयी है जो तेरे सिवाय और किसको समर्पण की जाय? अतः यह तुच्छ भेंट स्वीकार कर कृतार्थ कर ! इत्यलम्।

सत्य-दर्शनाभिलाषी—

रामलौटनप्रसाद।

चित्र-परिचय

इस चित्रके देनेका केवल यही अभिप्राय है कि कुटिल नीति एक सच्चे और आदर्श व्यक्तिको कर्त्तव्य-पथसे विचलित कर सकती है और जिस देश, जाति, संस्था अथवा समाजने इसका सादर प्रचार होता है वह अवश्यमेव महाराजा दशरथ जैसे महा प्रतापी वीरकी भाँति नष्ट होनेसे नहीं बच सकता। इस पुस्तिकाके पढ़नेसे भी समय समयपर पाठकोको इसका दिग्दर्शन होता रहेगा। इसी सिद्धान्तानुसार पण्डितोंने अपने पूर्णानुभवद्वारा यह सर्वसाधारणके हितार्थ स्पष्ट घोषणा कर दी है :—

"Better alone than in ill company"

अर्थात्

"वरु भल वास नरक कर ताता।
दुष्ट सग जनि देहिं विधाता ॥"

—महात्मा तुलसीदासजी।

पॉलिसी और उन्नति
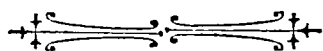
काण्ड १

अवनतिका मूल कारण
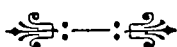
संसारमें जिस वस्तुको देखा जाय नियमबद्ध प्रतीत होती है और तमाम जीव प्राकृतिक नियमोंके अधीन हो अपने अपने कर्त्तव्योंका पालन कर रहे हैं। इसीसे यह संसार-चक्र पूर्ण रूपसे नियमानुकूल चलता हुआ दिखायी दे रहा है।

जब कोई वस्तु प्राकृतिक नियमोंसे हटती है तो तरह तरहकी बाधाएं उपस्थित हुआ करती हैं। उदाहरणार्थ, जब पृथ्वी अपनी धुरीपरसे घूमती घूमती कुछ भी हटती है तो किसी न किसी सितारेसे टकराकर उसकी गतिमे केवल अन्तर ही नही पडता किन्तु भूकम्प होकर शहरके शहर और लाखो जीव जन्तु नष्ट हो जाते है। इसका मुख्य कारण केवल यही है कि जब कभी कोई जीव या वस्तु प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करना चाहती है तो प्रकृति उसको नियमपर लानेके लिये अनेक चेष्टाएँ करती है और यदि चेष्टापर भी नियमानुकूल न होवे तो उस वस्तुको नष्ट करनेके लिये बाध्य होती है। सासारिक उन्नति और अवनति इसी अटल नियमके अधीन है।

इसी तरह जब कभी कोई देश उन्नतिके शिखरपर चढ़ता है और अपनी कीर्ति संसारको दिखलानेका सौभाग्य प्राप्त करता है तो उसको प्राकृतिक नियमोंका पालन अवश्य करना पड़ता है और जब कोई देश प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करने लगता है तो वह देश उन्नतिके शिखरपर चढ़नेके बजाय शीघ्र ही रसातलको पहुच जाता है। इतिहास ही मनुष्योंका पथ-प्रदर्शक हो सकता है। उसके देखनेसे विदित होता है कि किसी देश, जाति, समाज अथवा सोसाइटी आदिकी जब कभी उन्नति हुई है तो उसका एकमात्र कारण यही था कि वे प्राकृतिक नियमोंका पूर्ण रूपसे पालन करती थीं अर्थात् कर्त्तव्यपरायणता और अपनी इच्छाओंको प्राकृतिक नियमोंके अधीन रखकर कार्यरूपमे परिणत होती थीं। इसका परिणाम यह होता था कि उनमें प्रेम, संगठन, सहनशीलता और ईमानदारी अंकुरित ही नहीं किन्तु पूर्ण रूपसे फलान्वित हो जाती थी और जहाँ कहीं कर्त्तव्यहीनता अथवा स्वेच्छाचारिताका आदर तथा प्रादुर्भाव हो जाता था वहीं देश, समाज और जाति गिरने लग जाती थी।

इङ्गलिस्तानका इतिहास हमको बतलाता है कि जबतक वहांके राजा और प्रजा अपने अपने कर्त्तव्य-पालनमे तत्पर रहे उनमें प्रेम, संगठन और सहनशीलता बढ़ती रही परन्तु जब कभी एलिज़बेथ तथा आठवें हेनरी जैसे अनाचारी, स्वेच्छाचारी और कर्त्तव्यहीन राजा होने लगे तो प्रजामें उनका ही नहीं वरन् आपसका भी प्रेम और संगठन टूट गया और इसका परिणाम

यह हुआ कि वहाँ फूटकी अग्नि भभककर प्रज्वलित हो गयी और हंड्रेडइयर्स वॉर (Hundred year's war) वॉर्स आव रोजेज़ (wars of Roses) तथा सेविनइयर्स वॉर (Seven year's war) आदिके नामसे लड़ाइयाँ होने लगीं, उनको उन्नति धीरे धीरे नष्ट हो गयी, प्रेम और संगठन जाता रहा, उष्णता तथा स्वेच्छाचारिताकी मात्रा अधिक बढ़ गयी, सहनशीलता जाती रही और फिर लड़ाइयोंद्वारा वे धनहीन, बलहीन, शक्तिहीन तथा मनुष्यहीन हो गये। इसी तरहसे भारतवर्षमें जब जब राजा रामचन्द्रजी आदि जैसे प्राचीन कालमे अथवा बाबर आदि जैसे कलियुगमें राजा हुए तो देशमे प्रेम और संगठन होने लगा और जब हिरण्यकशिपु, कंस, अकबर तथा औरंगजेब आदि जैसे अनाचारी, स्वेच्छाचारी और कर्त्तव्यहीन राजा हुए तो प्रजामें वही अशांति उत्पन्न हो गयी कि जिसने राज्योंका अन्त कर दिया।

देशों और राज्योंपर ही निर्भर नहीं किन्तु प्रत्येक वस्तुके नियमानुकूल होनेसे ही शांति स्थापित रह सकती है। यदि कोई सिपाही शत्रुके समक्ष आकर कर्त्तव्यहीन होता है अर्थात् शत्रुके बल या पराक्रमसे भयभीत होकर भागनेकी चेष्टा करता है तो उस सिपाहीके कर्त्तव्यहीन होनेसे सारी सेनामें अशांति छा जाती है और भगदड़ पड़ जाती है। इसी तरहसे जब कभी कोई घोड़ा लड़ाईमें भयभीत हो भाग उठता है तो सवार कितना ही बहादुर तथा निर्भीक क्यों न हो उसकी कीर्ति धूलमें मिल जाती

है और उसकी सेना भी इस बदनामीसे नहीं बच सकती। सारांश यह है कि कर्त्तव्यपरायण मनुष्य ही उन्नति नहीं करता वरन् मनुष्यसे संसर्ग रखनेवाले पशु आदिकोंका प्रभाव भी मनुष्योंपर पड़े बिना नहीं रहता। इसीलिये यह कहा गया है कि जीवमात्रको प्राकृतिक नियमोंके अधीन हो अपने अपने कार्योंको करना चाहिये। तमाम मतों, सभ्यता अथवा क़ानूनका सार यही है कि प्राणीमात्रको केवल अपने कर्त्तव्यका पालन करना ही श्रेयस्कर है।

सांसारिक जीवों और वस्तुओंके अधीन होकर जब देश और राज्य बनते और बिगड़ते, ग्राम तथा शहर आदि मनुष्योंके कर्त्तव्यद्वारा ही बसते और उजड़ते हैं तो संस्थाएं भी इन्हीं नियमोंके अधीन बन और बिगड़ सकती हैं अर्थात् जिस देशके मनुष्योंमें कर्त्तव्यपरायणता होती है और जो अपनी इच्छाओंको प्राकृतिक नियमोंके अधीन बनाये रखते हैं वहां पारस्परिक प्रेम, संगठन और सहनशीलताकी मात्रा बढ़ जानेके कारण नये नये विचारोंकी सभाएँ, समाजें तथा संस्थाएँ खुलती हैं और देशमें कुरीतियोंके निवारण करनेकी चेष्टाएँ करती हैं और इस तरहसे अपने देश तथा अपने राज्यको अन्य देशों और राज्योंके मुकाबिलेमें उठाती ही नहीं वरन् उनको उन्नतिके शिखरपर ले जाती हैं। इन्हीं कारणोंसे भारतवर्ष कभी तमाम देशोंका गुरु तथा पथ-प्रदर्शक माना जाता था और ऐसी ही समाजों तथा सोसाइटियोंद्वारा अलक्षेन्द्र (सिकन्दर) आदि राजा पैदा हुए।

परन्तु जब सोसाइटियो, समाजों अथवा संस्थाओंमें स्वेच्छा-चारिताकी मात्रा बढ़ जाती है और वे कर्त्तव्यहीन हो जाती है तो वे स्वयं ही नही किन्तु अपने देश, अपनी जाति तथा अपने संरक्षकोको भी ले डूबती हैं। उदाहरणार्थ, जब योरपमें पोपने अपनी स्वेच्छाचारिताको बढ़ाकर कर्त्तव्यहीन होना आरम्भ कर दिया तो ईसाई मतका वह आदर जो पहले था मनुष्योके हृदयोसे जाता रहा। पहले लोग विश्वासान्ध होकर हज़ारो और लाखोकी वस्तुएँ, इस विचारमें निमग्न होकर कि उनको वे तमाम वस्तुएँ वैकुण्ठमें प्राप्त हो जावेंगी, दे देते थे किन्तु जब यह ज्ञात हो गया कि यह कार्रवाई केवल पोपकी स्वार्थपरायणतापर निर्भर है और वह नियमानुकूल नही है तो उसके विरुद्ध आन्दोलन होने लगा और उसकी स्वेच्छाचारिताको मिटानेके लिये ऐक्ट् ऑव सुप्रिमेसी (Act of Supremacy) तक पास कर दिया गया। भारत-वर्षमें भी जबतक यह विश्वास था कि ब्राह्मण हमारे सच्चे हितैषी और पथ-प्रदर्शक हैं तो यहाके लोग उनके आज्ञा-पालनमें कोई कसर न रखते थे और धन ही नहीं किन्तु प्राणतक देनेको तैयार रहा करते थे परन्तु जब यह ज्ञात हो गया कि ब्राह्मण-समाजमें स्वेच्छाचारिता और स्वार्थपरायणताका राज्य है तो लोग समाजको सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगे और ऐसा करनेपर ही काशी-करौत अथवा श्रीजगन्नाथजीके बलिदानकी घटनाओंकी पोल खुल गयी और मनुष्योंमें ब्राह्मणोंके प्रति वह श्रद्धा नही रही जो हमारे पूर्वजोमें थी।

संस्थाओंकी भी यही गति है कि जबतक उनके

कर्त्तव्यपरायण और धर्मनिष्ठ रहते हैं बराबर उनकी उन्नति होती रहती है परन्तु जब कभी उनमेंसे कोई भी कर्त्तव्यहीन हो जाता है तो फूट अंकुरित हो जाती है, पार्टी-बन्दियाँ होने लगती हैं और फिर "अपनी अपनी डफ़ली और अपना अपना राग" के अनुसार हर सभासद स्वेच्छाचारिताके अधीन हो अपनी १॥ ईंटकी मस्जिद अलग ही बनाना है। ऐसी अवस्थामें चाहे वह विद्या-प्रचारिणी सभा हो, चाहे नैतिक संस्था हो और चाहे कुरीति-निवारिणी सोसाइटी हो—साराश यह कि कितना ही अच्छा और पवित्र उद्देश्य उस सभाका क्यो न हो, वह माननीय तथा आदरणीय नही हो सकती और जिस तरह किसी सुगन्धित वस्तु अथवा बढ़िया इत्रको किसी गन्दी नालीमें बहानेसे उसका अनादर किया जाता है ठीक यही गति अति पवित्र तथा उच्चादर्श रखनेवाली उन समाजो और संस्थाओकी होती है जिनका प्रचार स्वेच्छाचार, फूट, अकर्त्तव्य, अविवेक, ठकुरसुहाता, चापलूसी तथा पॉलिसी आदि गन्दी नालियोंद्वारा किया जाता है।

किसी वस्तु, जीव अथवा व्यक्तिको अपनी जाति वा वंशपर गौरव नही हो सकता जबतक कि उसमें उस जाति या वंशका अंश न हो। अर्थात् जिस जातिकी वह वस्तु है उसका उस वस्तुमें गुण विद्यमान न हो तो उस वस्तुको उस जातिका सच्चा गौरव कदापि प्राप्त नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ, जिन कुत्तोमे उनके वंश भेड़ियोका सा साहस, बल और फुरती नहीं होती वे कुत्ते

कदापि मान नहीं पाते वरन् टुकड़ोंके लिये मारे मारे फिरते हैं। इसी तरह धूम्र (धुआँ) का कोई मनुष्य यह कहकर कि यह प्रज्वलित अग्निके वंशसे है आदर नहीं करता। अर्थात् यह अटल नियम है कि जिसमे उसकी जाति या वंशके गुण न हों उसका निरादर ही होता है। अभिप्राय यह है कि संस्था केवल वही मान पाती है या मान पानेयोग्य होती है जिसमे उसके उद्देश्योंका व्यवहार कुछ न कुछ अवश्य पाया जाता हो अन्यथा "विष संपृक्तान्नवत् त्याज्यः" (विषयुक्त अन्न त्यागनेके योग्य होता है) के अनुसार लोग उससे घृणा करने लगते हैं और फिर वह संस्था अपने उद्देश्योंसे गिरकर तथा अपने गुणोंको नष्ट करके उस अग्निकी भाँति कि जो बुझनेके पश्चात् अग्नि नहीं किन्तु राख कहलाती है, अनादर पाती है।

भारतवर्षमें अनुराग और वैराग्य अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्ति दो मार्ग प्राचीन कालसे चले आते हैं। यद्यपि दोनो अपना अंतिम उद्देश्य एक ही बतलाते हैं परन्तु उनकी नीति और व्यवहारमे ठीक पूरब और पच्छिमका सा अन्तर है। अर्थात् प्रवृत्ति मार्ग-वाले यह कहते हैं कि संसारमें जबतक किसी वस्तुको भोगा न जावे "जीव" उसका इच्छुक बना रहता है और इच्छुक रहते हुए जीवको मायाकृत (प्राकृतिक) प्रलोभनोंमें पड़ अपनी अव-स्थासे गिरनेकी सम्भावना रहती है। इसलिये प्राकृतिक वस्तु-ओंको खूब भोगना चाहिये ताकि नियमानुसार जीव भोगनेसे उकता जावे और जब वह प्रकृतिसे उकता जायगा तो अवश्य-

मेव उसको ईश्वरमे लीन होना पड़ेगा क्योंकि और कोई वस्तु फिर लीन होनेके लिये शेष नही रह जाती। निवृत्ति मार्गवाले यह कहते हैं कि संसारको त्याग करनेसे ही शांति हो सकती है और जीव मोक्ष पाता है, बिना त्यागके जीव प्राकृतिक बंधनोंसे मुक्त नहीं हो सकता। इसीलिये प्रवृत्ति मार्गवाले संसारको असार नही मानते और उसमें लीन होनेकी चेष्टा करते हैं और निवृत्ति मार्गवाले महादेव-उपासक बन भस्म रमा संसारको असार समझते हैं। अर्थात् प्रवृत्ति मार्गवाले मायाको मुख्य मान ब्रह्मको गौण मानते हैं और इसीलिये वे राधाकृष्ण, सीताराम और गौरीशंकर आदि नामोंका जप करते हैं और निवृत्ति मार्ग-वाले ब्रह्मको मुख्य मान मायाको गौण मानते हैं और इसीलिये वे महादेव, पार्वती आदिका उच्चारण करते हैं। सारांश यह है कि प्रवृत्ति मार्गवाले विष्णुके, कि जो सृष्टिके पालनकर्त्ता कहे जाते हैं, उपासक बन वैष्णव कहलाते हैं और निवृत्ति मार्गवाले महादेवके, कि जो सृष्टिके संहारकर्त्ता कहे जाते हैं, उपासक बन शैव कहलाते हैं। परन्तु प्रवृत्ति मार्गवाले भी दो विचारोंके पाये जाते हैं। एक वह जो कहते हैं कि संसारको भोगते हुए भी अपना न समझकर भोगना चाहिये अर्थात् मालीकी भांति यह समझते रहना कि बाग़ वास्तवमें मेरा नही है, मैं केवल उसकी देखभालके लिये ही भेजा गया हूं, इसलिये उसकी देखभाल रखनी चाहिये। ऐसे विचारको "वैराग्य"के नामसे पुकारते हैं। वेदान्ती इसी विचारके हैं और वैष्णव-सम्प्रदायवाले भी इसीके अनुयायी हैं।

दूसरा विचार यह है कि जब किसी वस्तुको अधिक भोगा जाता है, तो जीव नियमानुकूल उसके भोगसे उकताकर उसके त्यागकी चेष्टा करता है और फिर दूसरी वस्तुमे चित्त लगाता है। इसलिये प्रकृतिको खूब अच्छी तरह भोगना चाहिये ताकि जब कभी जन्म-जन्मान्तरमे जीव इससे उकता जावे, तो ईश्वरमे लीन हो जावे; क्योंकि संसारमे जीवके लिये जो भोगनेवाला है, प्रकृतिके सिवाय, जिसको भोग रहा है, केवल ईश्वर ही भोग्य रह जाता है, और प्रकृतिसे उकता जानेपर ईश्वरमें लीन होनेके अतिरिक्त और कोई थान रह नहीं जाती। इस विचारके माननेवाले प्रायः बहुत पुरुष हैं अर्थात् शाक्तधर्मी और पाश्चात्य देशोंके अनुयायी इसी विचारमें तन्मय हो रहे हैं। इसको "अनुराग" कहते हैं। भारतवर्षमें त्यागकी मुख्यता थी और हर मतमें—जितने उस समयसे पहले थे जब कि पाश्चात्य की मञ्जुल मूर्त्तिने हमारे देशको मोहित न किया था—इसकी मुख्यता मिलती है, चाहे निवृत्ति रूपमें हो चाहे वैराग्य रूपमें। अब जबसे पाश्चात्य-देवीका आराधन हमारे भाई करने लगे हैं उनके मस्तिष्कोंसे त्यागके विचार शनैःशनैः बिलकुल काफ़ूर होते जा रहे हैं।

यह अटल नियम है कि जब किसी एक वस्तुके बहुतसे ग्राहक हो जाते हैं तो उन सबमें आपसमें ईर्ष्या तथा द्वेषादि उत्पन्न होने लगते हैं और त्याग धीरे धीरे अपना बोरिया-बंधना बाँध लेता है। इसी नियमके अनुसार जो मनुष्य अथवा जो समाज वा देश अनुरागमें लीन हो प्रकृति अर्थात् मायाका ग्राहक हो गया

उसमेंसे त्याग, परोपकार और अन्यान्य अच्छे अच्छे गुण—जिनपर भारतवर्षको गौरव था—मिट गये, और उनके स्थानकी पूर्ति ईर्ष्या-द्वेष तथा स्वच्छन्दता आदि दुर्गुणोंसे हो गयी। ऐसी अवस्थामें स्वेच्छाचारिताका बढ़ना और अशान्तिका फैलना अवश्य ही नियमानुकूल है। इस विचारमें लीन होनेसे मनुष्योंमें कर्त्तव्य-परायणता नहीं रहती, झूठा अभिमान उत्पन्न हो जाता है, सहनशक्ति नष्ट हो जाती है और वे छोटी-छोटी बातोंमें विकल या विह्वल हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, जिस देशको सीताजी और अनसूया आदिके पतिप्रेम तथा सतीत्व-रक्षाके विचारोंपर गौरव था उस देशकी आज यह अधोगति हो रही है कि जिसको देख अथवा सुनकर हृदय विदीर्ण हो जाता है, लज्जासे सिर ऊपर नहीं उठाया जाता और यही कहना पड़ता है कि समय बड़ा बलवान है। श्रीमती डा० एनीबेसेन्टने इस देशकी गाथा लिखते हुए लिखा है कि "वे युवतियाँ, जो गलियोंमें भीख माँगती फिरती हैं, अपने पेटकी ज्वालाको शान्त करनेके लिये, दुष्टोंके प्रलोभनमे पड़ अपने अमूल्य सतीत्व-रत्नको नष्ट कर देती हैं।" हाय! कहाँ इस गये-गुजरे कलियुगमे भी, जब मुसलमानोंका साम्राज्य था, पद्मावती जैसी स्त्रियोंका चरित्र मिलता है, और कहाँ यह लज्जास्पद, करुणोत्पादक तथा हृदय-विदारक दुर्दशा दृष्टिगोचर होती है। इतनाही नहीं, किन्तु आजकल समाजमें इसी पाश्चात्य-देवीकी कृपासे ऐसी अवस्था हो गयी है कि मनुष्य, देश और समाजमे, कर्त्तव्यको मुख्य नहीं

किन्तु गौण समझने लगे हैं और चाटुकारी आदिको मुख्यता देने लगे हैं।

हमारे पूर्व महर्षियोंने हमको वतलाया है कि यदि कोई मनुष्य देश, भेष, भाषा, आचार, धर्म, कर्म, सिद्धान्त और विचारपर दृढ़ रहकर स्वतंत्र दृष्टिसे विचार करता रहे तो वह मनुष्य केवल अपना ही नहीं किन्तु अपने कुटुम्ब, अपनी जाति, अपने समाज और अपने देशका भी उद्धार कर सकता है। इसका कारण केवल यही है कि उक्त वातोंपर विचार करनेवाले पुरुषमें प्रेम, सहनशीलता, कर्त्तव्यपरायणता, निर्भीकता, स्वदेशभक्ति, सच्ची राजभक्ति तथा आत्माभिमान आदि उत्तमोत्तम गुण उत्पन्न हो जाते हैं, जो मनुष्यको अमानुषिक पथपर चलनेसे सदैव रोके रहते हैं, और प्राचीन कालसे, हमारे भारतवर्षमें ही नहीं किन्तु अन्य देश देशान्तरोंमें भी, इन्हीं वातोंको देशोन्नतिकी कुंजी माना गया है। सेम्युएल स्माइल्स (Samuel Smiles) साहबने अपनी ड्युटी (Duty) नामक पुस्तकमें विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है कि कर्त्तव्यपरायणतासे ही मनुष्य इस संसारमें उन्नति कर सकता है। हमको संसारमें अनेक ऐसे ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि मनुष्य ही नहीं किन्तु पशु तथा पक्षी आदि भी कर्त्तव्यपरायणताके गुण गाया करते हैं। घोड़ों और कुत्तोंकी एक नहीं सैकड़ों कहानियाँ ऐसी हैं जिनसे प्रतीत होता है कि वे कितने कर्त्तव्यपरायण होते हैं। महाराणा उदयपुरको, जब वह हल्दीघाटीकी लड़ाईमे चारों ओरसे शत्रुओंसे घिर चुके थे और

उनकी सेना मारी जा चुकी थी तब, उनके प्रिय घोड़े "चेतक" ने ही उस लड़ाईसे उनको बाहर सही-सलामत निकाल लिया था। अहह! चेतककी अपने मालिकके प्रति कैसी कर्त्तव्यपरायणता थी, जिससे केवल उसीका नाम जीवित नहीं है किन्तु उसीके कारण महाराणा प्रतापका भी यश विख्यात है, जिन्होंने आर्य्य-गौरव-रक्षाके लिये अनेक कार्य किये, जिनसे वह हिन्दू-पति राणा कहलाये और जिनसे आज प्रायः हिन्दूमात्र और विशेषकर उदयपुरवासी अपनेको भाग्यशाली समझते हैं। इसके धन्यवादका पात्र "चेतक" ही हो सकता है, यद्यपि वह पशु है। इसी तरहसे हाथी, बन्दर, तोता और मैना आदिके भी हमको संसारमें विविध उदाहरण मिलते हैं, जिनके नाम आजतक केवल इसीकारण लिये जाते हैं कि उन्होंने अपने स्वामीके प्रति सच्चे कर्त्तव्यका पालन किया था।

मनुष्योंमें भी ध्रुव, प्रह्लाद, सत्य हरिश्चन्द्र, प्रणवीर महाराणा प्रताप, भामाशाह, वीर बालक (ज़ोरावर सिंह, फ़तह सिंह, हक़ीक़त राय), महर्षि दयानन्द सरस्वती, लोकमान्य तिलक आदि भारतवर्षमें और हजरत मूसा, हज़रत ईसा, हज़रत मुहम्मद, हज़रत इमाम हुसेन, नौशेरवाँ बादशाह, अलक्षेन्द्र (सिकन्दर), महात्मा मेज़नी, महात्मा गैरीवाल्डी तथा महर्षि सुक़रात आदि अन्य देशोंमें ऐसे ऐसे महान् पुरुष हुए हैं जिन्होंने अपने धर्मपर आरूढ़ रहकर अपने अपने कर्त्तव्योंका, जो समयानुकूल उनको उचित प्रतीत हुआ, पालन किया। इसी तरह श्री आदिनाथ,

श्रीपार्श्वनाथ, भगवान गौतम बुद्ध तथा भगवान महावीर स्वामी आदि इसी वास्ते पूजनीय हैं कि उन्होंने सदाचार, सहनशीलता, प्रेम तथा भक्तिमें अपनी दृढ़ता प्रकट की और अपने कर्त्तव्य-पालनमें प्राणपणसे तत्पर रहे।

परन्तु वर्तमान समयकी स्थिति बिलकुल ही विपरीत है, अर्थात् जिन वातोंको समाज अथवा मनुष्यके लिये पहले हानि-कारक माना जाता था, आज उन्हीं वातोंको हितकर बतलाया जाता है। जहाँ पंच-महाव्रत-धारी मुनि और यती (यति) कह-लाते थे वहाँ आज प्रायः पाँच स्त्रियोंको धारण करनेवाले हैं, और जहाँ भगवान वीरके आज्ञानुसार चलनेवाले थे वहाँ कलि महाराजके प्रेरणानुसार अपनी इन्द्रियोंके अनुगामी हो स्वेच्छापूर्ति करनेवाले दीख पड़ते हैं। जहाँ सत्यके लिये प्राण देकर भी दृढ़ रहते थे वहाँ छोटी छोटीसी वातोपर झूठके पुल वाँध देते हैं। जो सत्य वोलनेकी डींगें मारते हैं वे काम पड़नेपर झूठा हलफ़ उठानेमें भी नहीं लजाते, और ऐसा प्रतीत होता है मानो उन्होंने प्राणपणसे पूर्वजोंके विपरीत चलनेकी प्रतिज्ञा ही कर रक्खी है। जहाँ कन्याकी सुसराल के गाँवका पानी पीनेमें भी दोष समझा जाता था वहाँ आज कन्याओंको रुपयेके बदले भेड़-बकरियोंकी तरह वेचकर हीरों (कन्याओं) को पत्थरों (वृद्धों) के गलेसे वाँधते दिखायी देते हैं। जहाँ स्त्रियोंकी ओर आँख उठानेमें भी पाप समझा जाता था वहाँ आज खुल्लमखुल्ला शुभ अवसरोंपर वेश्याओंका नृत्य कराकर उनके हावभाव और

कटाक्षोंके शिकार होते हैं। जहाँ स्त्रियोंको कभी भी स्वच्छन्द रहनेकी आज्ञा न थी वहाँ अब वे नौकरोंके साथ स्वच्छन्दतापूर्वक भ्रमण करती और विचरती हैं। जहाँ स्त्रियाँ पतिव्रता होती थीं वहाँ आज प्रायः पतियोंकी पर्वाह न कर शृङ्गारयुक्त हो मन्दिरों और तीर्थोंमें भटकती फिरती हैं, और उन पवित्र स्थानों मनोरञ्जनालय तथा रङ्गमहल आदि बनानेकी चेष्टा कर रही है जहाँपर सच्चे मित्रों और शुभचिंतकोंका देवताके समान आदर सत्कार किया जाता था वहाँ आज स्वेच्छाचारिता, स्वच्छन्दता तथा हठ (ज़िद) के वशीभूत हो अनेकानेक कुतर्कोंद्वारा उन्होंका पूर्ण अनादर तथा बहिष्कार किया जा रहा है और चापलूसों, धूर्त्तों, लम्पटों, वंचकों तथा चालबाज़ोंका सम्मान किया जाता है। जहाँका वायुमण्डल भगवद्‌-भजन,हरि-कीर्त्तन तथा वेद ध्वनि आदिसे गूँजा करता था, वहाँ आजकल पठित-मण्डली और विशेषकर ऐसे व्यक्ति, जिनका कर्त्तव्य आदर्श बनना है, अर्थात् अध्यापक आदि भी, हसीनों और साक़ीकी यादमे बावले प्रतीत होते हैं, और "इन हसीनोंका लड़कपन ही रहै ऐ अल्लाह !" "मज़ा देते हैं क्या यार तेरे बाल घूँघरवाले !"—"सइयाँ तोरे पइयाँ लागूँ बहियाँ न मरोड़ !"—"करिहइयाँ (कमर) न टूटे हमारि, बेदर्दा ऐ बालमा (प्रियतम) !"—"तोरे रसीले नैना ग़ज़ब ढाहैं !"—"आँखोंमें लाल डोरे कानोमे बालियाँ, हमको ग़रीब जानकर देती हो गालियाँ !"—गोरिया (प्यारी) तिरछी तोरि नज़रिया, करेजवामें मारे बान !" इत्यादि मनोविकारपूर्ण

भ्रष्ट गीतोंकी सत्यानाशी प्रतिध्वनि वायुमण्डलको कलुषित करती हुई दिखायी देती है। आजकलके नवयुवक भी इन दोषोंके शिकार हो रहे हैं। क्या ऐसा कुप्रभाव प्राचीनकालमें भी नवयुवकोंपर डाला जाता था? इसका उत्तर कभी "हाँ" में नहीं दिया जा सकता, और यही कारण है कि पहले नवयुवक गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके पश्चात् स्वर (नाद, शब्द) का आनन्द भोगते और देशहितकी नई नई बातें विचारते थे; परन्तु आजकल गृहस्थाश्रमको गरिष्ठाश्रम बनाकर स्वयं नरक भोगते हैं और देश तथा जातिको उठानेके बजाय रसातलको ले जाते हैं। जो लोग सार्वजनिक सभा-मंचोंपर खड़े होकर लम्बे-लम्बे हृदय-विदारक भाषण देते हैं और समाचारपत्रोंके कालमोंमें बड़े बड़े लेख छपाते हैं, प्रायः उन्हींके चरित्रोंको जब देखा जावे तो आदर्श तथा उद्देश्यसे कोसों दूर पाये जाते हैं। जो लोग प्लैटफ़ार्मों (Platform) पर खड़े हो गला फाड़-फाड़कर तम्बाकू तथा अन्य मादक वस्तुओंकी निन्दा करते हैं अर्थात् उनके गुणावगुणोंका विविध प्रमाण तथा युक्तियोंद्वारा दिग्दर्शन कराते हैं, वे ही कहीं तो शराबमें मस्त नज़र आते हैं, कहीं भंग-भवानीकी उपासना करते हुए पाये जाते हैं, कहीं मूँछोंपर हाथ फेरते हुए जर्दे और पानके डब्बे लिये फिरते हैं, कहीं दफ़्तरोंमें सभ्यतापूर्वक आसनारूढ़ हो (कुर्सीपर बैठ तथा मेज़पर पाँव फैलाकर) सुरती देवीकी (कुछ भाग हाथमें ले फाँकनेकी तय्यारी कर तथा कुछ भाग सरकारी काग़ज़ोंपर रखकर) भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए

दृष्टिगोचर होते हैं, और प्राक्टिकल-मैन (practical man) बननेकी चेष्टा कर रहे हैं , कहीं काँग्रेस-मैन (Congress man) के आदर्श (माँग फाड़े, नंगे सिर, ज़र्दा-पान चाबे अर्थात् पूर्ण व्यसनी) बन भारतवर्षको ग़ुलामीकी जंजीरसे मुक्त करने-के लिये भ्रमण कर रहे हैं, और धुआँ निकालनेमें तो उनका मुंह जी० आई० पी० रेलवे-एंजिनको भी मात करता है। इन्हीं सभ्य तथा आदर्श पुरुषोंकी देखादेखी स्त्रियाँ तथा बच्चे भी धड़ा-धड़ इन्हीके रङ्गोंमें रँगे जा रहे हैं।

ये सब दोष क्यों हैं ? इसका उत्तर यदि विचारपूर्वक दिया जाय तो यही हो सकता है कि वही समाज अथवा देश उन्नति-शील कहला सकता है जिसके निवासी केवल ग्रेजुएट अथवा पाश्चात्य रङ्गमे रँगे हुए विद्वान् न हों, किन्तु सुशिक्षित हो। शिक्षा हीके द्वारा मनुष्य उच्च कोटिका हो सकता है और लोक-परलोक-का सुख पा सकता है। शिक्षाकी ज्योति जगमगाते हुए सूर्यकी नाईं छिपायी नहीं जा सकती। शिक्षाके विना कोई ज्ञान नहीं हो सकता, और विना ज्ञानके मोक्ष मिलना दुर्लभ ही नहीं किन्तु असम्भव है, और अशिक्षित होनेसे कोई भी इस लोकमे माननीय नही हो सकता।

परन्तु शिक्षा क्या वस्तु है,वह कैसे प्राप्त होती है, और वर्त्त-मान समयमें, जबकि हर साल युनिवर्सिटियोसे झुण्डके झुण्ड ग्रेजुएटोंके निकलते हैं, जनताके अन्दर ये सब दोष क्यों उत्पन्न हो गये हैं ? ये प्रश्न विचारवान् पुरुषके मस्तिष्कमे रात-दिन

कर लगाया करते हैं और यही कहना पड़ता है कि आधुनिक शिक्षा वास्तविक रूपमें शिक्षा नहीं कही जा सकती। शिक्षा केवल तोता-रटन्त करने अथवा किसी डिग्री या डिप्लोमा पा लेनेका नाम नहीं है किन्तु शिक्षामे मनुष्यके आचार और विचार भी सम्मिलित हैं। शिक्षा ठोस होनी चाहिये। शिक्षाका मतलब ऊपरी हालतका अच्छा करना (general efficiency) ही नहीं किन्तु किसी दोषको न रखकर ठोस बनाना है। वास्तविक शिक्षाका उद्देश्य मनुष्योंमे कार्यकुशलता, सुशीलता तथा कर्त्तव्यपरायणता आदि सद्गुणोको उत्पन्न कर उन्हें सच्चा मनुष्य बनाना है। सुशिक्षित पुरुष वही है जो जीवनके समस्त कार्योंको सुचारु तथा उत्तम रीतिसे करता हो और जो सुशील, सत्यव्रती तथा धार्मिक हो। इसीलिये सुशिक्षितको "भद्र पुरुष" के नामसे पुकारा जाता है।

शिक्षा केवल किसी लिपिके जाननेको ही नहीं कहा जा सकता। आजकलके विद्यालयों तथा पाठशालाओंको शिक्षालय नहीं कहा जा सकता; क्योंकि आजकलके अधिकांश अध्यापक न तो स्वयं ही उच्च कोटिके आचार-विचारवाले होते हैं और न वे दूसरोंको उच्च कोटिका बना सकते हैं, किन्तु वे स्वयं आचारहीन, धर्महीन, कर्त्तव्यहीन और धर्मशिक्षासे कोसों दूर होते हैं। इसलिये उनके शिष्योंपर भी स्वभावतः उन्हींका असर पड़ता है।

यह अटल नियम है कि यदि किसी गर्म चीज़को ठंढी चीज़पर रक्खा जाये तो थोड़े ही कालमें उन दोनों चीज़ोंमें समान

गर्मी हो जावेगी। इसी नियमके अनुसार आजकलके विद्यार्थी जब अध्यापकोंके पास जाते हैं तो उनमें भी वही दोष व गुण—जो अध्यापकोंमे होते हैं—थोड़े ही कालमें उत्पन्न हो जाते हैं,और वर्तमान समयके अध्यापक—केवल इसलिये कि वे वैतनिक होते हैं और उनके वेतनका आधार लड़कोंके आचार-विचारपर निर्भर नहीं रहता, किन्तु महीनेके दिनोंपर निर्भर होता है—कदापि यह परखनेकी चेष्टा नही करते कि विद्यार्थियोंमे क्या गुण या दोष पैदा हो गये हैं अथवा उनके आचार-विचार कैसे हैं। यदि कोई बालक किसी दिन पाठशालामे नहीं आता, तो वे उस बालकसे ग़ैरहाज़िरीका सबब पूछने या उसकी जाँच करनेकी चेष्टा नहीं करते, और न उसे ऐसा न करनेको भविष्यके लिये समझाते हैं, बल्कि उसपर जुर्माना करके उसके मा-बापका, यदि वे ग़रीब हों तो, उत्साह भंग कर देते हैं। यदि किसी बालककी ग़ैरहाजिरी ज़ियादा हो या वह आचार-भ्रष्ट हो जावे तो उसके सुधारके लिये आधुनिक समयमे सबसे बड़ा उपाय केवल यही है कि उसको पाठशालासे निकाल दिया जाय, मानो गुप्त रीतिसे उसको यह उपदेश दिया जाता है कि अब तुम अपने आचार भ्रष्ट करनेके लिये स्वच्छन्द हो। यदि कोई बालक अपने माता-पिता आदिकी सेवा नहीं करता अथवा उनकी आज्ञाओंका उल्लंघन करता है और उनकी शिकायतें वर्तमान अध्यापकोंके पास पहुचती हैं, तो वे केवल यह कहकर टाल देते हैं कि स्कूलके बाहरके कामोंके लिये हम उत्तरदायी नहीं हैं। किन्तु, यदि अध्यापक महाशयकी

आज्ञाका उल्लंघन होता है तो तत्काल ही बालकोंको बेंत आदिसे सज़ा मिल जाती है। क्या इसका अर्थ यह नही है कि बालकोंको माता पिता आदिकी सेवा और आज्ञाओंके पालन करनेका तो उपदेश दिया जाता है और शिक्षककी आज्ञाका पालन करनेके लिये भय दिखलाया जाता है ? शिक्षालयोंको दण्डालय (जेल) बनाया जाता है। यही कारण है कि आजकल ऐसा कोई विद्यालय या पाठशाला नहीं है, जिसके विद्यार्थियोंसे यह आशा की जावे कि वे गृहस्थाश्रममे प्रवेश कर जातीयताका झण्डा फहरावेंगे।

इन सब बातोंका कारण कुछ तो यह है कि माता-पिता लडकोंको सिवाय विद्यालयोंमे भेज देनेके उनकी और कोई देख-भाल या सँभाल नहीं करते। उनकी कुशिक्षाका प्रारम्भ घरसे ही हो जाता है अर्थात् स्त्रियाँ विवाह आदिमे तथा पुरुष होली आदि उत्सवोंपर जब असभ्य और अश्लील शब्दों तथा गानोंका प्रयोग करते हैं तो बालकोंके स्वच्छ हृदयोंको वे कुशब्द दूषित कर देते हैं और फिर जब कभी मेलोंमे जाकर बालक देखते हैं कि बड़े भाई तथा पूज्य चचा आदि भी अन्य युवती स्त्रियोंपर* नीबू, नासपाती, अनार, पान और खाटेकी पुड़िया आदि फेंककर

---

* यहांपर यह एक विचित्र प्रथा है कि भिन्न भिन्न समयोंमें लोग अनेक अवसरोंपर युवतियोंके ऊपर (नेत्र, कपोल, उर, जानु आदि स्थानोंपर) नीबू आदि फेंक मनोरंजन करते हैं। ऐसे व्यवहारोंको युवतियां सगर्व गौरवपूर्वक स्वीकार करती है। सुना जाता है कि यह प्रथा प्रायः राजपूतानाभरमें व्याप्त है।

अपने चित्तको प्रसन्न करते हैं, तो बालकोंके कोमल तथा पवित्र हृदयोंपर इन दोषोंका यह दूसरा परत (तह) और बैठ जाता है। सात आठ वर्षके पश्चात् जब इन दोषोंसे उन अबोध बच्चोंके हृदय आच्छादित हो जाते हैं तो उनके माता-पिताओंको उनके विवाहकी सूझती है और इस प्रकार वे अपने लड़कोंका जीवन, "शैशवेऽभ्यस्त विद्यानाम्" पर अमल न करके "शैशवेभ्रष्ट विद्यानाम्" के अनुयायी होकर, नष्ट कर देते हैं। ऐसे बालक फिर पाठशालाओंमें भेजे जाते हैं। बाज़-बाज़ समाज और देशोंमें तो केवल ४ या ५ वर्ष पढ़ाकर ही लोग समझ लेते हैं कि हमारा लड़का सर्वथा योग्य तथा सुशिक्षित हो चुका। फिर उसको सांसारिक व्यवहारोंमें डाल देते हैं। बाज़ बाज़ जगह तो राज्यों-ने भी ख़ास ख़ास समाजोंके ११-१२ वर्षके लड़कोंको युवक (बालिग़) मानकर भयंकर भूल की थी; परन्तु अब विद्याध्ययनके लिये इसको हानिकारक समझकर हटा दिया गया है। ऐसे नवयुवक समय पाकर जब अध्यापक बनने तथा अन्य नौकरियाँ ढूंढ़नेकी चेष्टा करते हैं, तो क्या वे जाति-सेवाका भाव अपने हृदयोंमे उत्पन्न कर सकते हैं अथवा इसके पवित्र महत्वको समझ सकते हैं? क्या ऐसे बालक बड़े होकर स्वदेश और स्वजातिका उद्धार करनेमे, जो मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है, समर्थ हो सकते हैं? इन बातोंका उत्तर मिलता है—"नहीं"। प्रत्यक्ष रूपसे यही सिद्ध भी होता है। मेरा अनुभव है कि ऐसे नवयुवकों-के मस्तिष्कोंमें सबसे पहला भाव, जो गृहस्थाश्रममें प्रवेश होने-

पर उत्पन्न होता है, दासता (ग़ुलामी) का है, अर्थात् वे नौकरी करनेकी चेष्टा करते हैं, और इसीका परिणाम यह हुआ है कि यदि किसी अपढ़ मज़दूरको रखना हो तो वह १५-२० रुपये मासिकपर नहीं मिलता और पढ़े-लिखे १०-१२ रुपयेपर तैयार रहते हैं। इतना ही नही, वल्कि ४०-५० रुपयेपर ग्रेजुएटोंके झुण्डके झुण्ड मारे मारे फिरते हैं। (यदि किसीको विश्वास न हो तो वे वड़ी सरलतासे अख़वारी दुनियाद्वारा इसका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं) इसका मुख्य कारण एक तो यही है कि विद्यालयोंमें गुरु-शिष्य अर्थात् पिता-पुत्रका भाव अध्यापको और विद्यार्थियोंमे नही होता (कही कही तो अध्यापको तथा विद्यार्थियोके मध्य ऐसा घृणास्पद व्यवहार सुना जाता है जो मनुष्य-सभ्यताके सर्वथा विरुद्ध है—हाय ! पतनकी भी कोई सीमा होती है !) किन्तु जेलर और क़ैदियोका होता है। इसलिये स्वभावतः वालकोंके हृदयोंमे, अध्यापकोंकी अनुचित हुकूमतों तथा कार्रवाइयोंको देखकर, यह भाव उत्पन्न होता है कि वे भी अपने देश और जातिके भाइयोपर इसी प्रकारसे अनुचित व्यवहार कर आनन्द भोगें, और इसका एकमात्र उपाय सर्कारी नौकरी है। इसलिये "चाहे ५ के २ कर दे, पर नाम दारोग़ा रख दे" के अनुसार वे छोटी छोटी तनख़्वाहोंपर इस नीच अभिलाषाको पूर्ण करनेके लिये नौकर हो जाते हैं। जव ऐसे नवयुवक किसी पदपर नियुक्त हो जाते हैं तो वे कर्त्तव्यपरायण अथवा सहनशील नहीं होते और भारतवर्षको उन्नत वनानेके वजाय रसातलको पहुँचाते हैं।

मैं इस पुस्तिकामे तमाम नौकरियोंके गुणावगुणोंकी जांच न करके केवल शिक्षा-सम्बन्धी श्रेणीकी जाँच पाठकोंके समक्ष रक्खूंगा, जिससे उनको भलीभाँति ज्ञात हो जायगा कि कारणको सुधारनेसे ही कार्योंमें स्वतः सुधार हो जाता है। इन तमाम दोषोंका मुख्य तथा मूल कारण "शिक्षा-प्रणालीका दूषित होना" है। इसलिये मैं आप लोगोंका ध्यान केवल इसी प्रधान कारण-की ओर आकर्षित करूँगा।

भारतवर्षमें अंग्रेज़ी–राज्य, देशी–राज्य, भिन्न भिन्न संस्थाओं और समाजों तथा व्यक्तिगत पुरुषोंकी भी पाठशालाएँ हैं। इनमेंसे सर्कारी विद्यालयोंमे जो शिक्षा-प्रणाली है, उसके लिये तो मैं कोई राय देना नहीं चाहता, क्योंकि वर्तमान समाचारपत्र, कांग्रेस तथा अन्य नेतागण उसके दोषोंका पूर्ण दिग्दर्शन करा रहे हैं। मेरा विचार केवल उन विद्यालयोंके विषयमे है जो किसी समाज, जाति अथवा किसी व्यक्तिविशेषकी ओरसे खुले हुए हैं। इन विद्यालयोंमेसे निकले हुए नवयुवकोंमें देश तथा जातिकी सेवाके भावोंका होना अत्यावश्यक है; क्योंकि जनताने इन पाठशालाओंके व्ययका भार केवल इसी उद्देश्यसे अपने ऊपर लिया है कि उनमे धार्मिकता, सत्यपरायणता, कर्त्तव्यपरायणता, जातीयता तथा स्वाभिमान आदि सच्चरित्रोंकी शिक्षा दी जावे, न कि वहाँ हमारे पूर्वजोंको जङ्गली तथा असभ्य, शिवाजी आदि पूज्य नेताओंको पहाड़ी चूहा (Mountain Rat), चोर, डाकू और महात्मा गाँधी जैसे उच्चतम कोटिके पुरुषको

कमीना, पाजी (Rascal) बतलाया जावे अथवा महात्माजीके पवित्र उद्देश्यको ख़ुदग़र्ज़ी (स्वार्थपरायणता) तथा स्वेच्छाचारिता बतलाया जावे, या जहाँ नेताओंके कैलेण्डरोंको अथवा ऐसे अध्यापकोंके फ़ोटो वा ऐड्रेसों (अभिनन्दनपत्रों) को, जो देश तथा जातिके लिये जेल-यात्रा कर चुके हों, फेकवा या उतरवा दिया जावे।

राष्ट्रीय अर्थात् जनताकी ओरसे खोले हुए विद्यालयोंकी देख-रेख यदि ऐसे योग्य तथा कर्त्तव्यपरायण पुरुषोंके द्वारा होती रहे जिनमें चाटुकारी, व्यभिचार, स्वेच्छाचार और अभिमान न हो, तो निस्सन्देह ऐसी पाठशालाएँ, चाहे वे बालकोंकी हों वा बालिकाओंकी, दूषित नहीं हो सकती और न ऐसे योग्य पुरुषोंके द्वारा प्रबन्ध की हुई कन्यापाठशालाओंको "विश्राम-भवन, रङ्ग-महल तथा ठहरनेका केन्द्रस्थान आदि" कहनेका साहस हो सकता है। इसलिये आधुनिक समयमें यदि सबसे अधिक सुधारकी आवश्यकता है तो केवल शिक्षा-प्रणाली, अध्यापकों तथा पाठशालाओंके निरीक्षकों और प्रबन्धकर्त्ताओंके सुधारकी ही है। ये ही डाइनमो (Dynamo) * रूप हैं अर्थात् सत्यासत्य-प्रचारके मूल कारण हैं, और इन्हींसे भली या बुरी जो धारा (Current) बनती है, वह तमाम देश और जातिमें गुजरती और अपना प्रभाव डालती हुई चली जाती है। शिक्षकका कार्य बड़ा महत्वशाली है, क्योंकि जीवनका रहस्य और सच्चा मार्ग

* बिजली पैदा करनेका एक यन्त्र है।

बतलानेवाला, ज्ञानरूपी चक्षुओंमें अंजन लगानेवाला और कुम्हारकी तरहसे मनुष्य-जीवनको जिस ढाँचेमें चाहे ढालनेवाला, अर्थात् मनुष्य-जीवनके बनाने या बिगाड़नेवाला केवल शिक्षक ही हो सकता है। कारण, युवावस्थामें मनुष्य उन्हीं भावोंका अनुसरण करता है जो शैशवावस्थामें उसके हृदयपर अंकित हो गये हों, जैसा कि ऊपर बयान किया गया है। माता-पिता केवल स्थूल शरीरके जन्मदाता हैं और शिक्षक मस्तिष्कका, जो शरीरमे सबसे श्रेष्ठ है, तथा तमाम शरीरका शासक है, सुधारक है। शिवाजी, लार्ड क्लाइव तथा नैपोलियन बोनापार्ट जब पठन-पाठन न कर सके, तो यह उनके शिक्षकोंकी ही बुद्धिमत्ता थी कि उन्होंने उनको घोड़ेपर चढ़ना तथा कुश्ती लड़ना आदि कलाएं सिखाकर जातीयता तथा युद्धवीरताकी साक्षात् मूर्त्ति बना दिया, जिसका फल यह हुआ कि आज उनको बच्चा बच्चा केवल जानता ही नहीं किन्तु उनका नाम बड़े गौरवके साथ लेता है। श्रीरामचन्द्रजीने रावण जैसे चक्रवर्ती राजा और श्रीकृष्णचन्द्रजीने कंस जैसे महाप्रतापी राजापर जो विजय पायी, वह केवल उनके शिक्षकका ही प्रभाव था। परन्तु हाय! आज शिक्षक लोग भाड़ेके टट्टू बने हुए, कक्षामे ऊंघते तथा कुर्सीपर बैठे, मूंछे मरोड़कर या सिरोंपर हाथ फेरते हुए, महीनेके दिन पूरे कर देते हैं, और यदि किसीने बहुत मेहरबानी की, तो कोर्सकी किताबोंको "चित्रकूटके घाटपर भइ संतनकी भीड़" की भाँति तोता-रटन्त करा दिया। इसीसे भारतवर्ष आज शिक्षितमे नहीं कुलियोंके

देशकी गणनामे समझा जाता है। इङ्गलैण्डमें कोई बालक ऐसा नही होगा जिसको अध्यापकोंने सर वॉल्टर स्कॉट नामक कविकी "Breathes there the Man, with soul so dead. Who never to himself hath said This is my own my native land .. . ." यह कविता न सिखायी और याद करायी हो। यही कारण था कि पिछले दिनोंमें, जब योरप भयंकर संग्रामका शिकार हो रहा था, इङ्गलैण्डकी स्त्रियो, बालकों, युवको और वृद्धोंने उसमे चन्दा करके सहायता दी। एक* युवतीकी बावत् तो, जो अत्यन्त सुन्दरी थी, यहाँ तक कहा जाता है कि उसने अपना चुम्बन (Kiss) बाज़ारमे केवल इसीलिये नीलाम किया था कि वह धन सहायतामे दिया जायगा। यह जातीयताका ही प्रभाव था कि युद्धके समयमे जब अनाज कम रह गया, तो वहाँके मनुष्योने तौलकर अनाज लेना और

---

* इस परम सुन्दरी रमणीका यह व्यवहार हमारी आर्य्य-(हिन्दू)-सभ्यताके सर्वथा विरुद्ध तथा अनुचित है। ऐसे व्यवहारको, जहाँतक मुझे ज्ञात है, कभी भी यहाँ प्रधानता नहीं दी गयी है, और देना उचित है भी नहीं। किन्तु यह वहाँकी सभ्यताके विरुद्ध नहीं है। अत पाठकगण यह समझ सकते है कि उस युवतीमें जातीयताका सच्चा भाव कहाँतक जम गया था कि उसने जाति तथा देश-हितके आगे अपनी सबसे प्रिय वस्तुको भी कुछ न समझा, तभी तो आज वह देश सब देशोंका सिरमौर बना हुआ है। भगवन्! क्या हमारे यहाँ भी जाति तथा देशमें जागृतिकी सच्ची लहर कभी लहरायेगी? बहुत हो चुका! शीघ्र दया कर दयालुताका परिचय दीजिये। हम केवल यही दया चाहते है कि हममे वह शक्ति उत्पन्न हो कि "सत्य" को इस भाँति कौड़ियोके मोल न बेंचे, उसके रक्षार्थ अपने पूर्वजो

खाना स्वीकार कर लिया। परन्तु हाय! भारतवर्षमें यह बात नहीं है। हम "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" को नहीं जानते और न हमारे हृदयोंमे यह बात बैठी हुई है कि—"जो भरा नहीं है भावोंसे, बहती जिसमे रसधार नहीं; वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमे स्वदेशका प्यार नहीं" और न हममें वीरता है, न प्रेम है, न कर्त्तव्यपरायणता है। हाँ, फ़ैशन अवश्य है, और वह इतना बढ़ा-चढ़ा है कि बाज़-बाज़ आदमी तो अपनी मातृभाषा बोलना अथवा लिखना और स्वदेशी वस्तुओंका प्रयोग करना अथवा स्वजातीय रीति-रस्मोंका मानना भी अपमान-जनक समझते हैं। वसन्तोत्सव (होलिकोत्सव), में जब कि प्रकृतिमे भी विह्वलता पैदा हो जाती है, आङ्गल देवीके उपासक फ़ैशनेबुल बाबू सम्मिलित होना असभ्यता समझते हैं। परन्तु बड़े दिनोंमे स्केटिङ्ग*

(राजा हरिश्चन्द्र तथा आदर्श सत्यवीर विद्यार्थी हकीकतराय आदि) की तरह सदा अचल रहें। पाठक गण! जरा इस १२ वर्षके नन्हे सत्यवीर आदर्श विद्यार्थी हकीकतराय तथा आधुनिक समयके किशोरावस्था प्राप्त विद्यार्थियोंकी स्थितिपर दृष्टिपात कीजिये—भेद खुल जायगा, चाटुकारीका चश्मा नेत्रोंसे हट जायगा, सत्यका दृश्य स्पष्ट दिखायी देने लग जायगा। इसी भारतके प्यारे हकीकतने सत्यधर्मके रक्षार्थ लगभग सन् १८१८ ई० में उछल उछल कूद कूद कर सहर्ष अपना प्राण त्यागा। ओफ.... समस्या बड़ी जटिल है, अक़ल हैरान है। बन्धुओ! यदि अब भी चेत जाओ, तो ख़ैर है।

* (Skating) स्केटिङ्ग—बर्फ़पर चलनेके लिये एक प्रकारका जूता होता है, जिसको पहनकर बर्फ़पर दौड़ते हैं। यही अब एक खेल हो गया है, जिसका प्रचार यहां भी बड़े आदमियोंमें पाया जाता है।

करना, पहली एप्रिलको गन्दीसे गन्दी मज़ाक़ करके एप्रिल फूल *बनाना, स्त्रियोंके साथ टेनिस † (Tennis) खेलना और भंगी आदि अछूत जातियोंसे, जब कि वे ईसाई होकर फ़ैशनमे आ गये हों, हाथ मिलाना सभ्यता तथा गौरव-जनक मानते हैं। ये तमाम बातें क्यो हें? इसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है कि अध्यापकों तथा पाठशालाओके प्रवन्धकर्त्ताओंके कर्त्तव्यहीन होनेसे ही ये तमाम बातें पैदा हो गयी है। स्कूलोंमे न तो कोई कर्त्तव्य-परायणताकी पुस्तक पढ़ायी जाती हैं और न उसकी शिक्षा ही दी जाती है। धर्मसम्वन्धी कोई प्राक्टिकल शिक्षा होती ही नही। वीर-रसकी पुस्तकें दिखायी नहीं जातीं। अतः वहाँसे फ़ैशनेबुल जेन्टिलमैन बने हुए तथा चाटुकारिताके भाव लिये हुए वालक निकलते हैं। इसका एकमात्र कारण यही है कि शिक्षक, जो नेतागणकी तरह देशकी वर्तमान स्थिति ही नही किन्तु भावी राष्ट्रको सुधार सकते हैं, विद्यार्थियोकी ओर ध्यान नहीं देते। यदि अध्यापक महोदय तथा शिक्षाविभागके अन्य कर्मचारिगण सच्चे आदर्श वन आज अपने कर्त्तव्य-पथपर आरूढ़ हो जावे, तो देखिये, कल ही देशकी कैसी काया पलट जाती है!

आधुनिक समयमें पालिसी (Policy) तथा हिपाक्रिसी

---

* एप्रिल-फूल— जिस प्रकार भारतमे होलीके दिनोंमें मजाक़ करनेका प्रचार है उसी पकार अंग्रेजोंके यहा पहली अप्रैलको मजाक करके लोगोंको "वेवकूफ" वनाया जाता है, जिसको "एप्रिल-फूल" कहते है।

† टेनिस—यह एक प्रकारका गेंदका खेल है।

(Hypocrisy) के जाननेवाले तथा उसके व्यवहार करनेवालेको विद्वान् तथा नीति-निपुण कहा जाता है परन्तु यह विचार नहीं किया जाता कि ऐसे मनुष्योंकी योग्यताकी डींग, सत्यता, निस्स्वार्थता, परोपकारिता, दयालुता और न्यायप्रियता आदिकी प्रामाणिकता जनतामें केवल उसी समयतक माननीय हो सकती है, जवतक कि वास्तविकताका अंकुर प्रस्फुटित होकर दुनियाको सचेत न करे। सचेत होनेपर दुनिया "ऐसे व्यक्तियोंसे उदासीनता ही धारण करती है।" इसका उदाहरण इतिहासमें वहुत मिलता है। लार्ड डलहौज़ीकी अनेकसेशन-पालिसी (Annexation Policy) जव भारतीयोंपर प्रकट हुई तो लॉर्ड केनिङ्ग के समयका भयानक काण्ड (सन् १८५७ का वलवा) उपस्थित हुआ। इसी तरह लार्ड कर्ज़नकी पालिसी जिस समय वङ्गालियोंको पार्टिशन-आफ़-वङ्गाल (Partition of Bengal)के विषयमे स्पष्ट हुई तो स्वदेशी आन्दोलनके नामसे ऐसा वीज अंकुरित हो गया कि जिसके रूप आज सत्याग्रह तथा स्वराज्यदल आदि हैं।

परन्तु यह सव कव होता है? जव "अति" हो जाती है तव। जव कोई जाति, मनुष्य अथवा देश अपनी सीमाका उल्लघन कर जाता है तो "उघरे अन्त न होय निवाहू, कालनेमि जिमि रावन राहू" की भाँति अन्तमे उसका भेद खुले विना नहीं रहता और उस समय ऐसे पालिसीवाज़ोंका जो आदर और सत्कार होता है वह कालनेमि आदिके उदाहरणोंसे स्पष्ट है। लार्ड क़र्ज़नका जो आदर अथवा लार्ड चेम्सफ़ोर्ड तथा श्रीमान् प्रिंस

ऑव वेल्सका जो सत्कार भारतीय कर्मचारियोंकी पॉलिसीके कारण हुआ वह किसीसे छिपा हुआ नहीं है। और भी ऐसे ही, अनेक ज्वलन्त उदाहरण हमको मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि "शेरे क़ालीं और है शेरे नयस्ताँ और है—" अर्थात् शेरकी खाल पहने हुए गदहे और वास्तविक शेरमें बहुत बड़ा अन्तर होता है। गत महासमरमें भारतवासियोंको यह कहकर ही सम्मिलित किया गया था कि हम सत्यकी रक्षाके लिये हस्तक्षेप कर रहे हैं, और सिपाहियोंको भर्ती होनेके बदलेमें आजन्म ही नहीं किन्तु पीढ़ियों तकके लिये ज़मीनें मुआफ़ीमें दी गयी थीं, और भी उनसे कई प्रतिज्ञाएँ की गयी थीं; परन्तु सुना जाता है कि समरान्त पश्चात् बहुतेरे सिपाहियोंकी वे मुआफ़ियाँ, जो पुश्तोंके लिये दी गयी थीं, ज़ब्त हो गयी और उनकी सनदोंकी वही गति हुई जो नव्वाब सिराजुद्दौलाकी हारके बाद लॉर्ड क्लाइवने अमीचन्दके परवानेकी सनदोंकी की थी। इतना ही नहीं, किन्तु गत वर्षोंकी कांग्रेसके सभापतियोंकी वक्तृताएँ (स्पीचें) तथा नेताओंकी वक्तृताएँ हमको बतलाती हैं कि पंजाब-हत्या-काण्ड आदि भी उसी सहायताके बदलेमें पारितोषिकस्वरूप थे, जो भारतवासियो-ने महायुद्धमे सम्मिलित होकर सर्कारको दी थी—न कि और किसी दान-रूपमे।

निस्सन्देह ऐसे समयमे, जब कि पॉलिसी और हिपॉक्रिसीकी आँधी चल रही हो, सत्य दिखायी नहीं दे सकता। महात्मा सुकरातको सत्यवक्ता होनेके कारण ही विषका प्याला पीना पड़ा

था। उनका दोष केवल यही था कि उन्होंने उस समयके प्रधान राजनैतिक मनुष्यों (Politicians) की पोल खोली थी। मंसूरको सूली इसीलिये दी गयी थी कि वह अनलहक़ (अहं ब्रह्माऽस्मि) का सच्चा माननेवाला था, जो इस्लाम शरीअ़त (राह ख़ुदाका बनाया हुआ तरीक़ा) के विरुद्ध है। महात्मा गैलीलियोको सूलीपर इसीलिये चढ़ाया गया था कि उन्होंने पोपकी पोल खोलकर जनताको बतला दिया था कि वास्तवमें लोग धर्मकी आड़में किस तरह पॉलिसीके शिकार हो रहे हैं। महाराणा प्रतापको घर-बार त्यागकर वनो तथा पर्वतोमें इसीलिये भटकना पड़ा था कि उन्होंने अकबरकी पॉलिसीके विरुद्ध आवाज़ उठायी थी। महर्षि दयानन्द सरस्वतीने विषका प्याला इसीलिये पिया था कि उन्होंने पादरियों, महन्तो तथा मठधारियो आदिकी हिपॉक्रिसियोंकी धज्जियाँ उड़ाकर उनका वास्तविक स्वरूप जनता को दिखलाया था। परन्तु आज वह दिन है कि महात्मा सुकरात, मंसूर, गैलीलियो, हिन्दूपति महाराणा प्रताप तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती आदि सत्यवक्ताओंका जो आदर मनुष्य-हृदयोमे है, वह कदाचित् लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड आदि वायसरायोंका नहीं है।

मेरा अभिप्राय इन तमाम बातोसे यही है कि पालिसी तथा हिपाक्रिसीको जहाँतक हो सके निर्मूल करनेकी चेष्टा करनी चाहिए; क्योंकि भारतवर्षमे ऐसी हिपॉक्रिसीको गृहस्थाश्रममें तो क्या राज्यमें भी कभी प्रधानता नहीं मिली है। मैंने इसी भावको लेकर इस पुस्तिकाका आरम्भ किया है। इस समय तो और

किसी देश या जातिपर विचार न करके केवल भारतीय शिक्षाप्रणालीके सम्बन्धमे ही विचार करूँगा; क्योकि शिक्षा ही मनुष्य-जीवनको बना या बिगाड़ सकती है जैसा कि विस्तृत रूपसे ऊपर कहा जा चुका है। शिक्षाके सम्बन्धमें भी मैं केवल उन्ही विद्यालयोको आपके समक्ष उपस्थित करूँगा जिनका सम्बन्ध सर्कारसे नही वरन् जनतासे है।

मुझको बीकानेरमे रहते तथा आजीविका कमाते लगभग ५ वर्ष हो चुके। मेरा सदासे यह अटल सिद्धान्त है कि किसीका सच्चा हितैषी अथवा शुभचिंतक कोई तभी हो सकता है जब कि उसके गुण व दोष, पॉलिसी रहित हो, उसको स्पष्ट बतला दिये जावें। यह सच है कि सत्यका प्रकाश इस समय, जब कि पॉलिसी और छिपॉछिपीकी घटाएँ चारो ओर छायी हुई हैं, नहीं फैल सकता परन्तु यह विचार कर कि "Truth may languish but cannot perish"—"सत्य क्षण-भर दबाया या कमज़ोर किया जा सकता है, किन्तु उसका नाश नहीं किया जा सकता, और वह जल्दी या देरसे अवश्यमेव इन घटाओंको छिन्न भिन्न करेगा"—मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि बीकानेरी जनताको यह बतला दूँ कि वास्तवमें उनका रुपया व्यर्थ नष्ट हो रहा है और उस रुपयेसे अहिंसाका प्रचार होनेके बजाय हिंसाका प्रचार बढ़ता जा रहा है।

बीकानेरमें * पर्युषणोंके दिनोंमें सैकड़ों रुपये क़साइयोंको

* पर्युषण—यह जैनियोंका एक महा पवित्र पर्व है।

केवल इसीलिये दिये जाते हैं कि वे उन दिनोंमें बकरे आदि न काटें। यह प्रथा जब चली थी, इसका पूर्णरूपसे पालन होता था, और राज्यकी ओरसे, केवल इसलिये कि जैन जनता यहाँ विशेष है, इस हिंसाके रोकनेमें सहायता दी जाती थी; परन्तु मुझे विश्वस्त सूत्रसे ज्ञात हुआ है कि अब पर्युषणोंमे बकरे आदि बराबर कटते रहते हैं। ऐसी अवस्थामे, इन रुपयोंके देते रहनेका अभिप्राय यही हो सकता है कि इन्हीं रुपयोंसे और बकरे लाकर काट दिये जावें, अर्थात् अहिंसा-धर्मकी जगह हिंसा और जैन-धर्मकी जगह शाक्त-धर्मका प्रतिपादन किया जा रहा है, जो पूर्वजोंकी नीतिके सर्वथा विरुद्ध है। इसी तरहसे बीकानेरमे और भी बहुत सी कुप्रथाएँ चली आती हैं जिनका अभीतक कोई सुधार नहीं हुआ है। उदाहरणार्थ, यतियोंके आचार-विचार किसीसे छिपे नहीं हैं; क्योंकि उनके पतित होनेके प्रमाण-स्वरूप यहाँ एक भिन्न जाति ही पायी जाती है; परन्तु फिर भी यतियोंकी जो आवभगत बीकानेरी जैनियोंमें की जाती है, शोचनीय है अर्थात् अभीतक भोलेभाले पुरुष अपनी स्त्रियोंको यतियोंसे उपदेश लेनेकी आज्ञा दे देते हैं। और यदि कोई वीरपुत्र, स्वर्गीय श्रीयुत कालूरामजी वर्डियाकी भाँति, मना करता है तो उसके घोर विरोधी हो जाते हैं। इसी तरहसे रामसनेही आदि साधुओंकी गति सुनी जाती है जिनका हाल आगे चलकर बयान किया जायगा।

ऐसे ही उपदेशोंसे मनुष्योंमे सद्भावोंका अभाव हो गया है और काम,क्रोध,मद, लोभ,ईर्ष्या और हठ (ज़िद)हदसे ज़ियादा बढ

रही है। छोटी छोटीसी बातोपर खूब मुक़दमेबाज़ी होती है, हज़ारो रुपये व्यय हो जाते हैं। मुझसे एक मित्रने कहा था कि * सुजानगढमे एक धनाढ्य वैश्यने १० इंच ज़मीनके लिये हज़ारो रुपये व्यर्थ नष्ट कर दिये। इसी तरह बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्या-विक्रय, सट्टेबाजी, नशेबाज़ी †, ताशबाज़ी आदि कुप्रथाओका प्रचार भी दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है और कुछ दिन पहले तो यहाँपर फूट-देवीने इतना रङ्ग जमा लिया था कि स्थानकवासियो, समेगियो (समविझो) तथा तेरापंथियोंमे ‡ रोटी और बेटीका व्यवहार वन्द करनेका लोग उद्योग कर रहे थे,

---

*सुजानगढ़—यह श्रीबीकानेर-राज्यान्तर्गत एक निजामत (जिला) है जो राजधानीसे लगभग ७५ मील दक्षिण-पूर्वमें स्थित है।

† नशेबाजी—यद्यपि राज्यकी ओरसे पवित्र तथा महत्वपूर्ण आज्ञा बच्चोको तम्बाकू पीनेसे रोकनेके लिये सन् १९१९ ई० में जारी की गयी थी तथापि कर्मचारियोंकी कर्त्तव्यपरायणताका यह हाल है कि आज पर्यन्त कोई चालान या मुकदमा होना सुना नहीं गया। हालाँकि दस-पाँच नहीं वरन् पचासोंकी सख्यामें नित्य-प्रति नन्हे-नन्हे बालक बीड़ा-सिगरेट आदि पीते हुए आम रास्तेसे गुजरते रहते है। क्या ऐसी पवित्र आज्ञाकी अवहेलना करना ही राजभक्तिका चिन्ह है ? हाय ! एक वह समय था कि राजाज्ञापालनके हेतु धन ही नहीं, किन्तु प्राणतक दे देते थे, और आज यह दशा है कि ऐसी पवित्र आज्ञाके पालनकी ओर ऐसी उदासीनता है। यदि कर्मचारिगण जरासा ध्यान दे दे तो लाखों रुपये इस कुव्यसनमें व्यय होनेसे बच जावे और बच्चोंके जीवनमें उत्तम परिवर्तन हो जावे। नियमके लिये पैराग्राफ न० १८ देखिये।

‡ ये तीन जैन-धर्मान्तर्गत भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके नाम है।

अदालतोंतक नौवत आनेवाली थी, परन्तु ख़ैर हुई कि दलवन्दी-ने भयङ्कर रूप धारण नहीं किया।

ये सब वातें यहाँ क्यों हो गयी हैं? इन सवका मूल कारण केवल अशिक्षाका प्रचार है जैसा कि ऊपर वतलाया जा चुका है। कोई मनुष्य केवल विद्यालयोंमें पढ़ने तथा ग्रेजुएट* बननेसे ही शिक्षित नहीं हो सकता; किन्तु सद्व्यवहार तथा सदाचार करनेसे ही हो सकता है। वीकानेरी परिस्थितिको दृष्टिमे रखते हुए शिक्षालयोंके दो विभाग किये जा सकते हैं। एक समाजके गुरु अर्थात् मुनिसमाज, और द्वितीय विद्यालय।

गुरुओंकी स्थिति यहाँ, किसी मतको ले लीजिये, प्रायः अच्छी नही है। जो मनुष्य प्रत्यक्षमें हमारे धर्मोपदेशक, गुरु तथा नेता वनकर प्रेमकी वड़ी वड़ी डींगें मारते हैं, उनकी रगोंमें यदि विचारकर देखा जावे तो काले खूनकी धारा वहती प्रतीत होती है, और समय पड़नेपर समाजके जीवनपर ज़हरीली गोलियाँ छोड़नेमे सवसे आगे रहते हैं। उदाहरणार्थ, आर्य्य-समाज एक ऐसी धार्मिक संस्था है, जिसने भारतवर्षमे ही नहीं, किन्तु सारे संसारमें हलचल मचा दी है; परन्तु यहाँका समाज उन्नति करने-के वजाय अवनतिकी ओर अग्रसर हो रहा है। भारतवर्षमे शराव-ख़ाने और जूए-घर आदि पर कांग्रेसकी ओरसे धरने देकर (पिके-टिङ्ग करके) मादक वस्तुओं तथा जूएके व्यसन छुडानेकी चेष्टा की गयी थी; परन्तु यहाँपर आर्य्यसमाजकी मेम्वरीसे विसर्जन-पत्र देनेके लिये पिकेटिङ्ग (Picketting) का व्यवहार किया

* वह मनुष्य जिसने विश्वविद्यालयमें उपाधि पायी हो।

गया है। जिस समाजमे मान्य गुरुदत्त एम० ए० तथा पं० लेख-रामजी आर्य्य मुसाफ़िर जैसे वीर और निर्भीक पुरुष हुए हैं, उसी समाजमे यहाँ ऐसे भी पुरुष है, जिनको ज़रा-सा हुल्लड़ होनेसे मूर्छा आ जाती है। कही तो आर्य्य-समाजियोके प्रेमकी यह गति है कि घर-बार छोड़ अपने भाइयोके सहायतार्थ अपनेको आपत्तिमे फसा लेते हैं, और यहाँ यह पॉलिसी है कि समाजके उद्देश्योसे गिर चाटुकारीद्वारा अपनेको बचाकर अपने भाईके गलेमे फन्दा डाल देते हैं। इसी तरहसे यहाँपर "रामस्नेही" मतका, जिसे जयपुरके रामचरण नामक एक रामानन्दी साधुने शाहपुरा*मे राज्याश्रय प्राप्त कर सं० १८२४ मे स्थापित किया था, प्रचार है। इनमे "साधुओंके जूठन खाने" और "रामनाम" के महामंत्रका उद्देश्य था और गुरुसेवाका भाव वैष्णव-मतानुसार बहुत ज़्यादा बढ़ा हुआ था। परन्तु अब यह गति है कि पुरुषोकी अपेक्षा स्त्रियाँ बहुत ज्यादा चेली होती हैं, और उनके चरित्रकी यह हालत है कि कितनी चेलियाँ अपने पतियोंका केवल निरादर ही नहीं करती, किन्तु उनका सर्वस्व नष्ट करनेके लिये तैयार रहती हैं। इस मतका प्रचार सुथारो (सुनारों) † और सुनारोंमें विशेषकर पाया जाता है। सुना गया है कि सुथारोकी बडी ग्वाड़ (महल्ला) में पंचायत-द्वारा यह निश्चित हो चुका है कि स्त्रियाँ रामस्नेही ‡साधुओंके

* शाहपुरा—मेवाड़मे एक रियासत है।

† —[illegible], जिसका पेशा लकड़ीका व्यवसाय करना है।

‡ रामस्नेही साधुओंके विषयमे महर्षि दयानन्दजी सरस्वती लिखते

संसर्गसे चरित्रहीन हो जाती हैं, इसलिये यदि कोई स्त्री रामद्वारे (रामस्नेही-साधुके आश्रम) मे जावे या अपने गुरुको अपने घर बुलावे, तो वह न्यात (बिरादरी) द्वारा दण्डित की जायगी। यदि वास्तवमें इन साधुओंकी यही दशा है तो सुनारोंमें भी ऐसी ही पंचायतकी आवश्यकता है। इसी तरहसे गोस्वामी-समाज भी पूज्य माना जाता है और उनके छुआछूतके लौकिक आचार बहुत अच्छे प्रतीत होते हैं;परन्तु उनमे भी कहीं कहीं प्रेमका,,जो धर्मका मुख्य अङ्ग है, अभाव ही पाया जाता है। मैंने सुना है कि वे प्लेगके दिनोंमे, केवल इस भयसे कि प्लेग न लग जावे, एक मृत गोस्वामीका दाह-संस्कार न कर मकान-ही-मे छोड़ करके चले गये और अन्य जातिवालोंने सम्मिलित होकर उसका दाह संस्कार किया।

इसी तरहसे ओसवालोके गुरु मुनिसमाजकी दशा है। "मुनि" शब्द महान् है, मुनिसे बढ़कर कोई पुरुष श्रेष्ठ नहीं हो सकता, और भगवान वीरके शब्दोंमे मुनि उस महापुरुषको कहते हैं, जो सांसारिक बन्धनोसे मुक्त हो, पंच महाव्रत धारण कर भगवान वीरके आज्ञानुसार चले और सांसारिक जीवोंसे केवल

है :—" इन लोगोने अपना पेट भरने और दूसरोंका भी जन्म नष्ट करनेके लिये एक पाखंड खडा किया है, सो यह बडा आश्चर्य हम सुनते और देखते हैं कि नाम तो धरा रामस्नेही और काम करते हैं रॉडस्नेहीका। जहा देखो वहॉ रॉड ही रॉड सन्तोंको घेर रही है। यदि ऐसे पाखण्ड न चलते तो आर्य्यावर्त देशकी दुर्दशा क्यों होती ? ये लोग अपने चेलाको जूठन खिलाते हैं और स्त्रियाँ भी लम्बी पडके दण्डवत्-प्रणाम करती हैं । " भी स्त्रियों और साधुओंकी लीलाएँ होती रहती हैं।"

सदुपदेश देनेका ही सम्बन्ध रक्खे। परन्तु गौतम और सुधर्म आदि मुनियोमे और हमारे वर्तमान मुनियोमे विलकुल विपरीतता है। वे सच्चे आत्मत्यागी, वैरागी, क्षमाशील, सत्यपरायण, अहिंसा-प्रचारक और कुरीतियोके नाशक होते थे। वे सवारीमे चलने या रात्रिमे किसी वस्तुके खाने या पासमे रखनेके अत्यन्त विरोधी थे; परन्तु आज उसी समाजमे ऐसा कुचक्र चल गया है कि प्रायः वे "अपने सिद्धान्तोके प्रतिकूल चलनेवाले हैं और धर्म-सिद्धान्तोकी हत्या कर नरककी तय्यारी कर रहे हैं।" उनमे इतनी फूट है कि धर्मान्तर्गत भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोके मुनियोके समक्ष मस्तकतक झुकानेका निषेध करते हैं। द्वेष, दम्भ तथा फूट आदिके कारण ही कहीं मूर्त्ति-मण्डन और कहीं मूर्त्ति खंडन—कही मुँह-पत्ती बाँधने और कही न बाँधनेकी चर्चा सुनायी देती है। सारांश यह कि प्रेमके बदले ईर्ष्या तथा द्वेष आदिका प्रचार कर रहे हैं और इसीसे समाजकी हानिके कारण बन रहे हैं। उनकी कर्त्तव्यपरा-यणताकी यह हालत है कि १०-१० वर्षके बालकोको साधु बना लिया जाता है, जो "धर्म और ईश्वर" को तो क्या समझ सकते हैं, जब कि वे यह भी नही जानते कि "साधु" शब्दके क्या अर्थ हैं और हम "दीक्षा" क्यो ले रहे हैं! इसका परिणाम यह होता है कि ये अबोध बालक-साधु जब कभी चलते-फिरते किसी अच्छी वस्तुको देखते हैं, तो जिद कर बैठते हैं कि हम अमुक वस्तुको लेंगे। उस समय उनका रिश्तेदार साधु अथवा अन्य साधु जो साथमे होता है, उस वस्तुके न ग्रहण करनेका ज्ञानपूर्ण

उपदेश देता है। जब उस बालक-साधुके कोमल हृदयपर उपदेशका कुछ असर नही होता तो उसको धमकाता और डाँटता है। यह समस्या अति जटिल और हृदय-विदारक है। पाठकगण स्वयं समझ लें कि ऐसे अबोध बालकको इस प्रकार रोकना तथा समझाना कितना अहिंसात्मक कार्य्य है, और ऐसे व्यवहारसे समाजका कितना उद्धार हो सकता है! एक बार मैंने स्वयं देखा है कि एक बालक-साधु, जिसकी अवस्था १०-११ वर्षकी थी, अपने पिताके साथ, जो साधु हो गया था, गोचरी करते हुए (भोजनार्थ भिक्षा माँगते हुए) जिस समय एक मालिनके सामनेसे, जिसके पास बेचनेके लिये बेर रक्खे हुए थे, गुजरा और कहने लगा कि मैं बेर लूंगा, उस समय उस साधु-पिताने बहुतेरा समझाया कि तुम साधु हो गये हो, बेर नहीं खा सकते, परन्तु बाल-हठके कारण उसने साधु पिताकी एक न सुनी। अन्तमें उस साधु पिताको उस समय उसको धमकी और ताड़ना देनी पड़ी। इसी तरहसे ओसवाल (जैन) समाजकी भक्तिः यतियोमें:भी है; परन्तु अब वे वास्तवमे यति नहीं हैं। यती ब्रह्मचारी होते थे और ये अनाचारी प्रतीत होते हैं। यती भिक्षापर निर्भर थे, परन्तु आधुनिक यतियोंके यहाँ प्रायः रसोइयाँ बनती हैं। यति परिग्रहत्यागी और पंच-महाव्रतधारी थे, परन्तु अब रुपयोंसे प्यार करनेवाले हैं और दासियोका मोह रखनेवाले हैं। इसके विषयमें स्वर्गीय वीरपुत्र श्रीयुत:कालूरामजी चर्डियाने, जो ओसवाल (जैन) जातिमें एक जगमगाते हुए तारे:

थे और जिनके दिलमे जातिकी कुरीतियोने अग्नि प्रज्वलित कर रखी थी, "ओसवाल समाजकी वर्तमान स्थिति" नामक पुस्तकमे, जो दिग्दर्शन कराया है अथवा "सत्योदय" से जो उद्धृत किया है, उसके कुछ निवन्ध यहाँपर उल्लेखनीय हैं:—

"यतिानि यतिके वर्गमे तो पाप शासन काल है।
होवें भला क्योंकर नहीं? जब बाल-मुण्डन चाल है॥"
दिनमें पहिनते श्वेत कपडा रातमें गुल-रङ्ग है।
फिर भ्रूण-हत्या कर्म्म हो तो भेप रक्षक ढङ्ग है॥"

"वास्तवमे हमारे गुरु कहलानेवाले यति आज पतितावस्थामे हैं।" "भगवान वीरकी आज्ञाका उल्लंघन करना तो इन्होंने एक प्रकारसे अपना कर्त्तव्य ही मान रखा है। देखनेमे आता है कि यति जी महाराज फाटका लडाते हैं, चमड़ेके जूते पहनते हैं और रेल तथा घोड़ेपर सवारी भी करते हैं।" "व हमारे पूज्य यति आदर्श ब्रह्मचारी थे। परन्तु उन्हीके शिष्य कहलानेवाले वर्तमान कई यति व्यभिचारी दिखाई पडते हैं। " "कहाँतक इनकी हालतका चित्र पाठकोके सन्मुख खींचा जाय, यहाँपर आज यह कह देना अनुचित न होगा कि यति-समाज आज अपने कर्तव्य-पथसे बहुत नीचे गिर गया।" इन वीतराग प्रभुके सिद्धान्तोके विरुद्ध चलनेवाले तथा उन आज्ञाओको पद-दलित करनेवाले भेषधारियोकी अन्ध-भ ... आज यह दिखायी देता है कि प्राय. यतियोके ... किसी जातिकी एक चेली अथवा दासी

तरहसे यतिनियोंकी भी यही दुर्गति हो रही है। इनमें भी व्यभिचारका अंश बढ़ा हुआ है। किसी किसीने तो समाजपर इतनी दया अवश्य की है कि इस भेषको न लजाकर पातरों (रण्डियों) में सम्मिलित हो भोग-विलास करने लगी हैं। जिस समाजके पथप्रदर्शक ऐसी यतिनियाँ अथवा ऐसे यति वा साधु हों, वह समाज अथवा देश कैसे उठ सकता है ? उसमें प्रेम, उदारता, सहनशीलता, सत्यता, कर्त्तव्यपरायणता तथा देश-हितैषिताके भाव कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ? जिस समाजमें स्त्री और पुरुष दोनों ऐसे नाममात्र भेषधारियोंके अन्ध-भक्त हो वहाँ उच्चादर्श अथवा उच्च भावोंका होना केवल कल्पनामात्र रह जाता है।

यह गति तो गुरु तथा उपदेशकोंकी है, जिनके हाथमें समाजकी वर्तमान स्थिति रहा करती है। अब ज़रा विद्यालयोंका भी दिग्दर्शन कीजिये, जो समाजके भविष्यको बनाने अथवा बिगाड़नेवाले हैं। बीकानेरमें यों तो कई विद्यालय हैं, किन्तु मेरा अभिप्राय केवल जनताके विद्यालयोंसे है। इसलिये विशेषतः मैं राजकीय स्कूलोंको न लेकर केवल कुछ मुख्य विद्यालयोंको, जिनके व्ययका भार भोली-भाली जनताको उठाना पड़ता है, आपके समक्ष रखूँगा।

यहाँपर एक श्रीमोहता-मूलचन्द-विद्यालय है जो स्वर्गवासी बाबू मोहता मूलचन्दजी (बीकानेर) के स्मारक-रूपमें खोला गया है और इसका मुख्योद्देश्य यही है कि शिक्षाका प्रचार हो, परन्तु इसके व्ययको देखते हुए मानना पड़ेगा कि यह उतना सन्तोष-

दायक काम नहीं कर रहा है जितनी कि व्ययके लिहाज़से आशा की जा सकती है। यहाँपर इस समय कक्षा ८ तक पढ़ाई होती है, कुल १३ अध्यापक हैं और छात्रोकी संख्या लगभग २७० है। सन् १९२२ ई० मे इसकी पढ़ाई बहुत गिरी हुई दशामे पहुँच चुकी थी, परन्तु अब फिर उसका कुछ उन्नत होना आरम्भ हुआ है। मैंने सुना है कि एक समय बाबू कृपाशंकरजी प्राज्ञ, एम० ए०, (चीफ जस्टिस, बीकानेर स्टेट)के सभापतित्वमे जब इसका वार्षिकोत्सव हुआ और उसमे विज्ञान-शास्त्र (Science)की कक्षाका टूटना घोषित किया गया, तो उक्त सभापति महोदयने इसपर दुःख प्रकट करते हुए विद्यालयके संचालकोसे प्रार्थना की थी कि सायंससे छात्रोंकी विचार-शक्ति सदा बढ़ा करती है। यद्यपि इसपर स्वर्गवासी श्रीयुत पं० कृष्णशंकरजी तिवारी, बी० ए०, से वादविवाद (Discussion) भी हुआ था, किन्तु सायंसकी आवश्यकता प्रमाणित हुई थी, परन्तु खेद है कि अबतक उसपर विचार नही किया गया। कदाचित् प्रबन्धकर्त्ता महोदय आर्थिक दशा अच्छी न होनेका कारण बतलावे, परन्तु यह ठीक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जहाँतक मुझे मालूम हुआ है उसमे बहुतसी छात्रवृत्तियाँ (वज़ीफ़े) छात्रोंको दी जाती हैं, किन्तु यह विचार नहीं किया जाता कि वस्तविक रूपमे वे उस वृत्तिके अधिकारी भी है या नहीं। यहाँ अधिकारीकी केवल यही कसौटी है कि वे ब्राह्मण हो, परन्तु यह कसौटी खरी नही है, क्योंकि इससे बहुतसे अधिकारी वंचित रह सकते हैं और अनधिकारी लाभ

उठा सकते हैं। इतना ही नही वरन् पुस्तकें भी ब्राह्मण छात्रोंको ही दी जाती हैं। पुस्तक लिखते समय यह ज्ञात हुआ कि अब यह शर्त हटा दी गयी है। यदि यह सच है तो बड़े सन्तोपकी बात है। अध्यापकोमे सम भाव रखनेकी अत्यावश्यकता है। इस विद्यालयमें कक्षा ५ से कक्षा ८ तक लगभग ३५ विद्यार्थी हैं, जिनको ४ अध्यापक, जो लगभग २०५)मासिक पाते हैं, पढ़ाते हैं अर्थात् उच्च कक्षाओमे प्रति छात्र ५॥≶) मासिक, छात्रवृत्ति तथा पुस्तकादिके अतिरिक्त, व्यय होता है। लोअर प्राइमरी कक्षाओंमे मय वाणिका आदिके लगभग २३५ छात्र है, जिनपर लगभग ३४५) मासिक व्यय होता है अर्थात् प्रति छात्र लगभग १।≋)॥ मासिक व्यय छोटी कक्षाओमे होता है। सुना जाता है कि वर्तमान मुख्याध्यापक बा० ईश्वरदयालजी, बी० ए०, का कार्य प्रशसनीय है। यदि ये महानुभाव चापलूसी तथा स्वेच्छाचारिताके शिकार न हो सदा प्रेमपूर्वक सम-भाव हो सत्य-कर्त्तव्य-पथपर दृढ रहे, तो आशा की जाती है कि पाठशालाका भविष्य शीघ्र ही उज्वल दिखायी देगा।

इसी तरहसे यहाँपर श्रीराम विद्यालय, बी० के० विद्यालय, श्रीकृष्ण विद्यालय और अगरचन्द भैरूँदानजी सेठिया स्कूल हैं। इन उपर्युक्त चारों विद्यालयोका कार्य्य भी व्ययके अनुसार सन्तोपदायक नहीं कहा जा सकता और न उचित रूपसे इनमें कोई उन्नति करता हुआ प्रतीत होता है। इसका कारण केवल यही है कि उनके मालिकोने उनके कार्य्यकी देखभाल स्वयं न करके

…ायः एक एक व्यक्ति (सेक्रेटरी) को स्थायी रूपसे सौंप दी है,
…जो अपने निज कार्यों तथा आजीविकाके अतिरिक्त ऐसा समय
नहीं बचा सकते जो पाठशालाओंकी देखभालमें समुचित लगाया
जा सके। ऐसी अवस्थामें व्यवस्थाका अस्थायी तथा असन्तोष-
जनक रहना असम्भव नहीं है। इसलिये मालिकोंको, जो देशोप-
कारार्थ अपने पसीनेकी कमाई व्यय कर रहे हैं,उचित है कि इनके
प्रबन्धकी ओर भी पूर्ण ध्यान दें और ऐसे व्यक्तियोंको, जो विद्या-
प्रेमी हों तथा समय भी निकाल सकते हो, इनका भार सौंप दें।
इन चारों उपर्युक्त विद्यालयोंमेंसे प्रथम तीन तो जैनेतर (अजैन)
…जातियोंकी ओरसे खुले हुए हैं और शेष चौथा (अगरचन्द भैरूँ-
…दानजी सेठिया स्कूल) एक जैनीकी ओरसे खुला हुआ है। इन
…सब विद्यालयोंका संक्षिप्त वर्णन आगे परिशिष्ट नं० २में देखिये।

बीकानेर-राज्यान्तर्गत भिन्न भिन्न शहरों तथा, खास बीकानेर
शहरमें ओसवाल- (जैन)-समाजकी संख्या धनाढ्योंमें अन्य
जातियोंकी अपेक्षा अधिक है और वह समाज अन्य समाजोंकी
…पेक्षा अपनेको सभ्य भी समझता है, परन्तु प्रबन्धादिमें उसकी
दशा अन्य जातियोंसे विशेष शोचनीय है। वह न तो स्वयं कामसे
वाकिफ होनेकी चेष्टा करता है और न पूर्ण-रूपसे प्रबन्धकी ओर
ध्यान ही देता है। यही कारण है कि गत वर्षोंमें एक्सचेंज
(exchange) का भाव गड़बड़ हो जानेके कारण बहुतसे
…महाजनोंके दिवाले निकल गये। इसका असर ओसवाल (जैन)
समाजपर विशेष पड़नेका यही कारण है कि वे स्वयं … न

देखकर अपने मुनीमों तथा अन्य आदमियोंके भरोसेपर छोड़कर आनन्द करते हैं। इनमेंसे वहुत तो ऐसे हैं जो अपने बच्चोंको काम सिखलाना तथा विद्याध्ययन कराना भी अप्रतिष्ठा समझते हैं। इसीलिये आज कलकत्तेमें जब कि साधारणतः मारवाड़ियोंकी गणना मुख्य व्यापारियोंमें है, इनका मिल (Mill) वालों तथा युरोपियनों (Europeans) की खुशामद करते ही दिन वीता करता है। कोई सच्ची तिजारत इनके हाथमें नहीं है। काम न सीखनेके कारण ही न तो ये मिल खोल सकते हैं और न अन्य कोई ऐसी तिजारत कर सकते हैं कि जिससे दूसरोंके अधीन रहना न पड़े। प्रायः इनकी निपुणता यदि है तो केवल सट्टेबाजीमें या युरोपियनोंकी खुशामदमें। रेलमें यात्रा करते हुए इन लोगोंके साथ प्रायः जो व्यवहार होता है अथवा अन्य मनुष्योंके प्रति जो इनका व्यवहार है उसके देखनेसे प्रतीत होता है कि उनमें सच्चा स्वाभिमान नहीं है। ये कमज़ोरियाँ और हानियाँ कदाचित् श्रीमान् बा० मया भाई टी० शाह, बी० ए०, भूतपूर्व हेड्मास्टर तथा वर्तमान असिस्टेन्ट मास्टर श्री जैन-पाठशाला (बीकानेर) के कथनानुसार इसलिये हैं कि "जैन-समाजमें जाग्रतावस्था कम नहीं है और जैन-जातिमें शिक्षित पुरुषोंकी संख्या ४६५ और स्त्रियोंकी ३६ प्रति सैकड़ा सन् १९११ में थी। और विद्योन्नति और जागृति उदासर, कलकत्ता और ओसियाँ (तथा बीकानेर) आदिमें पाठशालाओंके" कारण ही हैं और "ये सब जागृतिके वास्तविक

चिन्ह हैं।" यद्यपि ये विद्योन्नतिके चिन्ह शाहजी महोदयके विचारानुसार उन्होने किसी "योगकी नवीन सिद्धि" (पाश्चात्य रंग अर्थात् बी० ए० होनेके) द्वारा प्राप्त की होगी। वास्तविक रूपमे सरकारी रिपोर्टों से क्या जागृति प्रमाणित करनेका "साहस प्रशंसनीय है?" इसपर यदि विचार किया जाय तो ज्ञात होगा कि उन्होंने "अपना कर्त्तव्यपालन कागज़ोंके आधारपर किया है।" वास्तविक रूपमें जो दशा या कमज़ोरियाँ हैं उन्हे इसलिये नही दिखलाया कि वह स्वयं उत्तर देते समय उस श्रेणीके मनुष्योंमे थे जिनको भविष्यका रचयिता कहना, यदि वह कर्त्तव्य परायण होते, तो अनुचित न होता। विचारपूर्वक देखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि ये तमाम कमज़ोरियाँ और हानियाँ अशिक्षा तथा अध्यापकोंके कर्त्तव्यहीन होनेके कारण ही हैं जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ। उदासर, कलकत्ता और ओसियाँ आदिकी पाठशालाओंका, जिनसे मैं बिलकुल अपरिचित हूँ, उदाहरण न देकर आज केवल श्री जैनपाठशाला (बीकानेर) को ही पाठकोंके समक्ष रखकर आशा करता हूँ कि वे इसपर पूर्ण विचार करेंगे कि वास्तवमे उनके द्रव्यका सदुव्यवहार हो रहा है या नहीं।

श्रीजैन-पाठशाला (बीकानेर) का आरम्भ सन् १९०७ ई० मे शान्तमुनि महाराज श्रीचन्द्रविजयजीके हाथसे हुआ था और उन्होंने "जैन समाजकी भावी सन्ततिके सुधारके हेतु आधुनिक अंग्रेजी शिक्षाके साथ साथ समग्र व्यावहारिक व अगाध जैन सैद्धान्तिक शिक्षाके दिये जानेके लिये" ही इसका श्रीगणेश

किया था और "अपने निरन्तर उपदेशसे कतिपय शिष्योंकी प्रवृत्ति मासिक चन्दा देनेकी ओर झुकाई और फल-स्वरूपमें (श्रीजैनपाठशाला तथा कन्या-पाठशाला) दो पाठशालाएं स्थापित हुईं जो आरम्भिक अवस्थामें कुछ सालतक केवल पोशाल रूपमें" और अब विद्यालयरूपमें है। परम प्रसिद्ध मुनि महाराज श्रीवल्लभ विजयजीके शिष्य पंन्यास श्रीसोहन विजयजी महाराजके उद्योग एवं अनुग्रहसे (श्रीमान् सेठ—सुमेरमलजी उदयचन्दजी, कालूरामजी लक्ष्मीचन्दजी कोचर, जैवन्तमलजी मङ्गलचन्दजी रामपुरिया, आसकरणजी हजारीमलजी कोचर, प्रेमसुखदासजी पूनमचन्दजी आनन्दमलजी कोठारी, तेजकरणजी चाँदमलजी, रावतमलजी भैरवदानजी कोठारी, नेमीचन्दजी अभाणीकी पत्नी, लिखमीचन्दजी शिप्पाणी, इन्द्रचन्दजी गोविन्दलालजी वैद, दानमलजी शंकरदानजी नाहटा, चौथमलजी अमोलखचन्दजी सेठिया, जसकरणजी आसकरणजी नाहटा, जेठमलजी सुराना, धनसुखदासजी मेघराजजी लूणियाँ, मुन्नीलालजी सिरोहिया, मगनमलजी गणेशलालजी कोठारी, करमचन्दजी आसकरणजी सेठिया, हस्तमलजी लक्ष्मीचंदजी डागा, उदयचन्दजी ताराचन्दजी कोचर और मोहता लूणकरणजी कोचर आदि) उदार सज्जनोंने अनवरत उद्योग कर विद्यालय बनाया और लगभग डेढ़ लाख रुपयेका स्थायी फ़ंड इकट्ठा कर उक्त दोनो पाठशालाओंकी "स्थितिकी आशङ्का अंशतः निर्मूल" कर दी। परन्तु खेदसे कहना पड़ता है कि उक्त मुनिजी महाराज तथा श्रीमानोंने इसके प्रबन्धकी ओर

पूर्णरूपसे कभी ध्यान नही दिया और इसकी वागडोर बा० शिव-वख्शजी साहव कोचरके हाथमे पहले उपमंत्री और फिर मंत्रीकी हैसियतसे दे दी, जो स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छन्दतामे दक्ष हैं और उन (कोचर महाशय) की सत्य विडम्बना भी किसीसे छिपी नहीं है। उक्त श्रीमानोंने इन पाठशालाओंके जन्मदाता शान्तमुनि महाराज श्रीचन्द्र विजयजी तथा इसके पालनकर्त्ता पंन्यास श्री सोहन विजयजीके उद्देश्योंकी पूर्तिकी ओर कभी ध्यान नही दिया, और यही कारण है कि कभी पाठ-शालामें श्रीयुत बा० गोपालसिंहजी वैद तथा स्वर्गवासी श्रीयुत बा० कालूरामजी वर्डियाका प्रवन्ध न हो सका। श्रीयुत बा० गोपालसिहजी वैदने तो विद्वान् होते हुए भी पाठशालामे कभी दिलचस्पी नही ली; पर श्रीमान् वर्डियाजीने तो पाठशालाके प्रवन्ध, पढाई तथा अध्यापकोके कर्त्तव्योके लिये कई वार आन्दो-लन किया। उन्ही आन्दोलनोके कारण उक्त कोचर महाशयजी इतने रुष्ट हो गये कि श्रीमान् वर्डियाजीके देहान्त होनेपर, उनके मामा होते हुए, भी उनके न्यारेमे (अर्थीके साथ) तथा मृतक संस्कारमे सम्मिलित नहीं हुए और न उनकी वीमारीमे, जो लगभग एक मासतक रही, कभी उनको देखना या उनका हाल पूछना पसन्द किया! परन्तु उक्त श्रीमान् वर्डियाजीके इतने जोरशोरके आन्दोलनपर भी प्रवन्धकारिणी तथा जैन-समाजने कुछ ध्यान न दिया।

श्रीमान् स्वर्गीय बा० कालूरामजी वर्डिया कदाचित् वीकानेरी

जनतामे प्रथम पुरुप थे, जो ऑल-इण्डिया-कांग्रेस-कमेटी तथा कांग्रेसकी सवजेक्ट कमेटीके मेम्वर चुने गये थे। मेरे विचारमें उक्त वर्डियाजीने ही यतियोंके विरुद्ध, उनके चरित्रहीन होनेके कारण, आवाज़ उठायी थी। यह उन्हींका साहस था कि उन्होने पाठशालाकी पढ़ाईके विषयमे यह आक्षेप किया था कि श्रीजैनपाठशालामे ऐसी पुस्तकें, जिनमे हमारे भारतीय नेता शिवाजी आदिको चोर तथा लुटेरा आदिके नामसे सम्बोधन किया है, नही पढ़ानी चाहिये, और यह भी सुना गया है कि कुछ दिनोंके लिये ऐसी पुस्तकोंको रोका भी गया था; परन्तु ये वाते उक्त कोचर महाशयकी सम्मतिके, जो अपने समाजमें आधुनिक पॉलिसीके अवतार गिने जाते हैं, सर्वथा विरुद्ध थीं, इसलिये श्रीमान् वर्डियाजीका आन्दोलन स्थायी रूपमे परिणत न हो सका। और फिर वही पुस्तकें जिनके श्रीमान् वर्डियाजी पूर्ण विरोधी थे, और प्रत्येक मनुष्य—जिसमे देश या जातिका कुछ भी प्रेम है—ऐसी पुस्तकोका अवश्य विरोध करेगा, पाठशालामें नियत कर दी गयी। यह वर्डियाजीका ही प्रेम था कि उन्होंने कोचर महाशयको समझानेकी चेष्टा की थी कि वा०वहादुरलाल जी, वी० ए०,के विषयमे झूठी रचना करके वह उनकी तनख्वाह न रोकें, अन्यथा दावा होनेपर व्यर्थ ही पाठशालाके कोषपर मुक़दमेके व्ययका भार लद जायगा परन्तु; कोचर महाशयने अपनी स्वच्छन्दताके कारण पाठशालाका हिताहित न विचार-कर उनकी वातपर कुछ भी ध्यान न दिया, जिसका परिणाम

यह हुआ कि कोचर महाशयकी ज़िदके कारण व्यर्थ ही बडिया-जीके कथनानुसार ख़र्चा मुक़दमा पाठशालाको भुगतना पड़ा। इसी तरह श्रीयुत बा० अभयराजजी नाहटाके विचारोंपर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया और सम्भव है कि कोचर महाशयकी स्वेच्छाचारिताके कारण ही उनको निरुत्साह होकर पाठशालामें जो समय लगाते थे बन्द करना पड़ा हो।

कोचर महाशयकी इस स्वेच्छताचरितापर प्रबन्धकारिणी तथा जैन-समाजके इस ओर ध्यान न देनेका फल यह हुआ कि पाठशालाका कार्य "प्रशंसनीय और संतोषजनक" कोचर महाशय-के कथनानुसार नहीं कहा जा सकता। इसका दिग्दर्शन पूर्ण रूपसे आगामी परिशिष्ट न०२ से ज्ञात होगा। परन्तु इस समय मेरे सामने १६ वर्षों (१९०७-२३) की पॉलिसीयुक्त ग़लत रिपोर्ट मौजूद है जो जहाँतक मैं समझता हूँ केवल इसीलिये निकाली गयी है कि मेरे आन्दोलनसे कोचर महाशयके प्रबन्धके विषयमे जो अरुचि जैन-जनताको हुई है उसको साफ़ करे। परन्तु इसमें भी कोचर महाशय अपनी चालबाज़ीसे बाज़ न आये अर्थात् झूठी बातोंसे अपनी स्वेच्छाचारिताको छिपानेकी चेष्टा और अपने मुँह मियामिट्ठू बनकर पाठशालाके कार्यकी प्रशंसा की है और उन्नति बतलायी है। इसका मुख्य आशय केवल यही है कि जनता उनकी स्वच्छन्दता आदिपर ध्यान न दे प्रत्युत उनके गुणगान करने लगे। परन्तु इस अनधिकार चेष्टासे अब, जैन-समाजकी आँखोंमे धूल नहीं डाली जा सकती। क्योंकि जनता बड़ी बड़ी

पॉलिसियोंको समझने लगी है, और जैन-समाज भी कुछ कुछ इसकी ओर ध्यान देने लगी है। मैं उदाहरणार्थ कुछ बातें पेश करके बतलाऊँगा कि कोचर महाशयने अपने कर्त्तव्यपालनमें जैनसमाजको, केवल इस कारणसे कि उनके प्रबन्धके विषयमें कोई आशङ्का न हो, सत्यभ्रष्टतासे बहलानेकी कोशिश की है जो सर्वथा निर्मूल है

रिपोर्टपर एक रगड़

आप वार्षिक रिपोर्टमें लिखते हैं कि "उच्च शिक्षाका अभाव, सामान्यतः उसके लिये घृणा, अल्प वयस्क बालकोंको व्यवसायमें डाल देनेकी प्रथा और साम्प्रदायिक मतविभिन्नता आदि देश कालीन इन विकट परिस्थितियों" के कारण है और "आधुनिक विचारोंके पूर्णतः अभावके कारण पाठशालाओंके प्रबन्धकर्त्ताओंने देश, समाज और धर्मोन्नतिके निज उद्देश्योंको सम्मुख रखकर पठन-क्रम आदि नियत किये थे। उन्हें पूरी तरह न समझकर साधारण जैन-जनताने अपनी मनमानी अल्प आवश्यकताओंपर ही ध्यान रखकर इन संस्थाओं (श्रीजैन-पाठशाला और कन्या-पाठशाला) में अपनी अपनी संतानोंको शिक्षा दिलानेके रूपमें पूरी सहायता नही दी" और "यहांकी जनतामें विशेषकर विद्योत्साहका अभाव होनेका कारण छात्रोंकी अनुपस्थिति बहधा प्रतीत होती है। इस त्रुटिके निवारणार्थ अनेकशः उपायों (उदाहरणार्थ, स्थानीय श्री डूंगर कॉलेज, वॉल्टर नोबुल स्कूल तथा संसारके अन्य सभ्य स्कूलोंकी अपेक्षा हाई स्टया

पठन-पाठनमे असुविधा करने, छात्रोंको डिमेड

करने अथवा तरक्की देनेके बजाय नीची कक्षामें उतार देने अथवा छात्रोंको उनके चरित्रोंके दुरुस्त करने तथा दूसरे स्कूलों-में न जानेके लिये बाध्य करनेके लिये बहिष्कार आदि उपायो) के विफल होनेपर गत वर्षसे एक मासिक पारितोषिक भी नियत किया गया है।" इससे बतलाया गया है, कि अन्य पाठशालाओं-की अपेक्षा इस पाठशालामें छात्र क्यों कम हैं। परन्तु वास्तवमे यह कारण छात्रोंके कम होनेका नहीं है, क्योकि पाठशाला केवल जैन विद्यार्थियोंको ही नही वरन जैनेतरको भी पढ़ाती है और अब पाठशालकी स्थिति ऐसी जगहपर है जहाँ पड़ोसी जैनी नही वरन जैनेतर अधिक हैं; और यदि कोचर महाशयके कथनानुसार जैन-समाजमें विद्योत्साह नहीं है तो भी जैनेतरा (अन्य जातियो) में तो उसका अभाव नही कहा जा सकता, क्योकि कॉलेजमें तथा अन्य पाठशालाओंमें परिशिष्ट नं० २,४के अनुसार छात्र अधिक हैं। और जैन-समाजमें भी विद्याका अभाव कोचर महाशयके अनुयायी शाहजीके मतानुसार नहीं कहा जा सकता क्योंकि जैन-जातिमें "देखिये साँचमें लाँछ" शिक्षित पुरुषोंकी संख्या प्रति सैकड़ा ४६ ५ और स्त्रियोंकी ३ ६ थी जब कि हिन्दू जातियोंकी संख्या १० और ७ क्रमानुसार प्रति सैकड़ा सन् १९११ ई० में थी। क्या कोचर महाशयका कथन इसी अभावसे है? हाँ, शिक्षाका, जिससे जागृति हो सकती है, अभाव अवश्य कहा जा सकता है। जहाँ ऐसी संस्थाओंके प्रबन्धकर्त्ता, जिनमे देशके नवयुवक अथवा नवयुवतियाँ ढाली जाती हों, स्वच्छन्दतापूर्वक

विचरते हों वहाँ शिक्षाका अभाव होना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। कदाचित् इस रिपोर्टके बनाते समय शाहजीसे परामर्श नहीं किया गया जो बेचारे विद्या (मर्दुमशुमारीकी रिपोर्ट-संख्या) और शिक्षाको एक ही समझे बैठे हैं। रहा यह कि "धार्मिक विषयमें मतविभिन्नता होनेके कारण पाठशालापर असर पड़ा है" यह भी सत्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जिस बीकानेरमें ईसाई स्कूल खोलकर अछूत-जातिके छात्रोंको एकत्र कर सकते हैं, वहाँ छात्रोंका अभाव कैसे कहा जा सकता है? और यदि थोड़ी देरके लिये विद्याका अभाव मान भी लिया जाय तो उसके भी मूल कारण कोचर महाशय (मंत्रीजी) ही कहे जा सकते हैं, क्योंकि विद्याका उत्साह यदि बालकोंमें किया जाय तो यह प्रेम ऐसा नहीं है जो अंकुरित होकर पल्लवित न हो। परन्तु यहाँ तो स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छन्दताके आगे प्रेम टिक ही नहीं सकता और छात्रोंको उनके बहिष्कार तथा Degradation (कक्षासे नीचे उतार देने) आदिद्वारा उत्साहहीन करनेकी चेष्टा की जाती है—कदाचित् यही समाज-हितकर पॉलिसी हो।

इसी रिपोर्टमें आप लिखते हैं कि "प्राचीन कालमें और विशेषकर वर्त्तमानमें भी केवल उच्च धार्मिक विचार (उदाहरणार्थ, अध्यापकोंपर झूठे लांछन लगाना, उनके साथ चालबाज़ी करना, मुक़दमोंमें स्वार्थ-सिद्धिके लिये झूठ बोलना, पुराने नौकरोंको ज़रा ज़रासी बातोंपर निकाल देना, स्पष्ट वक्ताओंका निरादर करना और उनके सद्भावों तथा सदुउपायोंको स्वेच्छा-

शारिताके अधीन कर देना, चापलूसोंको अपनाना और छात्रोंका अनुचित बहिष्कार करना आदि आदि) ही प्रत्येक जातिके व्यक्तियोंके सङ्गठन एवं उन्नतिके मूल कारण माने गये हैं और माने जाते हैं, (इसीलिये मंत्री महोदय अर्थात् कोचर महाशयकी 'तुच्छ तुच्छ बातोंपर मतभेद होनेके कारण प्रबल ईर्षा व द्वेषाग्नि गुप्त वा प्रकटरूपमें' भभक उठती है) " ... यह कहते हुए मुझे अत्यन्त विषाद है, कि हमारी जैन-समाज भी मतविभिन्नतारूपी नागिन की दंष्ट्रामें बैठी हुई अपने श्वास-प्रश्वासद्वारा अपना विषैला प्रभाव सर्वत्र फैला रही है और यही एक मुख्य कारण है जो संस्थाओं (श्रीजैन-पाठशाला तथा कन्या-पाठशाला) की अभीष्ट उन्नतिमें बाधक हुआ है।" कोचर महाशयके इन विचारोंसे पाठक समझ सकते होंगे कि कैसी सत्य-विडम्बनासे काम लिया गया है और विषादका कैसा अभिनय दिखाया गया है। "नागिन" वाली उपमाने तो कविवर कालिदासजीको भी मात कर दिया। कदाचित् वह इसी भयसे जीवित न रह सके, क्योंकि जैन-समाजमें कोई ऐसा विषैला प्रभाव नहीं दिखायी देता जो जैनेतरों (अन्य जातियों)में कोई बाधा करे। सम्भव है कि कोचर महाशयके गूढ विचारोंमें वैदिक धर्मावलम्बियों (आर्य्य समाजियों)का वह आक्षेप हो कि मूर्त्ति-पूजाका विषैला प्रभाव हिन्दुओंपर जैनियोंका पड़ा है अन्यथा हिन्दुओंमें कभी मूर्त्तिपूजा न था, परन्तु मैं इस रिपोर्टमें यदि प्रसङ्ग ही है तो नहीं समझ सका कि गङ्गाजीके रास्तेमें पीरोंके गीत क्यों गाये गये अथवा

मन्दिरोमें कुरानशरीफ़ क्यों पढ़ी जाने लगी ? कदाचित् कोचर महाशयके विचारोंपर रिपोर्ट लिखते समय एकताका प्रतिबिम्ब आ पड़ा हो। इसी रिपोर्टमें कोचर महाशय (मंत्रीजी) एक जगह और लिखते हैं कि "इस संस्थाके खोलनेका दूसरा उद्देश्य जो वाणिका (वाणिज्य) की सम्पूर्ण शिक्षा देना निर्धारित किया है, उसमे प्रबन्धकारिणी भलीभांति फलीभूत हुई है, क्योंकि (कोचर महाशयके अनुभवानुसार) पठन-क्रम इस प्रकार रखा गया है, कि अंग्रेज़ीकी चतुर्थ कक्षातक इस विषयकी पूर्ण शिक्षा (जो कालेजो तथा अन्य महाविद्यालयोमे वर्षों पढने तथा सहस्रों रुपये व्यय करनेपर भी अधूरी रह जाती है वह यहा अल्प ही कालमे थोड़े परिश्रमसे विना किसी प्रकारके व्यय आदिके सहज़हीमे) समाप्त हो जाती है (इसलिये ससारके वाणिज्य प्रेमियोको चाहिए कि वे अपने अपने बच्चोंको व्यापार-कुशल बनानेके लिये शीघ्र कोचर महाशयकी सरक्षितामे भेज दें— इससे समय और सम्पत्ति दोनोकी विशेष बचत है। ऐसा शुभावसर बार बार नहीं आता। शीघ्र ध्यान दे लाभ उठाइये वरन् समय निकल जानेपर सदाके लिये पछतावा रह जायगा, किन्तु "फिर पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गयी खेत")। अतः जो जो छात्र उक्त कक्षातक शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं, वे अपने व्यवहारिक कार्यको भलीभांति चलानेयोग्य होते गये हैं। अतः व्यापारियोको चाहिए कि कोचर महाशयके यहांसे या म व्यक्तियोंको अपने अपने फर्मों अर्थात् कारखानोमे शीघ्रातिशीघ्र

मर्गों करके व्यापारिक दशाको उन्नत कर संसारमें व्यापारका
सच्चा स्थायी आदर्श स्थापित करें और विशेष जाननेके लिये
कोचर महाशयसे सीधी लिखा-पढ़ी अर्थात् Direct Commu-
nication करें)। पाठकगण विचार सकते हैं कि कोचर महा-
शयने किस विचित्रतासे यहांपर अपने अनुभवका गुप्तरूपसे
नाटक कर अपनी जनताको मोहित करनेकी चेष्टा की है।

कोचर महाशय (मंत्रीजी) ने अध्यापकोंके पाठशाला छोड़ते
रहनेका कारण "छात्र-संरक्षकोंका सङ्कीर्ण विचार तथा उच्च
शिक्षाकी ओर उनकी उदासीनता" बतलाया है; परन्तु यह भी
सत्य नहीं है, क्योंकि प्रायः अध्यापक कोचर महाशयकी स्वेच्छा-
चारिता तथा स्वच्छन्दताको अपने स्वाभिमानके कारण सहन न
कर छोडते गये और यही व्यवस्था अध्यापिकाओंकी भी रही है,
जिनके प्रमाण पं० रमाशंकरजी विशारद और बा० भगवत सिंह-
जी विशारदके त्यागपत्र, बा० बहादुर लालजी बी० ए०के मुक़दमे
और श्रीमती भगवती देवीके पत्र-व्यवहारसे पूर्ण रूपसे मिलते हैं।
और स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छन्दता ही संस्थाओंकी क्षतिका
मुख्य कारण रही है और इसी कारणसे अबतक यह संस्था हाई-
स्कूल न बन सकी अथवा "बीकानेरमें जैन-समाज एक आदर्श-
रूपको धारण करता (यदि कोचर-शाह जैसे आदर्श पुरुष तथा
मधपा जैसे विचारोंके परामर्शदाता ऐसी पवित्र संस्थाओंके
सञ्चालक न होते) और यह रिपोर्ट भी अपना एक निराला ही
ढंग (अर्थात् असत्य विचारोंसे जनताको धोखा देनेका भाव) न

रखती। शोक है कि तार आदि लिखने-पढ़नेके कार्यमें कुछ कुशल होते ही (कोचर-शाहके व्यवहारोंसे तंग आकर) छात्र संस्थाको छोड़ते रहे हैं जो परिशिष्ट नं० ३ (और इस पुस्तिका के परिशिष्ट नं० ६ के मिलान करनेसे) स्पष्ट विदित हो जायगा।

मैंने ऊपर वतलाया है कि जातीय संस्थाओंमें जातीयताका भाव क़ायम रखते हुए वालक तथा वालिकाओंकी पढ़ाई तथा शिक्षा होनी चाहिए जो प्रायः नहीं मिलती है। यही अभाव इन दोनों पाठशालाओंमें पाया जाता है। महात्मा गांधीजीने आधुनिक स्कूलों तथा कालेजोंके वहिष्कारकी घोषणा इसी विचारको लेते हुए की थी कि इन विद्यालयोंमें नवयुवकोंके अन्दर राष्ट्रीयता अथवा जातीयताका भाव नहीं डाला जाता, वरन् दासता(ग़ुलामी) का संचार उनकी रग रगमें हो जाताहै। इसका परिणाम यह होता है कि नवयुवक पढ़ाई समाप्त करते ही किसी कार्यको पसन्द न कर नौकरीकी खोजमें भटकते फिरते हैं और इसके न मिलनेपर वहुतोंने तो आत्मघात कर लिया है और वहुतसे भूखों मरते हैं। यही वात यहां श्रीजैन-पाठशालामें भी पायी जाती है। इस पाठशालामें सिवाय मामूली वाणिका के और कोई काम वाणिज्य (Commerce) अथवा कलाकौशल सम्बन्धी विशेष रूपसे नहीं सिखाया जाता। इसीलिये प्रायः वालकोंके संरक्षक इस विचारसे कि उनके लड़के केवल अंग्रेजी भाषा सीखकर कहीं नौकरी की शृंखलाओंमें चलते हुए पूर्वजोंके व्यापारको तिलांजलि दे कोचर-शाहकी तरह न

जकड़ जावें, सम्भव है कि अपने लड़केको पाठशालासे उठा लेते हों। यदि यह पाठशाला प्रेम-महाविद्यालय (वृन्दावन) आदिका अनुकरण कर जातीयताका ध्यान रखते हुए पठन-पाठन कराती, तो निस्सन्देह इसमें विशेषकर जैनसमाजके बालक, जो व्यापारमें आजकल अग्रगण्य होनेकी चेष्टा कर रहे हैं, आते और पठन-पाठन न त्यागते; परन्तु इस उद्देश्यकी भी अबतक पूर्ति नहीं की गयी है। इसका मूल कारण केवल ... महाशयका प्रबन्ध है।

एक मुख्योद्देश्य इन पाठशालाओंमें धार्मिक शिक्षाका है "परन्तु अभीष्ट योग्यता किसीको प्राप्त नहीं हुई, जिसका कारण योग्य धर्म शिक्षकोंके न मिलनेके सिवाय" हिन्दी व संस्कृतकी अज्ञानता बतलायी जाती है। यह कारण भी मान्य नहीं हो सकता। क्योंकि मिशन, दयानन्द, सनातनधर्म तथा मुसलिम आदि विद्यालयोंमें प्रारम्भिक कक्षाओंके छात्र अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत और अरबी आदिके ज्ञाता नहीं होते; परन्तु फिर भी धार्मिक शिक्षाका भाव उनमें अवश्य पाया जाता है। यहाँ इसके अभावका कारण भी वही उक्त स्वेच्छाचारिता और सज्जन पुरुषोंकी अवहेलना है।

रिपोर्टके विषयमें केवल एक दो बातें और दिखलाऊँगा जिनसे यह विदित हो जावे कि "फ़ैक्ट्स ऐण्ड फ़िगर्स (Facts and figures)" वाक़िआतकी गणना अंकोंद्वारा आधुनिक पालिसीके अनुसार इसलिये की गयी है कि जनतापर पाठशाला

की प्रावन्धिक दशाका वास्तविक स्वरूप दिखायी न दे और जनता अव भी उसी भ्रममें रहकर, जिसमें अवतक थी, प्रवन्धकर्त्ता कोचर महाशयकी भूरि भूरि प्रशंसा करती रहे। उदाहरणार्थ, मैं पिछले वर्षोंको न लेकर केवल अपनी मौजूदगी (१६२१—२३) का दिग्दर्शन कराता हूँ जिनको जनतामे वहुतसे लोग, जिनका पाठशालासे सम्पर्क रहा है, भूले न होंगे। आप (वा० शिव-वख्शजी साहिव कोचर, मंत्री) पाठशालाकी १६ वर्षीय (१६०७—२३) रिपोर्टके परिशिष्ट नं० ३में यह स्वीकार करते हैं कि सन् १६२१ ई०मे कक्षा ८ थी और उसमें भंवरलाल कोचर, भीखम चन्द कोठारी और लालचन्द भादाणी ये तीन छात्र थे किन्तु उसी रिपोर्टके परिशिष्ट नं० ४ तथा ५ में अपने इस कथनको नितान्त निर्मूल वतलाते हैं अर्थात् उपर्युक्त कक्षा तथा छात्रोंका पूर्णतः अभाव दिखलाते हैं। ये तीनो उपर्युक्त छात्र पुरानी रीत्यनुसार स्थानीय श्रीडूंगर कॉलेजमें सन् १६२१ ई०की परीक्षामे भेजे गये थे, किन्तु सव अनुत्तीर्ण हुए अर्थात् शून्य प्रति सैकडा परीक्षा-फल रहा। इसपर पाठशालाकी ओरसे श्रीमान् वा० सम्पूर्णानन्दजी साहिव वी० एस-सी, एल० टी० लेट हेडमास्टर श्रीडूंगर कॉलेजसे पुनः परीक्षा (Re-Examination) लेनेकी प्रार्थना की गयी। उक्त महोदयने, जो शान्ति, कर्त्तव्यपरायणता तथा देशहितैषिताकी साक्षात् मूर्त्ति हैं, फिर देखभालकर वडी कठिनाईसे एक छात्रको अपनी दयालुतासे उत्तीर्ण किया। यह कोचर महाशयकी पॉलिसी तथा सत्यताका नमूना है। यहांपर

आपने किस चातुरीसे काम लेकर जनताको मूर्ख बनानेकी चेष्टा की है! क्या ऐसी वीरता इनके अतिरिक्त और कोई दिखा सकता है? इसके सिवा निम्नांकित कोष्ठकोंसे कोचर महाशयके कथनानुसार "बा० मयाभाई टी० शाह बी० ए० जैसे योग्य मुख्याध्यापक और पं० रामेश्वरदयालजीकी नियुक्तिसे" पाठशालाकी जो उन्नति हुई है, विदित होगी और यह भी प्रकट हो जायगा कि ऐसी पॉलिसीके द्वारा "प्रवन्धकारिणीका उद्देश्य अधुना अवश्य ही फलीभूत होगा" या नहीं:—

परीक्षा-फल सन् १९२२ ई०

कोचर महाशय के लेखानुसार परीक्षा-फल					वास्तविक परीक्षा-फल				
कक्षा	संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत	कक्षा	संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत
७	५	४	१	८०	७	५	१	४	२०
३	७	६	१	८५.७	३	७	५	२	७१ ४
२	१७	१६	१	९४ २	२	१७	१२	५	७० ६
१	१५	१३	२	८६.६	१	१३	१०	३	७६ ९
परीक्षा-फल सन् १९२३ ई०									
७	६	३	३	५०	७	६	०	६	*—०
६	२	२	०	१००	६	२	१	१	५०
५	५	३	२	६०	५	५	०	५	०
४	५	५	०	१००	४	५	४	१	८०
२	१४	८	६	५७ १	२	११	४	७	

*— [illegible] के [illegible] परीक्षार्थियोंमेंसे कोई भी उत्तीर्ण नहीं हुआ, [illegible] तथा [illegible] महाशयने छात्रोंको [illegible] कर दिया। ऐसी अवस्थामें परीक्षा-फल शून्यके स्थानमें माइनस शून्य ([illegible]) अवश्य ही [illegible] कहा जायगा। यह कार्रवाई स्वयं स्वेच्छाचारी कोचर महाशयने शाहजीकी कार्रवाईके पश्चात् की है। शाहजी "डिग्रेडेशन" के पक्षमें कदापि न थे, बल्कि वह तो अध्यापकोंसे परामर्श लेकर कतिपय छात्रोंको "प्रोमोशन" देनेका निश्चय कर चुके थे। सचमुच यह कर्त्तव्य मुख्याध्यापक (शाहजी) का था, न कि मन्त्रीजी (कोचर महाशय) का। किन्तु शाहजी करते तो क्या करते—यहाँपर तो "अन्धोंमें काना (जिसके एक नेत्र हो) राजा" के अनुसार कोचर महाशय ही सब कुछ हैं। ऐसा सम्मान शाहजीके अतिरिक्त, कोई दूसरा, जिसमें लेशमात्र भी स्वाभिमान होगा, कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। सच है, "पेट सब कुछ करा देता है"—जिसने पेटकी सुनी उसने मान-मर्यादा सब कुछ खोया।

यहाँपर अब जनताकी सुगमताके लिये सन् १६२२ तथा सन् १६२३ ई० के परीक्षा-फल छात्रोंसहित नीचे दिये जाते हैं, जिनसे पाठकगण कोचर महाशयके परीक्षा-फलसे तुलना कर सत्यासत्यका निर्णय सरलतापूर्वक कर सकें —

परीक्षा-फल सन् १६२२ ई०

कक्षा	क्रम-संख्या	नाम विद्यार्थी	फल	कक्षा	क्रम-संख्या	नाम विद्यार्थी	फल
७	१	शिवकृष्ण स्वामी	उत्तीर्ण	५	१	सूरजमल बोथरा	उत्तीर्ण
,,	२	हरीसिंह राजपूत	अनुत्तीर्ण	,,	२	मोहनलाल सेवक	,,
,,	३	चाँदमल दर्ज़ी	,,	,,	३	मंगलचन्द कोचर	,,
,,	४	जेसराज सुनार	,,	४	१	अगरचन्द नाहटा	,,
,,	५	फ़तहचन्द कोचर	,,	,,	२	भवरलाल नाहटा	,,
६	१	भँवरलाल वैद	उत्तीर्ण	,,	३	सोहनलाल राजपूत	,,
,,	२	मोतीलाल वैद	,,	,,	४	भैरूंदान पुगलिया	,,
,,	३	मुकुन्दलाल कोचर	,,				

कक्षा	क्रम स०	नाम विद्यार्थी	फल	कक्षा	क्रम स०	नाम विद्यार्थी	फल
३	१	रतनलाल सुराना	उत्तीर्ण	२	१२	कालूराम उर्फ गुलाबचन्द	उत्तीर्ण
”	२	जेसराज कोचर	”			सुराना	
”	३	भँवरलाल कोचर	”	”	१३	भीखमचन्द बैद	अनुत्तीर्ण
”	४	जीवनलाल कोचर	”	”	१४	छगनमल पारख	”
”	५	राधाकृष्ण सोनार	”	”	१५	केशरीचन्द पारख	”
”	६	रूपचन्द सेठिया	अनुत्तीर्ण	”	१६	चम्पालाल कोचर	”
”	७	राजमल कोठारी	”	”	१७	जेठमल सेठिया	”
२	१	शिखरचन्द कोठारी	उत्तीर्ण	१	१	मोहनलाल कोचर	उत्तीर्ण
”	२	भँवरलाल बोथरा	”	”	२	अनन्तलाल सिरोहिया	”
”	३	कन्हैयालाल बोथरा	”	”	३	भँवरलाल कोचर (१)	”
”	४	बंसीलाल कोचर	”	”	४	भँवरलाल कोचर (२)	”
”	५	रिखबचन्द कोचर	”	”	५	धनराज भणशाली	”
”	६	मानमल कोचर	”	”	६	नथमल लूणिया	”
”	७	धनराज कोचर	”	”	७	छगनमल सेठिया	”
”	८	धर्मचन्द कोचर	”	”	८	कृष्णलाल पुरोहित	”
”	९	पानमल सिरोहिया	उत्तीर्ण	”	९	अमोलखचन्द कोचर	”
”	१०	रिखबचन्द सेठिया	”	”	१०	गिरधरलाल सेवक	”
”	११	रतनलाल चोरटिया	”	”	नं०	११, १२ तथा १३	अनुत्तीर्ण

परीक्षा-फल सन् १९२३ ई०

कक्षा	क्रम-संख्या	नाम विद्यार्थी	फल	कक्षा	क्रम संख्या	नाम विद्यार्थी	फल
८	१	शिवकृष्ण स्वामी*	अनुत्तीर्ण	५	४	माणिकचन्द ख़ज़ांची	अनुत्तीर्ण
७	१	हरीसिंह राजपूत	,,	,,	५	जेसराज वैद	,,
,,	२	चाँदमल दर्ज़ी	,,	४	१	राधाकृष्ण सोनार	उत्तीर्ण
,,	३	मुकुन्दलाल कोचर	,,	,,	२	जीवनमल कोचर	,,
,,	४	भँवरलाल वैद ⎫ तुल्य हैं	,,	,,	३	जेसराज कोचर	,,
,,	५	जेसराज सुनार ⎬	,,	,,	४	रतनलाल सुराना	,,
,,	६	चतुर्भुजसिंह राजपूत ⎭	,,	,,	५	भँवरलाल कोचर	अनुत्तीर्ण
६	१	सूरजमल बोथरा	उत्तीर्ण	३	१	शिखरचन्द कोठारी	उत्तीर्ण
,,	२	मोहनलाल सेवक	अनुत्तीर्ण	,,	२	रिखबचन्द सेठिया	,,
५	१	अगरचन्द नाहटा		,,	३	मानमल कोचर	,,
,,	२	भँवरलाल नाहटा	,,	,,	४	पानमल सिरोहिया	अनुत्तीर्ण
,,	३	सोहनलाल राजपूत	,,	,,	५	रिखबचन्द कोचर	,,

[illegible] नम्बरको लिया था, किन्तु पाठ[illegible] कक्षा ७ के साथ सालभर- [illegible] गया, [illegible] दान नहीं दी गयी। परीक्षामें, यह सोचकर कि कक्षा ७ तो प्रथम श्रेणीमें पास कर चुका है, सम्मिलित नहीं हुआ। [illegible] जानेपर, कि परीक्षामें सम्मिलित न होनेसे पाठशालासे निकाल दिया जायगा, बेचारेको मजबूरन सम्मिलित होना पड़ा। सब विषयोंमें उत्तीर्ण हुआ, केवल एक नम्बरसे धार्म्मिक विषयमें अनुत्तीर्ण रहा। इतिहास तथा भूगोलमें सम्मिलित न हो सका था। अतः उचित था कि इनमें परीक्षा ले इसको तरक्की दे दी जाती, किन्तु ऐसा नहीं हुआ, बल्कि आज्ञा के ता० १२-४-२३ के नादिरशाही आर्डरद्वारा पाठशालासे सदाके लिये बहिष्कृत कर दिया गया। [illegible] साथ ऐसा व्यवहार कहांतक उचित है, पाठक स्वयं विचार करें। यह लड़का इस समय स्थानीय श्री डूँगर कालजकी ५ वीं कक्षामें पढ़ रहा है। अतः मेरे उपर्युक्त कथनके सत्यासत्यकी जॉच वहाँके हेडमास्टर साहिबके समक्ष इस लड़केसे स्वयं कर सकते हैं।

कक्षा	क्रम-संख्या	नाम विद्यार्थी	फल	कक्षा	क्रम-संख्या	नाम विद्यार्थी	फल
२	१	गिरधरलाल सेवक	उत्तीर्ण	१	१	भँवरलाल राखेचा	उत्तीर्ण
”	२	भँवरलाल कोचर (१)	”	”	२	भँवरलाल हीरा कोचर	”
”	३	भीखमचन्द वैद	”	”	३	जतनलाल कोचर	”
”	४	केशरीचन्द पारख	”	”	४	भँवरलाल वैद	”
”	५	छगनमल पारख	अनुत्तीर्ण	”	५	प्रेमसिंह ब्राह्मण	”
”	६	अमोलखचन्द, कोचर	”	”	६	फालगुन पारख	”
”	७	भँवरलाल कोचर (२)	”	”	७	रामनरायन रंगा	”
”	८	मोहनलाल कोचर	”	”	८	वंशीलाल चोरड़िया	”
”	९	नथमल लूणिया	”	”	९	मंगलचन्द कोचर	”
”	१०	धनराज भणशाली	”	”	१०	श्रीचन्द गोलछा	”
”	११	हनुमानसिंह राजपूत	”	”	११	मेघराज सुखानी	”
				”	नं०	१२ और १३	अनुत्तीर्ण

इन उपर्युक्त कोष्ठको तथा कोचर महाशयकी १६ वर्षीय रिपोर्टके परिशिष्ट नं० ३, ४ तथा ५ (इसी पुस्तिकाके काण्ड ७ के अन्तर्गत परिशिष्ट नं० १०—अ, ब, स देखिये) को ध्यानपूर्वक देखनेसे ज्ञात होगा कि कोचर महाशयने सफेद झूठ ही नहीं, किन्तु कहीं कहीं तो अपरिमित झूठ (कक्षा ७ के—.० प्रतिशत परीक्षा-फलको ५० प्रतिशत तथा कक्षा ५ के ० प्रतिशतको ६० प्रतिशत बनाकर) किस हिम्मतके साथ लिखकर भोली-भाली जनतापर "मदारीवाली लकड़ी" फेरनेकी अनधिकार चेष्टा की है और इसी फलपर शाहजी तथा पं० रामेश्वर दयालजीकी भूरि भूरि प्रशंसा की गयी है तथा इसी* फलपर शाहजीके वेतनमें १०) मासिककी वृद्धि की गयी है और पं० रामेश्वरदयालजीके वेतनमें ५) की वृद्धि की गयी थी, परन्तु इन्होंने उसे लेनेसे कदाचित् इसलिये इनकार कर दिया कि शाहजीकी अपेक्षा इतना कम लेनेमें अपमान होता था। यद्यपि यह इनकार पॉलिसीपर निर्भर था तथापि "बिनु औसर भयते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई" के अनुसार इनको इस विषयमें केवल यही कहा जा सकता है कि इन्होंने अनधिकारी होना स्वीकार किया जिसके लिये उन्हें अनेकानेक धन्यवाद है। क्या ऐसे ही कर्त्तव्यपरायणो-

पर प्रवन्धकारिणीको आशा दिलायी गयी है कि "उसका उद्देश्य अधुना अवश्य ही फलीभूत होगा" ? सत्य है, "समान व्यसनेषु मैत्री" अथवा "चोर चोर * मौसेरे भाई"की कहावत अनुचित तथा अप्रासङ्गिक नहीं कही गयी है।

इस १६ वर्षीय रिपोर्टमेंसे जनताके सत्यासत्य निर्णय करनेके लिये ही कुछ वातोंको मैंने यहाँ उदाहरणार्थ दिखलाया है और लगभग ३ वर्षका अन्तिम परीक्षा-फल भी दिखलाकर पिछले सालोंका हाल इसलिये नहीं लिखा कि पाठक "स्थाली पुलाक" न्यायसे स्वयं जाँच कर सकेंगे कि जब राष्ट्रीय टकसालोंमें, जहांपर नवयुवकोंको सच्चरित्रताके साँचेमें ढाला जाता है, सत्य और कर्त्तव्यपरायणताकी मात्रा इतनी अधिक हो, तो "चु कुफ़् अज़ कावा वर ख़ेज़द कुजा मानद मुसलमानी" अर्थात् जब कावामें कुफ़्र होने लगे तो मुसलमानी और किस जगह रह सकती है, के अनुसार यह विचारणीय है कि अन्य समाजका क्या हाल हो सकता है और शाहजीके लेखानुसार "एक निःस्वार्थ कर्त्तव्यपालन करनेवाला अवैतनिक मंत्री, स्वभावतः न्यायशील आदर्श सज्जन" कहाँतक कहा जा सकता है—इसके वतलानेकी आवश्यकता नहीं! यह वात दूसरी है कि "उष्ट्राणांच विवाहेषु गीतं गायन्ति गर्द्दभाः। परस्परं प्रशंसन्ति अहोरूपमहो ध्वनिः॥" अर्थात् "मैं तेरे गीत गाऊँ और तू मेरा राग अलाप" को चरितार्थ कर "आत्म-शुद्धि" की जावे।

* मौसेरे भाइ अर्थात् मासी (मौसी) का लड़का।

इसके अतिरिक्त इसी पाठशालाके विषयमे मैंने "सत्य-प्रकाश" के हेतु जो आन्दोलन किया है अथवा इस आन्दोलनमें मेरा जो पत्र-व्यवहार कोचर-शाहसे हुआ है उससे भी इनके सत्यपरायण, कर्त्तव्य पालक, न्यायशील,दानी और दयालु आदि होनेका हाल मालूम होता है। इसलिये मैंने क्रमानुसार सब निज अनुभूत बातें जनताके विचारार्थ अक्षरशः नक़ल कर दी हैं। विचारपूर्वक देखनेसे यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि यह सब धींगाधींगी केवल सत्याभाव तथा पॉलिसीके प्रादुर्भावहीके कारण है और इन सबका मूल कारण केवल अशिक्षाका प्रचार है।

———

काण्ड २

* आन्दोलनका प्रारम्भ *

(१)

पत्र नं० ८०, ध्यानसे विचार करे'

श्रीमान् बा० शिवबख्शजी साहित्र सेक्रेटरी,

श्रीजैनपाठशाला, बीकानेर।

ता० १८—५—२३

महाशयजी,

कल ता०१७ ५-२३ को आपके नो० नं०४०१ से आगाह हुआ। विदित हो कि मुझे पाठशालाकी सेवा करते हुए लगभग ३ वर्ष हो रहा है। जैसी मैंने सेवा की है वह पाठशाला रेकर्डसे विदित है। अगर देखनेवाले पदाधिकारी उसपर ध्यान न दे तो उसमें मेरा क्या दोष है? इतने दिनोमे मेरा ३ मास छुट्टीका हक़ है जिस· मेंसे मैंने केवल १ मास १८ दिनकी छुट्टी ली है। यदि इत्तफा· क़िया छुट्टीकी ओर ध्यान दे तो मुझे ४० दिनकी छुट्टी लेनी चाहिये थी, जिनमेसे मैंने केवल लगभग ३ दिनकी छुट्टी ली है,सो

भी अति आवश्यकीय कारणोंसे। जिस वक्त मेरा स्वास्थ्य इतना खराब हो गया था कि चलना फिरना दुश्वार हो गया था, उस समय भी निरन्तर नियमानुसार सेवा करता ही रहा। आपने स्वयं मेरी दशापर तरस खाकर कहा था कि षाण्मासिक परीक्षाके बाद आप छुट्टी लेकर अवश्य आराम करें। इतना कह देना और भी उचित समझता हूं कि इतने दिनोंकी सेवामें केवल एक दिन ता० २५-७-२१ को ४ मिनट पाठशालामे लेट आया हू। जिसका कारण यह था कि स्कूल-घडी फास्ट थी, किन्तु इस लेटके लिये मी अति दुःखी हूँ और अवतक क्या बहुत दिनोतक याद रहेगा।

परीक्षा-फल तथा आचार-व्यवहार आदिके विषयमे लिखना व्यर्थ है, क्योकि ये सब बातें रेकर्डमें स्पष्ट दर्ज हैं—यदि कोई न देखे तो इसके लिये मैं क्या करू? मैंने आरम्भ क्लाससे लेकर छठे क्लास तककी शिक्षा इस पाठशालामे भिन्न भिन्न समयोमे दी है जिनके फल, परीक्षाफल,रजिस्टरमें दर्ज हैं, कहनेकी आवश्यकता नहीं, किन्तु अब मैं इतना आपसे पूछता हूँ कि क्या आपने गत परीक्षाफलमें हिन्दी (सी) क्लासका फल देखा है? इस क्लासको हेडमास्टर साहिबने मुझे कम्पेल् (Compel) करके दिया था। इसमे कुल १७ लडके शरीक-इम्तिहान थे जिनमें १३ कामयाब हुए, और इन्हींमेसे १० लड़के डबल परीक्षा दिये थे जिनमे ६ तो पूर्णत: पास थे और एक प्रोमोटेड हुआ था। इनके प्राप्त अंकोंका ज्ञान आप परीक्षाफल-रजिस्टरसे कर

सकते हैं। सुनते हैं कि यह आपकी पाठशाला लगभग १४ वर्षोंसे क़ायम है। क्या आप उपरोक्त परीक्षाफलसे बढ़कर सन्तोषदायक फल इन १४ वर्षोंमें बतलानेकी कृपा करेंगे? इतना ही नहीं, मैं तमाम स्टेटके स्कूलोंमेंसे पूछता हूं कि कहीं इससे बेहतर नतीजा आपने कभी देखा है क्योंकि आप इन्स्पेक्टर ऑव स्कूल्स भी रह चुके हैं?

आजतक मैंने कभी भी इन बातोंको नहीं कहा था, आज अन्यायके कारण अन्तिम दिन उपस्थित होनेसे कहे बिना रहा नहीं गया। मैं बराबर सन्तोष तथा शान्तिपूर्वक काम करता गया, सो आज इन कर्मोंका फल तथा इनाम मुझे उक्त नोटिस द्वारा दिया गया है। जब मैं आपकी सेवामें आया तो मैंने साफ़ साफ़ कह दिया था कि जबतक सेवा करूंगा, सच्चे दिलसे करूंगा, आजतक कोई भी भारी दोष नहीं बतलाया गया। मुझे आपके न्यायपर आश्चर्य और हैरत है। परीक्षाफल आदिको जाने दीजिये, यदि सीनियरिटीपर ध्यान दें तो मेरा नम्बर पाठशालामें दूसरा है। सब जगह सीनियरिटीपर विशेष ध्यान दिया जाता है, किन्तु यहांकी लीला तो विलक्षण ही है। यह मैं जानता हूं कि जब रिडक्शनकी व्यवस्थाकी आवश्यकता है तो अवश्य ही रिडक्शनकी शरण लेनी चाहिये। आज तो संसारमें रिडक्शन कार्य ज़ोरोंपर चल रहा है, तब आपने किया तो क्या अनुचित किया! किन्तु ज़रा सोचिये तो सही कि आपहीके नोटिस जैसी कार्रवाइयाँ हो रही हैं?

इतने दिनोंकी सेवाका फल आज जेनरल नोटिसद्वारा दिया गया है जिस नोटिसको आम तौरसे तमाम लड़के उलट पुलटकर देखा करते हैं, जिसका सबुत यह है कि मैंने हेडमास्टर साहिबको लिखकर दिया है कि लड़कोंका देखना अनुचित है। यदि आपको ऐसा ही नोटिस देना था, तो आपको उचित था कि प्राइवेट नोटिसद्वारा सूचना देते, वल्कि सर्वोत्तम तो यह था कि एकान्तमें मुझसे कहते और मैं प्रसन्नतापूर्वक आपकी नीतिकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए हट जाता। आपने कभी बाततक न चलायी और मुझे भी ऐसे वर्तावकी स्वप्नमें सम्भावना कदापि न थी, किंतु आज तो विपरीत ही तथा विलक्षण ही गुल खिला। भला ऐसी [illegible] तथा अचानक घटनासे कौन नहीं अवाक् रह जायगा? आप तो सदा प्रेम तथा संगठन संगठन चिल्लाया करते थे, सो [illegible]परायण सेवक पर ऐसा गुपचुप वज्र-प्रहार! क्या आपके [illegible] तथा न्यायने मेरे ही पोस्ट रिडक्शनमें सोलह आने [illegible] प्रमाणित हुई थी? धन्य है आपको तथा आपके [illegible]! वाह रे न्याय वाह!! आपको इस इंसाफपर सद [illegible]!!!

[illegible] महोदयजी! आपने जैसा वर्ताव गत वर्ष लेट धर्म [illegible] बा० गिरधरदेवचन्दजी दोसीके साथ किया है उससे मैं [illegible] आप स्वयं भी कभी कभी दुःखी होते होंगे। इन सज्जन [illegible] सज्जनता आपके सम्मुख बयान करना [illegible]के आगे

*बेन**बजावे भैस बैठी *पगुरावे*†" की कहावत की याद दिलाती है। भला जब आपने उनके साथ ऐसा वर्ताव किया तो दूसरेको कब छोड़नेवाले ? मैं भूला था, मेरी ही ग़लती थी जो मैंने विश्वास किया। आजतक आपने नहीं मालूम कितने निरपराधियोंका गला घोटा और नहीं मालूम कितनेके घोटने बाकी हैं। मैं इतना कार्य करनेपर भी सदा डरता ही था सो आज आपके वर्ताव, स्वभाव तथा न्यायका दौरा मेरे सिरपर भी आ ही पड़ा। सच है, भला "चूहेकी मा कबतक खैर मनावेगी।" ग़ैरोंसे कभी कभी आपकी नीति आदिके विषयमें मैं सुना करता था, किन्तु कर्त्तव्य-पालनके अभिमानमें पड़ भूल जाता था। वाह रे न्याय और इंसाफ़! कहावत है कि "साँचको आँच क्या ?" किन्तु आपने तो इस प्राचीन कहावतको भी सोलह आने ग़लती साबित कर दिया। क्यों न करें ? कहा है कि—"परम स्वतंत्र न सिरपर कोई, भावै मनहि करै सोइ सोई।"

महाशयजी ! *मैं इसलिये नहीं रो रहा हूँ कि आप दया करके मुझे पुनः सेवामें रख लेवें---रोना मुझे न्याय और अन्यायके भ्रमका* है। यदि आज न्याय हुआ होता तो मैं चूँ तक न करता, क्योंकि मुझे भी न्याय प्रिय है और उसका थोड़ा-बहुत भक्त भी हूँ। *क्या आप कृपा कर अपने न्याय और इन्साफको समझाकर*

---

* वीणा, तम्बूरा, बाजा विशेष, जिसे नारद और सरस्वती आदि बजाते हैं।

† पगुराना, जुगाली करना, चबाये हुए को पुन चबाना।

मर दुःखी हृदयको शान्ति देंगे? ऐसे निष्ठुर और निर्दय व्यव-हारको आजतक मैंने कभी भी नहीं देखा। वलिहारी है इस रीति और नीतिको! मुझे दुःख है केवल अन्यायका और कुछका रजमात्र भी रजोगम नहीं। अधिक कहाँतक कहूँ, आश्चर्यमे पड़ विस्मित हो गया हूँ। मैं, इसलिये, आपको अपना मित्र समझकर चेतावनी दे रहा हूँ कि अब भी ध्यान दे आइन्दाके लिये सुधर जायँ और नाहकमें किसीके गलेके काँटे अब न बने "कर्मोपदास कबसे सही-जबसे ज्ञान हो जावे तबसे सही।" यदि अब भी चेत जावें तो खैर है।

महाशयजी! इस संस्थाने आपको बड़ी रकम और सर्वा-धिकार आपको सर्व योग्य समझकर दी है। सावधान, आप विचारकर काम करें। आप निश्चय जानिये, आपको ईश्वरके सामने कौड़ी कौड़ीका हिसाब चुकाना होगा। वहापर आपका सिवाय पाप और पुण्यके कोई भी मिल न सकेगा।

पाठशालाके मेम्बरो और अन्य शुभचिन्तक महोदयो! मेरी इस प्रार्थनापर अवश्य ध्यान दे शान्ति दें। आप लोग "अहिंसा परमो धर्म" के उपासक हैं। कृपया उचित समय दे मीटिङ्ग-आदि कर सिद्ध कर दिखला देवे कि मेरे साथ अन्याय कदापि नहीं हुआ है। मुमकिन है कि मै गलती समझ रहा होऊं। मैं इस ... कार्यके लिये आप लोगोका सदा आभारी रहूँगा ... कि आप लोग सच्चे अहिंसक वीर हैं।

चैलेंज—

सुनते हैं कि नोटिसके वाद लोग काम कुछ भी नहीं करते। क्या इस शुभावसरपर मेरे ऊपर सिद्ध कर दिखलानेकी कृपा करेंगे? मैंने इसीलिये ता० १५-६-२३तक ठहरनेका निश्चय किया है कि मेरी त्रुटियोंका पता लग सके, वरन् इस अन्यायके आगे आज ही क़िनअ्-तअल्लुक़ कर लिया होता। इतनी वड़ी संस्था है और मैं अकेला निर्वल सेवक हूँ; देखें तो कौन वाजी मारता है?

आशा है कि शान्तिपूर्वक उत्तर तथा उपदेश देकर कृतार्थ करेंगे। वाहरे न्याय वाह! इसीपर भारत फूला नहीं समाता! अति दुःखी हू, किन्तु आपके न्यायका निर्णय ईश्वरपर छोड ईश्वरसे पार्थी हूँ कि आपको ईश्वर दीर्घायु करे, न्याय तथा सद्विचारकी शक्ति दे और अन्यायसे घृणा करनेकी सुबुद्धि दे।

इतना और कहना उचित समझकर अव यहीं रुक जाता हूं कि हमारे हेडमास्टरजीका विशेष दोष नहीं है। यदि कभी कुछ असन्तुष्ट हुआ भी तो उनके अभीनवी होनेके कारण हुआ। मुझे वड़ी प्रसन्नता है कि हेडमास्टर साहिव अपने दोषोंको शीघ्र प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं—कई वार इन गुणोंके देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

अभी ता० १४५-२३की वात है कि हेडमास्टर साहिवने मेरे ऊपर कुछ दोष लगाया था, किन्तु मैंने जव उन्हे प्रार्थनाद्वारा समझाया, तो उन्होंने शीघ्र अपनी ग़लती स्वीकार कर ली और पूरे सोलह आने मुझे निर्दोषी पाया। कानके प्रेमी वनकर दोषी ठह

[illegible]राये थे, किन्तु उन्हे मालूम हो गया कि महज़ कानकी सुनीपर ध्यान देनेवाला सर्वदा शर्मिन्दा होता है।

अधिक व्यवस्था आप मुखाग्र पूछ सकते है। आपके अवलोकनार्थ नोटिसकी नक़ल नीचे लिखी हुई है—

❀ नोटिस न० ४०१

मा०गमलोटन प्रसादजी,

आपका स्थान कमी (Reduction) मे आनेके कारण आपको आजसे सेक्रेटरी साहिबकी आज्ञानुसार एक मासकी नोटिस पाठशालाके नियमानुसार दी जाती है। ता०१७-५-२३

Sd. M T Shah,

R L P. Head Master,

17-5-23

*—यह नोटिस मुझे कमी (Reductin) के कारण, जैसा नोटिसमें [illegible], नहीं दिया गया है, बल्कि पॉलिसीके द्वारा कर्त्तव्यपरायण, शुभ-[illegible] तथा स्पष्टवक्ता होनेके कारण, जो कोचर महाशयके स्वभावानुकूल [illegible], दिया गया है। यदि मैने कर्त्तव्यच्युत हो मथराकी नीतिका आश्रय [illegible] महाशयके प्रसन्नतार्थ चापलूसीसे काम लिया होता, तो आज मैं [illegible] वेतनवृद्धि प्राप्तकर शाहजी आदिकी भाँति मक्खनपर हाथ फेरते [illegible]ता, और 'अपने आत्मीय शुद्ध भावोंसे" इस संस्थाके कार्य-[illegible]रहता। कोचर महाशयके यहाँ कर्त्तव्यपरायणताकी नहीं, बल्कि [illegible] कदर है। इस नोटिस द्वारा कोचर महाशयने "क्षमा" का [illegible] अविनय जनताके समक्ष दिखाकर अपने "न्यायानुकूल मद

-श्रीजैन-पाठशाला,-बीकानेर।—

महाशयजी ! आप स्वयं विचार देखें कि उपरोक्त नोटिसद्वारा कैसा प्रेम टपक रहा है ! ज्ञात होता है कि नोटिस क्या है शान्ति-भवन है ।

महाशयजी ! मैं केवल न्याय चाहता हूं । न्याय द्वारा निर्धारित दोषोंके लिये सहर्ष जेल जानेको तैयार हूं—यह मैं सर्वदासे कहता आया हूँ और आज भी वही कह रहा हूं । यह प्रत्येक धर्मों तथा संस्थाओंसे निर्विवाद सिद्ध है कि *न्यायके आगे माता-पिता, भाई-वन्धु कोई चीज नही है । न्याय ही सव कुछ है।*

यह सव जानते हैं कि "पाप वड़ा सुख देता है, वरस पांच अरु सात । द्वादस वरसके वीचमे,लिये रसातल जात ॥"

यह पत्र मैंने इसलिये नही लिखा है कि आपके आत्माको चोट पहुँचे, वल्कि आपके आत्म-शुद्धिके लिये अपना कर्त्तव्य समझ लिखा है । आशा है, विचारकर मुझे भी शान्ति प्रदान करेंगे । इतनी स्पष्टतासे सिवाय शुभचिन्तकके दूसरा कदापि नहीं लिख सकता ।

व्यवहारों" का परिचय दिया है, वह इस पुस्तिकाके काण्ड ७ के अन्तगत परिशिष्ट न० १ से स्पष्ट विदित हो जायगा ।

सच्चा राजभक्त, देशभक्त तथा शुभचिन्तक वही व्यक्ति है, जो सत्य पर अचल रहे, अपने कर्त्तव्योंका पालन करे । यह वही भारत है, जहाँपर लोग सिर देकर सत्यकी रक्षा करते थे । किन्तु हाय ! आज "पालिसी देवी" के भक्त वन लोग कौडी-कौड़ीपर असत्य वोलनेके लिये कटिवद्ध है ।

जिस विचारसे आपने निरपराधो लेट धर्म-मास्टरको यहाँसे हटाया था उसकी पूर्ति आजतक हुई ?

आपका शुभचिन्तक आज्ञाकारी सेवक,

रामलौटन प्रसाद, असिस्टेन्ट मास्टर।

मेरे उपर्युक्त हिन्दी-पत्र नं० ८०का कोचर महाशयने, जिनको यदि "बड़ा साहब"कहा जाय तो अनुचित न होगा, निम्नलिखित उत्तर अङ्गरेजी भाषामें दिया है; जो वैसा ही नक़ल किया जाता है जैसा कि शाह जी महोदयने मुझे लिखाया है :—

(२)

पत्रोत्तर

I have gone through this very carefully and far from being angry at that he has thought fit to hurl at me. I rather pity him for the same Still I am sorry I cannot but stick to what I have decided In view of the present circumstances of the Pathshala I cannot afford to spend unnecessarily such a high sum [i e Rs. 40] every month [because the self—conceitedness has compelled the Secretary to increase unnecessary expenses in the guise of reduction by appointing the new Head Master on Rs 150] I, therefore, am compelled to make a reduction whether it may be palatable or not to anybody

conscientious teachers showing good results should be promoted] but followed the same strictly in that I have given him a month's notice as therein laid down What more he expects ? [Nothing but what Prahlad and Vibhishan had received from their elders or India has received in recognition of her war services] I do not wish to criticize his work, otherwise I know [just as Ravana and Hiranyakashipu knew about Vibhishan and Prahlad] what his shortcomings [i e duty, punctuality, straightforwardness and free from flattery] are. Please inform or rather show him this

As for his note for Dharma Teacher, I pity rather again that he is not properly acquainted with the facts

I had tried to introduce in the Provident Fund Rules, thereby affording some bonus to those retiring with no fault of theirs but it seems for that the day is yet far off, for unless a certain standard is permanently fixed upon, I can not launch upon this costly scheme [i e reducing a teacher of Rs 40 p m and appointing a new Head Master instead] Of his case show generously he was treated in view of his peculiar circumstances [being dutiful in Kaliyuga] Besides it is no business of him to plead for him [because a man should not sympathise with others who might have been treated unjustly and malignantly] If the Pathshala has not been able to fill up the vacancy caused his services have been dispensed with can he say the Pathshala suffered on that account ? [Certainly !]

21-5-23 } Sd Shivabax [Kochar Secretary, Shri Jain Pathshala, Bikaner]

इस उपर्युक्त अंग्रेज़ी पत्रका, जो मेरे पत्र नं० ८० ता० १८-५-२३ के उत्तरमे है, साराश यह है:—

मैंने इसपर बहुत अच्छी तरह विचार किया है और जो कुछ उसने मुझपर आक्षेप करने उचित समझे, उसके लिये मैं अप्रसन्न नहीं हूँ, बल्कि मुझे करुणा आती है, तथापि मुझे खेद है कि जो कुछ मैं कर चुका हूँ उसके अतिरिक्त अब मैं कुछ कर नहीं सकता। पाठशालाकी वर्तमान स्थितिको देखते हुए मैं इतनी ज़ियादा रक़म [अर्थात् ४० रुपये] मासिक व्यर्थ व्यय नही कर सकता [क्योंकि स्वेच्छाचारिताने मंत्री महोदयको कमी और व्यर्थ व्ययकी आड़मे १५०) मासिकका नया मुख्याध्यापक बढ़ाकर खर्चा बढानेको बाध्य किया है। इसीलिये तो ४०) मासिककी कमी करके १५०) मासिकका टैक्स बढ़ा दिया गया है]। इसलिये मैं कमी करनेके लिये बाध्य हुआ हूँ, चाहे वह किसीको अच्छी लगे या बुरी [क्योंकि कर्त्तव्यपालनके नामसे यह अभिनय किया गया है] और इस कार्यके करनेमे मुझे आवश्यक है [यद्यपि कर्त्तव्य नहीं] कि केवल उन्ही व्यक्तियोंको रक्खूं जो पाठशालाके विचारसे मेरे लिये लाभदायक [अर्थात् मेरी चापलूसी और खुशामद करनेवाले] हो। मैंने पाठशालाके किसी

अर्थात् एक मासके नोटिसपर, जो मैंने उसको दिया है, आरूढ़ हूं। भला इससे अधिक वह और क्या आशा करता है? [सिवाय इसके, कि जो प्रह्लाद और विभीषणको उनके गुरुजनोंसे अथवा भारतको उसकी युद्धसेवाकी यादगारमें सर्कारसे मिला था, और कुछ भी नहीं चाहता।] मैं उसके कामकी विवेचना करना नहीं चाहता अन्यथा मैं जानता हूं [ठीक उसी तरहसे जिस तरह रावण और हिरण्यकशिपु विभीषण और प्रह्लादकी बावत् जानते थे] कि उसमें क्या त्रुटियाँ [अर्थात् कर्त्तव्यपरायणता, मुस्तैदी, निर्भीकता तथा चापलूसीरहित] हैं। कृपया आप [शाहजी] उस [रामलौटन प्रसाद] को सूचित कर दें अथवा इस पत्रको दिखला ही दें।

अब रहा धर्मशिक्षकके विषयका नोट—इसके लिये भी मुझे करुणा आती है कि वह [रामलौटन प्रसाद] पूर्णतः मुआमिलोंसे अनभिज्ञ है।

मैंने "प्रॉविडेण्ट-फ़ण्ड" के नियमोंको जारी करनेकी चेष्टा इसलियेकी थी कि उन लोगोंको जो पाठशालासे निर्दोष स्वयं चले जावें कुछ "बोनस" अर्थात् *इनाम एकराम* मिल जावे परन्तु प्रतीत होता है कि वह दिन अभी बहुत दूर है, क्योंकि जबतक कोई स्थायी व्यवस्था निश्चित न हो जावे मैं ऐसे बहुमूल्य स्कीम [अर्थात् ४०) मासिकके अध्यापकको कम करके १५०) मासिकका नया मुख्याध्यापक नियुक्त करने] को छेड़ना नहीं चाहता। उसके अर्थात् धर्म-शिक्षकके बारेमें उसके साथ उसकी विचित्र व्यवस्था

[कलियुगमें कर्त्तव्यपरायणता]को देखते हुए उसके साथ दयाका बर्ताव किया गया है। इसके अतिरिक्त उस [अर्थात् रामलौटन प्रसाद] का कर्त्तव्य नहीं है कि वह उस [धर्म-शिक्षक] के लिये पैरवी करे [क्योंकि मनुष्यको ऐसे मनुष्यके साथ, जिसके साथ अन्याय अथवा क्रूरताका व्यवहार किया गया हो, सहानुभूति न करनी चाहिए]। यदि पाठशालाने किसी रिक्त स्थानकी पूर्ति नहीं की तो क्या वह कह सकता है कि पाठशालाको उसके कारण हानि हुई ? [अवश्यमेव !]

ता० २१-५-२३ } द० शिवबख्श [कोचर, मंत्री, श्रीजैन-पाठशाला, बीकानेर]

---

(३)

पत्र नं०८१, ता०२४-५-२३

श्रीमान् बा० शिवबख्शजी साहिब सेक्रे०
श्रीजैनपाठशाला, बीकानेर।

महाशय जी,

मेरे पत्र नं० ८० ता०१८-५-२३का उत्तर आपके यहाँसे ता० [illegible]को मिला। उत्तरसे पूर्ण आगाह हुआ।

[illegible]समें सादर निवेदन है कि जो उत्तर आपने दिया है [illegible] *तथा अधिकांश मेरे पत्रसे बिलकुल सम्बन्ध नहीं* [illegible]। इससे यह कह सकता हूँ कि उत्तर सन्तोषदायक [illegible]।

[illegible] उक्त पत्रोत्तरके अन्तर्गत जो शब्द इन [ ] कोष्ठोंके [illegible] ([illegible] लेखक—रामलौटन प्रसाद—के) हैं।

अर्थात् एक मासके नोटिसपर, जो मैंने उसको दिया है, आरूढ़ हूं। भला इससे अधिक वह और क्या आशा करता है? [सिवाय इसके, कि जो प्रह्लाद और विभीषणको उनके गुरुजनोंसे अथवा भारतको उसकी युद्धसेवाकी यादगारमें सर्कारसे मिला था, और कुछ भी नहीं चाहता।] मैं उसके कामकी विवेचना करना नहीं चाहता अन्यथा मैं जानता हूं [ठीक उसी तरहसे जिस तरह रावण और हिरण्यकशिपु विभीषण और प्रह्लादकी बावत् जानते थे] कि उसमें क्या त्रुटियाँ [अर्थात् कर्त्तव्यपरायणता, मुस्तैदी, निर्भीकता तथा चापलूसीरहित] हैं। कृपया आप [शाहजी] उस [रामलौटन प्रसाद] को सूचित कर दें अथवा इस पत्रको दिखला ही दें।

अब रहा धर्मशिक्षकके विषयका नोट—इसके लिये भी मुझे करुणा आती है कि वह [रामलौटन प्रसाद] पूर्णतः मुआमिलोंसे अनभिज्ञ है।

मैंने "प्रॉविडेण्ट-फ़ण्ड" के नियमोंको जारी करनेकी चेष्टा इसलियेकी थी कि उन लोगोंको जो पाठशालासे निर्दोष स्वयं चले जावें कुछ "बोनस" अर्थात् *इनाम एकराम* मिल जावे परन्तु प्रतीत होता है कि वह दिन अभी बहुत दूर है, क्योंकि जबतक कोई स्थायी व्यवस्था निश्चित न हो जावे मैं ऐसे बहुमूल्य स्कीम [अर्थात् ४०) मासिकके अध्यापकको कम करके १५०) मासिकका नया मुख्याध्यापक नियुक्त करने] को छेड़ना नहीं चाहता। उसके अर्थात् धर्म-शिक्षकके बारेमें उसके साथ उसकी विचित्र व्यवस्था

[कलियुगमें कर्त्तव्यपरायणता]को देखते हुए उसके साथ दयाका बर्ताव किया गया है। इसके अतिरिक्त उस [अर्थात् रामलौटन प्रसाद] का कर्त्तव्य नहीं है कि वह उस [धर्म-शिक्षक] के लिये पैरवी करे [क्योंकि मनुष्यको ऐसे मनुष्यके साथ, जिसके साथ अन्याय अथवा क्रूरताका व्यवहार किया गया हो, सहानुभूति न करनी चाहिए]। यदि पाठशालाने किसी रिक्त स्थानकी पूर्ति नहीं की तो क्या वह कह सकता है कि पाठशालाको उसके कारण हानि हुई ? [अवश्यमेव !]

ता० २१-५-२३ } द० शिवबख़्श [कोचर, मंत्री, श्रीजैन-पाठशाला, बीकानेर]

---

(३)

पत्र नं०८१, ता०२४-५-२३

श्रीमान् बा० शिवबख़्शजी साहिब सेक्रे०
श्रीजैनपाठशाला, बीकानेर।

महाशयजी,

मेरे पत्र नं० ८० ता०१८-५-२३का उत्तर आपके यहाँसे ता० २१-५-२३को मिला। उत्तरसे पूर्ण आगाह हुआ।

प्रत्युत्तरमें सादर निवेदन है कि जो उत्तर आपने दिया है *वह विशेषतः तथा अधिकाश मेरे पत्रसे बिलकुल सम्बन्ध नहीं रखता।* इससे यह कह सकता हूँ कि उत्तर सन्तोषदायक नहीं है।

नोट—इस उपर्युक्त पत्रोत्तरके अन्तर्गत जो शब्द इन [ ] कोष्ठोंके भीतर हैं वे मेरे (अर्थात् लेखक—रामलौटन प्रसाद—के) हैं।

जब कभी आपसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त होता था, उस समय जो जो वार्तालाप होते थे उससे प्रेम ही विदित होता था और जो कुछ मैं कहना-सुनता था वह सत्य ही था।

अब मालूम होता है कि आप कानके गुलाम हो गये हैं, वरन् ऐसी आशा मुझे आपसे कदापि न थी। महाशयजी! मैं सत्य सत्य कहता हूं कि *मैं आपका सच्चा शुभचिन्तक हूं* और यह अन्तिम वाक्य है कि *मैं "सत्य" के लिये तथा "न्याय" के लिये मरूँगा।*

"अन्तर अँगुरी चारिको, सांच झूठमें होय।
सच मानै देखी कही, सुनी न मानै कोय॥"

आपका आज्ञाकारी सेवक,
रामलौटन प्रसाद, असिस्टेण्ट मास्टर।

नोट—सादर निवेदन है कि इसका *उत्तर कलतक अवश्य* देनेकी कृपा करें। ह० रामलौटन प्रसाद।

इस उपरोक्त नं० ८१ ता०२४-५-२३का उत्तर, कोचर महाशय (मंत्री, श्रीजैनपाठशाला) की आज्ञानुसार "आत्मीय शुद्ध भावोसे इस संस्थाके कार्यकर्त्ता" शाहजी महोदय (हेडमास्टर) ने अंग्रेज़ी भाषामे यो दिया है:—

(४)

I am directed by the Secretary to inform you that the *remarks* made by him *on your letter No 80* Dt 18-5-23 *are quite sufficient as an answer* to the men-
ned letter no 80 He further affirms his statement that
r the circumstances the *reduction is necessary* and

he is compelled to do it, whether it may be palatable to you or not Hence you are requested *not to write any such letters in future as he has no time to reply to them.*

Sd M T Shah,
[Headmaster, Shri Jain Pathshala,
Bikaner]

26-5-23

इस उपर्युक्त अंग्रेजी पत्रका अर्थ है:—

मुझे मंत्रीजीने आदेश किया है कि मैं आपको यह सूचित करूं कि मंत्रीजीके वे रिमार्क (Remarks) जो आपके पत्र नं० ८० ता० १८-५-२३ पर दिये गये हैं वह पत्र नं० ८० में लिखी हुई बातोंका पर्याप्त उत्तर है और वह यह भी सूचित करते हैं कि अवस्थाको देखते हुए कमी करना आवश्यक है और वह (मंत्रीजी) इसके लिये बाध्य हैं—चाहे आपको अच्छा लगे या बुरा। इसलिये आपसे प्रार्थना है कि भविष्यमे ऐसे पत्र न लिखें, क्योंकि उन (मंत्रीजी) को उत्तर देनेका अवकाश नही है।

ता० २६-५-२३ } द० एम० टी० शाह,
[हिड्मास्टर, श्रीजैन पाठशाला, बीकानेर]

नोट—कोचर महाशयका अंग्रेजी पत्र ऐसे शब्दों तथा अक्षरोंमें लिखा है कि उसको उन्हीं जैसा योग्य दूसरा साहब ही आसानीसे पढ़ सकता है—यहांतक कि शाहजी को, ग्रेजुएट होते हुए, भी उस समय पढ़नेमे परेशानी उठानी पड़ी तब भला दूसरे की बात तो न्यारी है। इसी कारणसे उनके पत्रमें यत्र-तत्र रोड़े मालूम पडते है, परन्तु शाहजीका पत्र वैसा नहीं है, क्योंकि अभी तो यह नये साहब हैं। यदि इसी प्रकार इनके "आत्मीय शुद्ध भावों" का विकाश होता रहा तथा कोचर महाशयके उपदेशोंका प्रभाव पड़ता रहा तो थोड़े ही दिनोंमें पूर्ण योग्य हो जाने की सम्भावना है। आज

अब पाठकोंके विचारार्थ शाहजीके कर्त्तव्यपरायणता; न्याय-प्रियता, सत्यकी प्रियता तथा "आत्मीय शुद्ध भावों"के कुछ नमूने पेश किये जाते हैं जिनसे "स्थाली पुलाक" न्यायके अनुसार समझ सकेंगे कि इनके "आत्मीय शुद्ध भावों"की गहराई कितनी है और यह "अपने आत्म प्रदर्शित पथ" पर कहाँतक अचल हैं!

(५)

मैं (रामलौटन प्रसाद) ने हेड्मास्टर साहिब (बा० मयाभाई टी० शाह, बी० ए०) के पास स्लेटपर लिखकर भेजा थाः-

हेड्मास्टरजी,

कुछ *आवश्यकीय कार्य* है। कृपया केवल अन्तिम घंटे की छुट्टी देकर कृतार्थ करें।

R L P
8-6-29

(६)

इस प्रार्थना पर श्रीमान् हेड्मास्टर साहिब (शाहजी) का यह आर्डर हुआः-

Send an application on a paper

Sd M T Shah
8-6-23

जैन-समाजमें ऐसे ही नवयुवकोंकी विशेष आवश्यकता है, क्योंकि ऐसे सत्यवीर नवयुवकोंको "'आत्म प्रदर्शित पथसे विचलित करनेकी किसीकी सामर्थ्य नहीं है।" अब आशा है कि जैन जातिमें शीघ्रातिशीघ्र शिक्षित पुरुषोंकी सख्या ४६.५ से ७५ प्रतिशत और स्त्रियोंकी ३.६ से ५० प्रतिशत हो जावेगी। प्रसन्नता है कि कन्या पाठशालाकी देखरेख भी कोचरयके आदेशानुसार सत्यवीर शाहजीके जिम्मे है।

अर्थात् तुम अपना प्रार्थना-पत्र काग़ज़पर भेजो।

ह० एम० टी० शाह, ता० ८-६-२३,

(७)

इसपर मुझे मजबूर होकर इस प्रार्थना-पत्रको शाहजीके आज्ञानुसार काग़जपर लिखकर देना पड़ा। इसपर शाहजीका यह आर्डर हुआ:—

You can arrange for your class and you can go
Note it

Sd M T Shah,
8 6-23

अर्थात् तुम अपनी कक्षाका प्रवन्ध करके जा सकते हो। इस बातको नोट करलो।

द० एम० टी० शाह,
ता० ८-६-२३.

अव यह विचारणीय है कि एक मुख्याध्यापकका यह आर्डर कहाँतक उचित और विद्वत्तापूर्ण कहा जा सकता है? भला एक सहायक अध्यापक किस प्रकार अपनी कक्षाओंका प्रवन्ध कर छुट्टीपर जा सकता है? ऐसी अवस्थामें कक्षाका प्रवन्ध करना मुख्याध्यापकका कर्त्तव्य है अथवा सहायक अध्यापकका? क्या पाठशालाके एक घंटे (केवल ४० मिनट) की छुट्टी देनेमें ऐसा व्यवहार आजतक इन १६ वर्षोंमें यहाँपर और किसीके साथ किया गया है अथवा ऐसा आदर्श व्यवहार संसारके किसी अन्य सभ्य समाजमें हुआ है? यह शाहजीके "आत्म प्रदर्शित पथ" व्रत-पर अटल रहने तथा इनके समयमें "किसीके साथ कोई अनुचित व्यवहार नहीं हुआ है" का जीता-जागता प्रत्यक्ष उदाहरण है।

यहाँपर मुझे शाहजीके "आत्मीय शुद्ध भावों"का पूजा-पाठ करनेमें १८ मिनट लगे और केवल २२ मिनटकी छुट्टी मेरे "आवश्यकीय कार्य" के लिये मिली। यह व्यवस्था जिस समय उपस्थित हुई थी उस समय मैं १॥ मास सवेतन हक़की और लगभग १ सप्ताह रियायती छुट्टीका पूर्ण अधिकारी था। यह भी ज्ञात रहे कि एक ही सप्ताहके पश्चात् मेरा सम्बन्ध पाठशालासे पूर्णतः छूटनेवाला था। शाहजीके इस आदर्श व्यवहारको इसी (जैन) समाजके एक प्रतिष्ठित सज्जन महोदयने देखकर आश्चर्य तथा दुःख प्रकट किया और इस व्यवहारको "अनुचित वर्ताव प्रतीत होता है" बतलाया।

---

(८)

नं॰ ९३ ता॰ १२-६-२३,

श्रीमान् हेड्मास्टर साहिब,
श्री जैन पाठशाला, बीकानेर।

"नोटिस"

महाशयजी,

मुझे ता॰ १६-६-२३ को अपने कार्यका चार्ज आपको देना है। अतः आपके सुभीतेके लिये सादर निवेदन है कि मेरे जिम्मे जो सामान हों उनकी सूची बना रक्खें जिससे आपको चार्ज लेनेमें आसानी हो।

मैं अपनी तरफ़से आपको आजन्मका नोटिस देता हूँ कि जो

हानि मेरेद्वारा पाठशालाको पहुंची हो, यहाँसे सम्बन्ध न रखते हुए भी, उसके दण्ड सहनेके लिये सहर्ष सर्वदा प्रसन्नतापूर्वक तैयार हूँ।

अतः सूचनार्थ निवेदन है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

रामलौटन प्रसाद, असिस्टेण्ट मास्टर।

---

(६)

मेरे इस नोटिस नं० ९३ ता० १२-६-२३ का उत्तर श्रीमान् हेड्मास्टर साहिब (शाहजी) ने अंग्रेजी भाषामें इस प्रकार दिया :—

From,

The Head Master,

Shri Jain Pathshala,

Bikaner.

Mr. Ram Lautan Prasadji is required to note the the following —

The undersigned did not understand how he could be treated guilty and punished for the offence committed by him during his stay here when he completely severed his connection with the institution as stated in his notice no 93 issued against me

Sd M T Shah

12-6-22

उपर्युक्त अंग्रेजी नोटिसका अनुवाद यह है:—

जनाव हेड्मास्टर साहिवके यहाँसे,

श्री जैन पाठशाला,

बीकानेर।

मिस्टर रामलौटन प्रसादजी नीचे लिखी बातोंको नोट कर लें:-

मेरी समझमें नहीं आता कि तुमको उन गुनाहोंके लिये, जो तुमने इस स्कूलकी नौकरीके समयमें किये हैं, कैसे गुनहगार ठहराया जा सक्ता है और दण्डित किया जा सकता है जब कि तुमने स्कूलसे अपना सम्बन्ध बिलकुल अलग कर लिया है जैसा कि तुमने नोटिस नम्बर ६३में,जो मुझको दिया है,ज़ाहिर किया है।

द० *एम० टी० शाह*

१२-६-२३

अब उपर्युक्त नोटिस नं० ६३ तथा उसके उत्तरपर पाठकगण स्वयं पूर्ण विचार कर देखें कि उनके भीतर क्या भाव भरे पड़े हैं।

No 40

16-6-23

चार्ज-रसीद

नीचे लिखी हुई वस्तुएँ ता० १६ जून सन् १९२३ ई० को रामलौटनप्रसाद असिस्टेण्ट मास्टर, श्री जैन पाठशाला, बीकानेरसे चार्जमें मिली और यह स्वीकार करता हूं कि अब इनके ज़िम्मे पाठशालाका तथा पुस्तकालय आदिका कुछ बाक़ी नहीं है :—

क्रम-सं०	नाम वस्तु	संख्या	मिलनेकी ता०	विशेष विवरण
१	२	३	४	५
१	डस्टर	१	जनवरी सन् २१	I am uncertain about the dated of issue. M T. shah 16-6-23.
२	अरिथमेटिक गोखलेकृत	१	२-४-२२	
३	नेल्सन्स इं० रीडर नं० १	१	१३-५ २२	
४	नेल्सन्स इं० रीडर नं० २	१	४-४-२३	
५	बाल विनोद दूसरा भाग	१	४-४-२३	
६	दैनिक उपस्थिति रजिस्टर	१	१-१-२३	
	योग ...	६		

ह० ...

16-6-23

Sd. M T.shah.

हेड्मास्टर, श्रीजैन पाठशाला, बीकानेर,

ता० १६-६-१९२३ ई० ।

उपर्युक्त "चार्ज-रसीद" के ख़ाना नम्बर ५मे जो अंग्रेजी भाषामें लिखा है उसका भावार्थ यह है कि वस्तुओंके"जारी होनेकी तारीख़का मुझे निश्चय नहीं है। द०एम० टी० शाह, ता०१६ ६-२३

शाहजीके इस ख़ाना नं० ५के नोटसे पता चलता है कि उनमें कितनी आत्मशुद्धि है और मुख्याध्यापकका कितना कर्त्तव्य-पालन * करते हैं, क्योंकि आलस्यवश तारीख़ जारी होने तकका मिलान न कर सके। शाहजीकी ऐसे ही कर्त्तव्यपरा-यणतापर इस संस्थाके "काग़ज़ोंका आधार है" जिनका दिग्द-र्शन समय समयपर इन आन्दोलन पत्रोंद्वारा जनताको हुआ करता है। उपर्युक्त लेखोंसे स्पष्ट रूपसे नतीजा निकल सकेगा कि उत्तर-प्रत्युत्तर कितने विचारशील, न्यायपूर्ण और कर्त्तव्य परायणतासे भरे हुए हैं।

पाठशालासे विदा होते समय मैंने विद्यार्थियोंके लाभार्थ मंत्री महोदय (कोचर महाशय) तथा पाठशालाको निम्नलिखित उपहारोंको शीशेमें जड़ाकर सादर समर्पित किया था; परन्तु उनके लेनेसे कोचर-शाहने साफ़ इन्कार कर सत्यवीरता तथा मनुष्यताका परिचय दिया है। इससे उक्त महाशयोका "पक्षपात-रहित तथा न्यायशील आदर्श सज्जन होना, आत्मीय शुद्ध भावोंसे इस संस्थाके कार्य करनेका, नम्रता और दयालुता" तथा सभ्यता-के व्यवहारका आदर्श दृष्टिगोचर होता है:—

---

*यदि शाहजीको नियम नं० १२३- (ढ) तथा नं० ८९ का जरा भी होता तो इस प्रकार शानके साथ ऐसा अनर्गल रिमार्क देनेका साहस करते। इन नियमोंको परिशिष्ट नं०११में देखिये।

(११)

कोचर महाशयको समर्पण—

"Say nothing unless you are
quite sure
That
what you say
is
True, Kind and helpful"

The 16th June 1923.
Presented to B shiva Bakshji Kochar
Secretary, shri Jain Pathshala, Bikaner
by Ram Lautan Prasad, Assistant master
at the time of his departure as a token of love and esteem

अर्थात् "जबतक कि पूर्ण विश्वास न हो जाय, कि जो कुछ आप कह रहे हैं सत्य, दयालु और सहायक है, मत कहिये।"

ता०१६ जून सन्२३.
यह उपहार बा० शिवबख्शजी कोचर, मंत्री श्रीजैन पाठशाला, बीकानेरको राम-लौटन प्रसाद, सहायक अध्यापकने, अपने विदा होते समय प्रेम और आदरके भाव-को लेते हुए, समर्पण किया था।

(१२)

पाठशालाको समर्पण

1 "A flatterer is a most dangerous enemy.
2 Better alone then in all Company
3 Custom in infancy becomes nature in old age
4 Concealing faults is but adding to them
5 Example teaches better than precept
6 Look before you leap

7 Truth never fears examination
8 Truth may Languish, but cannot perish.
9. The first step to greatness is to be honest
10 Want of punctuality is species of false hood
11. Youth is the season for improvement."

The 16th June 1923 } Presented to the shri Jain Pathshala, Bikaner by Ram Lautan Prasad, Assistant master at the time of his departure as "token of love and esteem

यह उपहार,मंत्रीजीको जिस प्रेम और श्रद्धासे दिया गया था उसी भाँति, पाठशालाको दिया गया था जिसका भावार्थ नीचे दिया जाता है:—

(१) "सबसे भयंकर शत्रु चापलूस है।

(२) बुरी संगतिसे अकेला ही रहना अच्छा है।

(३) बचपनका व्यवहार बुढ़ापेमे आदत बन जाता है।

(४) अपराधोंका छिपाना गोया उनकी वृद्धि करना है।

(५) कोरे उपदेशोसे उदाहरण बनना कहीं अच्छा है।

(६) फूँक फूँककर पाँव रक्खो।

(७) सत्य परीक्षासे कभी भयातुर नही होता,अर्थात् साँचको आँच क्या?

(८) सत्य भले ही दब जावे किन्तु नष्ट कदापि नहीं हो सकता।

(९) श्रेष्ठ बननेकी प्रथम सीढ़ी ईमानदार होना है।

०) समयकी पाबन्दी न करना एक प्रकारका झूठ है।

(११) युवावस्था ही उन्नतिके लिये उपयुक्त समय है।"

[ह० रामलौटन प्रसाद]

उपर्युक्त इन दोनों उपहारोंको दोनों आदर्श महानुभाव सज्जनो (कोचर-शाह) ने अस्वीकार कर जैसा परिचय दिया है, पाठकगण इसका स्वयं विचारकर निर्णय करें। वाहरे "आत्म प्रदर्शित पथ!" वाह!!

अव यहांसे आन्दोलन-विषयक प्रकाशित नोटिसोकी नक़लें दी जाती हैं जिनसे पाठकोंको वादी-प्रतिवादीके भावोके भेद ज्ञात हो जावें और "स्थाली पुलाक" न्यायके अनुसार यह भी प्रकट हो जावे कि अन्य संस्थाओंकी क्या व्यवस्था है और ऐसी दशा-पर भारतोद्धारमें अभी कितना विलम्ब है।

मेरे प्रथम नोटिसकी नक़ल:—

(१) "यतोधर्मस्ततोजयः" ।

"सत्येनास्ति भयंकचित्।"

"सत्यमेव जयते नानृतम्।"

"अहिंसा परमो धर्म्मः"

(२) "उठो! जागो!! चेतो!!! वहुत हो चुका सत्यको अपनाओ।"

(३)"सत्यको न छोड़ो वीरो! चाहे यह जान तनसे निकले"

(४) "कौन कहता है कि अन्यायको सह लेना वीरता है?"

(५) "न्यायके आगे माता-पिता, भाई बन्धु, पुत्रादि कोई चीज़ नहीं—न्याय ही सब कुछ है।"

(६) "अंतर अँगुरी चारिको, साँच झूठमें होय।
सब माने देखी कही, सुनी न माने कोय॥"

Truth may languish, but cannot perish." — "Let love Lead Light"

जैन मतका प्रचार

कुटिल नीतिका व्यवहार

कोचर महाशयका अत्याचार
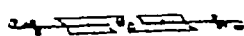
वीकानेरमें श्रीमान् प्रायः वहुत हैं, लक्ष्मीका अपमान यही पूर्ण रूपसे होता है। कदाचित् इसका यही कारण है कि वे विना बुलाये स्वयं कृपालु हो जाती हैं अर्थात् वीकानेरी धनवानोमे कुछ ऐसे हैं जो प्रायः सट्टेबाज़ी तथा फाटकेमे रुपया कमाते है और यही कारण प्रतीत होता है कि वे उसका सदुव्यवहार करनेमे प्रायः असमर्थ रहते हैं। वे नही जानते कि सद्व्यय किसको कहते हैं अथवा किस प्रकार किया जाता है, और यही कारण है कि वे परिश्रमी तथा ईमानदार पुरुषका आदर न कर प्रायः कुटिल तथा स्वार्थी पुरुषोंका सम्मान करते हैं और इसलिये इस शुभ-राज्यमे दिवालेकी प्रथा भी भलीभाँति प्रचलित हो रही है और वणिक्-समाजके मस्तिष्कोंको स्वार्थ तथा लोभने ऐसा विवश कर दिया है कि "अहिंसा परमो धर्म्मः" के अनुयायी होते हुए भी वे सत्यासत्यका निर्णय करनेमे असमर्थ हैं।

उदाहरणार्थ, मैं श्रीजैन-पाठशाला वीकानेरको, जिसको

खुले हुए लगभग चौदह या पन्द्रह वर्ष हो चुके और जिसपर क़रीब ५००) मासिक व्यय होता है, पेश करता हूं। इतना व्यय होनेपर भी आजतक इसमे पूर्णरूपसे अष्टम कक्षा भी न खुल सकी और न इसके पढ़े हुए विद्यार्थी किसी दूसरी पाठशाला तथा स्कूलमें कोई मान पा सके। अन्य देशोंमें तो मान पाना स्वप्नमे भी प्रतीत नहीं हो सकता, जब ख़ास बीकानेरकी अन्य संस्थाओमे ये मान पानेके अयोग्य हैं। इसका कारण विद्या र्थियोकी अयोग्यता नहीं, वरन् पाठकों तथा प्रबन्धकर्त्ताओंकी असमर्थता कही जा सकती है, अर्थात् जो अध्यापक योग्य होते हैं वे स्वतंत्र होनेके कारण कोचर महाशयको—जो कि यद्यपि मन्त्री-पदपर नियुक्त कहे जाते हैं, किन्तु वास्तविक रूपमें वही जैन मतके नेता, प्रतिनिधि और पाठशालाके सर्वेसर्वा हैं—प्रसन्न करनेके सर्वथा अयोग्य होते हैं और इसलिये उनका टिकना पाठशालामें असम्भव हो जाता है। और इसी तरह जो अध्यापिकाए विदुषी और सच्चरित्रा होती हैं वे भी अभाग्यवश कोचर महाशयको प्रसन्न नही कर सकतीं और केवल कर्त्तव्यपरायण होनेके कारण शीघ्र ही कोई न कोई दोष उनपर आरोपित हो जाता है और उनको पाठशालासे झट टिकट कटाना पड़ता है। इस पाठशालासे आजतक किसी कन्याने कोई उच्च परीक्षा उतीर्ण नहीं की। कहा जाता है कि यहाँ स्त्रियोंमें पठन-पाठनसे घृणा है, परन्तु वास्तविक कारण यह नहीं है, वरन् कुप्रबन्धकी मुख्यता है।

इसके अतिरिक्त कोचर महाशयका व्यवहार भी सराहनीय

है और वह कर्त्तव्यपरायणको डींग मारा करते हैं। उसकी बानगी भी जनताके समक्ष पेश करनी है अर्थात् बा० पन्नालालजी [एक योग्य अध्यापक] को उर्दू जाननेके दोषमे नोटिस देना और फिर रोक लेना, और उन्हीको पूर्ण हक़ रहते हुए भी केवल तीन दिनकी बीमारीकी अर्ज़ीपर टिप्पणियोंकी झड़ लगाकर मेडिकल सर्टीफ़िकेटके लिये बाध्य करना किन्तु और किसीको नहीं। पं० साँगीदासजी व्यासको लगभग ९ मासकी सेवाके पश्चात् एक माससे भी कमकी *अवैतनिक* छुट्टी देना और पं० रामेश्वर दयालजीको लगभग ६ मासके पश्चात् ही पूर्ण एक मासकी *वैतनिक* छुट्टी दे देना; पं० साँगीदासजीका इत्तफ़ाक़िया छुट्टीके बाद केवल एक दिनकी देर होनेपर, हक़ रहते हुए भी, कुल छुट्टीका *वेतन काट लेना*, और पं० रामेश्वरदयालजीका, दो दो दिनकी देरी होनेपर भी, कोई *वेतन न काटना* क्या ये कर्त्तव्यपरायणताके उदाहरण हैं? बा० बहादुर लालजी बी०ए०के लिये स्थायी हेडमास्टरीसे इन्कार करना और रजिस्टरो आदिमें अस्थायी दिखलानेकी चेष्टा करना और फिर कोर्टमे स्वीकार करना, क्या सत्यपरायणता कही जा सकती है? शिवकृष्ण स्वामी, हरीसिंह राजपूत और चाँदमल दर्जी आदि विद्यार्थियोको केवल इस अपराधमे सदैवके लिये बहिष्कृत करना कि वे श्रीडूंगर कालेजमे भरती होना चाहते थे क्या विद्या-प्रचार कहा जा सकता है? यह विचारणीय है कि मलकाने मुसलमानोंको तो हिन्दू जाति इतनी मुद्दतके बाद भी लेनेको उद्यत है किन्तु

श्रीजैन पाठशालामें,जो"अहिंसा परमो धर्मः"की अनुयायिनी है, वे विचारे निरपराध विद्यार्थी नहीं लिये जा सकते, क्या यही न्याय-परायणता है? यहांका फ़ैसला तो अचल है, अपीलकी सुनवाई क्यों और कहां हो? अभी वर्तमान अपीलकी घटना विचारणीय है-चौरीचौरा हत्या-काण्डमें १७२ आदमियोंको फाँसीका हुक्म हुआ था; किन्तु अपीलसे केवल १९को ही फाँसी देना सिद्ध हुआ। क्या यह प्रशंसनीय न्याय नहीं है? किन्तु कोचर महाशयका फैसला तो पूर्ण न्यायद्वारा होता है, तो फिर अचल रहनेमें आश्चर्य ही क्या है? वाह रे न्याय वाह!

श्रीमती भगवती देवी जैसी विदुषी और सच्चरित्रा लेट हेड्मिस्ट्रेसके साथ जैसा न्याय हुआ है, वह किसीसे छिपा नहीं है। अव मेरे साथ भी इसी न्यायका परिचय दिया जा रहा है। क्या उक्त कार्य्योंके करनेमे कोई कह सकता है कि पाठशालाको कोई हानि नहीं हुई? मै आशा करता हूँ कि कोई पुरुष, जिसका बुद्धिसे लेशमात्र भी परिचय हो गया है, इन कार्य्योंको हानि-कारक कहे विना नहीं रह सकता। एक मासका नोटिस देनेका नियम रहते हुए अधिकांशमेंसे किसीको १५ दिन, किसीको एक सप्ताह, किसीको २४ घण्टे, किसीको केवल दो-एक घण्टेका नोटिस देकर अलग कर देना ही क्या शुभचिन्तकताका चिह्न है? आपका यहींका व्यवहार नहीं; किन्तु आपकी "महकमे खास" की सर्विस—जहाँसे आपको इस्तीफ़ा देना पड़ा था—और आधुनिक सर्विसका व्यवहार भी सिद्ध करता है कि जितना आप

दिखावेको प्रिय समझते हैं, कर्त्तव्य को नहीं; आपके मातहत और सहचर आपसे कितने प्रसन्न हैं तथा रहे हैं, बीकानेर-निवासी उससे अपरिचित नहीं हैं।

इसी तरह पं० माणिकलालजी जती तथा पं० गिरधरदेवचन्द जी धर्माध्यापकोका नोटिस भी आपके सद्व्यवहारोंका पता देता है। आपके न्याय, सद्व्यवहार तथा दयालुताका पूर्ण परिचय पं० रमाशंकरजी विशारद तथा बा० भगवंतसिंहजी विशारद के इस्तीफ़े और बा० श्रीरामजी गुप्तके डिसमिसल आर्डरसे अक्षरशः मिलता है।

मेरी नियुक्ति २५ अगस्त सन् १९२० ई० से ३०) मासिकपर होकर अब ४०)वेतन पा रहा हूं और मेरी कक्षाओंमें मेरे परिश्रम-का फल सन् १९२०—२१ मे ८८ फ़ी सदी, सन् १९२१—२२ में ८३ फ़ी सदी और सन् १९२२—२३ में ७३ फ़ी सदीसे कभी भी कम नहीं रहा। गत परीक्षामें हिन्दी क्लास (सी) का, जो मेरे ज़िम्में थी,परीक्षा-फल विचारणीय है। ऐसा उत्तम फल कदाचित् ही पाठशालाके इतने दिनोंमें हुआ हो। इसके अतिरिक्त आजतक रिमार्क-बुकमें *किसी प्रकारका हानिकारक रिमार्क मेरे विरुद्ध नहीं* है और मेरी तरक्की भी मेरे निर्दोष होनेकी सूचक है; परन्तु फिर भी मुझको नोटिस दिया गया है। मैंने आपके व्यवहारोंकी बाबत् आपसे कई दफ़े सविनय निवेदन किया कि पाठशाला के पवित्र उद्देश्यों यथा अहिंसाव्रतको पद-दलित न करें और पाठ-शालाके धनको व्यर्थ व्यय होनेसे बचावें; किन्तु स्वभाव प्रकृति-

का अङ्ग बन जानेके कारण बिना पूर्ण चेष्टाके अलग नहीं हो
सकता, इसी कारण आपने इसकी कुछ भी पर्वाह न की। अब
इस लेखद्वारा सर्व-सज्जनों तथा पाठशालाके पूर्वोक्त प्रबन्ध-
कर्त्ताओं से, **इसलिये नहीं कि मुझको कृपा कर फिर
रख लिया जावे**; किन्तु इसलिये कि आगामी इस पवित्र
उद्देश्य में धब्बा न लगे और व्यर्थ धन व्यय न हो, निवेदन है कि
वे कृपा कर इस पवित्र उद्देश्य तथा बालकोंकी अमूल्य आयुको,
जिसके लिये आप लोग कठिन परिश्रम द्वारा कौड़ी-कौड़ी जमाकर
लाखो रुपये खर्च कर चुके हैं तथा कर रहे हैं, नष्ट होनसे बचावें,
सुप्रबन्ध कर कार्यका संचालन करें और जैन-मतके मुख्य
व्रत "अहिंसा परमो धर्म्मः" को पालिसीसे नहीं, सत्य स्वभावसे
पालन कर जनता को कृतज्ञ करें।

पाठशालाके पूज्य सदस्य तथा अन्य सज्जन महानुभावो! केवल
आप लोगोंको सेवामे संकेतमात्र सत्यासत्यका दृश्य प्रकट किया
गया है। सादर निवेदन है कि सत्यासत्य-निर्णयमें पूर्ण योग दे
आप यशके भागी बनें और शीघ्र सभा आदि द्वारा जाँच कर देखें
कि कैसी पोल चल रही है। श्री महावीर जैनमण्डलसे भी प्रार्थना
करें कि वह भी यथाशक्ति सत्यासत्य-निर्णयमे हाथ बटावे। अब
निर्णयकार्य आप लोगोंके विचारोंपर छोड़ ईश-प्रार्थना करता हुआ
बिदा होता हूँ—

"पाहनसे भी काठिन कलेजा, कर दो करुणाकन्द।
गले पहन लोहेका तमगा, रहूं जेलमें बन्द॥

तोप, तीर, तलवार आदिका, सबका लूँ आनन्द ।
पड़े हथकड़ी पैरो बेड़ी, है अब यही पसन्द ॥
सेवक विनय यही है मोहन, होय पूर्ण अरमान ।
जल्दी हर लो कष्ट भक्तका, सहा नहीं जाता अपमान ।"

नोट— (१) इस लेखमें कोचर महाशयका अर्थ बाबू शिवबख्शजी साहिब कोचर, सेक्रेटरी श्री जैन पाठशाला बीकानेरसे है ।

(२) महाशयो ! आजकल जैसा न्यायका व्यवहार कोचरजी महाशयका पं० साँगीदासजी व्यासके साथ हो रहा है, देखने तथा सुनने और विचारनेयोग्य है । कोचर महाशयके न्याय तथा सद्व्यवहारका यह प्रत्यक्ष वर्त्तमान नमूना है ।

(३) हेडमास्टरजीके विषयमे अधिक न कहकर केवल इतना ही कहता हूं कि आप कोचर महाशयके कोचसे (Coach) इतना अनुभव प्राप्त कर चुके हैं कि अध्यापकोंके कार्योंको विना देखे ही त्रुटियाँ निकाल टीका-टिप्पणियोंकी झड़ लगा कोचर महाशयसे भी बढ़ना चाहते हैं ।

(४) कोचर महाशयमे एक बड़ा भारी गुण यह

भी है कि मुद्दईकी दरख्वास्तपर ही बिना किसी जाँच-पड़तालके एकतरफ़ा डिगरी शीघ्र दे देते हैं। क्या यह कम अनुभव तथा आश्चर्यकी बात है ?

(५) सज्जनो ! ज़रा उच्च अध्यापकोंकी कक्षाओंके परीक्षाफलोंकी तरफ़ ध्यान दीजिये तो पूर्ण शुभचिन्तक होने तथा गाल बजानेका रहस्य स्पष्ट समझमें आ जायगा।

(६) यदि किसी मन्थराकी सलाहपर कार्य चल रहा है, तो इन घटनाओंका उपस्थित होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि महारानी कैकेयीकी मन्थराने तो अपने कल, बल, छलसे अपना नाम सदाके लिए अमर कर दिया, तो इस अदृश्य मन्थराने अभी क्या अधिकता की ?

ता० १२ जून, १९२३ } निवेदक—रामलौटनप्रसाद,
अस्सिस्टेण्ट मास्टर,
श्री जैनपाठशाला, बीकानेर।

Shri Kewal Jiwananand Press Nayashahar
Bikaner.

मेरे इस उपर्युक्त नोटिसका 'जैन मतका प्रचार' का उत्तर, जो श्रीमान् बाबू मयाभाई टी० शाह बी० ए० मुख्याध्यापकने दिया है, आगे फ़ाइल ३ में अक्षरशः दर्ज है।

काण्ड ३

श्री जैन पाठशाला, बीकानेरपर किये हुए

आक्षेपोंका प्रतिवाद

रामलौटनप्रसादके नामसे छपा हुआ एक लेख देखनेमे आया है जिसमें पाठशाला और विशेषतः मन्त्रीपर वहुत कुछ आक्षेप किये गये हैं। इसमे पाठशालाके आन्तरिक प्रवन्धादिके विषयमें भी जिनका कि सम्बन्ध पूर्णतया मुख्याध्यापकसे ही है, समालोचनाएँ की गई हैं अतएव संस्थाका मुख्याध्यापक होने [या यों कहिए कि कोचर महाशयको प्रसन्न करने और अपनी चाटुकारितासे प्रेरित होने] के कारण इस अवस्थामे पाठशाला-के मौजूदा कागजोंके आधारपर [जहाँ कागज़के कागज़ स्वार्थवश गायब कर दिये जाय, जहाँ चीज़ोंके जारी होनेकी तारीख तकका पता न लग सके और जहाँ कागज़ोंमे प्रतिक्षण परिवर्तन पाया जावे, क्या ऐसे ही कागज़ोंके आधारपर ?] सर्वसाधारण जनताके सूचनार्थ [नहीं, नहीं, धोखा देनेके लिये] मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि उक्त लेखका संक्षेपसे प्रतिवाद करूं।

निस्संदेह इस पाठशालाको स्थापित हुए क़रीब १५ साल हो गये, परन्तु नियमबद्ध प्रबन्धादिका क्रम केवल ११ सालसे है। ख़र्चा ५००) रु० मासिक जो कहा जाता है वह बहुत थोड़े समयसे हो रहा है और इस ख़र्चसे दो पाठशालाएं चलती हैं [यह सत्यताका पहला नमूना है जैसा कि काण्ड ७ के परिशिष्ट नं० १ से स्पष्ट ज्ञात होगा] एक बालकोंकी, दूसरी बालिकाओंकी। बालकोंकी पाठशालामें अष्टम कक्षा भी नहीं खुल सकी है, यह कथन नितान्त निर्मूल है, क्योंकि इसी पाठशालामें दशम कक्षातक पढ़ाई होती थी और एक विद्यार्थी प्राइवेट तौरपर मेट्रिक्युलेशन परीक्षामें भी भेजा गया था। मगर उस समय आयकी न्यूनता थी और इसीलिये संस्थाके खर्चमें कमी करनेकी आवश्यकता जान पड़ी और उच्च कक्षाओंके छात्रोंको श्री डूँगर कालेजमे भेजना पड़ा। अनेक अनेक लड़के उक्त कालेजकी अष्टम और नवम कक्षाओंमे समय समयपर भर्ती हुए हैं जिनमें से अब भी कई सम्भवतः मौजूद हैं और कतिपय पढ़ाई छोडकर अपने अपने व्यवसाय कर रहे हैं।

सन् १९१८-१९ से छात्र-संख्या न्यून हो गई, क्योंकि प्लेगकी बीमारीके कारण छात्रोंके संरक्षक उन्हे लेकर विदेश चले गये [इसीलिये ख़र्च भी बढ़ गया और अन्य पाठशालाएं भी खाली हो गयी—देखिये परिशिष्ट नं० २] और इसके साथ ही संस्थाके मन्त्रियोमे परिवर्तन [काग़ज़ोके आधारपर जैसा कि कोचर महाशयकी १९ वर्षीय रिपोर्टसे विदित होता है] हुआ,

जिसका प्रभाव योग्य और विश्वासपात्र अध्यापकोंके न मिलने [अर्थात कोचर महाशयके दुर्व्यवहारसे निकल जाने] के कारण पढ़ाईपर भी पड़ा। अब समय पाकर छात्रोंकी संख्या कुछ ठीक हुई है और पढ़ाई भी पहलेसे उन्नतिपर है [जैसा कि कोचर महाशयको १६ वर्षीय रिपोर्टकी परिशिष्ट नं० ४ के परीक्षाफलसे विदित होता है—देखिये कण्ड ७ परिशिष्ट नं० १० (व) और वास्तविक भेद सन् १६२२ तथा सन् १६२३ के परीक्षाफलमे "कोचर महाशयके लेखानुसार परीक्षाफल" तथा "वास्तविक परीक्षाफल" को देखनेसे प्रकट होगा—देखिये काण्ड १, पृष्ठ ६७] । इस साल आगामिनी मिडिल परीक्षामे छात्रोंके भेजनेकी आशासे 'एफीलिएशन' की स्वीकृतितक भी प्राप्त कर ली गई थी; परन्तु कई भलेमानस अध्यापको [नही, वरन् शाहजीके १२ अप्रैल सन् १६२३ ई० के नादिरशाही आर्डरके अनुसार—देखिये काण्ड ४ पृष्ठ १७८] की पूर्ण अनुग्रहसे सप्तम कक्षाके छात्र, जिन्हें सब विषयोंमें उत्तीर्ण न होनेके कारण 'प्रोमोशन' नही दिया गया अथवा 'डिग्रेड' कर दिया गया [इसीलिये कोचर महाशयकी १६ वर्षीय रिपोर्टमे "—० के बजाय ५० प्रतिशत" फल दिखाया गया—देखिये काण्ड १ पृष्ठ ६७] इस प्रकार [मेरे, अर्थात् शाहजीके, दुर्व्यवहारसे] उत्तेजित किये गये कि वे दूसरे स्कूलोंमे चले जावें। उनमेंसे कई मोहता मूलचन्द विद्यालयकी अष्टम कक्षामे भरती भी हो गये हैं जिससे इस पाठशालाके 'स्टेण्डर्ड' का अनुमान भलीभांति हो सकता है। उक्त व्यवस्थाके उपस्थित

होने पर खर्चा कम करनेकी आवश्यकता जान पड़ी और इसी सम्बन्धमें [मन्थराके परामर्श तथा कुटिल नीतिसे] रामलौटन प्रसादको नोटिस दिया गया जिसके कारण 'जैन मतका प्रचार' शीर्षक लेखका प्रकाशित होना अनुमेय है [और पत्र नं०,८१ ता० २४ ५ २३ के पत्रोत्तरके अनुसार समय न रहनेपर भी मन्त्री-जीके वजाय मुझे [शाहजीको] प्रतिवादके लिये बाध्य होना पड़ा।

कन्या-पाठशालाकी स्थिति योग्य अध्यापिकाओं के न मिलने-के कारण सामान्य है। इसके अतिरिक्त लड़कियोंमे पठनोत्साह बहुत कम है। वे बहुत थोड़े समय ठहरती हैं। १० वर्षकी होने-पर या इसके पूर्व ही ज्योंही विवाह हुआ त्योंही पाठशालासे विदा होती हैं। योग्य अध्यापिकाओंकी [जो "दयालु तथा न्याय शील आदर्श सज्जन" कोचर महाशयकी पूर्ण अनुगामिनी होकर "अपने आत्मीय शुद्ध भावोंसे इस संस्थाका कार्य" करनेवाली तथा "अपने आत्म प्रदर्शित पथसे विचलित" न होनेवाली हो अर्थात् पूर्ण सोलह आने मेरे (शाहजी) जैसी योग्य हो] खोज बरा-बर की जा रही है,उनके मिलनेपर उन्नतिकी [वैसी] आशा [जैसी कि कोचर महाशयकी १६ वर्षीय रिपोर्टके पृष्ठ १६के अनुसार (शाहजीके) समयमें हुई है] की जाती है।

पाठशालाके किसी अध्यापकके साथ कोई नियम-विरुद्ध चेष्टाका किया जाना नहीं पाया जाता और मेरे समयमें किसीके साथ कोई अनुचित व्यवहार नहीं हुआ है [इसीलिये गत ४

वर्षोंमें लगभग ३० अध्यापक सन्तुष्ट होकर पाठशाला छोड़ गये और बाबू बहादुरलालजी बी० ए०, लेट हेडमास्टरको नालिश करनी पडी—देखिये काण्ड ७ परिशिष्ट नं० ४ तथा ८]। जो व्यवहारिक संकेत इस विषयमें किये है उनका खुलासा इस भाति है—

(१) पं० रामेश्वरदयाल—

(क) पाठशालाका सत्र (सेशन) आरम्भ होनेपर जब तृतीय अध्यापक उस समयतक उपस्थित न हुआ तब अपने नियत पद-पर शीघ्र ही हाजिर होनेके वास्ते सभापति [नही, वरन् कोचर महाशय] की मंजूरीसे छुट्टी देनेका इक़रार नियुक्तिके समय इनके साथ किया गया था [यद्यपि सभापतिजी अथवा कोचर महा-शयको ऐसा अधिकार किसी नियमके अनुसार न था और न ऐसा करना आवश्यक ही था] अब प्रतिपालन किया गया है और जितने दिनकी छुट्टी इनको दी गई वह इनके आगामी हक़ रियायतीमे से वाद [किस नियमके अनुसार] दी गई है।

(ख) तीन दिनकी छुट्टीके बाद बीकानेर लौटते समय मार्गमे गाड़ी चूक जानेकी सूचना तारद्वारा [केवल एक दिनकी मिली थी [किन्तु कोचर महाशय स्वभावत एक न्यायशील आदर्श सज्जन, निष्पक्ष दयालु तथा कर्त्तव्यपालन करनेवाले अवै-तनिक मन्त्री है], इस कारण ["समरथको नहिं दोष गुसाईं .." के अनुसार दो दिनकी लेट होनेपर भी दो दिनकी] छुट्टी बढ़ाई गई।

(२) पं० सांगीदास—

(क) नियमानुकूल इनका वैतनिक छुट्टीका कोई हक़ नहीं था [क्योंकि पाठशालामें अध्यापक हुए ६ मास व्यतीत हो चुके थे और इत्तफ़ाक़िया छुट्टीके अतिरिक्त * नियम नं० १०५ के अनुसार रियायती छुट्टीका भी हक़ तीन सप्ताहसे अधिक था], इसलिये अवैतनिक छुट्टी मंज़ूर हुई।

(ख) सम्मेलनमें सम्मिलित होनेके लिये ख़ास तौरपर हेड-मास्टरके छुट्टीपर होते हुए † नियम नं० ११० के अनुसार छुट्टी दी गई। छुट्टीसे ज़्यादा [केवल एक] दिन लगाकर आये जिसकी कोई सूचना हाज़िरीके अनुसार पहिले नहीं आई, इसलिए [यद्यपि नियमानुसार उनका पूर्ण छुट्टीका हक़ बाक़ी भी था, तथापि कोचर महाशयके "न्यायशील आदर्श सज्जन" होनेके कारण *केवल एक दिनका नहीं* बल्कि तमाम ली हुई छुट्टीका] वेतन काटा गया।

(ग) एक मासकी छुट्टी भाईकी बीमारीके तारके आधारपर ता० १८-५-२३ को माँगी जिसपर सेकेण्ड, मास्टरके उस समय छुट्टीपर होनेके कारण [अर्थात् ता०-१६-५-२३ को सेकेण्ड-मास्टर छुट्टी व्यतीत कर वापिस आ चुका था] ख़ास सूरतमें १० दिनकी छुट्टी दी गई। ज़ाहिर यह किया गया कि "मैं कल सुबहकी गाड़ीसे जाऊँगा" पर इसके विरुद्ध बीकानेरमें [अपने

* इस नियम नं० १०५ को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये।

† इस नियम नं० ११० को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये।

० २१-५-२३ के पत्रके अनुसार—देखिये परिशिष्ट नं० ६].
दिन ठहरकर मुहूर्त [नहीं, वरन् भाईको सख़्त बीमार जान
राहट] से विदा हुए और वहाँ जाकर १००) रु० मासिकपर
कर हो गये। ऐसा अवगत होनेपर [ज्योतिषानुसार अथवा
नके विरोधियोंसे जानकर जब कि उनके तार और उपरोक्त पत्रसे
ाईकी बीमारीका निश्चय होता था ?] और [गत वार्षिक]
रीक्षा निकट [ही समाप्त] होनेके कारण [क्योंकि वार्षिक
रीक्षा हुए केवल १॥ मास बीता था और फिर षाण्मासिक
परीक्षा ४ मासके पश्चात् होनेवाली थी, इसलिये] उनको शीघ्र
हाजिर होनेके लिए लिखा गया और नोटिस दिया गया, तथापि
[नौकर होनेके कारण बीमार भाईको छोड़कर] न हाज़िर हुए
और न चिट्ठीका जवाब दिया [जो लगभग एक मासकी छुट्टीकी
अर्ज़ी नियमानुसार भेज दी थी]। तदुपरान्त [एक माससे
अधिक छुट्टीका हक़ रहते हुए भी केवल बीमारीकी दशामें भाईकी
सेवा करनेके अपराधमें महज़] एक सप्ताह प्रतीक्षा करके [स्वच्छ
न्दताके कारण अथवा यों कहिये कि "दयालुता" आदिसे द्रवीभूत
होनेके कारण सदाके लिये] डिसमिस [Dismiss] किये
गये [और सत्यता, सभ्यता, मनुष्यता, न्यायप्रियता, कर्त्तव्य
परायणता तथा दयालुता आदिका जीता-जागता प्रत्यक्ष आदर्श
और चिरस्थायी उदाहरण स्थापित किया गया]।

(३) बाबू पन्नालाल—

(क) * नियम १०८ के अनुसार बीमारीका प्रमाणपत्र सबसे

* इस नियम न० १०८ को परिशिष्ट न० ११ में देखिये।

माँगा जाता है [क्या २ या ३ दिनके लिये पाठशालाके जन्मसे आजतक किसी औरसे प्रमाणपत्र माँगा गया है ? यदि माँगा गया होता तो उनके नाम मय प्रमाणके होते !], इसलिये इनसे भी माँगा गया।

(ख) द्वितीय भाषा उर्दू होनेके कारण पाठशालाके लिये इतने उपयोगी नहीं हैं, इस कारणसे जिस समय पृथक् करनेका विचार किया गया था उस समय अस्थायी थे [कदाचित् गुजराती भाषा पाठशालाके लिये उपयोगी थी, इसलिये शाहजीके बजाय बाबू पन्नालालजीको नोटिस दिया गया। यदि ऐसे उपयोगी न होनेसे अस्थायी थे तो क्या १५ दिनमें ही इतनी योग्यता हो गयी जो स्थायी कर दिये गये ? सम्भव है कि पहले उनमें असत्य कहने या नवयुवक होनेके कारण चापलूसी आदि करनेका अभाव रहा हो, जिनको इन दिनोंमे सुधार लिया गया हो, किन्तु विश्वास नहीं होता—कदाचित् यह कोचर महाशयके "नम्रता और दयालुताके व्यवहार" का रूप हो "पर इतना समझनेकी बाबूजी (रामलौटन प्रसाद अथवा और किसी) मे बुद्धि कहाँ ?" इस गूढ़ रहस्यको तो केवल वही समझ सकता है जो शाहजी की भाँति "आत्मीय शुद्ध भावोंसे" भरा हो]।

(४) बाबू बहादुरलाल—

इनके सम्बन्धमे [कोचर महाशयके इनकारपर भी] करीब करीब कोई कागज़ पाठशालाकी फाइलोंमें नहीं मिला [क्योंकि दावा प्रमाणित हो चुका और डिगरीका रुपया भी वसूल हुआ जो अब

छिपाया नही जा सकता—देखिये परिशिष्ट नं० ८] इसलिए इनकी वावत कुछ नहीं कहा जा सकता। यह भी विलकुल झूठ [नहीं] है कि रजिस्टरोंमे कोई फेरफार किया गया [क्योंकि दावेकी जवावदेही स्थायी होते हुए भी *अस्थायी* की गयी थी। कदाचित् यह स्पष्ट झूठ ज़वानी ही गढ़ा गया हो !]।

(५) पं० भगवती देवी—

अस्थायी तौरपर [जिस तरहसे वा० वहादुरलालजी बी० ए० लेट हेड्मास्टरको रक्खा था और आखिर अदालतमे स्थायी ही मानना पड़ा] ३ मासके लिए नियुक्त की गई थीं। इनका कार्य कमेटीके मेम्बरो [अर्थात् कोचर महाशय]को पसन्द नही आया, इसलिए इनको स्थायी नहीं किया गया [हालाकि वा० वहादुर-लालजी बी० ए० की तरह दावा करनेपर वह भी स्थायी प्रमाणित हो सकती थीं] और पृथक् करना पड़ा। अस्थायी कर्म-चारियोको नोटिस देनेका कोई नियम नही है और न उचित है। इनको तिसपर भी [किसी नियम अथवा उचित-अनुचितका विचार न कर] अवला होनेके कारण [" न्यायशील आदर्श सज्जन" कोचर महाशयकी प्रार्थनापर] कमेटीने रिआयत करके उपस्थिति-से अधिक दिनका वेतन दिलाया है [किन्तु अगर कोर्टमे आती तो वा० वहादुरलालजी बी० ए०की भॉति न्यायानुकूल पूर्ण वेतन कोर्टद्वारा प्राप्त कर सकती थीं]।

(६ तथा ७) पं० मणिलाल व पं० गिरधरलाल

[पं० गिरधर देवचन्दजी]

नियमके अनुसार स्थायी कर्मचारियोंको पृथक् करते समय एक मासका नोटिस बराबर दिया जाता है, तदनुसार [पूर्ण निर्दोष रहनेपर भी अनावश्यक एक मासका नोटिस दे] इनके साथ उचित [नहीं, वरन् अनुचित तथा स्वच्छन्दताका] व्यवहार किया गया है।

(८ तथा ९) पं० रमाशङ्कर, बाबू भागवतसिंह

इन दोनोंने त्यागपत्र दिये हैं जिनके कारण वे स्वयं भली भाँति जानते हैं। पं० रमाशङ्करको कमेटी [नहीं, वरन् नियम नं० ५७* के अनुसार केवल कोचर महाशय] ने १० दिनकी छुट्टी लेकर जाने और [तार तथा नियमानुसार अर्जी भेज] लगभग एक मास लगाकर वापिस आने और विशेषतः अपनी रिपोर्टोंमें लिखी हुई अवधिसे भी [तारद्वारा सूचना दे] ४ दिवस [नियम नं० ११४† के अनुसार] अधिक लगाकर आनेपर डिसमिस [Dismiss] करने या वेतन काटनेके बजाय [जो उपर्युक्त नियम नं० ११४ के बिलकुल विरुद्ध था] पूरा वेतन उनकी उस समयकी बयान की हुई दुर्दशा [नहीं, "त्यागपत्र"—जिसे यदि कोचरशाह प्रकाशित कर देते तो "दुर्दशा" और "दया" का मर्म

---

* नियम न० ५७ को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये।

† इस नियम न० ११४ को परिशिष्ट न० ११ में देखिये।

खुल जाता] पर दया [नहीं, वरन् कोर्टकी धमकी और अखबारी दुनियामे पोलकी धज्जियाँ उड़ जानेकी खबर सुन भयातुर हो पाठशालासे पृथक् होनेके पश्चात् स्वयं बुला] करके दिया गया।

(१०) बाबू श्रीराम—

अपने भतीजेकी बीमारीके कारण छुट्टी गये थे [किन्तु अभाग्य-वश भतीजेके मर जानेपर लाचार हो नियमानुसार अर्जी भेज छुट्टी बढ़वानी चाही, मगर कोचर महाशयकी "दयालुता" की अधिकताके कारण छुट्टी स्वीकार नही हुई, इससे निराश, हताश और दुःखी हो] फिर हाज़िर नहीं हुए, इसलिये उन्हें डिसमिस [करके "नम्रता और दयालुताका व्यवहार"] किया गया। इस प्रकारका [सद्] व्यवहार अध्यापकोंके साथ हुआ है [जिससे कोचर महाशयकी "दयालुता" और सभ्यताका पूर्ण परिचय मिलता है।] । छुट्टियोके सम्बन्धमे नियम नं० १११* के अनुसार पाठशालाके हानि-लाभका विचार मुख्य तथा अवश्य किया जाता है [इसीलिये बा० बहादुरलालजी बी० ए० और पं० साँगीदासजी व्यासको षणमासिक तथा वार्षिक परीक्षाओंके समय छुट्टियाँ दी गयी] और समुचित भी है।

बा० रामलौटनकी इसी वर्षकी पढ़ाईकी बाबत इतना कह देना पर्याप्त है कि उन्होंने प्राइमर पढनेवाली एक ही कक्षाके परी-क्षाफलका आश्रय लेकर ७३ फीसदी परिणाम फल बतलाया है [वाहरी चाटुकारिता! तू धन्य है कि एक बी० ए० मुख्याध्या-

* इस नियम नं० १११ को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये।

परूसे कितना विरुद्ध कहलवा दिया]। अन्य कक्षाओंका अन्यन्त ही शोचनीय फल रहा है। यदि मौखिक परीक्षाफलके लग्भग ४० फ़ी सदी भी माने जावें [जो ५४ फ़ी सदीसे कम कदापि नहीं हैं] तो उनका फल [परिशिष्ट नं० १० (च) तथा पृष्ठ ११९के सन् १९२२-२३ के परीक्षाफलके अनुसार] और भी शोचनीय [अथवा प्रशंसनीय] होगा। स्कूल-रिमार्क-बुक भी उनके नामपर निकले हुए रिमार्कोंसे अलंकृत है [इसीलिये मेरे स्कूलसे हटनेके १।।। मास पश्चात्के एक नोटके सिवाय, जो बा० पन्नालालजीका लिखा हुआ "साँचमें लाँछ" में प्रकाशित किया है जिसका मुझसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है; और कुछ प्रकाशित न कर सके—देखिये परिशिष्ट नं० ७] जिनके कारण वह कबके ही स्कूलसे पृथक् कर दिये जाते, पर ऐसा नहीं हुआ है। वह मंत्रीजी [कोचर महाशय] की ही दयालुता है [कि श्रीमती अगराँजीको वृद्धावस्थाके कारण विना किसी इनाम-एकरामके निकाला गया और बा० श्रीरामजी गुप्तको उनके भतीजाके मर जानेपर छुट्टी देनेके बजाय डिसमिस किया गया आदि आदि]। उपरोक्त लेख मेरी समझमें पाठशालाकी वास्तविक परिस्थिति [छिपाने] का [पूर्ण] द्योतक होगा और इससे जनताको विदित हो जावेगा कि असलियतमें मामला क्या है।

अन्तमें बा० रामलौटन प्रसादको सूचना दी जाती है कि वास्तवमें यदि "जैन मतका प्रचार" शीर्षक लेख उनकी ही ओरसे निकला है तो उसमें किये हुए आक्षेपोंके लिए पाठशालाकी प्रबन्ध

ारिणीसे किसी प्रकारका अभियोग चलानेसे पूर्व क्षमा माँग लें
शाहजीको इस "निःस्वार्थ तथा आत्मीय शुद्ध भावो" से परि-
र्ण सूचनाके लिये अनेकानेक धन्यवाद हैं]।

वीकानेर, ता० २३ जून सन् १९२३ ई०	}	**मया भाई टी० शाह,** हेड-मास्टर, श्री जैनपाठशाला।

शाहजी (बा० मया भाई टी० शाह, बी० ए०, हेड मास्टर श्री जैन पाठशाला, वीकानेर) के "आक्षेपोका प्रतिवाद" शीर्षक नोटिसका, जिसका उल्लेख इस उपर्युक्त काण्ड ३ मे किया गया है, प्रत्युत्तर जो मैं (रामलौटन प्रसाद) ने दिया है, वह जनताके विचारार्थ आगे काण्ड ४ में अक्षरशः दर्ज है।

Shri Kewal Jiwananand Press, Navashahr, Bikaner

इस उपर्युक्त लेखमें इन [ ] कोष्ठोंके भीतर, यथाशक्ति गूढ़ रहस्योंको खोल प्रकट करते हुए, मेरे शब्द है।

—रामलौटन प्रसाद

काण्ड ४

साँचको आँच क्या ?

शाहजीके नोटिसका प्रत्युत्तर

विद्या-रविके उदयपर, जागा सकल जहान।
जैन-जाति सोवत अहह ! उलटी चादर तान ॥

यद्यपि मुझे पाठशालासे कोई विरोध नही है और न मेरा अभिप्राय पाठशालाको हानि पहुँचानेका है तथापि मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि बीकानेरी जनताको सत्यका प्रकाश दिखा सकूँ। इसलिये "आक्षेपोंका प्रतिवाद" शीर्षकके नोटिसका स्पष्ट प्रत्युत्तर जनता तथा पाठशालाके लाभार्थ प्रकाशित करता हूँ। सम्भव है कि स्वार्थवश कोई मनुष्य प्रकाशको भी अनुचित तथा प्रतिकूल समझता हुआ उसे घृणाकी दृष्टिसे देखे; परन्तु इसके लिये मैं दोषी नही हो सकता।

पाठशालाके अध्यापकोंका मुख्य कर्त्तव्य यह हुआ करता है कि वे आदर्श बनकर छात्रोंके लिये पथ-प्रदर्शक बनें और ऐसी ही पाठशाला, कि जिसमें ऐसे विचारशील तथा सज्जन पुरुष हों,

उन्नति कर सकती है, अन्यथा स्वयं ही नही, किन्तु छात्रोंके जीवनमे भी अधोगति होनेकी पूर्ण सम्भावना होती है। अर्थात् जहाँ अध्यापक चाटुकार और सत्यभ्रष्ठ हो वहांके विद्यार्थियोके जीवनका ईश्वर ही रक्षक हो सकता है।

मेरे नोटिसका उत्तर देते हुए बा० मया भाई टी० शाह मुख्याध्यापक (हेडमास्टर) ने जो कुछ भी लिखा है उससे विदित होता है कि उन्होंने सत्यकी परवाह न करते हुए अपनी आजीविकाके हेतु चापलूसीसे काम लिया है। अर्थात् अपने विद्यार्थियोंको गुप्त रीतिसे यह शिक्षा दी है कि "न ब्रूयात् सत्य-मप्रियम्" पर आरूढ़ रहकर चापलूसीसे अपनी आजीविकाकी रक्षा करना आवश्यक है, और निम्नलिखित बातोंसे प्रमाणित होगा कि केवल कोचर महाशयको प्रसन्न करनेके निमित्त एक मुख्याध्यापकने कितनी कर्त्तव्य-परायणता की है:—

१—(क) शाहजी महाशयने सन् १९१८—१९ से छात्रोंकी संख्याके कम होनेका कारण प्लेगकी बीमारी बतलाया है; परन्तु यह विचारणीय है कि श्री डूंगर कालेज तथा श्री मोहता मूल-चन्द विद्यालयकी छात्रसंख्यामें तो दिनों-दिन वृद्धि प्रतीत हो और श्री जैन पाठशालाकी संख्यामे न्यूनता हो।

(ख) संस्थाके मन्त्रियोंमें परिवर्तन होना और उसका प्रभाव योग्य तथा विश्वासपात्र अध्यापकोंके न मिलनेके कारण पढ़ाई-पर पड़ना जो लिखा है वह भी आश्चर्यजनक तथा निर्मूल है, क्योंकि कोचर महाशय अभीसे नहीं वरन् सन् १९१८ ई० के बहुत

पहलेसे इसके मंत्रीपदको सुशोभित कर रहे हैं। हाँ, यह अवश्य हुआ है कि कोचर महाशयने 'मेम्बरों तथा प्रबन्धकारिणी कमेटी पर अपना कुप्रभाव डालनेके लिये समय समयपर विसर्जनपत्र दिया और फिर उसी 'पदको स्वीकार किया है। यदि इसीको मंत्री परिवर्त्तन कहते हैं तो इस प्रभावसे योग तथा विश्वासपात्र अध्यापकोंका न मिलना किस प्रकार हो सकता है? कदाचित् इसको शाहजी महाशय ही जानते होंगे और बा० मानवरसिंहजी बा० चतुर्भुजजी जैनी, बा० विन्देश्वरी प्रसादसिंहजी, बा० भूरामलजी जैनी, बा० शेरसिंहजी जैनी, बा० जेठमलसिंहजी, बा० एस० के० मुकर्जी बी० ए०, एल एल० बी०, हाल असिस्टेण्ट एकाउण्टेण्ट जेनरल बीकानेर, बा० भोलानाथजी हेडक्लर्क इन्सपेक्टर जेनरल पुलिस बीकानेर, बा० जमुनाप्रसादजी क्लर्क रेवेन्यू मेम्बर, पं० जयरामजी शास्त्री हेड पण्डित श्री डूंगरकालेज, प० हरिकृष्णजी और बा० बहादुरलालजी बी० ए० आदि आदि मुख्याध्यापक तथा सहायक अध्यापक रहकर कोचर महाशयके कारण ही पाठशालाकी सेवासे वंचित रहे हैं। क्या ये योग्य तथा विश्वासपात्र न थे? हाँ, यदि विश्वासपात्र और योग्यका अर्थ जैन-धर्मावलम्बी तथा चापलूस होना है जैसे कि शाहजी महाशय हैं तो अवश्य मानना पड़ेगा कि ऐसा कोई भी न था।

(ग) सप्तम कक्षाके छात्रोंके उत्तीर्ण न होनेके कारण "प्रोमोशन" होनेसे वंचित रहना तो स्वाभाविक ही था, किन्तु "डिग्रेड" कर देना कदाचित् जैनधर्मानुकूल ही हो, किन्तु और तो कोई

न्याय ऐसी आज्ञा नहीं दे सकता। भलेमानस अध्यापकोंका उत्तेजित करना जो लिखा गया है वह भी शाहजीके सत्यका परिचय देता है, अर्थात् ता० १२-४-२३ के आर्डरमें जो दैनिक-छात्रोपस्थिति-रजिस्टरमे यह लिखा है—

The names of these students must be cancelled from the register to-day and they should not be allowed to attend the classes, as I have been fully given to understand from the stud-nts themselves that they are going to join the college. Last year many of these students had done the same but request being made were re admitted here, but I strongly affirm that they will not be admitted in future under anv circumstances

The students :—शिवकृष्ण स्वामी, हरीसिंह राजपूत, चाँदमल दर्ज़ी, भँवरलाल वैद और चतुर्भुजसिंह राजपूत।

N B—Class teachers to note the above

(sd) M. T. Shah, Head Master,
12th April 1923

उपर्युक्त अंग्रेज़ी आर्डरका सर्वसाधारणके सुभीतेके लिये हिन्दी-अनुवाद, जो "साँचको आँच क्या" में पहले नहीं दिया गया था, नीचे दिया जाता है:—

इन विद्यार्थियों (शिवकृष्ण स्वामी, हरीसिंह राजपूत, चाँदमल दर्ज़ी, भँवरलाल वैद और चतुर्भुजसिंह राजपूत)के नाम रजिस्टर से आज ही अवश्य काट दिये जावें और उन्हें कक्षामें कदापि बैठने न दिया जावे, क्योंकि मेरी समझमें स्वयं विद्यार्थियोंद्वारा

यह बात पूर्णरूपसे सिद्ध हो गयी है कि वे कालेजमें पढ़ने जाना चाहते हैं। गत वर्ष भी इन विद्यार्थियोंमेंसे बहुतोंने ऐसा ही किया था; परन्तु प्रार्थना करनेपर उन्हें पुनः दाख़िल कर लिया गया था। परन्तु अब मैं सख़्त ताकीद करता हूं कि ये लोग भविष्यमें किसी हालतमें भी दाख़िल न किये जावें।

नोट—क्लास-टीचर (कक्षाके अध्यापक) इस बातपर ख़ास तौरपर ध्यान रक्खें।

द० एम. टी शाह, हेड मास्टर,
ता० १२ अपरैल सन् १९२३ ई०।

इससे प्रतीत होता है कि शाहजी वास्तविक रूपमें अब कारण को, केवल चापलूसीके अधीन, बदलनेपर बाधित किये जाते हैं और अध्यापकोंका अपमान करनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

(घ) योग्य अध्यापिकाओंका न मिलना जो लिखा गया है वह भी इतना ही सत्य है जितना कि अध्यापकोंके लिये है। श्रीमती भगवती देवी, जो इस समय एलगिन गर्ल्स स्कूल, बीकानेरमें मुख्याध्यापिका हैं, क्या योग्य न थी ? हाँ, विदुषी होनेके कारण उनमें चापलूसी न थी और कदाचित् यही कारण कोचर महाशय की अप्रसन्नताका हो। कमेटीको कार्यका पसन्द न आना सर्वथा निर्मूल है, क्योंकि पण्डिताजीका झगड़ा तो कोचर महाशयके प्रतिज्ञा पूर्ण न करनेपर था।

(ङ) शाहजीने एक विद्यार्थीको प्राइवेट तौरपर "मैट्रिक्युलेशन परीक्षा" में भेजनेका गौरव प्रकट किया है। क्या परीक्षामें

किसी लड़केका सम्मिलित हो जाना तथा करा देना ही गौरव-जनक हो सकता है ? मुझे शोक है कि शाहजीने ऐसे विद्यार्थीपर गौरव किया है जो परीक्षामे वैठकर लगभग सभी विषयोमें अनुत्तीर्ण रहा। इसीसे पाठशालाकी उन्नतिका ज्ञान होता है।

२—मुझे शोक है कि शाहजीने नोटिसका उत्तर देते हुए सत्यासत्यका कुछ भी विचार न किया:—

(अ) पं० रामेश्वरदयालजीको छुट्टी देनेका इक़रार नियुक्तिके समय सभापतिजीका कर लेना किस नियमानुसार था और श्रीमती भगवती देवी*से पानी आदिका इक़रार करके मुकर जाना किस नियमानुकूल था ? क्या पं०रामेश्वरदयालजीकी छुट्टी आगामी हक़ रियायतीमे वाद दिया जाना नियम १०७† के अनुसार है ? इस साधारण नियमके उल्लंघन या इसमे परिवर्तन करनेका अधिकार सभापतिजीको किस नियमानुसार था ? क्या पं०साँगीदासजी व्यासको ६ मास कार्य करनेके वाद भी अवैतनिक छुट्टी देना नियमानुकूल था ? इसी तरह क्या पं० रामेश्वरदयालजीको २ दिनकी देरीसे आनेपर, जव कि तार केवल एक ट्रेन छूट जानेका था, पूर्ण वेतन दे देना उचित था ? पं० साँगीदासजी व्यासको केवल एक दिनकी देरी होनेपर कुल छुट्टी जो ११०‡

* शोक है कि श्रीमती भगवती देवीका स्वर्गवास गत फरवरी सन् १९२० में हो गया।

† इस नियम न० १०७ को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये।

‡ इस नियम न० ११० को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये।

नियमानुसार थी, अवैतनिक कर देना क्या न्याय-पूर्ण था ? इस तरह केवल एक दिन ज़्यादा लगाना इनके लिये भी वैसा ही न था जैसा कि पं० रामेश्वरदयालजीको ?

(ब) पं० साँगीदासजी व्यासके लिये जो १००) मासिकपर नियुक्त होनेका मनगढ़ंत दोष लगाया गया है, उसका पाठशालाके रेकर्डमें तो पता नहीं चलता; सम्भव है कि कोचर महाशय तथा शाहजीको आन्तरिक ज्ञान प्राप्त हुआ हो ।

३—(च) क्या बा० पन्नालालजीके अतिरिक्त और किसीसे आजतक केवल दो-तीन दिनकी बीमारीके कारण १०८* नियमका व्यवहार किया गया है ? यदि नहीं, तो इनके साथ क्या विशेषता थी ?

(ट) बा० पन्नालालजीका पाठशालाके लिये अनुपयोगी होना इसीसे विदित होता है कि सप्तम कक्षाको अंग्रेज़ी पढ़ाकर जब शाहजी सन्तुष्ट न कर सके तो बा० पन्नालालजीने अंग्रेजी पढ़ाकर सन्तुष्ट किया था । शाहजीकी योग्यताका भी इससे अनुमान होता है कि सप्तम कक्षाको संस्कृतमें शाहजी नहीं वरन् पं० मेघराजजी गोस्वामी पढ़ाकर सन्तुष्ट किया करते थे ।

[त] यह कहना कि अस्थायी कर्मचारियोंको नोटिस देनेका कोई नियम नहीं है और न उचित है, तो बा० पन्नालालजी, बा० माधवलालजी भार्गव तथा पं० केवलचन्दजी रंगाको क्यों और किस नियमानुसार नोटिस दिया गया था ?

---

* इस नियम न० १०८ को परिशिष्ट न० ११ मे देखिये ।

(४) बा० बहादुरलालजी बी० ए० के सम्बन्धमे क़रीब क़रीब कुल काग़ज़ोंका पाठशालासे गुम हो जाना, जब कि दावेके जवाबके लिये कोचर महाशय पूर्णतया उद्यत थे, क्या आश्चर्यजनक नहीं है? और क्या कोचर महाशयकी स्वीकृत डिग्री, जो कदाचित् २००) के ऊपर है, छिपायी जा सकती है? यदि रजिस्टरोमे अस्थायी प्रमाणित करनेके लिये फेरफार करना झूठ है तो अवश्यमेव सत्य है कि कोचर महाशयने "अदालत" मे झूठकी शरण ली थी। मैंने तो कोचर महाशयको इतना सफ़ेद झूठ बोलनेवाला न समझकर रजिस्टरोमें अस्थायी दिखलानेकी चेष्टा करनेका अनुमान किया था। सम्भव है कि शाहजी सच्चे हो।

५—(प) पं० रमाशंकरजी विशारद तथा बा० भागवतसिंहजी विशारदके त्यागपत्र स्वयं प्रकट करते हैं कि कोचर महाशयका न्याय तथा उनकी सभ्यता कितनी उच्च कोटिकी है कि जिससे तङ्ग आकर उन्हें त्यागपत्र देना पड़े। पं० रमाशंकरजीके प्रति दयाभाव दिखलाना सर्वथा निर्मूल है। कोचर महाशय तथा शाहजीकी दयालुताका नमूना तो इसीसे प्रकट होता है कि उन्होंने श्रीमती अगराँजी एक वृद्धा तथा धर्माध्यापिकाको, जो पाठशालामे जन्मसे, धर्म-शिक्षा दिया करती थीं, बिना किसी इनाम आदिके अकारण ही गत मार्चसे पृथक् कर दिया। कदाचित उनको श्रीमती भगवती देवीकी भाँति अबला नहीं, किन्तु सबला समझा गया।

(फ) बा० श्रीरामजी गुप्तके डिसमिसल आर्डरसे कोचर

महाशयकी दयालुताका परिचय मिलता है। अर्थात् उनके प्रिय भतीजेके मर जानेपर हेडमास्टरजीकी सिफारिशपर भी अवैतनिक छुट्टी नहीं दी गयी और खासकर जब कि पाठशालाका, परीक्षा आदि कोई भी ज़रूरी, मौक़ा न था तो नियम १११* का व्यवहार ही करना क्या दयालुता थी? बा० बहादुरलालजी बी० ए०को दिसम्बर सन् १९२१ ई० मे ठीक षण्मासिक परीक्षाके दिनोंमे सवेतन तथा पं० साँगीदासजी व्यासको मार्च सन् १९२२ ई०में ठीक वार्षिक परीक्षाके समयमे छुट्टी देना क्या नियम १११* के अनुसार था? सत्य है, "अर्थी दोषं न पश्यति"—मतलबी आदमी सत्यासत्यका निर्णय नहीं कर सकता।

(व) बा० जेठमलजीका, जोकि १५ वर्षसे कर्त्तव्य-पालन कर रहे थे, त्यागपत्र देनेका भी यही कारण सुना गया है कि शाहजी-की अपेक्षा छात्रगण उनकी प्रतिष्ठा तथा उनसे प्रेम अधिक किया करते थे। कदाचित् शाहजी इसी कारण अप्रसन्न रहकर उनसे सद्व्यवहार न करते थे। क्या इनके अलग करनेके लिये भी शाहजीके पास कोई समुचित तथा माकूल मसाला रिमार्कबुकमें मौजूद है? जहाँतक मैं समझता हूँ कि शाहजीकी अप्रसन्नताके पूर्व उनके विरुद्ध कोई रिमार्क नही है। सम्भव है कि अप्रसन्नताके फलस्वरूप अब कोई रिमार्क दे दिये गये हो। कैसा आजन्म स्मरणीय उत्तम पारितोषिक इतने दिनोंकी सेवाका इनको देकर न्याय तथा दयालुताका परिचय दिया गया है।

* इस नियम नं० १११ को परिशिष्ट न० ११ में देखिये।

(भ) क्या नियम ७१ * का पालन किया जाता है? क्यों [illegible]या जावे? कदाचित् इस सर्द तथा ठंढे देशके लिये लागू न [illegible]ो। फिर पालन कर दोषी क्यों बना जावे? कैसा न्याय, [illegible]यालुता तथा स्वास्थ्य-सुधारका प्रत्यक्ष जीता जागता [illegible]मूना है।

(म) पं० मेघराजजी गोस्वामीके ऊपर अचानक नियम ११५† के अन्तिम तीन पंक्तियोंका लगाना क्या आश्चर्यजनक नहीं है? उस दिनका जवाब-सवाल, जो उनसे हुआ है, ध्यानपूर्वक विचारणीय है। जहाँतक मुझे ज्ञात है। इस शीघ्रतामें २॥बजेके बाद पाठशालासे पृथक् होनेपर भी उस दिनका वेतनतक देनेका ध्यान नहीं रहा। वाह! न्याय हो तो ऐसी शीघ्रतासे, यह व्यवस्था वेतनवृद्धि माँगनेपर शीघ्र ही उपस्थित हुई। कहिये! कैसा कौतू-हलजनक तथा हृदयविदारक दृश्य है?

६—(य) मेरी कक्षाओंकी पढ़ाईके विषयमें इतना ही कहना पर्याप्त है कि शाहजीकी बुद्धिपर लिखते समय खुशामदका पर्दा पड़ा था, अन्यथा निम्नलिखित फलकी मौजूदगीमें किसी सभ्य तथा बुद्धिमान् पुरुषको ऐसा लिखनेका साहस कदापि नहीं हो सकता था :—

* इस नियम न० ७१ को परिशिष्ट न० ११ में देखिये।

† इस नियम न० ११५ को परिशिष्ट न० ११ में देखिये।

वार्षिक परीक्षाफल

(सन् १६२०-२१)

कक्षा	विषय	फ़ी सदी	प री क्ष क
५	हिन्दी	१००	श्रीयुत पं० जयदयालजी शर्म्मा, अध्यापक श्री डूंगर कालेज ।
४	भूगोल	”	” बा० श्रीरामजी गुप्त, प्रधानाध्यापक, पाठशाला ख़ास ।
”	हिन्दी	६७	” पं० हरिकृष्णजी, अध्यापक, पाठशाला ख़ास ।
३	भूगोल	३३	” बा० सभयराजजी नाहटा, उपमन्त्री पाठशाला ख़ास ।
”	गणित	१००	” बा० श्रीरामजी गुप्त, प्रधानाध्यापक पाठशाला ख़ास ।
१	अंग्रेज़ी	६७	” पं० हरिकृष्णजी, अध्यापक, पाठशाला ख़ास ।

सन् १९२१-२२ (वार्षिक परीक्षा-फल)*

कक्षा	विषय	फ़ीसदी	प री क्ष क
६	गणित	१००	श्रीयुत वा० पन्नालालजी, अध्यापक, पाठशाला ख़ास ।
५	गणित	१००	„ पं० मेघराजजी गोस्वामी, अध्यापक, पाठशाला ख़ास ।
४	गणित	१००	„ „ „ „ „ „
३	गणित	५७	„ „ „ „ „ „
„	अंग्रेजी	७१	„ वा० मया भाई टी० शाह, प्रधानाध्यापक, पाठशाला ख़ास ।
२	हिन्दी	७१	„ पं० मेघराजजी गोस्वामी, अध्यापक, पाठशाला ख़ास ।

सन् १९२२-२३ (वार्षिक परीक्षा-फल)*

कक्षा	विषय	फ़ीसदी	प री क्ष क
३	गणित	१००	अज्ञात } शाहजीने इस वर्ष परीक्षकोंको गुप्त रखकर उच्चादर्श स्थापित किया था ।
२	गणित	५०	„
२	अंग्रेजी	४५	श्रीयुत वा० शिवचन्दजी झावक, जैन समाजके एक सज्जन नवयुवक ।
प्राइमरी	हिन्दी	७६	„ वा० रूपचन्दजी सुराना, उपमन्त्री, पठशाला ख़ास ।
प्रा० डबल परीक्षा	हिन्दी	६०	„ „ „ „ „

* इन उपरोक्त परीक्षाओंमें पहले कक्षा और विषय एक ही खानोंमें था किन्तु स्पष्टताके विचारसे इस वार अलग अलग कर दिया है। पहले परीक्षकका खाना नहीं था किन्तु यहांपर बढा दिया गया है ताकि और प्रकाश पड़ जावे और शाहजीके कथनानुसार "गुप्तरीतिसे सहायता" आदि देनेका अनर्गल तथा निर्मूल आक्षेपोंका भेद खुल जावे।

इस प्रकार परीक्षामें केवल ८ विद्यार्थी ऐसे हैं जिन्होंने ४० फ़ी सदीसे कम नम्बर पाये हैं जिसकी ओर ४० फ़ी सदीका द्वारा कर परीक्षाफल शोचनीय बनलाया गया है,उस कक्षामें कमसे कम ५४ और अधिकसे अधिक ८८ फ़ी सदी नम्बरतक विद्यार्थियोंने पाये हैं। सदासे लगभग मेरी ही कक्षासे छात्र पाठशाला भरमें प्रथम तथा द्वितीय श्रेणियोंमें उत्तीर्ण होते आये हैं, इस वर्ष भी मेरी ही कक्षासे छात्र पाठशाला-भरमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणियोंमें परीक्षोत्तीर्ण हुए हैं।

(ट) इस वर्षके आरम्भ सेशनके स्थायी टाइमटेबुलके अनुसार मेरी मौजूदगीमें जून मासमें अध्यापकोंका कार्यविवरण ध्यान पूर्वक: विचारणीय है :—

अध्यापक	कुल छात्र-संख्या	प्रति घण्टा छात्रसंख्या	छात्र संख्या फ़ी-सदी वेतनपर	विशेष विवरण।
श्रीयुत हेडमास्टरजी	१६	३	१३	इसमें धर्म तथा वाणिका वर्णन सम्मिलित नही है।
” रामेश्वरदयालजी	[illegible]	२	६	
” पन्नालालजी	६६	१०	१५३	
” रामलौटनप्रसाद	६६	१४	२४८	
” साँगीदासजी	६३	६	१५८	
” जेठमलजी	१८०	३०	६००	

(ल) स्कूल रिमार्कबुक भी मेरे नामपर निकले हुए रिमार्कोंसे अलंकृत होना जो लिखा गया है, उससे भी शाहजीकी पूर्ण सत्यताका परिचय मिलता है। अर्थात् आजतक मेरे नामसे केवल दो साधारण रिमार्क निकले हैं—(१) आर्डर नं० २ ता० ३-६-२१, जो नितान्त निर्मूल तथा निरंकुशतापूर्ण अधिकारोंसे भरा है। इसके विषयमें भूतपूर्व हेडमास्टरोंकी सम्मतियाँ भी मुझे निर्दोष बतलाती हैं। (२) नोटिस नं० ३८१ ता० २० जनवरी सन् २३, इसके द्वारा एक छात्रके शारीरिक दण्डके विषयमें जवाबतलब किया गया है, जिसका सन्तोषदायक उत्तर फ़ाइलमें मौजूद है। और कोई दूसरे रिमार्क मेरे प्रति आजतक नहीं निकले हैं। सम्भव है कि विदा होते समय हेनरी आठवेंकी भाँति परिश्रमफलका इनामस्वरूप एकाध रिमार्क देकर दयालुताका परिचय दिया गया हो। यहाँपर शाहजीके "अलंकृत" शब्दका प्रयोग उनकी योग्यताका पूर्ण द्योतक है।

अन्तमें मैं शाहजीको उस सूचनाके लिये, कि जो उन्होंने मुझे पाठशालाकी प्रबन्धकारिणीकी ओरसे चलनेवाले अभियोगके लिये दी है, धन्यवाद देते हुए प्रार्थना करता हूँ कि यदि "आक्षेपों का प्रतिवाद" शीर्षक लेख वास्तवमे उन्हींकी ओरसे निकला है तो वह, उसमे लिखी हुई पॉलिश्ड तथा मुलम्मा की हुई बातोंके लिये जनता तथा छात्रोंकी ओरसे उनपर अविश्वास होने तथा उनको आदर्शसे गिरे हुए समझनेके पूर्व ही स्पष्टरूपसे असलियत प्रकट कर दें।

यह आक्षेप वृथा है भाई, निर्दोष रामलौटनपर ।
कोर्ट क्या कुछ हँसी खेल है, या वह है मासीका घर ॥"

नोट—(१) इस लेखमे कोचर महाशयका अर्थ बा० शिवबख्शजी साहिब कोचर सेक्रेटरी तथा शाहजीका अर्थ बा० मयाभाई टी० शाह हेडमास्टर श्री जैन पाठशाला बीकानेरसे है ।

(२) आश्चर्य है कि शाहजीने मेरे पत्र नं० ८० ता० १८-५-२३, पत्र नं० ८१ ता० २४-५-२३, नोटिस नं० ६३ ता० १२-६-२३ का कुछ भी जिक्र नहीं किया ।

(३) अब उचित समझता हू कि समाचारपत्रोद्वारा सत्य सन्देश संसारको सुनाकर कर्त्तव्य पालन करूं ।

(४) पूज्य मेम्बरों तथा अन्य सज्जनोसे सादर निवेदन है कि सत्यासत्य-निर्णयमें पूर्ण योग दे यशके भागी बनें ।

(५) मेरे इस आन्दोलनकी हार्दिक इच्छा यही है कि श्रीजैनपाठशालासे अन्याय तथा असत्य व्यवहारकी इतिश्री होकर पूर्ण सच्ची उन्नति हो और वह अपने प्राचीन शुद्ध तथा पवित्र गौरवको प्राप्त हो ।

(६) सन १९२२–२३ मे केवल बालक-पाठशालाका मासिक व्यय ४५०) के ऊपरतक कभी कभी पहुँच गया है ।

(७) शाहजी अधिकतर धर्मशिक्षा ही दिया करते हैं। इनके कार्यमे कोई त्रुटि क्यो और कैसे पायी जावे ? इतना न्यून वेतन पानेपर भी वेतन आदि वृद्धिके लिये चूँ तक नहीं करते, सन्तोषपूर्वक पूर्णतया कार्य-संचालन करते हैं। गत वार्षिक परीक्षामें

नाममात्र अष्टम कक्षा तथा सप्तम कक्षाका धर्म-परीक्षाफल शून्य रहा है। सबके लिये तो पग पगपर दया-दृष्टि की गयी है, किन्तु इनके लिये क्यों दयाका अभाव है? कदाचित् सबकी भाँति अन्तिम दिनके लिये रक्खा गया हो।

बीकानेर,
ता० १७ जुलाई सन् १९२३ ई०

रामलौटन प्रसाद,
लेट-असिस्टेंट मास्टर,
श्रीजैन पाठशाला

वै० यं० अजमेर

मेरे उपर्युक्त नोटिस "साँचको आँच क्या?" शीर्षकका प्रत्युत्तर जो शाहजी महोदयने दिया है वह आगे काण्ड ५ में सर्वसाधारणके विचारार्थ दर्ज है।

काण्ड ५ आरम्भ करनेके पहले यहाँपर इतना प्रकट कर देना आवश्यक समझता हूँ कि सन् १९२२-२३के परीक्षक, जहाँ तक सुना जाता है, प्रायः जैन-समाजके ही विद्वान् तथा सज्जन महोदय थे। परीक्षकोंको पूर्णतया ज्ञात हो गया होगा कि परीक्षा फल तथा अध्यापकोंका व्यवहार कहाँतक सन्तोषदायक है और यह भी ज्ञात हो गया होगा कि शाहजीका व्यवहार अध्यापकोंके प्रति कहाँतक उचित है· · ·····आदि आदि। हर्षकी बात है कि शाहजीने "मन्थरा" की पालिसीके अनुसार इस वर्ष परीक्षकोंका नाम अध्यापकोंसे भी गुप्त रक्खा। शाहजीका ऐसा व्यवहार तथा विचार कहाँतक "आत्मीय शुद्ध भावों" से भरा है, पाठकगण स्वयं विचार लें।

इसी वार्षिक परीक्षाके समय श्रीमान् शा० शिवचन्दजी झाबक, जो यहाँकी जैन-समाजमें एक बड़े विद्वान्, सभ्य, गम्भीर, विचारशील तथा उत्साही पुरुष हैं, कक्षा दूसरी (अंग्रेज़ी) के परीक्षक होकर आये थे। यह कक्षा मेरे ज़िम्मे थी। शाहजीने डिक्टेशनकी परीक्षा विना पढ़ी हुई पुस्तकसे लेनेको कहा। इसपर परीक्षक महोदयने कहा कि "कक्षा दूसरी और विना पढ़ी हुई पुस्तकसे परीक्षा!" भावार्थ यह कि परीक्षक महोदयकी सम्मति न होनेपर भी शाहजीके आदेशानुसार विना पढ़ी हुई पुस्तक-ही-से परीक्षा लेनी पड़ी। ऐसा करनेपर भी परीक्षाफल ८५ प्रतिशत हुआ और छात्रोंने अधिकसे अधिक ७६ और कमसे कम ३६ प्रतिशत नम्बर प्राप्त किये थे। इसी अवसर-पर शाहजीने लिखकर मेरी शिकायत परीक्षक महोदयसे की कि रामलौटन प्रसादने लूनकरन सोनार नामक छात्रको विना मेरी अनुमतिसे परीक्षामें सम्मिलित होनेसे वंचित रक्खा है। अतः आप उसकी परीक्षा ले लेवें। परीक्षक महोदयने इस निर्मूल घटनाकी पूर्णतया जाँच की और शिकायतको पूर्ण असत्य पाया। दूसरी घटना यह हुई कि मैं परीक्षक महोदयसे कुछ ऐसी बातें कर रहा था जो सर्व प्रकारसे उचित तथा लाभप्रद थीं। इसपर शाहजीने परीक्षक महोदयके समक्ष अनधिकार आक्षेप कर अस-भ्यता, स्वच्छन्दता तथा निरंकुशताका परिचय दिया। शाहजीके ऐसे व्यवहारोंको देख परीक्षक महोदयने खेद प्रकट किया। उनको "स्थाली पुलाक" न्यायके अनुसार यह भी ज्ञात हो गया

होगा कि शाहजी महोदय "अपने आत्मप्रदर्शित पथ" पर कहाँ तक अचल हैं।

इसी वार्षिक परीक्षाके समय बा० रूपचन्दजी सुराना, जो जैन-समाजके एक नवयुवक शिक्षित तथा सुधारक सज्जन हैं और इसी पाठशालाके उपमंत्री भी हैं, हिन्दी कक्षा (सी) के, जो मेरे ज़िम्मे थी, परीक्षक होकर आये थे। परीक्षाफल कहाँतक सन्तोषदायक था, इसका निर्णय परिशिष्ट नं० १२ से कर सकते हैं।

अब इन घटनाओंसे पाठकगण स्वयं नतीजा निकाल लें कि शाहजीका व्यवहार कहाँतक सत्यता तथा सभ्यता-सम्पन्न है और उनकी कर्त्तव्यपरायणता, सत्यपरायणता तथा "आत्मीय शुद्ध भावों" की गहराई कितनी है।

काण्ड ५

नोट—इस निम्नांकित लेखमे इन [ ] कोष्ठकोके भीतर गाहर्जाके गुप्त भावोको प्रकट करते हुए तथा यथासाध्य उत्तरकी पूर्ति करते हुए मेरे शब्द हैं।

—रामलौटन प्रसाद।

साँचमें लाँछ
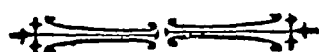
[अर्थात् सचाईमें चाटुकारिता और झूठ आदिको मिश्रित कर सत्यको कलंकित करना]

या

'साचको आँच क्या' इसपर विचार

न वेत्ति यो यस्य गुणं प्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति।
यथा किराती करि कुम्भजाता मुक्तां परित्यज्य विभर्ति गुञ्जाम्॥

[सत्य है "जो जाको गुन जानही, सो तेहि आदर देत।
कोकिल अम्बहि* लेत है, काग निबौरी† हेत॥"

कदाचित् इसीलिये लगभग ४॥ वर्षोमें लगभग ३० अध्यापकोंको श्री जैन पाठशाला, बीकानेरसे पृथक् होना पड़ा; क्योंकि

* अम्बहि=आमका फल। † निबौरी=निमकौड़ी, नीम वृक्षका फल।

उनमें चाटुकारिता तथा कर्त्तव्यहीनता न थी, जिसके ग्राहक कोचर महाशय हैं।]

होत उदय तिमिरारिके जगमें होत प्रकाश।
नेत्रहीन मतिमन्दको रहे तिमिरको भास॥

[सत्य है, "सावनके अन्धेको हरा ही सूझता है" और कदाचित् यही कारण है कि समयके परिवर्त्तन होने और मेरे इतना प्रकाश डालनेपर भी कोचर महाशयका स्वच्छन्दतारूपी अन्धकार अभीतक पूर्णतया नष्ट नहीं हुआ।]

'कारणात् कार्य सम्भवः' सत्यासत्यका निर्णय-कर्त्ता यह अटल सिद्धान्त इस जगत्में सर्वत्र व्याप्त है। कोई व्यक्ति कितनी ही अपनी योग्यताकी डींग क्यों न मारे, कितना ही अपनेको सत्यवादी तथा स्वार्थ-रहित परोपकारी क्यों न बतावे, पर कालान्तरमें वास्तविकताका अङ्कुर जब प्रस्फुट हो जाता है तब ही दुनियाँ सचेत होती है और ऐसे व्यक्तियोंसे उदासीनता ही धारण करती है [कदाचित् इसीलिये दूसरे मुख्याध्यापककी आवश्यकता हुई]। यद्यपि वे लोग दुनियाँसे विरोध करने एवं उसे हानि पहुँचानेकी चेष्टामे कोई कसर नही रख छोड़ते [तथापि मनुष्य उनके कर्त्तव्योंसे सदैव बचनेकी चेष्टा करते हैं]। भोजनके परोसे जानेपर देशकालानुकूल यदि उसमे मक्षिकाका भ्रम हो जाय तो अपनी स्वास्थ्य-रक्षार्थ एवं भोजनके शुद्ध्यर्थ उसका ढूंढ़ना आवश्यक ही है और उसके दृष्टिगोचर होनेपर उसको दूर फेंकना भी अनिवार्य है [कदाचित् इसीलिये नवीन मुख्याध्यापक गोस्वामीजीकी नियुक्ति हुई है]।

ऐसा करनेमे यदि पंख आदि कोई अङ्ग भोजनमे लुप्त रह जावे तो दूर फेंकी हुई मक्षिकाका निर्दोषपना भोजनकी अपवित्रतामें प्रामाणिक नहीं हो सकता, चाहे वह जीरा व इलायची आदिका कैसा ही रूप धारण किये क्यों न हो। इस भूमिकाका उद्देश्य यही है कि मेरे आक्षेपोंके प्रतिवादका प्रत्युत्तररूप 'साँचको आँच क्या' ऐसा शीर्षक एक लेख बाबू रामलौटन प्रसादकी ओरसे बीकानेरमें वितरण किया गया है। इसकी लेख-शैलीसे लेखकका भाव यद्यपि जनताको भलीभाँति प्रकट हो गया होगा तथापि मैं [कोचर महाशयके प्रसन्नतार्थ और जनताको भ्रममे डालनेके लिये] अपना कर्तव्य समझता हूँ कि उक्त लेखपर अपने विचार इस निमित्तसे ही प्रकट करूँ कि मेरी अयोग्यता, सत्य-भ्रष्टता और चापलूसी आदि दुर्गुणोंका, जिनकी सत्ताका भाव लेखक महोदय [ही नही, किन्तु बीकानेरी जनता] को [भी] हो गया है, उक्त सुयोग्य सत्यवादी और स्वतन्त्र विचारशील सज्जनद्वारा फिरसे कुछ संशोधन हो जाय [अथवा स्वच्छन्दता आदि जाती रहे]।

शीर्षक (हेडिङ्ग) से लेखकने यह विदित किया है कि मेरी साँचका सम्प्रसार (फैलाव) स्वतः विना किसी आँचहीके जैनजातिके लाभार्थ हो रहा है पर ऐसा कदापि नहीं हो सकता, [illegible] [जबतक कि कोचर-शाहकी स्वच्छन्दता नहीं जाती] क्योंकि लेखककी नियुक्तिसे पृथक् होने-[illegible] तीन वर्षकी अवधिमे उस साँचका संकोच क्यों रहा ? [कदाचित् पिछला हाल आप (शाहजी) ने चाटुकारीकी तरङ्गमे

सुना है अथवा ब्राह्ममुहूर्तकी प्यारी निद्रामें किसी स्वप्नद्वारा जाना है, अन्यथा जो कुछ मैं तीन वर्षोंमें पचासों वार कोचरशाह, मुख्याध्यापकों तथा विद्यार्थियोंको प्रकट करता रहा हूं उसे वे यदि मौखिक नहीं तो मेरी लिखित रिपोर्टों ता० १३-१०-१९२०, ५-१२-२०, ७-१-२१, २५-५-२१, ५-८-२१, ३ १२-२१, ६-२-२२, २६ ६ २२, १-१-२३ और ७-२-२३, को देखकर ही लिखनेका साहस करते। (देखिये परिशिष्ट नं० ३) परन्तु] सम्भव है 'अर्थी दोषं न पश्यति' यह कहावत स्मरण रही हो अथवा अयोग्यता आदि दुर्गुणोंने घेर लिया हो अथवा जैन-समाजपर जैसे तैसे प्रभाव डालकर विशेष आकांक्षाओंकी पूर्तिकी चेष्टामे विचरते रहे हो [कदाचित शाहजीने मन्थरा, शकुनी, माहिल, मुहम्मदशाह दूसरा, अहमद शाह, जहाँदारशाह, मीरजाफ़र आदिकी ही जीवनी पढ़ी है]। यदि ऐसा न होता तो साँचका फैलाव नियुक्तिके साथ ही होने लग जाता और अवतक पाठशाला भी ऐसे पथप्रदर्शक अध्यापक के होते हुए आदर्शरूप बनकर उन्नतिपर पहुँच जाती [यदि स्वच्छन्दता, चाटुकारिता तथा कर्त्तव्यहोनताका प्रभाव पहलेसे जमा हुआ न होता]।

बाबूजीकी साँचका सच्चा ढाँचा तो आपके रचित इस दोहे-दोहा हीसे विदित हो जाता है, जो इस प्रकार है:—

विद्या-रविके उदयपर, जागा सकल जहान।
जैन जाति सोवत अहह ! उलटी चादर तान॥

इसका तात्पर्य यह है कि विद्यारूपी सूर्यके उदय हो जानेपर

जैन (समस्त) जाति पर आक्षेप

समस्त जगत् तो जागा, पर हतभागिनी जैन-जाति प्रथम तो ओंघी और दूसरे अपनेपर चद्दर डाले हुए नींदहीमें पडी है।

बाबूजीकी [ही नही किन्तु परिशिष्ट नं० १३ के अनुसार श्रीयुत बा० कन्नोमलजी, एम० ए०, तथा श्रीयुत बा० फतहचन्द-जी नाहटा आदि जैन शुभचिन्तकों, सुधारकों तथा नेताओकी] दृष्टिमे [भी] सिवाय जैन-जातिके भारतवर्षकी समस्त जातियों-मे विद्याकी उन्नति हो रही है, पर यह बात तब ही मान्य हो सकती है जब भारतीय सरकारकी सन १९११ की मर्दुमशुमारीकी रिपोर्ट [सेन्सस] [जो विद्योन्नति अथवा विद्वानोकी ही स्थिति नहीं बतलाती, किन्तु उसमें वे मनुष्य भी सम्मिलित हैं जो नाम-मात्रके साक्षर है] असत्य मानी जाय। बाबूजी [अर्थात् शाह-जी] का साहस [जो "औसत"की असलियतको नहीं समझते हैं] प्रशंसनीय है कि वे सरकारी रिपोर्ट [की अपेक्षा परिशिष्ट नं १३ के अनुसार जैन-नेताओं तथा शुभचिन्तको] को भी [जो अपने समाजकी स्थितिको सेंसस कर्मचारियोकी अपेक्षा कहीं अच्छा जानते हैं] असत्य प्रमाणित करनेपर आ डटे हैं। सन् १९११ की सेन्ससमे भारतकी शिक्षित जन-संख्या जब ६ प्रति सैकडा है तो क्या यह जहानकी जागृत्यावस्था है? सन् १९१२-१९१७की रिपोर्टसे भी प्रकट है कि भारतकी माध्यमिक शिक्षा

इसका प्रत्युत्तर

भला सरकारी रिपोर्ट और जागृतिमे क्या सम्बन्ध है? और मुझको

और उच्च शिक्षा भी दुनियाँके दूसरे देशोंकी अपेक्षा बहुत गिरी हुई है जो अनुक्रमसे प्रति हज़ार २४ और .२४ आती है, क्या यह भी जहानकी जागृत्यावस्था है? यदि बाबूजीने अपनी हिन्दू-जाति और जैन-जातिके शिक्षित मनुष्योंकी तुलना की हो तो भी यह दोहा चरितार्थ नहीं होता, क्योंकि हिन्दू-जातिमें आजसे १२ वर्ष पूर्व शिक्षित पुरुषोंकी संख्या १० और स्त्रियोंकी ७ प्रति सैकड़ा थी, प्रत्युतः जैन-जातिमें ४६.५ और ३.६ क्रमानुसार प्रति सैकडा थी [कदाचित् इसीलिये मारवाड़ी धनाढ्योंको प्रायः मिलरों तथा अन्य योरोपियन फर्मोंके मालिकोंकी हाज़िरी देते तथा मुंह ताकते हुए दिन बीत जाता है, और इसीलिये दिवालेका प्रभाव भी

"सरकारी रिपोर्टको भी असत्य प्रमाणित करने" का दोषी बताना कहाँतक ठीक है, पाठक स्वयं विचार देखें—क्या इससे शाहजीके "आत्मीय शुद्ध भावों" का पता नहीं लग सकता? कोई सर्कार मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टके सहारेपर "जागृति" की जिम्मेवार नहीं हो सकती। ऐसा समझना तो केवल शाहजीहीकी प्रज्ञाप्रौढ़ता है। जिसमें लेशमात्र भी सत्यांश होगा, ऐसा अपवित्र तथा दूषित भाव मनमें लानेका साहस कदापि नहीं कर सकता। देखिये श्री बीकानेर सर्कारने सन् १९११ ई० की मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टमें "शिक्षित"की परिभाषा क्या लिखी है:—"A person should be regarded as literate if he could both read and write a letter in any one language" अर्थात् वही व्यक्ति शिक्षित समझा जा सकता है जो किसी एक भाषामें पत्र-व्यवहार कर सकता है। इसी रिपोर्टमें दर्बार हाईस्कूलकी व्याख्या करते हुए यह लिखा गया है —"The number of students in the higher classes is small, owing to

अधिकतर इसी समाजपर पडता है। कलकत्तेमे कई वर्ष हुए जब दङ्गा हुआ था तो मारवाड़ी-समाजको ज़ियादा हानि भी शायद इसीलिये पहुँची थी। और पुलिसका व्यवहार जो मारवाड़ियोंके प्रति होता है वह भी कदाचित् उसी कारणसे हो कि उनमे अधिक संख्या शाहजीके कथनानुसार विद्वानोकी है]। इस पुष्ट [प्राकृिकल] प्रमाणके होते हुए भी क्या बाबूजी [नही, वरन् शाहजी] ने जैन जातिका उपहास नहीं उड़ाया है? बाबूजीका उक्त दोहा [अर्थात् युक्ति] कहाँतक ठीक है जनता स्वयं विचार ले।

आरम्भके शब्द

बा० रामलौटनके लेखके आरम्भमे ये शब्द हैं कि "मुझे पाठशालासे कोई विरोध नही है और न उसे हानि पहुँचानेका मेरा अभिप्राय है"—यह कथन उनका उचित है, क्योकि पाठशालाकी जड़ पर्याप्त फ़ण्डके जमा हो जानेसे सुदृढ़ है और

---

the fact that the boys of *banking community* leave the school after they have acquired a *Smattering* of English sufficient to enable them to read and write *ordinary* letter and telegrams" अर्थात् उच्च कक्षाओंमें छात्रोंकी संख्या न्यून है [illegible] व्यापारियोंके लड़के मामूली पत्र तथा तार लिखने-पढ़नेके लिये [illegible] थोड़ीसी लियाकत कर लेनेके पश्चात् स्कूल छोड देते है। [illegible] जन-समाज प्रायः व्यापारियोंकी ही श्रेणीमें है। यदि शाहजीको [illegible] जरा भी ध्यान होता तो इस प्रकारसे शिक्षित होनेकी [illegible] न मारते। मैने तो सद्भावसे "जागृति" के लिये लिखा है— [illegible] 'आक्षेप" की गुजाइश कहाँ!

इसी कारण येन-केन उपायसे उसमें पुनर्नियुक्तिकी पूर्ण चेष्टामें लगे हुए हैं [वाह, कैसी अच्छी युक्ति है! क्या शाहजीके मतानुसार मुझे भी केवल "पगार" (वेतन) हीसे मतलब है? यदि ऐसा होता तो शाहजीकी भाँति "जी हुजूरी" का जप करना चाहिए था। कदाचित् श्रीयुत दास, नेहरू आदि नेतागणोंकी, शाहजीके मतानुसार, पुनर्नियुक्ति-ही-की पूर्ण चेष्टा है]। हाँ! विरोध तो किसी अन्यहीसे है और हानि पहुँचानेका अभिप्राय भी उसीको है, इसी कारण आपकी ये समस्त चेष्टायें हैं। इनके फलीभूत हो जानेपर आपकी पुनर्नियुक्ति पूर्ण रूपसे सम्भव है। सम्भव है, नौकरीकी पूर्ण निराशा प्रतीत होनेपर पाठशालाके लिए भी ऐसा प्रयत्न हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं [कदाचित् शाहजीको यह ध्यान आ गया होगा कि जिस तरहसे उन्होंने स्वयं, पं० मेघराजजी गोस्वामीके विषयमें उनके पृथक् होनेके पश्चात्, छात्रोंसे, उस कार्रवाईकी अनुपस्थितिमें नौकरीकी निराशा जान, उसको लिखा लिया था। सत्य है "साँपके काटे हुएको नीम कभी कड़वा प्रतीत नहीं होता"]।

जैन-जाति अबतक सोती है या जागती है?

बाबू रामलौटनको ज्ञात होगा कि यह जैन-पाठशाला आरम्भमें केवल क़रीब ५१ रु० मासिक चन्देकी सहायतासे चलने लगी थी और समय पाकर मासिक चन्देकी आय जब बढ़ने लगी, प्रबन्ध कारिणी कमेटी भी नियत हुई और अब स्थायी फ़ण्ड भी इकट्ठा हो गया है। क्या यह विद्यो-

तिकी जागृति नहीं है ? [धन्य है, धनवान होनेको विद्योन्नतिकी
जागृति यदि कहा जाय तो राजलदेसर, छापर, नामासर तथा
दासर* आदिमे जहाँ धनवान कम नही है कदाचित् खूब ही
जागृति होगी। यह कहावत भी बिल्कुल सत्य है "भूखेको
हर जगह दाल ही भात सूझता है।"] यहाँकी ही जैन-जनताने
विशेषतः उदासर, कलकत्ता और ओसियाँ आदि स्थानोमे पाठ-
शालायें खोल रक्खी हैं। भैरूदानजी सेठियाकी तरफ़से एक
और भी यहाँपर जैन-संस्था है, पर बाबूजीकी सूक्ष्मदृष्टिमे ये सब
जागृतिके चिह्न नही, वास्तविक जागृति तो उन्हींको ही नौकरी
मिलनेपर ही स्पष्टतया प्रतीत होगी [कदाचित् इसीलिये शाहजीने
अपनी हेडमास्टरीसे पदच्युत होनेको ठीक ही समझा]।

मैंने बाबूजीके प्रथम नोटिसका उत्तर देनेमे पाठशालाके
मौजूदा पत्रोको प्रमाण व साक्षी बनाया
था, [बेशक] पर मुझे विश्वास नहीं होता कि
असत्यवादी ? किस प्रकारका उत्तर देनेमे मैंने सत्यकी अव-
हेलनाकी ? [किसीकी नहीं—क्योंकि पालिसी-
का ज़माना है न !] अनुमान होता है कि पाठ-
शाला सम्बन्धी सब कागज़ोकी "डुप्लीकेट कॉपीज़" बाबूजीके
पास होगी, जिनसे आप सत्यका निर्णय करते होंगे अथवा
आपको भी [मेरी (शाहजीकी) तरह "आत्म प्रदर्शित पथ" का
[illegible]] कोई योगकी नवीन सिद्धि प्राप्त हो गई होगी।

* [illegible]

पाठशालासे सम्बन्ध होनेके कारण मेरी संस्थापर किये हुए निर्मूल [अर्थात् अप्रसन्न करनेवाले] आक्षेपोंका उत्तर [चाटुकारिताका पालन करते हुए] देना मेरा परम कर्त्तव्य ही था और मैंने अपना कर्त्तव्य-पालन मौजूदा काग़ज़ों [अर्थात् कोचर महाशयके आदेशानुसार अथवा किसी मन्थराके मायिक-जालके उपदेशानुसार] के आधारपर किया। चापलूसीको इसमें कहाँ अवकाश था? यदि पाठशालाकी स्थिति आपके लेखानुसार आपकी नियुक्तिसे बहुत काल पूर्वहीसे ऐसी थी तो प्रथम तो ऐसी संस्थामें सेवा करनेकी आपकी अभिलाषा ही व्यर्थ थी और जैसे-तैसे सेवा करना स्वीकार करनेपर कर्त्तव्य-पालनकी हत्यारूप आपकी तीन वर्षतक चुपचापी अवश्य अपनी आजीविकाके हेतु ही रही [कदाचित् चापलूसीके चश्मेंने मेरी उपर्युक्त रिपोर्ट परिशिष्ट नं० ३ की देखने न दीं] और अब नौकरीसे अलग हो जानेपर दिखावटी कर्त्तव्यपालन [अर्थात् कुर्सीपर बैठे हुए क्लासमे सुरती फाँकना, गपशप हाँकना, मूँछें मरोड़ना, फ़िलॉसोफ़ी छाँटना, वेदान्त बघारना, पढ़ाईके समय क्लाससे बाहर निकल कुटिल नीतिकी रचना करना तथा निद्रा आदिसे कक्षाके घण्टेको पूरा करने] मे परिणत हुई है।

चापलूस ?

'न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' पर आरूढ़ रहकर गुप्त रीतिसे विद्यार्थियोंको शिक्षा देने आदि असम्बद्ध शब्दोंसे लेखकने अपनी

विद्यार्थियोंको शिक्षा देना।

हिन्दी लेखनकी योग्यताका सम्यक् परिचय दिया है और साथ ही वह कहावत भी चरितार्थ कर दी है कि "उलटा चोर कोतवालको दण्डै" यदि वाबूजी सत्यपर पूर्ण रूपसे आरूढ़ थे तो अपने सेवाकालमें सत्यका पक्ष क्यो छोड़ा? [कोचर-शाह तथा "पगार" के भयके कारण जिसका फलस्वरूप मेरा वर्तमान आन्दोलन है।] दो-चार पत्र तो संस्थाके अधिकारियों-को उसकी उन्नतिके कारण सूचनार्थ दिये होते [सत्य है, "आरतके चित रहे न चेतू। पुनि पुनि कहे आपनो हेतू" — मन्थ-रोपदेशने बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया अन्यथा ऐसे सफ़ेद झूठका दुस्साहस कदापि न होता]। शायद अधिकारियोसे अप्रिय हो जानेका ही भय रहा हो [शायद क्यो? अवश्यमेव, जैसा कि मैंने अभी ऊपर तीसरे कोष्ठकके भीतर स्वीकार किया है]। क्या आपने अपने कर्त्तव्यपालनमें नियम नं० ६७ * की अवहेलना किसी स्वार्थवश नही की? [हाँ, की है—देखिये परिशिष्ट नं० ३]

(क) बा०रामलौटनका यह कथन कि श्रीडूंगर कालेज तथा सेठ मोहता मूलचन्द विद्यालयकी छात्र संख्यामे दिनोदिन वृद्धि होती हो और जैन पाठशालामे न्यूनता हो, एक विलक्षण ही वात है। आपकी समझमे प्लेग जैसी संक्रामक बीमारी फैलनेपर पाठ-शाला जैसे स्थान उससे सुरक्षित रहा करते हैं और इस हेतु उनमें छात्र संख्या न्यून नहीं होती प्रत्युत बढ़ती ही रहती है

* नियम नं० ६७ को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये।

पाठशालासे सम्बन्ध होनेके कारण मेरी संस्थापर किये हुए निर्मूल [अर्थात् अप्रसन्न करनेवाले] आक्षेपोंका उत्तर [चाटुकारिताका पालन करते हुए] देना मेरा परम कर्त्तव्य ही था और मैंने अपना कर्त्तव्य-पालन मौजूदा काग़ज़ों [अर्थात् कोचर महाशय-के आदेशानुसार अथवा किसी मन्थराके मायिक-जालके उपदेशानुसार] के आधारपर किया। चापलूसीको इसमें कहाँ अवकाश था ? यदि पाठशालाकी स्थिति आपके लेखानुसार आपकी

चापलूस ?

नियुक्तिसे वहुत काल पूर्वहीसे ऐसी थी तो प्रथम तो ऐसी संस्थामें सेवा करनेकी आपकी अभिलाषा ही व्यर्थ थी और जैसे-तैसे सेवा करना स्वीकार करनेपर कर्त्तव्य-पालनकी हत्यारूप आपकी तीन वर्षतक चुपचापी अवश्य अपनी आजीविकाके हेतु ही रही [कदाचित् चापलूसीके चश्मेंने मेरी उपर्युक्त रिपोर्टें परिशिष्ट नं० ३ की देखने न दीं] और अव नौकरीसे अलग हो जानेपर दिखावटी कर्त्तव्यपालन [अर्थात् कुर्सीपर बैठे हुए क्लासमें सुरती फाँकना, गपशप हाँकना, मूँछें मरोड़ना, फ़िलॉसोफ़ी छाँटना, वेदान्त बघारना, पढ़ाईके समय क्लाससे वाहर निकल कुटिल नीतिकी रचना करना तथा निद्रा आदिसे कक्षाके घण्टेको पूरा करने] में परिणत हुई है।

'न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' पर आरूढ़ रहकर गुप्त रीतिसे विद्यार्थियोंको शिक्षा देने आदि असम्बद्ध शब्दोंसे लेखकने अपनी

विद्यार्थियोंको शिक्षा देना।

हिन्दी लेखनकी योग्यताका सम्यक् परिचय दिया है और साथ ही वह कहावत भी चरितार्थ कर दी है कि "उलटा चोर कोतवालको दण्डै" यदि बाबूजी सत्यपर पूर्ण रूपसे आरूढ़ थे तो अपने सेवाकालमे सत्यका पक्ष क्यों छोड़ा ? [कोचर-शाह तथा "पगार" के भयके कारण जिसका फलस्वरूप मेरा वर्तमान आन्दोलन है।] दो-चार पत्र तो संस्थाके अधिकारियों-को उसकी उन्नतिके कारण सूचनार्थ दिये होते [सत्य है, "आरतके चित रहै न चेतू। पुनि पुनि कहै आपनो हेतू" – मन्थ-रोपदेशने बुद्धिको भ्रष्ट कर दिया अन्यथा ऐसे सफ़ेद झूठका दुस्साहस कदापि न होता]। शायद अधिकारियोंसे अप्रिय हो जानेका ही भय रहा हो [शायद क्यों ? अवश्यमेव, जैसा कि मैंने अभी ऊपर तीसरे कोष्ठकके भीतर स्वीकार किया है]। क्या आपने अपने कर्त्तव्यपालनमे नियम नं० ६७ * की अवहेलना किसी स्वार्थवश नहीं की ? [हाँ, की है—देखिये परिशिष्ट नं० ३]

(क) बा०रामलौटनका यह कथन कि श्रीडूँगर कालेज तथा श्री मोहता मूलचन्द विद्यालयकी छात्र-संख्यामें दिनोदिन वृद्धि प्रतीत हो और जैन पाठशालामें न्यूनता हो, एक विलक्षण ही बात है। आपकी समझमें प्लेग जैसी संक्रामक बीमारी फैलनेपर पाठ-शाला जैसे स्थान उससे सुरक्षित रहा करते हैं और इस हेतु उनमें छात्र संख्या न्यून नहीं होती प्रत्युत बढ़ती ही रहती है

* इस नियम नं० ६७ को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये।

अतएव जैन-पाठशालामें भी बढ़ती उचित ही थी, पर जैन पाठशाला एक जैन संस्था है—इसमें विशेष जैन-वालकोंकी ही संख्या थी और प्लेगके कारण जब उनके संरक्षक दूर विदेश परिवारसहित एक वार चले गये तो प्लेग दूर होते ही शीघ्र उनका वापिस लौट आना अनुमेय नहीं हो सकता [कदाचित् श्री मोहता मूलचन्द तथा अन्य विद्यालयोंमें भी सत्यवादी शाहजी को स्टेट कर्मचारियोंके ही लड़के दीखते होंगे जो प्लेगमें बाहर न जा सके]। अतएव यहाँ संख्यामें न्यूनता रही। दूसरा दोनों संस्थाओंमें स्टेट-कर्मचारियोंके व अन्य जातिके वालकोंकी विशेष संख्या होनेके कारण और जिनके संरक्षकोंका बहुत कालके लिये विशेष दूर जाना सम्भव नहीं हो सकता [क्योंकि संक्रामक बीमारीका असर तथा भय कदाचित् शाहजीके विचारानुसार जैनीहीको विशेष होता हो अन्य जातियों तथा स्टेट कर्मचारियोंको नहीं]—संस्थाओंके खुलनेपर छात्रोंकी संख्यामें परिवर्त्तन न हुआ हो।

(ख) कमेटीके अधिवेशन व स्कूल-सम्बन्धी पत्रोंमें मंत्री परिवर्त्तन [जो रामलोटन प्रसादकी नियुक्तिके कई साल पहले ही हो चुका था उसके] स्पष्ट होते हुए भी उसे [मंत्रीके लगातार बीकानेर रहनेको] आश्चर्यजनक और निर्मूल बतानेसे क्या लेखक [शाहजी] होंकी सर्वज्ञता आश्चर्यजनक और निर्मूल नहीं सिद्ध होती ? क्या मंत्रीजीके [सूक्ष्म शरीर] कलकत्ते चले जानेपर भी उसका सूक्ष्म [स्थूल] शरीर उस पदको यहाँ

सुशोभित करना रहा होगा ? यदि मन्त्री-परिवर्त्तन यथार्थमे हुआ ही नहीं तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि बा० रामलौटनकी वेतन वृद्धि भी शिवबक्सजी द्वारा हुई थी और उनका कार्य भी मंत्रीजीको सन्तोपदायक रहा था [निस्सन्देह ऐसा ही था—मंत्रीजीके कलकत्ते जाने और रामलौटन प्रसादकी वेतन-वृद्धि कोचर महाशय (बा० शिवबख़्शजी मंत्री) द्वारा न होनेका स्वप्न आना क्या कागज़ोंका आधार है या "जी हुज़ूरी" की पुकार है ?] अतः मंत्रीके इस न्यायानुकूल [अर्थात् बा० बहादुरलालजी बी० ए० की वेतन वृद्धि करते हुए भी उनको स्थायीसे अस्थायी बताना और उनके वेतनको ज़ब्त करनेकी धमकी देना और कोर्टमे स्वीकार कर अदा करना, पं० भगवतीदेवीको अबला होनेके कारण एक मासके बजाय १५ दिनका वेतन देना, स्वर्गीय श्रीयुत पं० जीतमलजी व्यासको विना किसी नोटिस आदिके पूर्ण निर्दोष होते हुए भी पाठशालासे एकदम पृथक् कर देना, छात्रोंका केवल इस अपराधमें, कि उन्होंने श्रीडूंगर कालेजमे पढ़नेका विचारमात्र किया था, सदैवके लिये बहिष्कार कर देना आदि आदिके] सद्व्यवहारको लेखोंमें इस प्रकार कलंकित करना ही क्या कृतज्ञता अथवा सभ्यताका उत्तम परिचय देना नहीं है ? यह अनुमान किया जा सकता है कि बाबूजी [नहीं, वरन् शाहजी] ने अपनी घृणित कुचेष्टाओंद्वारा प्रभाव डालकर [पाठशालामें लेट आने, क्लासके बाहर खड़े होकर गोष्ठी करके घण्टा विता देने आदि और परीक्षाफलके शून्य अथवा शून्यसे

भी कम होते हुए भी] अपनी अनुचित वेतन-वृद्धिका प्रयास किया हो। शिवबक्सजीके पुनः [अर्थात् शाहजीके पाठशालामें जन्म लेनेसे अन्यथा पुनः के कोई अर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि कोचर महाशय सन् १९२० ई० के पश्चात् कभी अपनी नौकरी छोड़कर नहीं गये। कलकत्ते जानेकी बात उस समयकी सुनी जाती है कि जब कोचर महाशय महकमा ख़ाससे पृथक् हो नौकरीकी खोजमें भटक रहे थे और कदाचित् इसी चेष्टामें कलकत्ता गये थे] मंत्रीपद स्वीकार करनेपर जब उक्त कुचेष्टाओंका प्रभाव कुछ शिथिल होने लगा तो आपकी द्वेषाग्नि मन्त्रीजीके [प्रसन्नतार्थ रामलौटन प्रसादके] प्रति धधक उठी और यही कारण है कि आपने एक निःस्वार्थ कर्त्तव्य-पालन करनेवाले [अध्यापकको स्वेच्छाचारी तथा स्वच्छन्द] अवैतनिक मन्त्रीके [द्वारा] विसर्जनपत्र [अर्थात् नोटिस] देनेको कमेटीपर कुप्रभाव डालनेका निमित्त बतलाया है।

(ग) वार्षिक परीक्षापर सप्तम कक्षाके कतिपय अनुत्तीर्ण छात्रोंका जो प्रोमोशन रोका गया वह बा० रामलौटनकी सम्मतिमें स्वाभाविक व उचित ही है; किन्तु कई अनुत्तीर्ण छात्रोंको डिग्रेड करना उन मुख्याध्यापको व सहायक अध्यापकोंकी योग्यता व विश्वासपात्रता का नमूना है [क्योंकि उन्हीं अयोग्य छात्रोंमेंसे मुकुन्दलाल कोचर नामक विद्यार्थी आज दिन कक्षा ६ में मौजूद है और यदि इसके अन्य अयोग्य साथियोंका नादिरशाही न्यायानुकूल दयापूर्वक *डिग्रेडेशन* तथा

बहिष्कार न किया गया होता तो वे भी आज इस अमूल्य विद्या-दानके लिये जैन-समाजको अनेकानेक धन्यवाद देते हुए शान्ति-पूर्वक कक्षा ६ में विद्याध्ययन करते होते] जिन्हो [अर्थात् शाहजी तथा उनके स्वेच्छानुकूल सहकारियों] ने अयोग्य छात्रोंको केवल अपनी कार्यकुशलता दिखानेके अर्थ एवं अपनी वेतनवृद्धिके अर्थ प्रोमोशन देनेकी निन्दनीय चेष्टा की थी। जैन-धर्मानुकूल आज्ञाका इस विषयमे कुछ सम्पर्क नही है [क्योंकि छात्रोंको अकारण ही डिग्रेड अथवा बहिष्कृत कर देना दया तथा न्यायपर ही निर्भर है]

न्यायानुकूल छात्रोका स्कूल छोड़कर जाना क्या बिना उत्तेजनाके सम्भव था ? मेरे रिमार्ककी नक़ल देनेमें भी बाबू साहिबने अपनी चातुरीमें कमी न छोड़ी। छोड़ें क्यों ? वह तो मुझे अयोग्य, सत्यभ्रष्ट और चापलूस प्रमाणित करनेपर डटे हुए हैं। जनताके सूचनार्थ रजिस्टरमे दिये हुए रिमार्ककी नकल मैं यहा देता हूं :—

The Names of these students ... . that they are going to join the College *by the persuation of some teachers*. . .. .. [यद्यपि ये शब्द—"by the persuation of some teachers" अर्थात कुछ अध्यापकोंके बहकानेसे, नोटिस निकलते समय नोटिसमें न थे—वास्तवमे यह शाहजीकी चातुरी है, तथापि यदि मान भी लिया जाय तो क्या "खेत खावें बन्दर और टाँगे जावें कुत्ते" की

कहावतके अनुसार अध्यापकोंको, जिन्होंने शाहजीके कथनानुसार छात्रोंको पाठशाला छोडनेके लिये वहकाया था, दण्डित न कर छात्रोंका वहिष्कार करना कर्त्तव्यपरायणता, योग्यता, दयालुता और न्यायपरायणताका नमूना है या जी हुजूरी, अयोग्यता तथा सत्यभ्रष्टताका प्रमाण ?]

(घ) अध्यापकोंकी भांति योग्य अध्यापिकाओंका न मिलना जो लिखा गया है, वह सत्य ही था और अब भी सत्य ही है। केवल विद्वान् व विदुषी होना ही योग्यता नहीं कही जा सकती [वरन् चालबाज़ी, चापलूसी, चाटुकारी तथा मन्थराकी-सी चतुरताका होना भी परमावश्यक है] परन्तु अपने नियुक्त पदके कार्यको भलीभांति सम्पादन करते हुए [कोचरशाहकी भांति] आदर्श वनकर छात्रो व अपने अधीनस्थोंको [गपशप हाँककर व्यर्थ समय नष्ट करने, सत्यासत्यद्वारा अर्थ-सिद्धि करने, कर्त्तव्यहीन होने और अपने अधिकारोंका दुर्व्यवहार करनेवाला आदि] पथप्रदर्शक वनना ही, योग्यताकी निशानी है। पढ़ाईके समयमे घण्टों सोते रहना क्या ही उत्तम पथप्रदर्शन व आदर्श है ? अतः "वृक्ष पहिले वा वीज पहिले"की भाति श्रीमती भगवती देवीकी योग्यता तथा प्रतिज्ञा पूर्ण न करनेके कारण उसका मन्त्रीसे झगड़नेका विषय कुछ संशयात्मक है, जिसे जनता स्वयं विचार कर सकती है [यदि जनता भी शाहजीकी भाँति चापलूसीका चश्मा लगा ले]।

(ङ) जो प्राइवेट छात्र मेट्रीक्युलेशन परीक्षामें इस पाठ-

शालासे भेजा गया था। यदि वह भाग्यवश जीवित होता [और पाठशालाके प्रवन्धमें भी भाग लेता] तो मैं अनुमान करता हूँ कि वावूजी [अर्थात् शाहजी] का उसके वावत ऐसा लिखनेका साहस कदापि न होता [और न यह स्वच्छन्दता तथा धींगा-धींगी ही दृष्टिगोचर होती]। मैंने ख़ुदने न तो उस छात्र-को देखा है और न मुझे उसकी योग्यताका अनुमान है। मैंने तो वावूजीके इस कथनपर कि इस संस्थामे अष्टम कक्षा भी नहीं खुली, पाठशालाके पत्रोंके आधारपर इतना संकेतमात्र किया था कि इस संस्थासे तो मेट्रीक्युलेशन परीक्षामे एक छात्र-तक भी भेजा गया है। मेरा ख़ुदका इसमे क्या गौरव* था? गौरव था तो वावूजीके लेखके १ (ख) में गिनाये हुए योग्य और विश्वासपात्र मुख्याध्यापको व सहायक अध्यापकोंमेंसे ही किन्हींका हो सकता है [नहीं, वरन् कोचर महाशयका कि

* यदि सचमुच शाहजीका गौरव इसमें नहीं था तो क्या सत्यवादी कोचर महाशयने अपनी १६ वर्षीय रिपोर्टके पृष्ठ १६ में यह योंही आँखें मूदकर लिख मारा—"बावू मयाभाई टी० शाह वी० ए० जैसे योग्य मुख्याध्यापक और प० रामेश्वरदयालजीकी नियुक्तिसे, जो इस सस्थाको पहिले तीसरी कक्षासे नवम कक्षातक चार ही वर्षके अन्दर पहुँचाकर उन्नत कर चुके थे, पूर्ण आशा की जाती है कि प्रवन्धकारिणीका उद्देश्य अधुना अवश्य ही फलीभूत होगा?" वाह! कैसी पॉलिसीकी वहार है!! क्या मकड़ीके जालसे यह समस्या कम जटिल व पेचदार है?

किन्तु निश्चय जानिये—

"यद्यपि झूठी बात प्रिय, पहले मीठी होय।
कहर करति-है ज़हर सों, पाछे दुख लहि सोय॥"

जिनकी स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छन्दताने योग्य अध्यापकोंको जल्दी जल्दी पाठशालासे निकलनेके लिये वाध्य किया] जिनकी योग्यता और विश्वासपात्रताने आपके कथनानुसार एक छात्रको केवल परीक्षामें सम्मिलित कराकर ही पाठशालाकी उन्नतिका ज्ञान लोगोंपर सूचित कर दिया है। क्या आपके गिनाये हुए सज्जनोंको एक जगह योग्य और विश्वासपात्र वताकर इस जगह गुप्तरूपमें आप [अर्थात् शाहजी] ने उनका मखौल नहीं किया है? क्या यही आपकी सत्यताका सच्चा रूप है? सम्भवतः आप इससे यह शिक्षा लोगोंको दे रहे हों कि "न्रूयात् सत्यमप्रियम्"। अवश्य आपकी नीतियाँ तो चाणक्यकी नीतियोंको मात करती हैं। यदि लोकोपकारार्थ उनका एक पुस्तकमें संग्रह कर दिया जावे तो क्या ही उत्तम हो! क्योंकि चाणक्यकी नीतियाँ अव पुरानी भी हो गई हैं।

२—मेरे आक्षेपोका उत्तर देते हुए आपने अपनी सत्यताका स्वरूप खर्चनेमें जो निपुणता दिखाई है उसपर मुझे हँसी आती है [क्यों न आवे! हिरण्यकशिपुको प्रहलादकी, रावणको विभीषणकी, कंसको श्रीकृष्ण भगवान्‌की, वालिको सुग्रीवकी और मुग़ल वादशाहको महाराज पृथ्वीराज राठौर वीकानेरीकी वातोंपर हँसी आती थी और आपको भी क्यों न आवे जव कि इतनी चापलूसीपर भी असत्य नोटिस निकाल निकालकर जनताको भ्रममें डाला और फिर भी कोचर महाशयको पूर्ण प्रसन्न न कर सके और पदच्युत होना ही पड़ा]।

(अ) नियुक्त अध्यापकोंकी उचित समयतक आनेकी प्रतीक्षा के बाद एवं स्वार्थवश दूसरा कोई स्थान स्वीकार कर आनेसे उनके इनकार हो जानेपर पाठशालाकी आवश्यकताके हेतु किसी [शाहजी जैसे] योग्य अध्यापकको शीघ्र ही कामपर बुलानेकी चेष्टामें उसके साथ कोई ऐसी लिखित प्रतिज्ञा*कर लेना नियत नियमोंकी आकांक्षा नहीं रखता है [क्योंकि स्वेच्छा-चारिताके अधीन नियम रहा करते हैं] और पं० रामेश्वरदयाल-

* श्रीयुत प० रामेश्वरदयालजीको तो प्रथम नियुक्तिके समयसे ही कोचर महाशयकी दयालुता, नम्रता तथा न्याय-प्रियता आदि गुण मालूम थे। फिर इस दूसरी बारकी नियुक्तिके समय "लिखित प्रतिज्ञा" करानेकी क्या आवश्यकता थी ? और श्रीयुक्त प० चिम्मनलालजी गोस्वामी एम० ए० को, जो यहाँके निवासी हैं और कोचर महाशयके आदर्श व्यवहारोंसे सम्भवत पूर्ण परिचित हैं, प्रधानाध्यापकका पद स्वीकार करनेके लिये क्यों शर्तकी आवश्यकता पड़ी ? सच है, "A burnt child dreads fire' अर्थात्—

"पिसुन छल्यो नर सुजन सों, करत बिसास न चूक।
जैसे दाध्यो दूधको, पीवत छाछहिं फूँक ॥"

अत. स्वेच्छाचारियोंका विश्वास न कर उनसे "प्रतिज्ञा-पत्र" लिखाना ही सर्वोत्तम है। यह "शर्त" हीका प्रभाव है कि गोस्वामीजीकी वेतन-वृद्धि "प्रतिज्ञानुसार" उनका वर्ष पूर्ण होते ही, इसी दिसम्बर मासमें हो गयी और मिस्टर मीतलजी, लगभग १॥ वर्ष होनेपर तथा सन्तोषप्रद कार्यके होते हुए भी, मुँह ताकते ही रह गये। कहिये, न्यायकी कैसी हरी बहार है ! देखा ? यही रङ्ग हैं जनाब !! जरा देखें गोस्वामीजी कबतक शर्त पूरा करते हैं।

जोंके साथ भी ऐसी ही प्रतिज्ञा हो गई थी [हालाँकि प्रतिज्ञा करनेका कोई अधिकार न था] और इस प्रतिज्ञापालनमें किसी नियमका उल्लंघन या नियम-परिवर्तन कदापि सम्भव नहीं है। हाँ, बिना पूर्व प्रतिज्ञाके [चाहे अधिकारोंके अन्तर्गत ही हो] किसीके साथ पक्षपात व अनुग्रह दिखानेहीसे सभापतिपर नियमोल्लंघनका दोषारोपण हो सकता है। प्रतिज्ञानुसार दी हुई छुट्टीका आगामी हक़ रियायतीमेंसे बाद दिये जानेहीसे [गो नियमावलीमें ऐसा कोई नियम या सभापतिजीको अधिकार नहीं है] स्पष्ट है कि उसके साथ किसी तरहका पक्षपात व अनुग्रह नहीं हुआ [वरन् स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छन्दताका उदाहरण नियम विरुद्ध स्थापित किया गया]।

श्रीमती भगवती देवीके साथ पानी आदिका इक़रार करनेकी बाबत कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता है [क्योंकि श्रीमती भगवती देवीकी रिपोर्टें लिखित प्रमाण्य नहीं कही जा सकतीं]। सम्भव है कि यह प्रतिज्ञा मौखिक हुई हो जो प्रथम तो [पाश्चात्य नियमों तथा ग्रेजुएटोंके लिये] प्रामाणिक नहीं, दूसरे प्रतिज्ञाएं द्विपक्षी हुआ करती हैं जिनका पालन भी दोनों ही पक्षोंपर अव-लम्बित है [क्या श्रीमती भगवतीदेवीकी ओरसे भी कोई प्रतिज्ञा थी ? यदि थी तो पेश क्यों नहीं की गयी जिसका पालन उन्होंने नहीं किया ? और जब लिखित प्रमाण मिलता ही नहीं तो आप (शाहजी) को यह कैसे विदित हो गया कि प्रतिज्ञाएं द्विपक्षी थीं ? क्या एकपक्षी होना असम्भव है ? यदि हाँ, तो पं०रामेश्वर-

दयालजीने, उस प्रतिज्ञाके बदलेमें जो छुट्टीके लिये उनसे श्रीमान् सभापतिजीने की थी, क्या प्रतिज्ञा की थी और उसका क्या पालन हुआ ?] ।

किसी प्रकारका हक न होनेपर आवश्यक कार्यके समय किसी कर्मचारीको अवैतनिक छुट्टी देने [जब कि नियम नं० १११ *मे यह लिखा है कि *किसी प्रकारकी* छुट्टी किसीको न मिलेगी और अवैतनिक छुट्टी किसी प्रकारकी छुट्टीमें शामिल नहीं है तो पं० साँगीदासजी व्यासको जबकि उनका हक़ नियम नं० १०५† के अनुसार तीन सप्ताहसे अधिक मौजूद था रियायती छुट्टी देने] में क्या दोषापत्ति [नहीं] है ? और नियत नियमोंमे क्या व्यतिक्रम [नहीं] होता है ? [क्यों हो जबकि स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छन्दताका साम्राज्य हो !] ऐसी छुट्टीके लिये किसी नियम [के पालन करने] की आवश्यकता नहीं है । पं० रामेश्वर-दयालजी और पं०साँगीदासजी व्यासका स्वीकृत छुट्टीसे एक दिन ज्यादा लगाना समान नहीं कहा जा सकता जबकि पं० रामेश्वर-दयालजीने अपनी रवानगीकी ता० १६ की गाड़ीका एंजिन फेल हो जाने तथा गाड़ीके फलौदीहीमें रुक जानेके *प्रमाणस्वरूप*‡

---

* इस नियम न० १११ को परिशिष्ट न० २१ में देखिये ।

† इस नियम नं० १०५ को परिशिष्ट न० ११ में देखिये ।

‡ प्रमाणस्वरूप "टिकट" पेश करना—

क्या रेलवे "टिकट" का पेश करना सम्भव है ? क्या रेलवेमें ऐसा कोई नियम है कि "टिकट" निर्धारित स्थानपर न देकर यात्री अपने साथ

जीके साथ भी ऐसी ही प्रतिज्ञा हो गई थी [हालाँकि प्रतिज्ञा करनेका कोई अधिकार न था] और इस प्रतिज्ञापालनमें किसी नियमका उल्लंघन वा नियम-परिवर्तन कदापि सम्भव नहीं है। हाँ, विना पूर्व प्रतिज्ञाके [चाहे अधिकारोंके अन्तर्गत ही हो] किसीके साथ पक्षपात व अनुग्रह दिखानेहीसे सभापतिपर नियमोल्लंघनका दोषारोपण हो सकता है। प्रतिज्ञानुसार दी हुई छुट्टीका आगामी हक़ रियायतीमेंसे वाद दिये जानेहीसे [गो नियमावलीमें ऐसा कोई नियम या सभापतिजीको अधिकार नहीं है] स्पष्ट है कि उसके साथ किसी तरहका पक्षपात व अनुग्रह नहीं हुआ [वरन् स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छन्दताका उदाहरण नियम-विरुद्ध स्थापित किया गया]।

श्रीमती भगवती देवीके साथ पानी आदिका इक़रार करनेकी वावत कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता है [क्योंकि श्रीमती भगवती देवीकी रिपोर्टें लिखित प्रमाण नहीं कही जा सकतीं]। सम्भव है कि यह प्रतिज्ञा मौखिक हुई हो जो प्रथम तो [पाश्चात्य नियमों तथा ग्रेजुएटोंके लिये] प्रामाणिक नहीं, दूसरे प्रतिज्ञाएं द्विपक्षी हुआ करती हैं जिनका पालन भी दोनों ही पक्षोंपर अव-लम्बित है [क्या श्रीमती भगवतीदेवीकी ओरसे भी कोई प्रतिज्ञा थी ? यदि थी तो पेश क्यों नहीं की गयी जिसका पालन उन्होंने नहीं किया ? और जव लिखित प्रमाण मिलता ही नहीं तो आप (शाहजी) को यह कैसे विदित हो गया कि प्रतिज्ञाएं द्विपक्षी थीं ? क्या एकपक्षी होना असम्भव है ? यदि हाँ, तो पं० रामेश्वर

दयालजीने, उस प्रतिज्ञाके बदलेमें जो छुट्टीके लिये उनसे श्रीमान् सभापतिजीने की थी, क्या प्रतिज्ञा की थी और उसका क्या पालन हुआ ?] ।

किसी प्रकारका हक़ न होनेपर आवश्यक कार्यके समय किसी कर्मचारीको अवैतनिक छुट्टी देने [जब कि नियम नं० १११ *मे यह लिखा है कि *किसी प्रकारकी* छुट्टी किसीको न मिलेगी और अवैतनिक छुट्टी किसी प्रकारकी छुट्टीमें शामिल नहीं है तो पं० साँगीदासजी व्यासको जबकि उनका हक़ नियम नं० १०५† के अनुसार तीन सप्ताहसे अधिक मौजूद था रियायती छुट्टी देने] में क्या दोषापत्ति [नहीं] है ? और नियत नियमोंमें क्या व्यतिक्रम [नहीं] होता है ? [क्यों हो जबकि स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छन्दताका साम्राज्य हो !] ऐसी छुट्टीके लिये किसी नियम [के पालन करने] की आवश्यकता नहीं है। पं० रामेश्वर-दयालजी और पं०साँगीदासजी व्यासका स्वीकृत छुट्टीसे एक दिन ज्यादा लगाना समान नहीं कहा जा सकता जबकि पं० रामेश्वर-दयालजीने अपनी रवानगीकी ता० १६ की गाड़ीका एंजिन फेल हो जाने तथा गाडीके फलौदीहीमें रुक जानेके *प्रमाणस्वरूप*‡

---

* इस नियम न० १११ को परिशिष्ट न० २१ में देखिये।

† इस नियम नं० १०५ को परिशिष्ट न० ११ में देखिये।

‡ प्रमाणस्वरूप "टिकट" पेश करना—

क्या रेलवे "टिकट" का पेश करना सम्भव है ? क्या रेलवेमें ऐसा कोई नियम है कि "टिकट" निर्धारित स्थानपर न देकर यात्री अपने साथ

टिकट पेश कर दिये थे [जिससे स्पष्ट हो गया कि ता० १६से १८ मई सन् १९२३ ई०तक दोनो समयकी गाड़ियोंमेंसे कोई गाड़ी अथवा डाक बीकानेरमें नहीं आयी—क्या यह माननीय है ? प्रथम नोटिस "आक्षेपोंका प्रतिवाद" में तो यह कहना कि 'गाड़ी चूक जानेकी सूचना तारद्वारा मिली थी' और अब इस नोटिस 'सांचमें लाँछ' में यह बयान करना कि 'गाड़ीका इंजिन फ़ेल हो जाने तथा गाड़ीके फलौदीहीमें रुक जानेके प्रमाणस्वरूप टिकट पेश कर दिये थे।' वाह ! सत्यनिष्ठ महोदय ! "आत्मीय शुद्ध भावों"-का तो गर्व और एक ही बातमें इतनी विभिन्नता !! सत्य है, "झूठके पाँव कहाँ !"] प्रत्युत पं० साँगीदासजीने अपने विलम्ब-का कोई प्रमाण नहीं दिया। बाबू साहिबकी दृष्टि एक देशी ही रहा करती है [तभी तो यह भेदभाव दृष्टिगोचर हुआ]। यदि आप [कोचर-शाह] को कहींका न्यायाधीश [चीफ़ जस्टिस] बननेका सौभाग्य प्राप्त हो जाय तो न्याय और सत्य दोनोंहीका गला तो ख़ूब ही घोटें [और हिरण्याक्षीय सत्ययुग लाकर दिखला दें]।

(ब) प्रथम तो पं० साँगीदासजीके यहाँसे विदा होनेकी परम्परागत परिपाटी [अर्थात् उनकी ता० २१-५-२३की चिट्ठी—

ले जा सके ? यदि नहीं तो प० रामेश्वरदयालजीने रेलवे "टिकट" कैसे पेश किया ? जहाँतक मैं समझता हूँ, रेलवेमें ऐसा कोई नियम नहीं है। फिर कोचर—शाहको इस अनुचित कार्रवाईपर इतना नाज क्यों ? सच है, "अर्थी दोष न पश्यति।"

देखिये परिशिष्ट नं० ६] हीसे निश्चय हो गया था कि वह किसी पदपर नियुक्त होकर बम्बई जा रहे हैं। दूसरे कितने स्कूलके उनके मित्र अध्यापकोने भी इस भेदको खोल दिया था और वावू साहिब स्वयं भी इस बातको वखूबी जानते थे कि व्यासजी नौकर होकर ही जा रहे हैं [यह कैसे जाना, जनाव? सम्भव है कि आपने यक्षिणीकी सिद्धि प्राप्त कर ली हो अथवा "अपने आत्मीय शुद्ध भावों" द्वारा जाना हो !]। पाँच व छः दिवस वाद यहाँ पाठ-शालामे एक अध्यापकके पास व्यासजीका अपनी नौकरीकी बाबत एक पत्र भी आ गया था जिससे और भी निश्चय हो गया। वाह ! सत्यनिष्ठ महोदय ! सत्यासत्यके निर्णयपर तो कटिबद्ध और प्रत्यक्ष अनुमान दोनों प्रमाणोकी इतनी गर्हणा !

३ (च) वा० पन्नालालजीसे डॉकृरका सर्टिफ़िकेट मांगनेकी कोई विशेषता नहीं थी। शरीरकी साधारण अस्वस्थ अवस्था-में कोई भी कर्मचारी एक दो दिनकी इत्तफ़ाक़िया छुट्टी लेकर ही अपना काम चला सकता है जव उसने किसी डॉकृर व वैद्यका नियमित इलाज नहीं कराया हो। परन्तु वा० पन्नालालजीने तो इञ्जेक्शन् करवाया था अतः डाकृरके सर्टिफ़िकेटकी आवश्यकता ही थी। ऐसी अवस्थामें हर एक हीसे सर्टिफ़िकेट लिया गया है [किन्तु उनके नाम नहीं वताये जा सकते; क्योंकि काग़ज़ोंका कोई स्थायी आधार पाठशालामे नहीं है]।

(ट) मेरी योग्यता तो जैसी थी वैसी अव भी वनी हुई [कदाचित् यही कारण पदच्युत होनेका है] और कुछ

पश्चात् सम्भवतः सदैव ही ऐसी बनी रहे [जैसी कि सन् १६२२ और २३ के वास्तविक परीक्षा-फलसे विदित होती है देखिये पृष्ठ नं० ६०] परन्तु बाबूजीकी सत्य श्रद्धामें उनके लेखके पद पदपर इतना शीघ्र परिवर्तन और विरोध क्यों ? [आपके जैसे "आत्मीय शुद्ध भावो" के अभावके कारण !] आपका अपने पूर्व लेखमें ऐसा कथन था कि इस संस्थाके छात्र अन्य जगह तो क्या यहाँ बीकानेरहीमें कहीं मान पानेयोग्य नहीं। अधुना इस वाक्यके लिखते समय क्या उनकी समझमे सप्तम कक्षाके छात्रोंकी ऐसी योग्यता हो गई कि किसी संस्थाका [तोता-रटन्त] ग्रेजुएट [जिसकी बुद्धि अफ़्सरोंकी ख़ुशामदमे ही प्रतिक्षण लगी रहती हो] भी उन्हें सन्तुष्ट न कर सका। पर आप [नहीं, वरन् सारे संसारके सभ्य तथा विचारशील पुरुषो] के मतानुकूल एक सर्व-योग्य मेट्रीक्युलेट या उससे कम योग्यता धरानेवाले अध्यापक [जो अनुभव तथा कर्त्तव्यपरायणताको कोचर-शाहकी भाँति गौण नहीं किन्तु मुख्य समझते हो] सन्तुष्ट कर सके ?

(त) किसी अस्थायी कर्मचारीको नियत समयकी अवधि-तक उसकी पृथकताकी तिथिके नोटिस रूपसे पूर्व सूचना दिया जाना आवश्यक नहीं परन्तु सभ्यता विशिष्टताके भावसे [कदा-चित् पहले इसका अभाव था] बा० पन्नालालजी आदिके साथ उनके हितार्थ ऐसा व्यवहार हो जानेमें कोई दोषापत्ति है ? ऐसा करनेमे उच्च पदाधिकारियोंकी सापेक्षता नहीं प्रतीत होती।

(४) बा० बहादुरलालजीके अभियोगके सम्बन्धमे मंत्रीजीको

सफेद झूठ बोलनेवाला प्रमाणित करनेकी चेष्टामे वा० राम-लौटनने जो कुछ लिखा है वह केवल वितण्डामात्र है [क्योंकि कोचर महाशयकी स्वीकृत डिगरी बतानेकी तथा पोल खोलनेकी धृष्टता कर रहा है—देखिये परिशिष्ट नं० ८]। सहेतुक तर्क बिना ऐसा सिद्ध नही हो सकता। इस कथनमें जो हेत्वाभास है वह स्पष्टरूपसे प्रकट है। प्रथम तो यदि रजिस्टरोंमें अस्थायी दिखानेके लिये कुछ फेरफार किया जाना प्रामाणिक माना जाय तो मंत्रीजीके सहेतुक पक्षके समक्ष निपटारे [अर्थात् दावेका कुल रुपया देने] की व्यवस्था जो सर्वसाधारणको विदित है सिद्ध नहीं होती। यदि फेरफार किया जाना अप्रामाणिक व असत्य है तो वा० बहादुरलालके सहेतुक पक्षके समक्ष उसकी उत्पत्ति सिद्ध नही होती [क्योकि तर्क तथा न्यायका अध्ययन नहीं किया]। अतः स्पष्ट हे कि किसी अन्य प्रवल हेतुकी विद्य-मानता ही [अर्थात् फेरफार या अनुनयात्मक परामर्श] के कारण मंत्रीजीका जवावके लिये उद्यत होना सिद्ध होता है और इसी प्रवल हेतुहीके लुप्त होनेसे अभियोग सोपपत्तिक है और लुप्त होना ही दोनों पक्षोके निपटारे [वादीकी वात मुख्य कारण है [देखिये परिशिष्ट नं० ८]।

(प) वा० रामलौटन एक जगह लिखते हैं कि तथा वा० नागवतसिंहके त्यागपत्र स्वयं प्रकट महाशयका न्याय तथा उनकी लभ्यता कि जिससे तङ्ग आकर उन्हें त्यागपत्र देना

की मीमांसा कई प्रकारसे हो सकती है। (१) पं० रमाशङ्कर और बा० भागवतसिंहको जो न्यायशीलता और सभ्यताके आदर्श सज्जन थे और जिन्हें इस पाठशालाके छोड़नेका कभी भी न विचार था और न होता, केवल मंत्रीजीके निरन्तर असद् व्यवहारके ही कारण विवश होकर त्यागपत्र देना पडा और अपनी इच्छा-विरुद्ध फिर वहाँ ही [कदाचित् शाहजीके ध्यानमें महकमा हिसाब और भीनासर, जहाँ पं० रमाशङ्करजी विशारदकी नवीन नियुक्ति हुई, एक ही स्थान है और बा० भागवतसिंहजी विशारद जो भीनासरसे श्री जैनपाठशालामें आये थे और फिर अपने देश चले गये—क्या उनका देश अर्थात् "ग़ाज़ीपुर" और भीनासर, जो यहाँसे लगभग ३ मील है, एक ही स्थान है? शायद आपने यह सत्यनिष्ठ होनेके कारण कह दिया है अथवा ब्राह्ममुहूर्त्तकी प्यारी आनन्ददायिनी निद्राकी स्वप्नावस्थामे यह सूझ पड़ा है!] स्थान पानेका उद्योग करना पड़ा जहाँसे वे पहिले [अपनी अपनी इच्छानुसार त्यागपत्र दे, विना किसी शिकायतके] पृथक् हुए थे [कदाचित् शाहजीने यह भी पाठशालाके काग़ज़ोंके आधारपर ही लिखा होगा जो सर्वथा निर्मूल है]। (२) जब मंत्रीजीका असद्व्यवहार व अन्याय तो पाठशालाके आरम्भकालके बा० मातवरसिंह, बा० चतुर्भुजजी आदि अध्यापकोंके साथहीसे होता आना प्रसिद्ध था तो इन दोनों सज्जनोंका स्टेट सेवा छोड़ने और ऐसे सभ्यता और न्यायकी साधारण कोटिसे रे हुए मंत्रीके पास स्थानके लिये आवेदनपत्र भेजनेमें कोई

गुप्त ही अभिप्राय [अर्थात् कोचर महाशयकी नीतिसे अनभिज्ञ अथवा लम्बे-चौडे नोटिस तथा कोचर महाशयकी ज़ाहिरी बातें सुनकर मोहित हो गये होंगे, क्योंकि तोता अक्सर किंशुक (टेसू या केसूला) के फूलमें भोलेपनके कारण फलकी सम्भावना कर लेता है, कदाचित् ऐसा ही कोई धोखा उक्त महाशयोंको भी हुआ] होगा। (३) बा० रामलौटन उक्त दोनो सज्जनोके समान न्याय और सभ्यता-सम्पन्न नहीं थे, क्योंकि इन्हें तो मंत्रीजीके व्यवहारसे तंग होकर स्थान छोड़नेको बाध्य नहीं होना पड़ा। प्रत्युतः [कोचर महाशयकी स्वच्छन्दताके कारण] इच्छा-विरुद्ध [विभीषणकी भाँति रावणकी सभासे] नोटिसद्वारा निकलना पड़ा [और इसीलिये पाण्डववत् कष्ट सहनेपर भी सत्य-रक्षार्थ आन्दोलन करना पडा]। यदि मंत्रीजीके दिये हुए [स्वच्छन्दतापूर्ण] रिमार्कों-को [जो पृथक् होनेके पहले या पश्चात्का एक भी अबतक दिखला न सके, किन्तु मेरे पृथक् होनेके १॥ मास पश्चात्की एक रिपोर्ट, बा० पन्नालालजीकी लिखित. पेश की है, जिसका मुझसे कुछ भी सम्बन्ध नही है—देखिये परिशिष्ट नं० ७] विचारमें लिया जावे तो त्यागपत्रोंहीसे आपके सज्जन महोदयोंकी सभ्यताका माप भी भलीभाँति हो सकता है। (४) शिक्षाके शत्रुरूप मंत्रीजीके व्यवहारसे तङ्ग होकर पाठशालाकी सेवासे वञ्चित रहनेवाले समस्त अध्यापकोंने स्वार्थवश [नहीं, वरन् भोलेपन तथा उदासीनताके कारण] सत्यका प्रकाश करनेमें अपनी निपट भीरुता दिखाई है, पर बा० रामलौटनने निःस्वार्थ रूपसे अपने इस

साहससे जैन जनताको अपनाया है और पाठशालामें नियु पाये हुए सब अध्यापकोंके शिरोमणि होनेका दावा किया है [वाहरे "आत्मीय शुद्ध भावों" का प्रवाह !]। पं० रमाशङ्करजीके प्रति दयाभाव दिखलाना सर्वथा निर्मूल बताया गया है—इस वाक्यके दो अर्थ स्पष्ट हैं, पर सम्भवतः बाबूजीका इससे यही अभिप्राय हो कि पं० रमाशंकरजीके प्रति दयाका भाव दिखलाना सर्वथा निर्मूल है जिससे प्रकट होता है कि आपकी दयाकी मूल विशेष गहरी नहीं [किन्तु शाहजीके प्रति इतनी गहरी है कि उन्होंने पगार (वेतन) हीके वशीभूत, होकर नोटिसोंके ये उत्तर यदि स्वयं नहीं तो किरायेपर बनवाकर वितरण किये हैं]— इधरसे वेतन पाई कि दया भी निर्मूल हुई [सत्य है, तभी तो नोटिसोंके प्रतिवादोंमें सत्यासत्यका कुछ भी विचार न रहा]। यदि यह असत्य होता तो यह वाक्य कदापि न लिखा जाता क्योंकि पं०रमाशंकरके अपनी स्वीकृत छुट्टीके उपरान्त ठहरकर [नियम नं० ११४ *के अनुसार] कई दिन बाद आनेपर भी [नियमानुसार] उन्हें वेतन दे दी गयी थी । उस वेतनके न मिलनेतक ही दया [नहीं, वरन् कोर्ट-भय] का भाव था [क्योंकि नियम नं० ११४ *के अनुसार ५ दिनसे कम छुट्टीके लिये सूचना देना भी आवश्यक न था, इसलिये वह वेतन पानेके पूर्णाधिकारी थे] पश्चात् सर्वथा निर्मूल हो गई।

श्रीमती अग्राँजी [दिखावेके लिये] मेरी तथा[वास्तवमें]संसार

* इस नियम नं० ११४ को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये ।

को दृष्टिमें अवला थी और अब भी अबला है। सबला समझना तो केवल आप [शाहजी] हीकी प्रज्ञाप्रौढ़ता [अथवा यों कहिये कि पॉलिसी] है। जब उसे अकारण ही पृथक् किया गया था तो आपको उस समय ही सहायक अध्यापक होनेके कारण अपनी मौखिक या लिखित सम्मति कुछ प्रकट करके कर्तव्य-पालन करना था [यदि मेरा परामर्श उसी समय लिया जाता अथवा उसपर ध्यान दिया जाता]। अब भी तो आपने [जब ज्ञात हुआ] किया। क्या उस समय ऐसा करना कुछ अपराध था? अग्राँजीकी दयाकी मूल विशेष गहरी है, वेतन पाते ही निर्मूल नहीं हो जाती। सम्भवतः आपने इसी कारणसे सबला समझा हो। इनाम आदिका देना आपकी, मेरी और मंत्रीजीकी सत्तामें [नियमानुकूल] नहीं है [यदि उनका पालन किया जाय]। ऐसा करना [दिखावेके लिये] कमेटीकी सत्तामें है। अतः इस विषयमें कमेटी ही निर्णय करेगी [जिसका विना कोचर महाशयके करना दुष्कर है]।

(फ) बा० रामलोटनने "अर्थी दोषं न पश्यति" इस कहावतका उपयोग मंत्रीजीपर किया है। क्या बा० श्रीरामजीको अपने आवश्यकीय कार्यके समय छुट्टी न देनेमें मंत्रीजीका कोई निजी अर्थ [सिवाय स्वच्छन्दता या शान जमानेके] था? क्या नियम नं० १११* के अनुसार श्रीरामजीको रोककर उनसे अपने राजकीय दफ्तरका कार्य कराना अथवा कोई शुल्कादि रूप भेंट ... चाहते थे? [नहीं, वरन् भतीजेके मरनेका हाल ज्ञात है

* इस नियम नं० १११ को परिशिष्ट नं० ११ में ... ।

छुट्टी न देकर सभ्यता तथा दयालुता दिखलाते थे।] बा० बहादुरलालजी तथा पं० साँगोदासजीको षाण्मासिक और वार्षिक समयपर छुट्टी देनेमें जो मंत्रीजीने पक्षपात दिखाया उसमें उनका कौनसा अर्थ था? [सिवाय इसके कि नियम नं० १११*के अनुसार किसी प्रकारकी छुट्टी न देनेकी अवहेलना कर अपना कर्त्तव्यपालन दिखलाना था।] क्या छुट्टी चाहनेवाले दोनों सज्जनोंने मंत्रीकी चापलूसी [नहीं, वरन् नियम नं० १११ *का उल्लंघन कराकर कोचर महाशयके कर्त्तव्यपालनके दिखानेकी चेष्टा] की थी अथवा कुछ भेंट कर दी थी? [नहीं, वरन् नियमको विचारपूर्वक न बनानेकी मिसाल उपस्थित की थी]। यदि स्कूल [नहीं, वरन् शान] ही अर्थ था तो उन्होंने ऐसा करनेमें कुछ अनुचित नहीं किया। यदि स्कूल अर्थ न समझा जावे तो निस्सन्देह दूसरे अर्थ [अर्थात् शान] की विद्यमानता अनुमेय हो सकती है। यदि बाबूजीके पास उसका कुछ प्रमाण है तो उसे स्पष्ट शब्दोंमे खोल देना ही सत्यताका परिचय देना है और जैन-जनता भी [यदि शान्तिपूर्वक मेरे (रामलौटन प्रसादके) लेखोंपर विचार करेगी तो] इस उपकृतिके लिए [कि उनके आन्दोलनने जनताका ध्यान पाठशालाकी ओर आकर्षित किया] उनकी आभारी बनी रहेगी, अन्यथा यह उनका बनावटी अरण्यरोदन है [नहीं, वरन् होता] और उनके स्वार्थहीका सूचक है [नहीं, किन्तु हो जाता यदि आन्दोलन न किया जाता—परंतु हाय! वह भी पूर्ण न हुआ

* इस नियम नं० १११को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये

क्योंकि इतनी चापलूसीपर भी शाहजीको पदच्युत होना पडा]।

बाबूजीने अपने पहले लेखमे साँगीदासजीके साथ मंत्रीजीके छुट्टी न देनेके कारण असद् व्यवहार व अन्यायका रोना रोया था और इस दूसरे लेखमें पक्षपात और दयालुताका गीत आरम्भ किया है, पर इतना समझनेकी बाबूजीमे [जबतक कि मेरी (शाहजीकी) भाँति चाटुकारिताके उपासक न बने] बुद्धि कहाँ कि मंत्रीजी जो, स्वभावत: एक न्यायशील आदर्श [अर्थात् स्वेच्छाचारिताके प्रचारक यानी सत्य कहनेवाले अध्यापकोंको निकाल देने, आवश्यकतानुसार काग़ज़ोमे फेरफार करनेकी चेष्टा करने, चापलूसोंको अपनाने तथा अध्यापकोको समान दृष्टिसे न देखने, योग्यायोग्यकी जाँच न करने, स्वार्थसिद्धि अर्थात् स्थायी मंत्रित्वके रक्षणार्थ सत्यासत्यकी परवाह न करने, अगराँजीको वृद्धावस्थामें कन्या-पाठशालासे निकाल देने, छोटी छोटी बातोपर छात्रोंका बहिष्कार करने और दूसरेकी उचित सम्मतियोंको स्वच्छन्दतावश न मानकर पाठशालाका रुपया व्यर्थ व्यय करनेवाले इत्यादि इत्यादि] सज्जन हैं, वह आरम्भमें प्रत्येक पाठशालाके कर्मचारीके साथ [ठीक उसी तरह जिस तरह कि रावणने सीताजीके साथ भिक्षा माँगते समय किया था प्रकटमें] बड़ी नम्रता और दयालुताका व्यवहार करते हैं, पर ज्योंही किसी कर्मचारी [को कोचर महाशय] का कपट व छल दृष्टिगोचर हो जाता है तब [कोचर महाशयके]

परिवर्तन होना नैमित्तिक है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। उपरोक्त कथनोंसे बाबूजी [नहीं, वरन् कोचर-शाह] ने भर्तृहरिके श्लोक—

जाड्य ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्य प्रियालापिनि।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे
तत्कोनामगुणो भवेत् स गुणिनं यो दुर्जनैर्नांङ्कित.॥

को पूर्णरूपसे चरितार्थ कर दिखाया है

[सत्य है—"*होय जो लजीलो ताहि मूरख बतावत है,*
धर्म धरै ताहि कहैं दम्भको वढाव है।
चले जो पवित्रता सो कपटी कहत तासों,
सूरको कहत यामे दयाको अभाव है।
'गिरिधरदास' साधुताई देखि कहैं धूर्त है,
उदरके हेतु कियो भेषको वनाव है।
जे जे अहैं गुनी तिन्हें औगुनी वखाने यह,
जगतमें पापिनको सहज सुभाव है॥"

इसीलिये कदाचित् शाहजीके प्रतिवादोंमे विलम्ब अथवा कुछ टियाँ जान कोचर महाशयने उनको पूर्तिके लिये ही श्रीजैन-ठशाला नाममें "श्वेताम्बर*" शब्दकी वृद्धि कर उस [पाठशाला]

* "श्वेताम्बर" शब्दकी वृद्धिसे समाजका वृत्त (घेरा) विस्तृत ा है अथवा सङ्कीर्ण—विशेषत. जैन-जनता स्वय विचार देखे।

को इसो दिसम्बर सन् १९२४ ई० मे १६ वर्षीय (१९०७ –२३) रिपोर्ट ले शीघ्र आ धमकनेकी आवश्यकता समझी और बीकानेरी जनता विशेषतः जैन-समुदायको कृतार्थ कर साथ ही शाहजीकी भाँति "उलटा चोर कोतवालको दण्डे" की मीमांसा करते हुए देख आपने भी, इसी कहावतके समानान्तर अथवा इससे विशेष प्रभावशाली, इस कहावतको, कि "वड़िअरा* चोर सेंधमे गावै" पूर्ण रूपेण चरितार्थ कर दी है]

(व, म) बाबू जेठमलजी व पं० मेघराजजीकी बाबत मैं इतना ही कहना उचित समझता हूं कि वे दोनो बा० रामलोटन-मे कुछ विशेष प्रतिष्ठित हैं [क्योंकि उन्होंने यह समझ, "एकर† फल पाओगे आगे, वानर भालु चपेटन‡ लागे" अन्यायको सह उसके कुचलने और सत्यको प्रकट करनेकी कोई चेष्टा नहीं की]। यदि उनके साथ पाठशालाकी तरफ़से अन्याय हो गया है, तो उन्होंने उसे [भीरुतासे] दूसरे ही रूपमे ले लिया है। उनकी ओरसे अनधिकार वकालतकी चेष्टामे क्या बाबू साहिबका अभिप्राय उन्हें भी अपनी कोटिमे लेनेका है ? [कदाचित् किसीका हित करने अथवा अपना कर्त्तव्य-पालन करनेमे पाश्चात्य दृष्टिसे ऐसा ही अभिप्राय होता होगा—सत्य है, 'गरजमन्द बावला होता है।"]

(म) नियम नं० ७१§ के पालनमे लाभ क्या था और अवश्य

* वड़िअरा=बलवान। †एकर=इनका। ‡चपेटन=चपेटना, थप्पड़ मारना, कष्ट देना। §इस नियम नं० ७१ को परिशिष्ट नं० ४३ मे देखिये।

परिवर्तन होना नैमित्तिक है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। उपरोक्त कथनोंसे बाबूजी [नहीं, वरन् कोचर-शाह] ने भर्तृहरिके श्लोक—

जाड्य ह्रीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतव
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्य प्रियालापिनि।
तेजस्विन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे
तत्कोनामगुणो भवेत् स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कित.॥

को पूर्णरूपसे चरितार्थ कर दिखाया है

[सत्य है—"*होय जो लजीलो ताहि मूरख बतावत हैं,*
धर्म धरै ताहि कहैं दम्भको बढाव है।
चले जो पवित्रता सो कपटी कहत तासों,
सूरको कहत यामे दयाको अभाव है।
'गिरिधरदास' साधुताई देखि कहैं धूर्त है,
उदरके हेतु कियो भेषको बनाव है।
जे जे अहैं गुनी तिन्हें औगुनी बखाने यह,
जगतमें पापिनको सहज सुभाव है॥"

इसीलिये कदाचित् शाहजीके प्रतिवादोंमें विलम्ब अथवा कुछ त्रुटियाँ जान कोचर महाशयने उनकी पूर्तिके लिये ही श्रीजैन-पाठशाला नाममें "श्वेताम्बर*" शब्दकी वृद्धि कर उस [पाठशाला]

---

* "श्वेताम्बर" शब्दकी वृद्धिसे समाजका वृत्त (घेरा) विस्तृत हुआ है अथवा सङ्कीर्ण—विशेषतः जैन-जनता स्वयं विचार देखे।

की इसो दिसम्बर सन् १६२४ ई० मे १६ वर्षीय (१६०७ –२३) रिपोर्ट ले शीघ्र आ धमकनेकी आवश्यकना समझी और वीकानेरी जनता विशेषतः जैन-समुदायको कृतार्थ कर साथ ही शाहजीकी भाँति "उलटा चोर कोतवालको दण्डै" की मीमांसा करते हुए देख आपने भी, इसी कहावतके समानान्तर अथवा इससे विशेष प्रभावशाली, इस कहावतको, कि "वड़िअरा* चोर सेंधमें गावै" पूर्ण रूपेण चरितार्थ कर दी है]

(व, भ) वावू जेठमलजो व पं० मेघराजजीकी वावत मैं इतना ही कहना उचित समझता हूं कि वे दोनो वा० रामलौटन-से कुछ विशेष प्रतिष्ठित हैं [क्योकि उन्होंने यह समझ, 'एकर† फल पाओगे आगे, वानर भालु चपेटन‡ लागे" अन्यायको सह उसके कुचलने और सत्यको प्रकट करनेकी कोई चेष्टा नहीं की]। यदि उनके साथ पाठशालाकी तरफ़से अन्याय हो गया है, तो उन्होंने उसे [भीरुतासे] दूसरे ही रूपमे ले लिया है। उनकी ओरसे अनधिकार वकालतकी चेष्टामें क्या वावू-साहिवका अभिप्राय उन्हें भी अपनी कोटिमे लेनेका है ? [कदाचित् किसीका हित करने अथवा अपना कर्त्तव्य-पालन करनेमे पाश्चात्य दृष्टिसे ऐसा ही अभिप्राय होता होगा—सत्य है, "ग़रजमन्द वावला होता है।"]

(म) नियम नं० ७१‡ के पालनमें लाभ क्या था और अवश्य

*वड़िअरा=वलवान। †एकर=इसका। ‡चपेटन=चपेटना, थप्पड मारना, कष्ट देना। इस नियम न० ७१ को परिशिष्ट न० ११ में देखिये।

ही किस निमित्त किया जाता [क्योंकि शाहजीके मतानुसार प्रातःकालका उठना न स्वास्थ्य, न धर्म और न किसी अन्य कार्य-के लिये लाभदायक है] और [अर्थात तब] इसमे संशयकी आवश्यकता क्यों? निस्सन्देह इस देशके लागू भी नहीं है। लागू तो केवल उन्ही अध्यापकोंके लिये जो [शाहजीकी भाँति] निद्रालू और गली गलीमे [श्री जैन पाठशालासे वहिष्कृत तथा डिग्रेडेड छात्रोंका मुख्याध्यापक हो पन्द्रह पन्द्रह रुपयेमे] ठण्ड [ग्रीष्म-ऋतु] मे ट्यूशनोंके लिए मारे मारे फिरते हों। लागू होनेका जब समय आवेगा तब ही पालन किया जावेगा। दया-का पाठ सीखना हो तो बाबूजीहीसे सीखें। धर्म-सिद्धान्तोंमे क्या धरा है? जो कुछ है सो सब बाबू साहिबमे ही है। इनको इस नियम[को बनाते और उस] का उल्लेख करते लज्जा नहीं आई कि छोटे छोटे भाग्यवानों*के बालक [जिनको धर्मपरायण बनाने अथवा स्वस्थ रखनेकी आवश्यकता नहीं] जिनके घरपर आठ बजे भोजन तैयार हो जाता है, ग्रीष्मकालमे साढे दस बजे-तक भूखे रहकर घर जाकर कब भोजन करते, यदि स्कूल प्रातः-

* यहापर शाहजीने "भाग्यवानों" की जैसी विचित्र और अनर्गल व्याख्या की है, देखते ही बनता है। आजतक ऐसी तर्कित व्याख्या देखने तथा सुननेमें नहीं आयी। यह एक "आत्मीय शुद्ध भावों" पूर्ण सर्वयोग ग्रेजुएट-की बुद्धिका नूतन आविष्कार तथा विकाश है। अत स्थानीय अन्य भाग्य-वानों नोबुल स्कूल तथा अन्य देशोंके शरीफों और भाग्यवानोंको इधर शीघ्र ध्यान दे लाभ उठाना चाहिये, अन्यथा पछताना पडेगा। कहिये, यदि कोचर महाशयको ऐसे "योग्य बी० ए०" पर नाज है, तो क्या आश्चर्य ?

कालका कर दिया जाता? इस सम्बन्धमे यह तर्क कि वासी भोजन करके उक्त छात्रका समयपर पाठशालामे उपस्थित होना मान्य नहीं हो सकता, क्योकि ग्रीष्मकालकी छोटी रात्रियोंके अन्तिम आनन्द-दायिनी निद्रा सवहीको प्रिय रहती है [यदि उसको छुड़ा दिया जावे और छात्रोका स्वास्थ्य तथा उनकी बुद्धि ठीक हो जावे तो सम्भव है कि शाहजी जैसोका "हलवा माँड़ा न पके" अर्थात् पौ वारह न रहे। इसलिये छात्रोंको ब्राह्ममुहूर्त्तका वायु न लगने देना ही आजीविका तथा अनधिकार प्रतिष्ठाके लिये आवश्यक है]। अतः वच्चोका शौचादिसे निवृत्त होकर ठीक समयपर उपस्थित होना असम्भव था [किन्तु अव श्रीयुत गोस्वामीजीके समयमें सम्भव है]। सत्य है ऐसा हो जानेसे वावूजीकी पढ़ाईमें कोई त्रुटि न रहती, [जैसी कि सप्तम आदि उच्च कक्षाओंकी रही है—देखिये पृष्ठ नं० ६०] क्योंकि छात्रोके विलम्वके दोप-भागी तो कमेटीके सदस्य [सदस्य !] व हेडमास्टर ही रह जाता [किन्तु अव विलम्वके दोपभागी हेडमास्टर नही है]। यदि अल्पवयस्क वालकोंको [प्रातःकाल उठाकर उनके स्वास्थ्य तथा मस्तिष्कके ठीक हो जानेके कारण] पढ़ाईसे वञ्चित करके अवशिष्टोंकी स्वास्थ्य-रक्षाके हेतु ही*नियमनं०१७

---

* इस नियम न०७१ को परिशिष्ट न० ११ मे देखिये।

नोट—जिस नियम न० ७१ क पालनके शाहजी इतने विरोधी हे और इसके समर्थनके जोशमें आ मुझे निर्लज्जतक कह "अपने आत्मीय शुद्ध भावो" तथा सभ्यताका परिचय दिया है, आज सालके अन्दर ही उसी

का पालन हो जाता तो बाबू [नहीं, वरन् शाह] जीके मतानुसार मन्त्रीजीकी दयालुता सिद्ध हो जाती।

(य) बाबूजीकी अध्यापन-सम्बन्धी पटुता व कुशलताका कुछ विवरण देना मैं अनुचित ही समझता था, परन्तु [परीक्षा-फल देखते और अपने परीक्षाफलसे तुलना करते हुए साहस न हुआ किन्तु] उन्होंने जनताके समक्ष अपनी परीक्षाफलकी प्रसंसि जब इस प्रकार प्रकट की है तो मुझे कहना पड़ता है कि बाबू-जीकी भांति परीक्षाके समय छात्रोंको गुप्तरूपसे* सहायता दे-कर, शारीरिक दण्डादिद्वारा कमज़ोर छात्रोंको पाठशालासे भगाकर अथवा उन्हें परीक्षामें बैठनेसे रोककर [जिसकी बाबत् शाहजीने कर्त्तव्यपरायणताके कारण न तो कोई नोटिस दिया, न किसी अध्यापकसे ऐसा करनेके लिये उत्तर माँगा, न रिमार्क-बुकमें कोई रिमार्क लिखकर सूचना दी और न किसी अध्या-पकको ऐसा करनेके लिए दण्डित ही किया, क्योंकि परीक्षाके समय ऐसी अनर्गल बातोंकी स्थिति प्रत्यक्ष रूपमें तो क्या स्वप्नमें भी न थी, किन्तु "बुभुक्षितः किं न करोति पापम्"—पेट सब

नियमका यहां सादर पालन किया जा रहा है। सत्य है, "Truth may languish but cennot Perish" अर्थात् सत्य दब भले ही जावे, किन्तु नष्ट नहीं किया जा सकता। हाय! आज हमारा यह पवित्र तथा गौरवशाली भारत इस हीनावस्थाको केवल चापलूसोंहीके द्वारा प्राप्त हुआ है। सत्य है, "सबसे भयकर शत्रु चापलूस ही है।"

* गुप्तरूपसे सहायताका स्वप्न देखना और नोटिस न देना शाहजीकी कर्त्तव्यपरायणताका नमूना है—देखिये परिशिष्ट नं० ११ नियम नं० ८६।

कुछ करा देना है, यह उसीकी कृपा है कि ऐसा लिखनेपर शाहजीको वाध्य किया कि] प्रत्येक ही अध्यापक इस प्रकारकी फलप्रसस्थि दिखा सकता है। इस प्रकरणको मैं विशेष न बढ़ाकर केवल एक ही अध्यापककी लिखित प्रमाणरूप साक्षी [जो मेरे पाठशाला छोड़नेके १॥ मास पश्चात्की लिखी हुई है, जब कि मेरे अध्यापन समयका कोई रिमार्क न मिल सका, पेश की गयी, जिसका पूर्ण सम्बन्ध अथवा उत्तरदायित्व मुझपर नहीं किन्तु स्वयं शाहजीपर है, (देखिये परिशिष्ट नं० ७) जनताकी आँखोंमें धूल डालनेके निमित्त] उपस्थित करता हूँ, जिसने बाबूजीकी सत्रके उपरान्ततक पढ़ाई हुई और उत्तीर्ण हुई कक्षाका चार्ज लिया था:—

I beg to report that the 3rd class was placed in my charge on the 17th July 1923 when a fresh timetable was fixed Since then, I have found to my utter disappointment that the Students of the said class are miserably weak in English. It seems that neither they cared to learn their lessons nor they were forced to do so They bave studied 12 lessons of the text-book but have entirely forgotton them No attention seems to have ever been paid to spelling, punctuatiou and reading etc It is regretted that the progress they have made during the last three months is very poor They are in the habit of remaining obstinately silent, when a question is put to them and it is difficult to remedy this defect However, I will try my best to

improve their condition and here, I beg to inform you that under such circumstances I am obliged to teach them from the very beginning This is submitted to you for your information

you are also fully acquainted with these students I believe, as you have also been in charge of this class for some time

7-8-23 yours obediently,
Pannalal.

[उपरोक्त अँग्रेज़ी रिपोर्टका भाषानुवादः—सूचनार्थ निवेदन है कि कक्षा ३ ता० १७ जुलाई सन् १९२३ ई० को, जब कि नया टाइमटेबुल बनाया गया, मुझे दी गयी। उस समयसे मैं, यह जानकर कि उक्त कक्षाके विद्यार्थी अँग्रेजी भाषामे अति ही कमज़ोर हैं, हतोत्साह हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि न तो स्वयं विद्यार्थियोने अपने पाठ याद करनेकी चेष्टा की और न उनको ऐसा करनेके लिये मज़बूर किया गया। वे अपनी पाठ्य-पुस्तकके १२ पाठ पढ़े हैं, परन्तु उनको बिलकुल ही भूल गये हैं। अक्षर-विन्यास (हिज्जे), विराम-चिन्ह और पढ़ने आदिकी ओर ज़रा भी ध्यान दिया जान नही पड़ता। खेदसे कहना पड़ता है कि गत तीन महीनोंमे जो उन्नति उन्होंने की है वह अत्यन्त असन्तोषजनक है। जब कभी उनसे कोई प्रश्न पूछा जाता है तो वे चुप्पी साध जाते है और उसके आदी हो गये हैं। इस दोषका मिटाना अति कठिन है, तथापि मैं उनको दशा सुधारनेकी यथाशक्ति चेष्टा करूँगा और आपको यह सूचित करता हूँ कि ऐसी दशामे मुझे

प्रारम्भसे ही पढ़ाना पड़ा है। यह आपको सूचनार्थ लिखा जाता है।

स्वयं आप भी इन विद्यार्थियोंसे भलीभाँति परिचित हैं, क्योंकि आपने भी इस कक्षाको कुछ दिनोंतक पढ़ाया है।

ता० ७-८-२३, आपका आज्ञाकारी,

पन्नालाल।]

(ल) जनताको इस बातपर ध्यान देना उचित है कि बाबूजीकी सत्यता [कि जिसके प्रज्वलित उदाहरण ऊपर बयान किये जा चुके हैं अर्थात् पाठशालासे छात्रोंका बहिष्कार कर उनका ट्यूशन करना, छात्रोंके भगाने अथवा परीक्षामे बैठनेसे रोकने आदिका पूर्णाभाव होते हुए भी उन्हे चापलूसीसे प्रेरित हो लिख मारना और आन्दोलन नोटिसोमे छात्रोंके डिग्रेडेशन (कक्षासे अयोग्य समझ नीचे उतार देना) आदिको स्वीकार करते हुए भी उन्हें पाठशालाकी १६ वर्षीय रिपोर्टमे विपरीत अर्थात् उत्तीर्ण दिखाना आदि] का कोई अलौकिक ही लक्षण होगा, वरना ऐसा कदापि सम्भव नही था कि मेरी [अलौकिक] सत्यताका इतना उपहास उड़ाया जाय और अपनी [नहीं, वरन् सबकी सत्यताका इतना गौरव मनाया जाय। आपके प्रथम लेखमे जनताको घोषणा थी [और अब भी है] कि आजतक रिमार्क-बुकमे किसी प्रकारका हानिकारक रिमार्क मेरे विरुद्ध [मेरे पाठशाला छोड़ने (ता० १६-६-१९२३) तक] नहीं है और अब इस द्वितीय लेखमे [शाहजीके "अलङ्कन" शब्द प्रयोगपर उन्हें शब्दार्थ

समझनेके निमित्त, अन्यथा ऐसे स्वच्छन्दतापूर्ण रिमार्कोंके उल्लेख करनेकी कोई भी आवश्यकता न थी] आप [शाहजीकी सत्यता तथा चातुरीपर चकित हो] स्वीकार करते हैं कि आज-तक मेरे नामसे केवल दो साधारण रिमार्क* निकले हैं [जो मेरे प्रथम लेखानुसार हानिकारक नहीं वरन् *कोचर शाहका* स्वच्छ-न्दताके सूचक हैं]। किसी व्यक्तिविशेष [न्यायी तथा सत्यवादी *काचर-शाह* !!] के नामसे निकले हुए रिमार्क आप [नहीं, वरन् प्रत्येक सभ्य तथा विचारशील व्यक्ति] की सम्मतिमे जब साधा-रण कोटिके हैं तो फिर विशेषको इस लोकमे स्थान ही नहीं। ऑर्डर नं० २ ता० ३-६-२१ को [मेरे ही द्वारा नहीं किन्तु श्रीयुत पं० सूर्य्यकर्णजी आचार्य्य एम० ए० रजिस्ट्रार हाईकोर्ट, बीकानेर राज्य तथा श्रीयुत बा० बहादुरलालजी बी० ए० के द्वारा भी जो उक्त ऑर्डर निकलनेके पश्चात् पाठशालाके हेड्मास्टर रह चुके

---

* इन दो साधारण रिमार्कोंके अतिरिक्त और कोइ रिमार्क न होते हुए भी शाहजीने अपने प्रथम नोटिस "आक्षेपोंका प्रतिवाद" मे स्कूल-रिमार्क-बुकको मेरे नामसे निकले रिमार्कोंसे 'अकक्रत" होना बताकर और यहापर उसीका निर्भीकतापूर्वक समर्थन कर "अपने आत्मीय शुद्ध भावों" तथा सत्यताका प्रलाप करते हुए "अपने आत्मप्रदर्शित पथसे विचलित" न होनेका नमूना जनताके समक्ष पेश किया है। शान तो जनाब तब थी, जब अलकृत-भण्डारमेंसे दस-पाच रिमार्क-रोकड जनताके सामने फेंक मेरी "घृणित कुचेष्टाओ" तथा "न्याय और सत्य दोनोंहीका गला तो खूब ही घोंटने" वालेकी पोल खोल धज्जिया उडा शुभचिन्तकता तथा सत्यवीरताका परिचय देते !! कहिये, यही शाही भण्डारकी गहराई है !!"

हैं] नितान्त निर्मूल तथा निरंकुशतापूर्ण अधिकारोंसे भरा बताया गया है। वह तत्कालीन स्थानापन्न मुख्याध्यापक बाबू श्रीरामजीकी आज्ञोल्लंघन [अर्थात् नियम नं० ७१* को व्यवहारमे लाने और मुँहपर सत्य बात कहने] तथा उनके साथ झगड़ा करने [जो सत्य कहनेपर स्वाभाविक ही है] के अपराधपर निकाला गया था [देखिये परिशिष्ट नं० ५]। नोटिस नं० ३८६ [नहीं, वरन् ३८९—कदाचित् यह ३८६, जो वास्तवमे ३८९ है, ब्राह्ममुहूर्त्तकी "आनन्ददायिनी निद्रा" में लिखा गया] ता० २०-१-२३ ई० जो कई साधारण और विशेष रूपसे मौखिक आदेशोके पश्चात् [जो मुझे कभी नहीं दिये गये और न आवश्यकता थी] निकाला गया है, उसमे छात्रके कुछ दिन अनुपस्थित रहकर आनेके अपराधपर आपके शारीरिक दण्डकी सीमा यहाँतक पहुँची कि छात्रकी आँखपरका भ्रकुटीस्थल उड़ा दिया गया [यह व्याख्या भी नितान्त निर्मूल है, क्योंकि छात्र स्वयं ही महज डरानेकी धमकीसे भयभीत हो दैवात् दीवारसे टकरा गया और शाहजीकी चापलूसी न करनेके कारण उक्त ऑर्डर निकल गया, जिसको ऐसे स्वेच्छाचारी मंत्री कोचर महाशयने भी जाँच करके मुझको निर्दोष प्रमाणित किया है] और उसे उसी समय अस्पताल भेजना पड़ा था। यदि ऐसी परिस्थितिके उपस्थित होनेपर भी आपने श्रीरामजीसे [नहीं, वरन कोचर महाशयसे क्योंकि बा० श्रीरामजी न उस समय आपके आगे पाठशालामें थे और न उनसे इस

*इस नियम नं० ७१ को परिशिष्ट नं० ११ मे देखिये।

नोटिससे कुछ सम्बन्ध ही है—"श्रीरामजीसे अच्छी सम्मति प्राप्त" करनेका स्वप्न आना तो केवल आपकी ब्राह्ममुहूर्त्तकी "आनन्ददायिनी निद्रा" हीका सूचक हो सकता है अन्यथा ऐसी अनर्गल तथा बे-सिर-पैरकी व्याख्या करना विद्वत्ता तथा सभ्यताका लक्षण कोई कह सकता है ?] अच्छी सम्मति प्राप्त कर ली है तो इसमें कारण कुछ और [सत्यका उद्गार] ही हो सकता है, जिसे जनता [यदि काग़ज़ोंमें फेरफार न हुआ हो तो] स्वयं विचार सकती है और [इस अस्पष्ट व्याख्यापर] मेरे अलंकृत शब्दका प्रयोग भी अब विदित हो गया होगा कि किसकी योग्यताका द्योतक है ।

मैं अपने आत्मीय शुद्ध भावोंसे [जैसा कि ऊपर जगह-बजगह बतलाया गया है] इस संस्थाका कार्य कर रहा हूँ और मुझे अपने आत्म प्रदर्शित पथसे विचलित करनेकी [जबतक कि पगार (वेतन) मिलता है] किसीकी सामर्थ्य नहीं है। अतः बाबूजीको मेरी ओरसे चिन्ताग्रस्त रहके बीमार पड़नेकी आवश्यकता नहीं है। यदि वह स्वयं अपने आदर्शको बनाए रखेंगे तो मुझे उसीमें पूर्ण आनन्द [कैसे हो सकता] है [जब कि चाटुकारी तथा ख़ुशामदकी बीमारी पीछे पड़ी है]।

नोट१—जनताका ध्यान इस ओर भी आकर्षण करना उचित समझता हूँ कि'बाबूजी [यदि "शाहजी" पढ़ा जाय तो अनुचित न होगा] की अर्थ करनेमें प्रवीणता और योग्यता अद्वितीय है [क्योंकि योगरूढ़ि, यौगिक और कल्पित सांकेतिक (टेक्निकल

र्थ) शब्दोंमें भेद-विभेद न कर सके] । आप कोचर महाशयका अर्थ करते हैं बाबू शिवबक्षजी · 'और शाहजीका मयाभाई टी० शाह ''' । इन अर्थोंके करनेमें ;आपने. कौन कौनसी अलौकिक [अर्थात् शेक्सपियर आदि लेखकों तथा कवियोंकी] भाषाओंका आश्रय लिया है [चापलूसीके कारण] कुछ निश्चय नहीं होता [क्योंकि स्वार्थान्ध होकर कोचर महाशय तथा अपनेको मालवीयजी (माननीय श्रीयुत पं० मदनमोहनजी मालवीय), महात्मा गान्धीजी (श्रीयुन पूज्य मोहनदास कर्मचन्दजी गान्धी) , नेहरूजी (श्रीयुन पं० मोनीलालजी नेहरू) , मिस्टर गोखले (श्रीयुत पं० गोपाल कृष्णजी और लोकमान्य तिलक (श्रीयुत पं० बाल गङ्गाधर तिलक) आदि आदि की भाँति प्रसिद्ध समझ वैठे हैं अन्यथा ऐसी शंकाकी सम्भावना कदापि न होती] । यदि नामोंहीसे अभिप्राय था तो क्या आपने जनताको इतना मूर्ख समझा [नहीं किन्तु कोचर-शाहको आपकी भाँति चाटुकारितावश प्रसिद्ध तथा सर्वोपरि न समझा] कि ["कि" के स्थानमे "इसलिये" पढ़ना उचित है] टिप्पणीकी आवश्यकता जान पड़ी ।

२—पत्र नं० ८०,८१ और ६३* के विवरणको छोड़कर क्या आपके अन्य सब गुणग्रामोंकी मेरे एक ही पत्रमें आपने [जब कि शाही अगाध 'अलंकृत' भण्डार भरा पड़ा है] इतिश्री मान ली जो आप आश्चर्य करते हैं ? क्या उनमें कोई अलौकिक रासायनिक सिद्धान्त विशेष थे अथवा कोई अमूल्य] सम्पत्तिके साधन विशेष

* पत्र नं० ८०,८१ और ६३ का विवरण काण्ड २ में हो चुका

थे जो आपको निकालते समय बलात्कार आपसे छीन लिये गये हों और अब वापिस न मिलनेकी सम्भावनापर इतना आश्चर्य होता है ? पत्रों [को] तो आपने सहर्ष मंत्रीजीके पास भेजे होंगे और इस कारण उनकी कॉपी भी आपके पास होगी। यदि जनताको उन्हींसे कुछ लाभ था तो आपने ही उनको छपवा दिया होता। स्कूल-सम्बन्धी प्रकट और *अप्रकट* पत्रोंकी *गुप्त रीतिसे* नक़लें ले लेना [जबकि वे सूचनार्थ भेजे गये हों] आपहीको *न्यायानुकूल प्रतीत हो, हमें* [जो सिवाय श्रीयुत पं० रामेश्वरदयालजीकी भाँति पेश किये हुए रेलवे "टिकट" तथा कोचर महाशयकी १६ वर्षीय "रिपोर्ट" जैसी कार्यवाइयोंके अन्य कोई कार्रवाई और नक़ल न्यायानुकूल प्रतीत] *नहीं होता* [कदाचित् रेलवे "टिकट" का पेश करना इसलिये उचित समझा गया हो कि श्रीजैनपाठशाला-की भाँति रेलवे डिपार्टमेंटसे भी "कोई ऐसी लिखित प्रतिज्ञा" कराकर "टिकट" साथ लानेकी आज्ञा प्राप्त कर ली गयी हो]।

३—समाचारपत्रोंद्वारा कर्तव्यपाल न करनेकी पूर्व सूचना-की क्या आवश्यकता थी ? यह तो आप करते तब ही प्रकट हो जाता। यदि इससे एक साप्ताहिक वा दैनिक पत्र इस निमित्त सदाके लिये निकालनेका दृढ़ निश्चय हो तो मुझे भी ["अपने आत्मीय शुद्ध भावों" की अधिकताके कारण] खुशी* है।

नोट—यहांपर शाहजीने "अप्रकट" तथा "गुप्त रीति" शब्दोंका प्रयोग कर जैसा विचित्र अभिनय किया है, विचारणीय है।

* शाहजीको इस "आत्म प्रदर्शित" खुशीपर अनेकानेक बधाई है!

मैं भी इसका एक ग्राहक बनूँगा और निकालनेपर एक प्रति मेरे नाम वी० पी०से भेज देवें [किन्तु भय है कि कहीं उसे लौटाकर हानि न पहुँचावें]। आर्थिक सहायताकी यदि आवश्यकता हो तो जैन-समाज [में कोचर-शाह की जो आर्थिक सहायताके लिये प्रसिद्ध हैं] से निवेदन करें।

४-पूज्य शब्दका ध्वन्यात्मक अर्थ [जो शाहजीकी "आत्मीय शुद्ध भावों" की सूक्ष्म तथा सूचक है] जनताको भलीभाँति विदित ही होगा कि शिवबक्सजीको मंत्री-पदपर और मेरे जैसे अयोग्य, सत्यभ्रष्टको मुख्याध्यापककी जगह नियुक्त करनेवाले मेम्बर बाबूजीके किस भावमे पूज्य होंगे ? हाँ, इसी भावमे कि उनके लेखको आँख मूँदे ही [नहीं,वरन् विचारपूर्वक पूर्ण जाँच कर तथा ज्ञान-चक्षु खोल सावधान होकर] मान लेनेमें, अन्यथा पूज्य शब्दका [नहीं, वरन् अर्थके] परिवर्तन होनेमें क्या देर लगेगी ?

यहाँपर मेरे कार्य-पूर्तिके लिये जो विचार तथा उत्साह प्रकट किया है उसके लिये कोटिशः धन्यवाद है !! कतिपय कारणोंसे आपके उपदेशानुसार अभीतक पत्र-पत्रिका न निकाल सका जिसका मुझे खेद है !!! आज यह लघु पुस्तिका ले आपकी सेवामें उपस्थित हो रहा हूँ और आशा करता हूँ कि शीघ्र ग्राहक बन-बनाकर संस्करणपर संस्करण निकालनेके लिये उत्साहित करेंगे—कहीं ऐसा न हो कि "अपने आत्मीय शुद्ध भावों" को किसी दूसरेको प्रदान कर मुझे निरुत्साह कर बैठें, क्योंकि दानियोंकी अलौकिक मौजका ठिकाना क्या ! विलम्ब तथा प्रतीक्षाके लिये जो आपके 'मिजाज-शरीफ' को कष्ट हुआ है उसके लिये सादर क्षमाप्रार्थी हूँ।

५ —जैनपाठशालाका प्राचीन शुद्ध तथा पवित्र गौरव बाबूजीको मान्य तो हुआ, पर इन सोलह वर्षोंमेंसे किस वर्षमे रहा [जिन वर्षों (आन्दोलन)के प्रभावसे प्रभावित होकर मंत्री कोचर महाशयको सर्वप्रथम नियम नं० ५८*के पालनका ज्ञान हुआ ?]—यह निर्धारण नहीं किया। करें क्यों ? [नहीं, वरन् विशेष करें कैसे, क्योंकि प्रारम्भकालसे पाठशाला तथा बीकानेरमे मौजूद न थे] करें तो उन्हींके पूर्व लेखसे विरोध न हो जाय ? सम्भव है कि उनका अभिप्राय प्राचीन जैन-धर्मसे हो। इस भावसे वाक्य अशुद्ध और असम्बद्ध होगा [क्योंकि चाटुकारिताने मस्तिष्कपर अधिकार जमा रक्खा है जिससे योग्यता और जाँचकी शक्ति दब गयी है]। कोई क्षति नहीं [क्योंकि मैं (शाहजी) तो केवल पगार (वेतन) का नौकर हूँ]। लेखकका [काकवृत्तिवत्] भाव ही लेना उचित है। यदि यह भाव है तो क्या जैनधर्मके सिद्धान्तोंमें परिवर्तन हो गया है ? [नहीं, वरन् शाहजी जैसे ग्रेजुएटोंके द्वारा पाश्चात्य रंग चढ़ गया है] जिसके कारण प्राचीन और अर्वाचीन शब्दोंका प्रयोग सार्थक समझा जावे। बाबूजीके विचारानुसार अन्याय और असत्यके संस्थासे उठ जाने मात्र हीसे उस प्राचीन गौरवकी सम्प्राप्ति सिद्ध [नहीं] है। क्यों नहीं ? [इसलिये कि पाश्चात्य उन्नतिके आधार, कदाचित् कोचर-शाहकी दृष्टिमें, यही दो अन्याय और असत्य हैं।] लेखकका ऐसा कथन है। तब तो मानना पड़ेगा कि इसी एक

* इस नियम न० ५८ को परिशिष्ट न० ११ मे देखिये।

संस्थाको छोड़कर यहाँकी अन्य सब संस्थाओमे तो पूर्ण सच्ची उन्नतिके साथ साथ जैन धर्म हीका [नहीं, सत्य और न्यायका] शुद्ध एवं पवित्र गौरव *विद्यमान होगा* [क्योंकि विद्योन्नतिका मुख्योद्देश्य यही है, जिसको स्वच्छन्दतासे भ्रष्ट कर रक्खा है]।

६—बाबू रामलौटनने यह सिद्ध किया है कि [पाश्चात्य रंग मे रँगे हुए चाटुकारोके लिये नहीं वरन् भारतवर्षके धर्म-वेत्ताओंके लिये] धार्मिक शिक्षा देना एक अत्यन्त ही सरल कार्य है जिसके लिये एक अल्पवैतनिक अध्यापक [जैसा कि प्राचीन-कालसे अबतक धर्मके पक्के रंगमें रँगे हुए मिलते हैं] रखना कमेटीको उचित था और मैं जो रु०१२५) मासिक [व्यर्थ] पाता हूँ इतना अयोग्य हूँ कि [ग्रेजुएट होनेके कारण जैनधर्मसे अनभिज्ञ हूँ इसलिये] *धर्मशिक्षा भी भलीभाँति नहीं दे सकता हूँ* और ऐसे अयोग्यको इतने वेतनपर नियुक्त करके कमेटी [नहीं, वरन् नियम नं० ५६*के अनुसार कोचर महाशय] ने अपनी पूर्ण अयोग्यता [तथा स्वच्छन्दता] का परिचय दिया है [परन्तु धन्य है कि कमेटीने आपकी योग्यतासे पूर्ण परिचित होकर आपके "साँचमें लाँछ" नामक नोटिस वितरण होनेके लगभग एक ही मासके भीतर आपके स्थानमें दूसरा नया मुख्याध्यापक नियुक्त

नोट—यहाँपर शाहजीने "धर्म-शिक्षा भी भली भाँति नहीं दे सकता हूँ" का प्रयोग कर अपने पक्षका कहाँतक समर्थन किया है, विचारणीय है। विशेषत 'भी' शब्दपर अधिक ध्यान देना आवश्यक है।

* इस नियम न०५६ को परिशिष्ट न० ११ में देखिये।

करनेको आपत्तिजनक नहीं समझा]। अतः इस स्थानपर किसी योग्यकी नियुक्ति करके पाठशालाकी भावी उन्नतिके पथको खोल देना ही कमेटीका परम कर्तव्य है। बाबूजीका यह अभिप्राय यदि कमेटीको अक्षरशः सत्य प्रतीत होता हो तो मैं निस्संकोच पाठ-शालाके हितार्थ अपना ["आत्म-प्रदर्शित"] पदत्याग करनेको सहर्ष [अथवा मज़बूरन] उद्यत हूं। मैं कमेटीसे [दिखावटी] निवेदन करता हूं कि इस स्थानपर बाबू रामलौटनजी जैसे [किसी] सुयोग्य, सत्यनिष्ठ और विश्वासपात्रको नियुक्त किया जावे तो उत्तम हो [कदाचित् इसी प्रार्थनानुसार श्रीयुत पं० चिम्मनलालजी गोस्वामी एम० ए० की नवीन नियुक्ति हुई है]। आप धर्मके अद्वितीय ज्ञाता हैं, जिसके प्रमाणमें आपने पाठ-शालाकी छात्र-सभाके अधिवेशनमे सबके समक्ष अपने मुखार-विन्दसे [शाहजीके सभापतित्वमे निर्विघ्न प्रसन्नतापूर्वक] व्याख्यानमें कहा है कि "नमोऽरिहन्ताणम्"* का अर्थ जैसा मैं जानता हूँ वैसा कोई भी जैनी शायद ही जानता हो।

---

*यहाँ बीकानेरमें सन् १९२१ ई० एक परम प्रसिद्ध मुनि महाराज श्री-वल्लभ विजयजी एक जैनी महात्मा आये थे। पाठशालाकी छुट्टीके दिनोंमें मैं प्रायः इनका धर्मोपदेश सुनने जाया करता था। अन्य उपदेशोंके अति-रिक्त उनके ता० १५-५-१९२१, २२-५-२१, ३०-५-२१, ७-६-२१ तथा १३-६-२१ के उपदेशोंसे मुझे विशेषानन्द हुआ जिनके लिये मैं उक्त महात्माजीका परम कृतज्ञ हूँ। उन्हीं दिनोंमें उन्होंने एक दिन "नमो ऽरि-हन्ताणम्" की ललित व्याख्या की थी जिसका भाव लेकर मैं समय-समय-पर यथाशक्ति छात्रोंको समझाकर धर्मपथपर आरूढ़ रहनेकी चेष्टा किया

[यह केवल चाटुकारिताहीका प्रभाव है कि शाहजी इस प्रकार-की अनर्गल समालोचना करनेपर उद्यत हुए हैं, अन्यथा इस प्रकार "अपने आत्मीय शुद्ध भावों" को प्रवाहित कर सत्यवीरताका परिचय कदापि न देते। क्योंकि उस समय ऐसे भावोंका मुझे तो क्या अन्य उपस्थित अध्यापकों तथा छात्रोंके पवित्र हृदयोंमें स्वप्नमें भी विचार न आया होगा]। किमधिकम् सुज्ञेषु किं बहुना।

मयाभाई टी० शाह

हैडमास्तर,

ता० २५-६-१६२३ ई० } श्रीजैन पाठशाला—बीकानेर।

— — — —

नवजीवन मुद्रणालय—अहमदाबाद

इस विशाला तथा सत्यादर्श उपरोक्त नोटिस "साँचमे लाँछ"

करता था। इसी अपराधपर शाहजीने जनताके समक्ष मुझे बड़ा भारी मुलज़िम करार दिया है और उन्होंने अपने अलकृत भण्डारसे यह रकम निकालकर इसे मेरे प्रायश्चित्तके हितार्थ दानस्वरूप अर्पण किया है। कहिये पाठक महानुभावो! अब तो मेरे प्रायश्चित्त तथा शाहजीकी दयालुता और दानशीलताका परिचय खूब मिला होगा!! सत्य है, मनुष्य चाटुकारिता तथा स्वार्थके वशीभूत हो जो कर डाले थोड़ा है!!!

नोट—शाहजीने मेरे "साँचको आँच क्या ?" नोटिसका, जिसका उल्लेख काण्ड ४ में किया है, सविस्तर उत्तर उपरोक्त काण्ड ५ में देकर सभ्य संसारको महत्वपूर्ण सत्यका रहस्य दर्शाया है और जहाँ जहाँपर मैंने "सत्य तथा न्याय" का गला घोंटनेकी चेष्टा की थी, उनपर जिस विद्वत्ता और चातुर्यके साथ प्रकाश डाल उनकी रक्षा की है, विचारशील तथा भद्र

का प्रत्युत्तर जो मैंने "स्थाली पुलाक" न्यायके आधारपर सूक्ष्म-रूपमें दिया है, पाठकोंके विचारार्थ आगे काण्ड ६ में दिया गया है।

पुरुषोंको विदित ही हो गया। किन्तु आश्चर्य है कि उन्होंने, सत्य धर्मके रक्षार्थ इतना अविरल परिश्रम करनेपर भी, मेरे उक्त नोटिसके ६- (१) तथा नोट (६) पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला। सम्भव है, उन्हें उनमें कोई "अलौकिक रासायनिक सिद्धांत विशेष" अथवा "अमूल्य सम्पत्तिके साधन विशेष" दृष्टिगोचर न हुए हों अथवा सत्य-प्रकाश-चमत्कारके चकाचौंधके कारण उनपर कोमल दृष्टि स्थिर न रह सकी हो। जो हो--सत्यधर्मकी रक्षा करना ही श्रेयस्कर है।

काण्ड ६
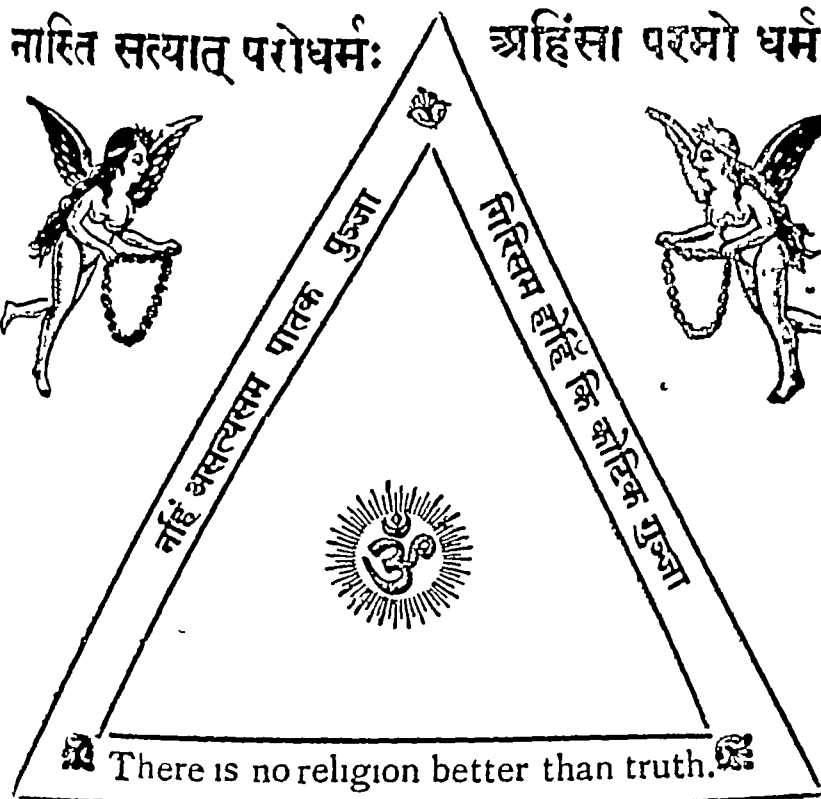
कोचर-शाह तिमिर भास्कर।

शाहजीके "साँचमें लाँछ" पालिशड नोटिस-का पोल दिग्दर्शनः—

नोट—त्रिभुजके आधारपर जो अंग्रेज़ीमें लिखा है, उसका अर्थ है—"सत्यसे बढकर दूसरा कोई धर्म नहीं है।"

मेहर काँपा चर्ख़ चक्कर खा गया ।
शाहजीके सत्यका जौहर खुला ॥
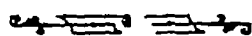
मुझे विश्वास था कि पाठशालाओंमें अध्यापक तथा विद्यार्थी "सत्य"से नहीं हटते, क्योंकि इन्हीं स्थानोंमें आचार्य सत्य-पथ-प्रदर्शक हुआ करते थे; परन्तु "सांचमें लाँछ" नामक नोटिस देखकर यह निश्चय होता है कि आधुनिक अध्यापकगण, जो पाश्चात्य रंगमें रँगे हुए हैं, सच्चे पथ-प्रदर्शक नहीं हैं किन्तु सत्यका अभिनयमात्र ही खेला करते हैं। उदाहरणार्थ, "साँचमें लाँछ" तथा शाहजीकी जगह दूसरे हेडमास्टरकी नियुक्ति और शाहजीके पदच्युत होनेसे जो मनुष्य पूर्णतया अभिज्ञ हैं वे समझ सकते हैं कि यह मेरे ही आन्दोलनका "प्रताप" है कि कोचर-महाशयने अपनी भूल कार्य रूपमें स्वीकार कर ली। परन्तु शाहजी-ने फिर भी जनताकी आँखोंमें धूल डालनेके अभिप्रायसे नोटिस निकालकर हिपाक्रिसी (Hypocrisy) का परिचय दिया है।

यद्यपि मेरा "जैन समाज" को मूर्ख सिद्ध करनेका अभिप्राय नहीं था और न है, किन्तु "जागृति" का था और है; परन्तु शाहजी-ने अपने निर्बल पक्षकी पुष्टि तथा सत्यको छिपानेके लिए "जैन समाज" को मेरे प्रति भड़कानेकी अनधिकार कुचेष्टा की है। शाहजीकी योग्यता तथा विद्योन्नतिका परिचय "विद्या" और "जागा" शब्दोंकी, जो मैंने अपने प्रथम दोहेमें लिखा था, व्याख्या-हीसे प्रकट होता है और जैन-समाजकी जागृतिका पता "साँच-

में लाँछ" के (क) भागसे लगता है कि प्लेगके बाद छात्र अबतक पाठशालामें नहीं आये और इस समय पाठशालाकी १५ वर्षकी विद्योन्नतिमें पाठशालाकी उच्चतम सप्तम कक्षामें छात्र-संख्या केवल १ तथा षष्ठ कक्षामे कदाचित् शून्य ही है। क्या ऐसी ही उन्नति करनेवाले कर्मचारी तथा मंत्रीगण कर्त्तव्यपरायण कहला सकते हैं? और इसी तरह नियम ६७ * की अवहेलना मेरी ओर बतलाना तथा श्रीमती अगरांजीके प्रति सहानुभूतिपूर्वक परामर्श न देना सर्वथा झूठ है। कदाचित् शाहजीको यह विदित नहीं है कि विभीषणका लङ्कासे निकलनेका कारण केवल उसकी सत्यता ही थी। यह भी एक विचित्र बात है कि नियम ७१† का बनानेवाला तो विद्वान् तथा सभ्य कहलावे और उसका कार्य रूपमें परिणत करने तथा करानेकी चेष्टा करनेवाला निर्लज्ज कहा जावे। क्या प्रातःकाल न उठना और विद्यार्थियोंका, शाहजीकी भाँति, आलस्यावतार हो जाना भी किसी "धर्मसिद्धान्त" या प्रचलित "सायंस" के अनुसार है अथवा "भाग्यवान्" होनेका चिह्न है? कदाचित् शाहजीका अभिप्राय भारतीय धर्मविमुख ग्रेजुएटोंके मतानुसार विद्यार्थियोंको धर्म-विमुख करनेका है और शायद इसीलिये शाहजीने धर्म-शिक्षा पढ़ानेका भार अपने ऊपर लिया है। क्या ही अच्छा कहा है कि :—

जाकी मतिभ्रम होइ खगेशू। ता कहँ पश्चिम उगहिं दिनेशू॥

---

*इस नियम नं० ६७ को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये।

† इस नियम नं० ७१ को परिशिष्ट नं० ११ देखिये।

विद्यार्थियोंका वहिष्कार "by the persuation of some teachers" के वढ़ा देनेसे भी न्यायानुकूल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जेलरके अपराधका दण्ड क़ैदियोंको देना असभ्यता तथा मूर्खता नहीं तो और क्या है? और स्थायी तथा अस्थायी-का विवेचन तो हेनरी आठवें की भाँति स्वयं पाठशालाका कर्त्ता-धर्त्ता ही नहीं करता तो भला आप कैसे कर सकते हैं?. इसका ज्वलन्त उदाहरण वा० वहादुरलालजी वी० ए० के वेतन तथा हरजानेकी डिग्री है कि जिसपर पर्दा डालना शाहजी तथा कोवर-महाशयकी शक्तिके वाहर है (देखिये परिशिष्ट नं० ८)। सत्य है कार्डिनल ऊलजे (Cardinal Wolsey) "जी हुजूरी" के अति-रिक्त कुछ न जानता था।

धन्य है कि शाहजीने, अपने प्रथम उत्तरानुसार मेरे प्रति स्कूल-रिमार्क-वुकको "रिमार्कोंसे अलंकृत" होना झूठ गुप्त रूप-से स्वीकार कर लिया अर्थात् ता० १६ जून सन् १९२३ ई० तक स्कूल छोड़नेके पहले कोई रिमार्क न वतला सके, यद्यपि मैं जानता था कि "वुभुक्षितः किं न करोति पापम्।" परन्तु पौने दो मास-के पश्चात्का केवल वा० पन्नालालजीकी ता० ७-८-२३ की रिपोर्ट* पेश की है कि जिसका लिखा लेना, जव कि वह नौकरी-ही-में थे, कुछ असम्भव नहीं है। यदि शाहजी मेरे नोटिस पत्र नं० ९३† ता० १२-६-२३ के "रासायनिक सिद्धान्त" को समझ

* इस रिपोर्ट-रहस्यका दिग्दर्शन परिशिष्ट नं० ७ में कीजिये।

† इस पत्र नं० ९३ को पृष्ठ ८८ में देखिये।

सकते तो वह उक्त रिपोर्ट पेश कर इस तरह सत्यता, सभ्यता तथा योग्यताका परिचय न देते। सत्यासत्यका निर्णय तो मेरी परीक्षाओंका परीक्षाफल भलीभाँति करा सकता है। यदि गुप्तरूपसे सहायता देकर अथवा शारीरिक दण्डादिद्वारा परीक्षोत्तीर्ण कराया गया या कराया जा सकता है तो क्या शाहजीने इसके लिये कभी किसी अध्यापकसे जवाबतलब किया? यदि नहीं, तो क्या कर्त्तव्यहीन होना भी **आत्मीय शुद्धि** तथा **आत्म-प्रदर्शिता** का चिन्ह है?

"कोचर महाशय तथा शाहजी" के शब्दोंको जो मैंने **रूढ़िवत्** संकेत किया था, उन शब्दोंको **यौगिक** बतलानेकी अनधिकार चेष्टा करना ही क्या विद्वत्ताका लक्षण है? "पुनर्नियुक्ति" के लिये त्रुटियाँ बतलाकर आन्दोलन करनेका भाव जो शाहजीने लिखा है वह भी विचित्र ही है। कदाचित् श्रीमान् माननीय लाला लाजपतिरायजी आदि नेतागण शाहजीके मतानुसार **नियुक्ति** हीके लिये आन्दोलन कर रहे हैं। सत्य है:—

> *"दोषाहिंको उमहै गहै, गुन न गहै खल लोक;*
> *पियै रुधिर पय ना पियै, लगी पयोधर जोंक ॥"*

शाहजीने अपने उत्तरमें **"हेत्वाभास"** शब्दका प्रयोग कर अपनी न्याय-विद्वत्ता जतानेकी चेष्टा प्रकट की है, परन्तु आश्चर्य है कि वह स्वयं मकड़ीकी भाँति चक्रदण्ड (Dilemma and Argumentum and populum) से बाहर न हो सके। क्या ऐसे ही विद्वान तथा आत्मवेत्ता भारतोद्धार करेंगे?

मेरा ही नहीं किंतु विद्वानोंका विश्वास है कि (Example is better than precept" अर्थात् गाल वजानेसे कार्यरूप-में परिणत होना ही श्रेयस्कर है।" केवल धर्म पढ़ाने और जीहुज़ूरीका जाप करनेहीसे "नमोऽरिहन्ताणम्" की व्याख्या समझमें नहीं आ सकती और न बुद्धि ही ठिकाने रह सकती है। स्कूल-सम्बन्धी नोटिसोंका अध्यापकोंके सूचनार्थ निकालना और फिर उसकी नक़ल या नोट रखनेपर न्याय-विरुद्ध बताना ऐसे ही बुद्धिमानका काम है कि जो सभामें अलापे और फिर उसको गुप्त रखनेकी चेष्टा करे। क्या यही पाण्डित्यका लक्षण है? और मेरे पत्र नं०१७४* ता० २२-१०-२३ तथा पत्र नं० १७६* ता० २४-१०-२३ का उत्तर न देना तथा "साँचमे लाँछ" नामक नोटिसकी प्रतियाँ मुझको माँगनेपर भी न देना क्या मनुष्यता है? अब जनता स्वयम् विचार करे कि "उलटा चोर कोतवालको दण्डै" जो शाहजीने लिखा है किसपर लागू है? क्योंकि—

साँच झूठ निर्णय करै, नीति निपुण जो होय।
राजहंस विन को करै, छीर नीरको दोय॥

मेरे पास दान दिया हुआ धन नहीं है जो मैं लम्बे-चौड़े इश्तिहार बाँटकर दुरुपयोग करूँ, बल्कि मेरा सत्य विचार यही है कि श्री जैन पाठशालासे क्रूरता तथा स्वेच्छाचारिताकी इतिश्री हो। मुझे सन्तोष है कि मेरे आन्दोलनपर ध्यान दे कमेटीने नये योग्य हेडमास्टरको नियुक्त कर **भविष्य सुधार**की चेष्टा की है।

---

* इन पत्रों (न० १७४ तथा १७६) को परिशिष्ट न० १५ मे देखिये।

ईश्वरसे प्रार्थना है कि यह **सुयोग्य हेड्मास्टर** कोचर महाशयकी स्वेच्छाचारिता तथा मन्थराके भँवर-जालका शिकार न होकर **छात्रों** के लिये **सच्चे पथप्रदर्शक** बनें।

"सुख, सम्पति, यशकी चाह नहीं, परवाह नहीं यह तन न रहे।
यदि इच्छा है, यह है, मनमें, **यह स्वेच्छाचार दमन न रहे॥"**

नोट—(अ) कोचर महाशय = बा० शिवबख़्शजी साहिब सेक्रेटरी, श्री जैन पाठशाला बीकानेर।

(ब) शाहजी = बा० मयाभाई टी० शाह बी० ए०, लेट-हेड्मास्टर तथा वर्त्तमान फ़र्स्ट असिस्टेण्ट मास्टर, श्री जैन पाठशाला, बीकानेर।

बीकानेर
ता० २६वीं नवम्बर
सन् १९२३ ई०।

कोचर-शाह स्वेच्छाचारिताका अन्त करनेवाला—

रामलौटनप्रसाद,
लेट असिस्टेण्ट मास्टर,
श्री जैन पाठशाला,
बीकानेर।

दि इण्डियन नेशनल प्रेस, "स्वतंत्र" आफ़िस, मछुआ बाज़ार कलकत्ता।

यह उपरोक्त "कोचर-शाह तिमिर भास्कर" मेरा अबतक अन्तिम नोटिस है, किंतु एक वर्षसे अधिक हो रहा है इसका कोई उत्तर नहीं मिला। सम्भव है कि शाहजीने "अपने आत्मीय

शुद्ध भावों" की विशेषताके कारण वैराग्य धारण कर लिया हो अथवा मौन-व्रतकी सौगन्ध ले ली हो, अन्यथा उन्होंने अपने "साँचमें लाँछ" नोटिसके "नोट २" के अनुसार मेरे शेष "अन्य सब गुणग्रामो" की पोल खोल जनताको अबतक अवश्य सावधान तथा सचेत कर दिया होता। कदाचित् वे कोचर महाशयकी १६ वर्षीय रिपोर्टके रंगनेमें संलग्न रहे हों जिससे कुछ विलम्ब हो गया हो। ख़ैर, अब तो कोचर महाशयकी १६ वर्षीय रिपोर्ट जनताको अलौकिक आनन्द लुटा रही है। देखें कोचर महाशयके रिपोर्ट-पिटारेसे कौन "अलौकिक रासायनिक सिद्धान्त विशेष" जनताके लाभार्थ निकलता है? इस रंगके आगे तो मन्थराके द्वारा रँगा हुआ कैकेयीके पिटारेका रंग फ़ीका जान पड़ता है। मन्थरा, तू धन्य है कि इतना काल बीतनेपर भी लोग तेरा गुणगान गाया करते हैं! जिस व्यक्तिमें तेरे गुणका प्रादुर्भाव हुआ कि उसकी पाँचों उँगली घीमें हुईं।

अब आगे अन्तिम काण्ड ७ मे परिशिष्ट विवरण है, जिसमें भूतपूर्व उल्लिखित विषयोंकी आवश्यकीय टीका-टिप्पणियोंका संक्षिप्त समावेश किया गया है तथा अन्य आवश्यकीय बातें दर्ज हैं।

काण्ड ७

परिशिष्ट विवरणः—

परिशिष्ट नं० १

श्रीजैनपाठशाला (केवल बालक-पाठशाला) बीकानेरका मेरी मौजूदगीसे आजतक भिन्न भिन्न समयो-
का मासिक व्यय लगभग इस प्रकार है :—

(अ) सितम्बर सन् १९२० ई० —

क्रम सं०	नाम अध्यापक आदि	वेतन	विशेष विवरण
१	श्रीयुत बा० श्रीरामजी गुप्त	७०)	नोट १—श्रीयुत पं० हरिकृष्णजी इसी मासमे नियुक्त हुए।
२	,, पं० हरिकृष्णजी	७०)	२—कक्षा ८ तक पढ़ाई होती थी किन्तु कक्षा ७ न थी।
३	,, ,, रमाशंकरजी पांडे	४७)	३—मासिक व्यय ३८४) है।
४	,, बा० रामलोटन प्रसाद	३०)	
५	,, ,, जेठमलजी	२७)	
६	,, पं० जीनमलजी व्यास	२५)	
७	,, पं० कृष्णगोपालजी	२०)	
८	,, ,, मणिलालजी	२५)	
९	प्रथम वाणिज्य अध्यापक }	४०)	
१०	द्वितीय ,, ,, }		
११	नौकरोंका वेतन	२०)	
१२	फुटकर व्यय	१०)	

(ब) जुलाई सन् १९२१ ई०—

नाम स०	नाम अध्यापक आदि	वेतन	विशेष विवरण
१	श्रीयुत बा० बहादुरलालजी बी० ए०	६०)	१—श्रीयुत बा० बहादुरलालजी बी० ए० इसी मासमे नियुक्त हुए और थोड़े ही दिनोंमे १००) मासिक किया गया।
२	„ „ श्रीरामजी गुप्त	७०)	२—श्रीयुत पं० हरिकृष्णजी त्यागपत्र दे ता० ६-७-२१ को चले गये।
३	„ पं० हरिकृष्णजी	७०)	३—कक्षा ७ तक पढ़ाई होती थी।
४	„ बा० रामलौटन प्रसाद	३७)	४—मासिक व्यय ४४५) है।
५	„ पं० साँगीदासजी व्यास	३५)	
६	„ „ गिरधरदेव चन्दजी	४५)	
७	„ बा० जेठमलज	२७)	
८	„ पं० हीरालालजी ओझा	२५)	
९	„ „ माणिकचन्दजी ओझा	१५)	
१०	नौकरोंका वेतन तथा फुटकर व्यय	२१)	

(स) जुलाई सन् १९२२ ई०—

क्रम संख्या	नाम अध्यापक आदि	वेतन	विशेष विवरण
१	श्रीयुत मया भाई टी० शाह बी० ए० *	१२५)	१—कक्षा ९ तक पढ़ाई होती थी। कक्षा ८ मे केवल १ लड़का था जो कक्षा ७ के साथ पढ़ता था, विशेष कभी नहीं पढ़ाया गया, परीक्षा भी कक्षा ७ हीके साथ हुई।
२	,, रामेश्वरदयालजी	७५)	२—मासिक व्यय ५२०) है।
३	,, पन्नालालजी	४५)	
४	,, रामलोटन प्रसाद	४०)	
५	,, साँगीदासजी व्यास	४०)	
६	,, जेठमलजी	३०)	
७	,, मेघराजजी गोस्वामी	२८)	
८	,, शान्तिलालजी धर्माध्यापक	४०)	
९	,, मालचन्दजी	२०)	
१०	,, माणिकचन्दजी ओझा	२०)	
११	नौकरोंका वेतन	२२)	
१२	फुटकर व्यय	१०)	
१३	श्रीयुत मुनीमजी	२५)	

(द) मई सन् १९२३ ई० (कमी मास)—

क्रम संख्या	नाम अध्यापक आदि	वेतन	विशेष विवरण
१	श्रीयुत मया भाई टी० शाह	१२५)	१—कक्षा ७ तक पढ़ाई होती थी। कक्षा ६ तथा ७ मे केवल एक एक विद्यार्थी थे।
२	,, रामेश्वरदयालजी	७५)	२—मासिक व्यय ४५२) है।
३	,, पन्नालालजी	४५)	
४	,, रामलौटन प्रसाद	४०)	
५	,, साँगीदासजी व्यास	४०)	
६	,, जेठमलजी	३०)	
७	,, मालचन्दजी	२०)	
८	,, माणिकचन्दजी ओझा	२२)	
९	,, मुनीमजी	२५)	
१०	नौकरोंका वेतन	२०)	
११	फुटकर व्यय	१०)	

(य) दिसम्बर सन् १९२३ (कमीके पश्चात्)—

क्रम-संख्या	नाम अध्यापक आदि	वेतन	विशेष विवरण
१	श्रीयुत चिम्मनलालजी गोस्वामी एम० ए०	१५०)	१ कक्षा ७ तक पढ़ाई होती थी।
२	,, मयाभाई टी० शाह बी० ए०	१२५)	कक्षा ७ मे जो एक ही लडका था
३	,, रामेश्वर दयालजी	७५)	उसको इसी मासमें कक्षा ८ में
४	,, (अमुक)	४०)	तरक्की दे कक्षा ८ स्थापित की गई।
५	,, चिम्मनलालजी मीतल	७५)	इस समय कक्षा ६ तथा ७ शून्य पड़ी
६	,, मालचन्द जी	२३)	हुई हैं।
७	,, माणिकचन्दजी ओझा	२५)	२—इसी मासमें शाहजीकी १०) और
८	,, शिवधन जी	२२)	पं० रामेश्वरदयालजीकी ५) वेतन वृद्धि
९	,, तृतीय मार्जा	१२)	हुई थी किन्तु द्वितीय महाशयने अस्वी-
१०	,, मुनीमजी	२५)	कार कर दिया।
११	नोकरोंका वेतन	२८)	३—मासिक व्यय ५७०) है।
१२	फुटकर व्यय	१०)	४—ता० १०।११।२३ को १५०) मासिक-
			पर नवीन मुख्याध्यापक नियुक्त हुआ।

(२) दिसम्बर सन् १९२७ ई० (वर्तमान दृश्य)

क्रम-संख्या	नाम अध्यापक आदि	वेतन	विशेष विवरण
१	श्रीयुत चिम्मनलालजी गोस्वामी एम०ए०	१६५)	१—कक्षा ९ तक पढ़ाई होती है किन्तु कक्षा ८ का पूर्णाभाव है। कक्षा ९में १ तथा ७ में २ विद्यार्थी हैं। २—अगस्त सन् १९२४ ई०में बिना परीक्षा लिये ही छात्रोंको तरक्की दे कोचर महाशयके सत्यानाशी हाई स्थ्यान्डर्डका निर्मूल किया गया। ३—आरम्भ सन् १९२४ इ०से प्रतिपदा तथा अष्टमीके बजाय आदित्यवारको छुट्टी होने लगी और गत ग्रीष्मकालसे नियम ७१ का पालन करना उचित तथा सभ्यतानुकूल समझा जाने लगा। ४—अगस्त सन् १९२४ई०में सन्ध्या समयका संगीत-क्लास खोला गया किन्तु न जाने कोचर महाशयकी स्वेच्छाचारितामें कौनसी बाधा आ पड़ी कि दो ही तीन दिनके पश्चात् इस कार्य्यको बन्द करना पड़ा। ५—मासिक व्यय ६२५) है। ६—पाठकगण आदश कमीका आनन्द लूट कोचर महाशयको बधाई दें और कर्त्तव्यपरायण-ताका गुण सीघ्र सर्वोन्नातिमें दत्तचित्त हों।
२	,, मयाभाई टी० शाह बी० ए०	१३५)	
३	,, रामेश्वरदयालजी	७५)	
४	,, विष्णुदत्तजी पुरोहित	४०)	
५	,, चिम्मनलालजी मीतल	२५)	
६	,, मालचन्दजी	२५)	
७	,, चाडालालजी धर्माध्यापक	४०)	
८	,, माणिकचन्दजी ओझा	२५)	
९	,, द्वितीय वाणिकाध्यापक	१५)	
१०	,, तृतीय ,,	१२)	
११	,, मुनीमजी	२५)	
१२	नौकरोंका वेतन	३२)	
१३	फुटकर व्यय	११)	

परिशिष्ट नं० २

श्री जैन पाठशाला बीकानेरके साथ साथ यहाँके अन्य मुख्य मुख्य विद्यालयोंका संक्षिप्त ब्यौरा इसी दिसम्बर सन् १९२४ ई० का लगभग इस प्रकार है :—

क्र०सं०	नाम विद्यालय	कक्षा	छात्र-सं०		मा०व्यय	प्रतिछात्र मा०व्यय	विशेष विवरण
१	श्री जैन पाठशाला	६ ८ ७ ६ ५	१ ० २ ३ ४	१०	४००	४०)	
	पक्षा ४ से मय घाणिका तक		१८०		२२५)	११)	
२	श्री मोहता मूलचन्द विद्यालय	८ ७ ६ ५	६ ८ ७ १४	३५	२०५)	५॥≈)	

	कक्षा ४ से मय वाणिकातक	——	२२५	३४५)	१।≡)॥	
३	श्रीराम विद्यालय	..	१६०	१४०)	॥≈)	इन पाठशालाओंमें लगभग कक्षा ४ तक ही पढ़ाई होती है।
४	वी० के० विद्यालय	...	१४०	१५०)	१⁄-)	
५	श्रीकृष्ण विद्यालय	...	१२५	१५०)	१≡)	
६	अगरचन्द भै० से० स्कूल * (यह भी जैन संस्था है]	...	१००	२५०)	२॥)	

* यहांपर विशेषता यह है कि इतिहास, भूगोल तथा गणितकी शिक्षा नहीं दी जाती है। सुना जाता है कि इन विषयोंको यह संस्था व्यापारके लिये लाभदायक नहीं समझती। यह विचार माननीय है अथवा नहीं—इसका निर्णय पाठकोंपर निर्भर है।

परिशिष्ट नं० ३

श्री जैन पाठशाला बीकानेरके हितार्थ "नियम नं० ६७ *" के आधारपर भिन्न भिन्न समयोंपर मेरी मौखिक सम्मतियोंके अतिरिक्त लिखित सम्मतियाँ ये हैं:—

(१)

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर,
ता० १३-१०-२०.

श्रीमान् हेड्मास्टरजी,

यह निर्विवाद सिद्ध है कि समाचार-पत्रादि पढ़नेसे देश, काल आदिका ज्ञान अधिक होता है और इससे छात्रोंको पठन-पाठनमे विशेष सुविधा होती है किन्तु यहाँपर पत्रोंका बिलकुल ही अभाव है।

अतः पाठशाला तथा छात्रोंके लाभार्थ दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएं उचित संख्यामें मँगानेका प्रबन्ध यदि शीघ्र किया जावे तो अत्युत्तम हो।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
रामलौटन प्रसाद, असिस्टेण्ट मास्टर।

———

(२)

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर,
५-१२ २०

श्रीमान् हेड्मास्टर साहिब,

प्रार्थनाके समय तमाम छात्रोंका हालमे उपस्थित होना अनि

* इस नियम नं० ६७ को परिशिष्ट नं० ११ में देखिये।

आवश्यक तथा लाभदायक है। मैं अकसर देखता हूँ कि कतिपय छात्र प्रार्थनाके समय क्लासमें बेकार बैठे रहते हैं अथवा इधर-उधर व्यर्थ घूमा करते हैं।

इसलिए निवेदन है कि तमाम छात्रोंको प्रार्थनाके समय उपस्थित होनेके लिये पूर्ण ताकीद की जावे। यदि इस समयपर अध्यापकगण भी उपस्थित रहें तो और उत्तम हो।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

रामलौटन प्रसाद, असिस्टेण्ट मास्टर।

---

(२)

माननीय हेड्मास्टरजी,

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर,

ता० ७-१-२१,

अधिकांश लड़के ऐसी सख्त सर्दीके दिनोंमें पतले तथा गन्दे कपड़े पहन कर आते हैं। इससे सर्दी लग जानेसे भयंकर बीमारी का डर है। इसलिये लड़कोंके स्वास्थ्य-रक्षार्थ हिदायत कर दी जावे कि वे मजबूत तथा स्वच्छ कपड़े पहनकर पाठशालामें आवें और साथ ही यह भी सूचित कर दिया जावे कि गहने पहनकर पाठशालामें आना सदा अहितकर है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

रामलौटन प्रसाद, सहायक-अध्यापक।

* (४)

श्रीयुत हैड्मास्टर साहिब,

श्री जैन पाठशाला, वीकानेर,

ता० २५-५-२१,

यहाँपर ता० २३-५-२१ से कक्षा ६ के लड़कोंको जियोमेटरीके स्थानपर अर्थशास्त्र पढ़ाया जाने लगा है। इसका पढ़ाया जाना उत्तम तो अवश्य है किन्तु इससे लड़के मैट्रिक-परीक्षामें सम्मि-लित नहीं हो सकते, क्योंकि मैट्रिकमें जियोमेटरी अनिवार्य विषय है। ऐसी दशामें अर्थशास्त्रका पढ़ाया जाना तभी अच्छा होगा, जब कि मैट्रिक परीक्षामें लड़कोंके भेजनेका विचार न हो।

इसलिये सादर निवेदन है कि लड़कोंके भविष्यपर पूर्ण विचार कर उचित कार्रवाई की जावे।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

रामलौटन प्रसाद।

---

(५)

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर,

ता० ५-८-२१,

श्रीमान् हेडमास्टर साहिब,

यदि प्रत्येक अध्यापकका एक एक घण्टा तथा हैडमास्टरका

---

* इस अर्जीके पश्चात् भा ने प्राय. अपनी मौखिक सम्मति प्रकट करता रहा जिसका फल यह हुआ कि ता० ७-७-२१ से पुन जियोमेटरी पढाई जाने लगी और इसी कारण आज कक्षा २ स्थापित हो सकी है।

कमसे कम २ घण्टे ख़ाली रक्खे जावें तो शिक्षण-कार्यमें विशेष लाभ हो सकता है।

आशा है कि मेरे इस विचारपर उचित विचार किया जावेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

रामलौटन प्रसाद, असिस्टेण्ट मास्टर।

---

(६)

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर,

ता० ३-१२-२१.

श्रीयुत हेडमास्टर साहिब,

प्रत्येक परीक्षाके लिये पाठशालाकी ओरसे उचित मूल्य लेकर अथवा अमूल्य विद्यार्थियोंको स्याही, निब, होल्डर, काग़ज़ और कॉपी आदि दिये जानेका प्रबन्ध होना निहायत ज़रूरी है। ऐसा न होनेसे कार्यमें अधिक असुविधा रहती है, क्योंकि लड़के बाज़ारसे अकसर रद्दी सामान लाते हैं और कभी कभी उन्हें लाना भी भूल जाते हैं। यदि प्रबन्ध पाठशालाकी ओरसे कर दिया जावे तो बड़ा ही अच्छा हो।

आशा है कि मेरी इस प्रार्थनापर विचार किया जावेगा।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

रामलौटन प्रसाद, सहायक-अध्यापक।

---

*(७)

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर,
ता० ६-२-२२.

मान्यवर हेडमास्टरजी,

यहाँपर कक्षा ३ से गणित आरम्भ होता है इससे छात्र कमज़ोर रह जाते हैं। यदि आगामी सेशनसे कक्षा १ से गणित आरम्भ कर दिया जावे तो गणितमें लड़कोंकी योग्यता उच्च कक्षाओंमें अच्छी रहेगी।

आशा है कि आप इसपर उचित विचार करेंगे।

आपका आज्ञाकारी सेवक,
रामलौटन प्रसाद, असिस्टेण्ट मास्टर।

---

(८)

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर,
ता० २६-६-२२.

श्रीयुत हेडमास्टरजी,

साप्ताहिक "छात्र-सभा" के दिन स्कूल-पढ़ाईका काम ५ वें

---

* यह मेरी अर्जी शाहजीकी मौजूदगीकी है। इसका प्रभाव यह हुआ कि आरम्भ सेशन अप्रैल सन् १६२३ ई० कक्षा २ से गणित पढ़ाया जाने लगा। किन्तु कोचर महाशयकी "स्वेच्छाचारिता" तथा शाहजीकी "जी-हुजूरी" के कारण अप्रैल सन् १६२३ ई० से एकदम कक्षा ४ तक गणित बन्द कर दिया गया। अब श्रीयुत प० चिम्मनलालजी गोस्वामी एम० ए० के समयसे मेरी प्रार्थनाके अनुसार ही कार्रवाई होने लगी है अर्थात् कक्षा १ से गणित पढ़ाया जाने लगा है।

घण्टेके वाद बन्द हो जानेसे अन्तिम दो घण्टोंके विषय शेष रह जानेसे छात्रों तथा अध्यापकोंके कार्य अधूरे रह जाते हैं।

इसलिये सादर प्रार्थना है कि सभाके दिन प्रति घं० ३० मिनटका नियत कर सातों घं० रक्खे जावें और इस दिन जलपान आदिके लिये ५ वें घं० के वाद छुट्टी हुआ करे और सभाका समय ३ वजेसे ४॥ वजेतक रक्खा जावे।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

रामलौटन प्रसाद, असिस्टेण्ट मास्टर।

नोट—इस प्रार्थनाको स्वयं शाहजीने स्वीकार किया और इसीके अनुसार कार्य करने लगे।

---

(६)

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर,

१-१-१९२३,

श्रीमान् हेडमास्टरजी,

आगामी सेशनके लिये कोर्स आदिके विषयमें अपनी सम्मति प्रकट करता हूँ। आशा है कि स्कूलके लाभार्थ उचित विचार कर कृतार्थ करेंगे:—

१—हिन्दी कोर्स (वार्षिक) :—

प्रारम्भिक कक्षा (अ) प्राइमर + वालविनोद भाग १,
" " (व) वालविनोद भाग २ और ३.
कक्षा १ वालविनोद भाग ४ [पूर्वार्ध]।
" २ " " ४ (उत्तरार्ध)।

" ३ " " ५ (गद्य भाग पूर्ण)—१६७ पृष्ठतक।
तथा
बालबोध व्याकरण आधा।

" ४ हिन्दी प्रवेशिका नवीन+बालबोध व्या० पूर्ण।

" ५ संग्रहशिरोमणि आधी + सत्य हरिश्चन्द्र आधा + व्या०।

" ६ " " पूर्ण + सत्य हरिश्चन्द्र पूर्ण + व्या०।

कक्षा ७ और ८—राज्य करीक्युलमके अनुसार।

२—अंग्रेज़ी कोर्स (वार्षिक):—

कक्षा १	M N E R. Primer I, II
" २	" " " " Book I.
" ३	" " " " " II.
" ४	" " " " " " III.
" ५	" " " " " IV
" ६	" " " " " " V.
" ७ और ८	According to state Curriculum

३—पाठशालाका समय:—

पाठशालाका प्रार्थना-समय—१०.४५ से ११ बजेतक।

पाठशालाकी पढ़ाईका समय ११ बजेसे ४.१० बजेतक हो जिसमे आध घण्टेकी छुट्टी जलपान आदिके लिये रहे। समय विभाग ४० मि० के हिसाबसे ७ घण्टे हो। प्रत्येक अध्या-

पकका एक घं० खाली हो। अंग्रेज़ी कक्षाके लड़कोंका वाणि-काके लिये प्रातःकालकी पाठशालामे आना अनिवार्य न रक्खा जावे। इससे छात्रोंको ठीक समयपर पाठशालामें पहुँचना अति कठिन है और अस्वस्थ्य हो जानेका अधिक भय है।

आपका आज्ञाकारी सेवक,

रामलौटनप्रसाद, सहायक अध्यापक।

नोट—कोचर महाशयके हाई स्ट्याण्डर्डका ध्यान रखते हुए मैंने अपना मत प्रकट किया है! कोचर महाशयका निर्धारित कोर्स इससे विशेष कठिन है। मेरे उक्त विचारपर भला "ठकुरसुहाती" के अनुयायी शाहजी क्यों ध्यान देने लगें ? अब गोस्वामीजीके समयमें मेरे विचारोंका शनैः शनैः आदर होने लगा है।

१०—परीक्षा-सम्बन्धी उपदेश

ता० ७-२-१९२३ को यह लिखित "परीक्षा-सम्बन्धी उपदेश" विद्यार्थियोंके लाभार्थ **शाहजी** के सभापतित्वमें "बालसभा"में तमाम उपस्थित अध्यापकों तथा छात्रोंके समक्ष समझाया और इसी प्रकारका किन्तु इससे संक्षिप्त उपदेश इसके पूर्व भी शाहजी-के सभापतित्वमें छात्रोंको समझाया गया है किन्तु तिसपर भी खुशामद तथा चाटुकारिताके अधीन हो शाहजीने लिखते समय कुछ ध्यान न किया। मुझे पूर्ण आशा है कि उस समयके समस्त उपस्थित अध्यापक तथा छात्र मेरी इस लघु सेवाको अबतक इस आन्दोलन-काण्डके जारी होते हुए भी न भूले होंगे:—

परीक्षामें बैठना है। समय निकट आ गया है। सब अच्छी

तरह याद है। जो कुछ त्रुटियाँ हैं वे शीघ्रतासे पूर्ण की जा रही हैं।

परीक्षामे वैठ गये। सब प्रश्नोंको अच्छी तरह किया। ५० फ़ी सदीको कौन कहे ६०, ७० फ़ीसदीसे कम नम्बर किसी भी दशामें आनेकी सम्भावना नहीं—इधर-उधर घूमघामकर गाल बजा रहे हैं कि पास तो हो ही जायँगे—किन्तु "फेल!" आश्चर्य है कितने परीक्षार्थी जो पास होनेके योग्य न थे वे तो पास हो गये और जिनकी पूर्ण आशा थी वे फ़ेल हो गये—आश्चर्य, अवश्य अन्याय हुआ है। उत्तर तो ऐसी शान के साथ डटकर लिखा कि परीक्षक उत्तरकी उत्तमताको देख दङ्ग हो जायगा किन्तु इस समय तो हम ही दङ्ग हो गये हैं।

फेल होनेके कारणः—

तैयारी ठीक नही रहती, वरावर पढ़ा नही रहता है, याद तो खूब रहता है किन्तु उत्तर लिखनेका ढङ्ग मालूम नहीं रहता।

प्रश्नोंका उत्तर कैसे देना चाहिये—

(१) प्रश्नपत्रको वहुत सावधानी और धीरताके साथ पढ़ो। प्रश्नपत्रको तो सभी पढ़ते हैं किन्तु ध्यानपूर्वक पढ़नेवाले वहुत कम होते हैं। पत्रको एक वार ज्यों त्यों पढ़ा वस क़लम उठाकर लिखना आरम्भ कर दिया, किन्तु ऐसा कदापि नही करना चाहिये। प्रथम तो प्रश्नपत्रको ध्यान और धीरजसे पढ़ो, कितने प्रश्न करने हैं, समय कितना है, कौनसा प्रश्न कितने महत्वका है, प्रश्नकी महत्ता नम्बरपर निर्भर है! इन सव वातोंको विचारकर

उत्तर लिखना आरम्भ करना चाहिये। समयकी पूर्ण क़द्र करना, ऐसा नहीं कि ३ घण्टेका प्रश्न एक घण्टेमें कर दिया। बस चलो बला टली। किन्तु ऐसा स्वप्नमें भी न करना वरन् जन्मभर पछ-ताना पड़ेगा। सरल प्रश्नको पहिले, कठिन प्रश्नको अन्तमें, और सोचनेवाले प्रश्नको समय बचनेपर करना उचित है। सरल प्रश्नोंको सन्तोष-पूर्वक करनेसे उत्साह और शान्ति रहती है, जिनकी विशेषतः परीक्षामें अत्यन्त आवश्यकता है। यदि एक पर्चा बिगड़ जावे तो व्यर्थकी चिन्ता न करना, भविष्यकी बात देखना उत्तम है।

(२) पर्चेको ध्यानपूर्वक पढ़नेके बाद, इस बातको देखो कि किसी प्रश्नका उत्तर लिखनेके पहले तुम उसे ठीक समझते हो या नहीं। अशोकका चरित्र कैसा था? लड़के उत्तर लिखते हैं, उसके राज्यकी घटनाएँ तथा फ़तह इत्यादि। इस प्रकार ५ मिनटके २५ मिनट नष्ट करते हैं और नम्बर एक भी नहीं पाते। इसीको *नासमझी* कहते हैं।

(३) प्रश्नका ठीक अर्थ समझनेके बाद और उसका उत्तर लिखनेके पहले, "पूरा उत्तर" अपने मनमें पहले सोच लो। यदि ऐसा न करोगे तो मुमकिन है कि असल उत्तरको छोड़ ऊटपटाङ्ग उत्तर लिख कर व्यर्थमें मूर्ख बनो।

(४) उत्तर निश्चय कर लेनेपर, लिखनेके पहले, प्रत्येक वाक्यकी रचना अपने मनमें कर डालो। ऐसा न करनेसे व्याकरण सम्बन्धी अनेकों अशुद्धियाँ होती हैं, जिनसे महा अनर्थ हो जाते हैं।

(५) अपने अर्थको बहुत ही सरल और स्पष्ट शब्दोंके द्वारा प्रकट करो। ऐसा करनेसे तुम्हारा भाव परीक्षक सरलतासे समझ सकेगा। शब्द, वाक्य आदि साधारण तथा सरल हों।

(६) भाव संक्षेपमें लिखनेका ध्यान रक्खो—यह केवल लगातार अभ्यासपर निर्भर है।

(७) सुन्दरतासे लिखनेका ध्यान रक्खो। यदि अभाग्यवश समय कम है तो १० प्रश्नोंमेंसे ८ या ६ ही प्रश्नोंको करो किन्तु जो लिखो सो साफ़ लिखो।

(८) एक एक प्रश्न करते जाओ और जो कुछ लिखा है उसे दोहराते जाओ। दोहरानेसे अशुद्धियाँ मालूम हो जाती हैं। दोहराना अच्छा है, सम्भव है कि सब प्रश्न करनेके बाद तुम्हे दोहरानेका मौक़ा न मिले।

(९) केवल वही बात लिखो जिसे तुम निश्चयपूर्वक जानते हो, अटकल लगाना अच्छा नहीं। परीक्षकको धोका देना अच्छा नहीं, परीक्षकको मूर्ख न समझना चाहिये। परीक्षकको केवल नम्बर देनेकी मशीन नहीं समझना चाहिये। उसमें अवश्य कुछ न कुछ बुद्धिका विकाश रहता है।

(१०) जिस शब्द अथवा वाक्यसे दो अर्थ निकलते हों, उसका प्रयोग कदापि न करो। जिस बातको तुम असलमें नहीं जानते हो, उसे तुम जानते हो ऐसा परीक्षकको मत जताओ।

सारांश—

बस, प्रश्नोंका उत्तर लिखते समय, उपरोक्त दस बातोंका

विचार रक्खो। सावधानी और बुद्धिमानीसे काम लो, ईमानदारीसे अपनी योग्यता दिखानेका प्रयत्न करो। पर्चेको सावधानी और धीरजके साथ पढ़ो। जो कुछ और जितना तुमसे पूछा गया है उतना ही लिखो। अटकल मत बाँधो और परीक्षकको धोखा मत दो।

अन्य आवश्यकीय बातें—

सामान—२ क़लम, २ होल्डर, २ पेंसिल, १ चाक़ू, २-४ अच्छी अच्छी निबें, १ रूमाल, अच्छी तथा चलती स्याही, कॉपी (प्रश्नोत्तर-पत्र) सुन्दर तथा स्वच्छ किन्तु पर्चे अलग अलग न हों। प्रश्न लिखनेका कागज़ साफ़ और सुथरा हो, कागज़पर पहलेसे कुछ भी न लिखो। प्रश्न लिखनेके लिये काफ़ी कागज़ लाओ। प्रश्नको अच्छी तरह ध्यानसे सुनकर लिखो। कॉमा आदितक चिन्ह छूटने न पावें।

समय—नियत समयसे कमसे कम १५ मिनट पहले परीक्षा-स्थानपर उपस्थित होना उचित है। परीक्षा-स्थानको निर्धारित समयके पहले छोड़ना किसी भी हालतमें लाभदायक नहीं है। समयसे पहले जल्दी जल्दी काम करके परीक्षा भवनसे चला जाना अति हानिकारक है। परीक्षाभवनमें, नियत समयसे पहले अपने आवश्यकीय कार्योंसे निवृत्त होकर, शान्तिपूर्वक बैठना चाहिये। यदि कोई आवश्यकता पड़े तो निरीक्षकसे आज्ञा लेकर जा सकते है। यदि किसी वस्तुकी आवश्यकता पड़े तो चुप-चाप अपने स्थानपर खड़े हो जाओ—शीघ्र तुम्हारी उचित आवश्यकता पूर्ण कर दी जावेगी।

गणित—चिह्नोंपर पूर्ण ध्यान रक्खो । अंकोंको ठीक ठीक लिखो । ऐसा नहीं कि + के स्थानमें — और —के स्थानमे + या ×, – आदि कर दिया । अथवा १५·के स्थानमे ५१ या ७२ के स्थानमे २७ कर दिया—विशेष और पूर्ण ध्यान रहे ।

उत्तर लिखनेके नियम – उत्तर पुस्तकका चौथा भाग किनारा छोड़ दो । किनारे पर केवल प्रश्नकी क्रम-संख्या ही लिखो । पृष्ठके दाहिने तरफ़ केवल एक ही ओर लिखो । बायें पृष्ठ-पर गुणा, भाग आदि क्रिया रफ़के तौरपर कर सकते हो—उत्तर-पत्रका केवल दाहिना ही पृष्ठ देखा जाता है, इससे सुन्दरताके साथ लिखो । एक पृष्ठपर केवल एक ही प्रश्न करो । हाँ, यदि एक प्रश्नके अ, ब, स, आदि कई भाग हों तो उन्हें एक पृष्ठपर कर सकते हो । यदि कोई उत्तर अशुद्ध जान पड़े और परीक्षकको दिखाना न चाहो तो चारों कोनोंसे दो लकीरोंद्वारा काट दो ।

इनपर विशेष ध्यान दें—

चाँद, संदूक, लड़का, पढ़ना, विद्या, बाक़ी, , ०, विशेष,
इतिहास बन्दूक
प्रशंसा आदि आदि । ~~इतीहास~~ इतिहास, ~~बन्दुक~~ बन्दूक, नहीं, नही, ता०, ता० । Receive, Relieve, Radius, Previous, mathematics, Arithmetic, algebraical, Separate, boundary, history, infantary, centre and factor etc.

नोट—यदि उपर्युक्त परिशिष्ट नं० ३ का कुछ भी ध्यान होता, तो शाहजी अपने नोटिसोंमे ये अनर्गल बातें कदापि न लिखते—

(१) मेरे लिये नियम नं० ६७ की अवहेलना बताना, सेवा-कालमे सत्यका पक्ष छोड़ना आदि आदि।

(२) परीक्षाके समय * गुप्त रूपसे सहायता आदि देनेका स्वप्न देखना।

(३) कर्त्तव्यपालनकी हत्यारूप आप (रामलौटन प्रसाद) की तीन वर्षतक चुपचापी ... .।

यह शाहजीके "आत्मीय शुद्ध भावों" का चमत्कार है—शाहजीने स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि चाटुकारिताके वशीभूत होनेसे मनुष्यको सत्यासत्यका विचार लेशमात्र भी नहीं रहता। सत्य है—"सत्यसे डिगा कि दीन व दुनिया दोनोंसे गया।"

परिशिष्ट नं० ४

मेरी नियुक्ति (ता० २५-८-१९२०) से आजपर्यन्त श्री जैन-पाठशाला बीकानेरसे इस प्रकार अध्यापकगण पृथक् हुए हैं—

१—स्वर्गवासी श्रीयुत पं० जीतमलजी व्यास—आप एक परिश्रमी, सदाचारी तथा कर्त्तव्य-परायण नवयुवक अध्यापक थे। कोचर महाशयके कारण विना किसी नोटिस आदिके अकारण ही आप पाठशालासे एकदम विदा हो गये। क्यों न हो, कोचर महाशय पूर्ण न्यायकारी जो ठहरे!

२—श्रीयुत पं० कृष्णगोपालजी—आप कोचर महाशयके दूसरे शिकार हैं।

*यहापर शाहजीने अपने कर्त्तव्य-पालनका पूर्ण परिचय दिया है। देखो परिशिष्ट नं० ११, नियम नं० ८४।

३—श्रीयुत पं० रमाशङ्करजी पाण्डेय विशारद—आपकी नियुक्ति यहाँपर ता० ७-३-१६ ई० को ३५) मासिकपर हुई थी। इनकी योग्यताका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि लगभग दो ही वर्षके अन्दर ४७) मासिक पाने लगे थे। इन्होंने फ्लैग ड्रिल, स्काउटिङ्ग, देशी व्यायाम, संगीतद्वारा प्रार्थना आदि आदिका प्रचार कर पाठशालाको उन्नत बनानेके लिये पूर्ण चेष्टा की थी और सफलता भी हुई थी। इनके उत्साहको देखकर विद्या-प्रेमी श्रीयुत सेठ उदयचन्दजी रामपुरियाने लड़कोंके लिये यूनीफ़ॉर्म बनानेमें विशेष सहायता दी थी किन्तु दयालु तथा न्यायी कोचर महाशयकी समय समयकी उदासीनताने इन प्रशंसनीय कार्योंपर हरताल फेर इन्हें सदाके लिये निर्मूल कर दिया। आप स्त्रीके सख़्त बीमार होनेपर उसे घर ले गये। ऐसी अवस्थामें छुट्टीका हक़ रहते हुए भी कोचर महाशयने अनेकों झंझटें पैदा की। अतः इनके स्वेच्छा-पूर्ण व्यवहारोंसे तङ्ग आकर त्यागपत्र दे पाठशालासे पृथक् हो गये। कोर्ट आदिकी धमकीपर परम दयालु तथा आदर्श सज्जन कोचर महाशयने पृथक् होनेके पश्चात् स्वयं बुलाकर शेष वेतन छुट्टी आदिका अदा किया। क्या ही अच्छा होता यदि कोचर महाशय इनके त्याग-पत्रको प्रकट कर जनताको कृतार्थ करते! आजकल आप श्री डूँगर कॉलेज रियासत बीकानेरमें एक सहायक अध्यापक हैं।

४—श्रीयुत पं० मणिलालजी यति—आप यहाँपर धर्माध्यापक थे। छात्रोंको धर्मकी शिक्षा सुचारु रूपसे दिया करते थे।

किसी प्रकारकी कोई त्रुटि सुनने तथा देखनेमें न आयी। आपमें चापलूसी आदिका पूर्णाभाव था—केवल कर्त्तव्यपरायणताको मुख्य समझते थे। अतः कोचर महाशयके एक मासके नोटिस-पर शिकार हो गये।

५—श्रीयुत पं० हरिकृष्णजी—आप सितम्बर सन् १९२० ई०-में यहाँ ७०) मासिकपर अध्यापक नियुक्त हुए। आप बड़े अध्य-वसायी तथा आदर्श अध्यापक थे। छात्रोंके चरित्र-सुधारकी ओर आपका विशेष प्रेम था। अध्यापकों तथा छात्रो प्रति आपका पवित्र प्रेम अनुकरणीय था। आप कर्त्तव्य-परायण तथा शान्ति प्रकृतिके नवयुवक थे। आप ही यहाँकी "छात्र-सभा-के पुनर्जन्मदाता हैं। आपने जुलाई सन् १९२१ ई० मे सी० टी० कालेजमें अध्ययन करनेके लिये त्याग-पत्र दिया। ऐसे शुभाव-सरपर प्रसन्नतापूर्वक सादर विदा करना तो दूर रहा प्रत्युत पूर्ण स्वच्छन्दताके साथ कोचर महाशयने ता० ५-७-२१ को इनका त्याग-पत्र गीदड़भवकी देते हुए मंजूर कर अपनी सभ्यता, नम्रता तथा दयालुताका दृश्य उपस्थित किया। आजकल आप वीकानेर राज्यके सर्दारशहर स्कूलमें सेकण्ड मास्टर हैं।

६—श्रीयुत पं० सूर्यकरणजी आचार्य्य बी० ए०—आप यहाँ-हीके निवासी हैं। आप शान्ति-प्रिय तथा विचारशील पुरुष हैं। आपका ध्यान सुधारमें विशेष रहता है। इस पाठशालाकी स्थिति सुधारनेके हेतु ही आपने जून और जुलाई सन् १९२१ ई० मे लगभग दो मासतक यहाँपर अवैतनिक कार्य किया। आप

ऑनरेरी हेड् मास्टर थे। आप हिन्दूविश्वविद्यालय काशीसे एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर आजकल बीकानेर राज्यके हाई-कोर्टके रजिस्ट्रार हैं।

७—श्रीयुत बा० भागवतसिंहजी विशारद—आप यहाँपर हिन्दीके अध्यापक थे। पूर्णरूपसे अपना कर्त्तव्यपालन करते थे। इनके कार्यमें कभी किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं पायी गयी। तमाम छात्र इनके सद्व्यवहारसे पूर्ण सन्तुष्ट थे। आप अपने चचाकी बीमारीका समाचार पा छुट्टी ले घर गये। चचाके शीघ्र स्वस्थ न होनेपर पुनः छुट्टीकी प्रार्थना की किन्तु बा० बहादुरलालजी बी० ए० हेड्मास्टरकी सिफारिशपर भी कोचर महाशयने अवैतनिक छुट्टीतक ऐसी दशामें स्वीकार न की और शीघ्र आनेके लिये नादिरशाही ऑर्डर लिख भेजा। ऐसी अवस्थामें चचाको छोड़कर आना कहाँतक सम्भव है। पाठकगण स्वयं विचार करें। अतः कोचर महाशयके इस व्यवहारपर उन्होंने त्याग-पत्र भेज पाठशालासे सम्बन्ध तोड़ लिया। यह कोचर महाशयके अलौकिक न्याय तथा दयालुताका आदर्श नमूना है। कोचर महाशयकी सज्जनता तो इसीमें है कि वह इनके त्याग-पत्रको जनताके विचारार्थ प्रकट कर दें।

८-श्रीयुत बा० श्रीरामजी गुप्त—आपकी नियुक्ति यहाँपर मुझसे बहुत पहले हुई थी। आप कुछ समयतक प्रधानाध्यापक थे। आप अपने कार्यको अच्छी तरह संचालन करते थे। आप अपने प्यारे भतीजेकी बीमारीका समाचार पा छुट्टी ले

उसको देखनेके लिये घर गये। अभाग्यवश उनका प्यारा भतीजा कुटुम्बियोंको शोक-सागरमें छोड़ स्वर्गवासी हो गया। ऐसी दुःखमय व्यवस्थाके उपस्थित होनेपर उन्होंने नियमानुसार छुट्टीकी अर्ज़ी भेजी। छुट्टी मंजूर करनेके लिये बा० बहादुरलालजी बी० ए०: हेड्मास्टरने बहुतेरा कहा किन्तु न्यायशील, दयालु, आदर्श सज्जन कोचर महाशयने करुणासे बाध्य हो शीघ्र उपस्थित होनेको लिख अलौकिक सहानुभूति प्रकट की। भला ऐसी परिस्थितिमें "उपस्थित" शब्दका प्रयोग कहाँतक करुणा तथा नम्रतापूर्ण है, विचारशील सज्जन स्वयं मनन करें। अतः अन्तमें कोचर महाशयने डिसमिसल (Dismissal) ऑर्डर भेज उन्हें शान्ति प्रदान कर अपने दयालुताका अलौकिक परिचय दिया। यही कोचर महाशयकी दयालुता आदिके चिन्ह हैं।

६—श्रीयुत बा० बहादुरलालजी बी० ए०—आप ता० २१-७-२१ को यहाँपर ६०) मासिकपर हेड्मास्टर नियुक्त हुए। थोड़े ही दिनोंके पश्चात् आपका कार्य सन्तोषजनक होनेसे १००) मासिक किया गया। आप बड़े कर्त्तव्यपरायण, उत्साही तथा पाठशालाके पूर्ण शुभचिन्तक थे। आपमें चापलूसी और चाटु-कारिता आदिकी बूतक न थी। यही कारण था कि आपसे कोचर महाशय हृदयसे प्रसन्न न थे। किसी आवश्यक कार्यवश दिसम्बर सन् १९२१ ई० में १० दिनकी इत्तफाक़िया छुट्टी ले आप घर चले गये। इसी बीचमें कोचर महाशयने अपने स्वभावा-नुकूल एक दूसरे नये हेड्मास्टर (बा० मया भाई टी० शाह बी०

ए०) को १२५) मासिकपर ता० २१ १२-२१ को नियुक्त कर लिया। जब आप अपनी छुट्टीके पश्चात् ता० २६-१२-२१ को पाठशालामे उपस्थित हुए तो यह अचानक तथा विलक्षण परिवर्त्तन देख अवाक् रह गये। पूछताछ करनेपर कोचर महाशयने अपनी स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छन्दताका परिचय देते हुए आपको *स्थायीसे अस्थायी* बतलाया। भला इस धींगाधींगीको एक सच्चा कर्त्तव्यपरायण तथा आत्माभिमानी वीर नवयुवक चुपचाप कैसे सहन कर सकता है ! अतः आपने दूसरे ही दिनसे पाठशाला छोड़ दी। अपने रुपयेके लोभसे नहीं किन्तु कोचर महाशयकी स्वेच्छाचारिता निर्मूल करनेके लिये सद्भावसे बीकानेर कोर्टमें दावा कर अपनेको स्थायी सिद्ध किया और कोचर महाशयकी स्वेच्छाचारिताके कारण पाठशालाके ऊपर २००) से अधिककी डिग्री हुई (देखिये परिशिष्ट नं० ८)।

१०—श्रीयुत पं० गिरधरदेवचन्दजी दोसी—आप यहाँपर ४५) मासिक पर धर्माध्यापक थे। आप कर्त्तव्यपरायण, विचारशील तथा शान्ति-प्रिय आदर्श धर्माध्यापक थे। विद्यार्थियोंको धार्मिक पथपर दृढ़ रहनेकी पूर्ण चेष्टा करते थे। आपको अकारण ही अप्रैल सन् १९२२ ई० मे एक मासके नोटिसपर कोचर महाशयने पाठशालासे विदा कर दिया। आपकी अयोग्यता आदिका परिचय इसीसे मिलता है कि कमेटीने विदा होते समय आपको ४५) भेंटस्वरूप प्रदान किया था। इनकी जुदाईसे तमाम स्टाफ़ अति दु:खी था।

११—श्रीयुत बा० माधवलालजी भार्गव आप अस्थायी तौरपर यहाँ अध्यापक नियुक्त हुए किन्तु इनको उडाते क्या देर लगती थी। लगभग एक ही सप्ताहमे, "भेड़िया और मेमनाकी कहानीके आधारपर कि तू मेरा पानी गन्दा करता है," कोचर महाशयने पाठशालासे विदाईका उपहार दे दिया।

१२—श्रीयुत पं० केवलचन्दजी रङ्गा—आप यहाँपर हिन्दी तथा वाणिका पढ़ानेके लिये अध्यापक नियत हुए थे किन्तु थोडे ही महीनोंके पश्चात् यह भी लगभग दो सप्ताहके नोटिसपर कोचर महाशयके शिकार हो गये।

१३—श्रीयुत ब्रह्मचारी शान्तिलालजी जैन—आप यहाँपर ४०) मासिकपर धर्माध्यापक नियत होकर आये थे, किन्तु भला ब्रह्मचारीजी तथा कोचर–शाहसे कबकी पटनेवाली! लगभग दो ही मासके पश्चात् आप स्वयं यहाँसे सन्तुष्ट हो कोचर—शाह के व्यवहारोंकी भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए चले गये।

१४—श्रीयुत पं० मेघराजजी गोस्वामी—आप ता० २-१-२१ को यहाँपर अध्यापक नियत हुए। आप सदाचारी तथा शान्ति-प्रिय नवयुवक थे। आपसे सारा स्टाफ़ प्रसन्न था। आपकी हिन्दी तथा संस्कृतकी योग्यता विशेष प्रशंसनीय है। अपने कर्त्तव्यपालनमें सदा दत्तचित्त रहते थे। आपका कार्य सर्वदा अति प्रशंसनीय था। आपके काममें कभी कोई त्रुटि नहीं पायी गयी और न अलग होनेके पहले कोई प्रतिकूल रिमार्क ही निकला था। पूर्णतया सन्तोषदायक कार्य होनेपर भी यथेष्ट

वेतन-वृद्धि कभी नहीं हुई। अन्तमें पूर्ण असन्तुष्टताके साथ आप ता० २-११-२२ को पाठशालासे जुदा हो गये। इस समय आप राज्यके श्रीवाल्टर नोबुल स्कूलमे एक सहायक अध्यापक हैं।

१५—श्रीयुत पं० साँगीदासजी व्यास विशारद—आप यहाँ-पर जुलाई सन् १९२१ ई० मे ३५) मासिकपर अध्यापक नियुक्त हुए। आप बड़े परिश्रमी, उत्साही तथा पाठशालाके शुभचिन्तक थे। आपका कार्य सदा सन्तोषदायक था। अप्रैल सन् १९२२ ई० में आपके वेतनमे ५) की वृद्धि की गयी। इतने योग्य होनेपर भी आपके साथ समय समयपर स्वेच्छाचारिताका व्यवहार किया गया है जैसा कि आन्दोलन-नोटिसोमे सक्षेपतः प्रकट किया गया है। आपने "तार" के आधारपर अपने भाईकी बीमारीके कारण एक मासकी छुट्टी माँगी। लगभग १॥ मासकी वैतनिक छुट्टीका हक होते हुए भी ऐसी अवस्थामें बड़ी कठिनाईके साथ बम्बई जैसी लम्बी यात्राके लिये केवल १० दिनकी छुट्टी मंजूर हुई। आप यहांसे ता० २१-५-२३ को हेड्मास्टर (शाहजी) को पत्रद्वारा सूचित कर बीमार भाईके पास बम्बई रवाना हो गये। इस पत्रपर शाहजीके विचित्र रिमार्क विचारणीय हैं (देखिये परिशिष्ट नं० ६)। बम्बईसे ऐसी अवस्थामें समयके भीतर वापिस आना असम्भव जान वहाँसे आपने एक मासकी छुट्टीकी अर्ज़ी भेजी। इसपर कोचर महाशयने वही नादिरशाही ऑर्डर लिख मारा कि चाहे जो हो ऑर्डर पाते ही फ़ौरन हाज़िर पाठ-शाला हो, वरन् अपनेको मौक़ूफ़ (Dismissed) समझो। भला

ऐसी अवस्थामें कोई कैसे हाज़िर हो सकता है? यदि कोचर महाशयकी दयालुता हक़ रहते हुए भी वैतनिक छुट्टी मंज़ूर करनेको रोकती है तो भला अवैतनिक छुट्टीमें क्या आपत्ति थी? इसी भारी अपराधपर आप कोचर-महाशयके ऑर्डरसे सदाके लिये पाठशालासे विदा हो गये। अब पाठकगण स्वयं विचार करें कि कोचर महाशयकी नम्रता, दयालुता आदि की क्या परिभाषा है?

१६—रामलौटन प्रसाद (स्वयं लेखक—आन्दोलनकर्त्ता) मैं इस पाठशालामे ता० २५-८-१९२० ई० को अध्यापक नियुक्त हुआ। मेरा आचार, व्यवहार तथा कार्य आदि कैसा रहा है—आन्दोलन-युद्ध क्षेत्रमें वर्तमान है, जिसका संक्षिप्त वर्णन इस पुस्तिकामें किया गया है और अब इसके निर्णयका भार पाठक महोदयोंपर निर्भर है। आजतक जितने वाद-विवाद हुए हैं, उनको विचारकी कसौटीपर चढ़ानेसे स्वयं परिणाम प्रकट हो जायगा। आज सभी लोग "सत्य" पालनका डंका पीट रहे हैं और अपनेको सत्यवादी, वीर, धीर, धर्मात्मा, देश तथा राज-भक्त आदि होनेकी डींगे मार रहे हैं किन्तु परीक्षा-कसौटीपर चढ़नेसे वास्तविकताका पता लगे बिना कदापि नहीं रहता। इसी विचार-प्रवाहके कारण मैं भी सत्य तत्वको जानने तथा तलाश करनेके लिये परीक्षार्थीरूपमें जनताके समक्ष उपस्थित हुआ हूँ। देखें सत्यकी कसौटीपर कहाँतक टिक सकता हूँ। और "Truth may languish but cannot perish" के

सिद्धान्तानुसार एक दिन मेरे सत्यासत्य विचारोंका भेद अवश्य खुल जायगा और यह भी विदित हो जायगा कि मेरा आन्दोलन वास्तवमें किस लिये हुआ है—पेटके लिये अथवा सत्य-प्रकाशके लिये? सच्चा तथा निष्पक्ष परीक्षक ही वास्तवमें ईश्वर-भक्त, राज-भक्त, देश भक्त तथा समाज-भक्त कहा जा सकता है; और सच्चा परीक्षार्थी वही है जो अपने निर्दिष्ट विषयोंको सत्यतापूर्वक परीक्षकके समक्ष प्रकट कर योग्यताका परिचय दे। आन्दोलन आदिका प्रादुर्भाव तभी होता है जब स्वेच्छाचारिता तथा स्वच्छन्दता आदिका व्यवहार चरम सीमातक पहुँच जाता है। इसीके अनुसार यहाँपर सर्वप्रथम श्रीयुत बा० बहादुरलालजी बी० ए० का मुक़द्दमा श्रीबीकानेर-कोर्टमें दायर हुआ (देखिये परिशिष्ट नं० ८) और द्वितीय यह मेरे वर्तमान आन्दोलनका रूप जनताके समक्ष विद्यमान है। मैं ता० १६-६-१९२३ ई० को सन्ध्याके ४॥ बजे किसी अपराधके कारण नहीं, किन्तु पालिसीके अनुसार कमी Reductionके कारण पाठशालासे विदा हुआ।

१७—श्रीयुत बा० जेठमलजी—आप यहाँपर पाठशालाकी शैशवावस्था—अर्थात् सन् १९०९ ई०—में अध्यापक नियुक्त हुए। आप सदा पाठशालाकी उन्नतिमें दत्तचित्त रहा करते थे। आपकी नियुक्ति स्वयं पाठशालाके जन्मदाता पूज्य शान्तमुनि महाराज श्रीचन्द्रविजयजीके कर-कमलोंद्वारा हुई थी। इनकी योग्यता आदिसे उक्त मुनिजी महाराज पूर्णतया अभिज्ञ हैं। इन्हीं महात्माके आदेशानुसार सदा उत्साहपूर्वक कार्य-सञ्चालन करते थे। सुना

जाता है कि उक्त मुनिजी महाराज सौभाग्यवश आजकल यहीं विराजमान हैं। अतः जिज्ञासु जन इनके विषयमें उक्त महात्माजीसे विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। पाठशाला-ही-के हितार्थ अपने राज्यके बैण्ड डिपार्टमेण्टकी १० वर्षोंसे अधिक पुरानी नौकरी एकदम छोड़ दी। जहाँतक सुना जाता है, आपके विरुद्ध कोई नोटिस आदि उनके समयमें नहीं निकाला गया। अन्तमें शाहजी व्यर्थकी बातमें इनसे रुष्ट हो गये और यह हठ किया कि यदि बा० जेठमलजी यहाँपर रहेंगे तो मैं कदापि यहाँ नहीं रह सकता। अतः "जाको पिया भावै ताही सुहागिन नाम" के अनुसार भला कोचर महाशय कब शाहजीसे सहमत न हो। अतएव आप कोचर—शाहके व्यवहारोंसे तङ्ग आकर ता० १६-७-१९२३ ई० को लगभग १४ वर्षोंकी सेवाके पश्चात् त्यागपत्र दे पाठशालासे पृथक् हो गये। यह कोचर महाशयके अलौकिक प्रेम तथा दयालुताका नवीन चित्र है। इस समय आप राज्यके मास्टर ऑव सेरीमनीज़ (Master of Ceremonies) डिपार्टमेण्टमें ४०) मासिकपर नौकर हैं।

१८—श्रीयुत बा० पन्नालालजी—आप यहाँ जनवरी सन् १९२२ ई० में ४०) मासिकपर अस्थायी अध्यापक नियुक्त हुए। मार्च सन् १९२२ ई०की वार्षिक परीक्षामें पूर्ण योग्य सिद्ध होते हुए भी इनमें चापलूसी आदिका अभाव देख, इन्हें उर्दू जाननेका अनर्गल दोष लगा, कोचर महाशयने पाठशालासे पृथक् होनेकी घोषणा कर दी; किन्तु कतिपय कारणोंसे बाध्य हो इन्हें पृथक्

करनेके बजाय ५) वेतनवृद्धि कर स्थायी करना पड़ा। वाह! कहाँ तो इतने अयोग्य कि पाठशालाके लिये "उपयोगी नहीं" और फिर उसी समय इतने योग्य कि ५) वेतन-वृद्धि ही नहीं, किन्तु स्थायी भी! कहिये पाठकगण, दयालुता, न्यायप्रियता आदिका कुछ परिचय मिला? —आप सदा अपना कर्त्तव्यपालन पूर्ण चेष्टाके साथ करते थे, तो भी कभी-कभी कोचर-शाहकी झिड़कियोंके शिकार हुए बिना न रहते। अन्तमें आप स्वयं अपने इच्छानुसार ता० २५-८-१९२३ ई० को त्यागपत्र दे "Better alone than in ill company" के अनुसार पाठशालासे अलग हो गये।

१९—श्रीयुत बा० शान्तिचरणजी—आप जनवरी सन् १९२४ ई० में यहाँ पर अध्यापक नियुक्त हुए। कुछ ही महीनोंके पश्चात् आप यहाँसे चले गये। सम्भव है कि सन्तुष्ट तथा हँसमुख गये हों!

२०—श्रीयुत बा० रामनाथजी गुप्त—सुना जाता है कि कुछ महीनों पहले आप यहाँपर अध्यापक नियुक्त हुए और योग्य होते हुए भी, न मालूम क्यों, त्यागपत्र देकर चले गये। सम्भव है, मन न लगता रहा हो।

इतने तो अध्यापक इन अलौकिक सद्व्यवहारोंद्वारा विदा हुए। अब ज़रा मार्जाओं (वाणिका अध्यापकों) की भी संक्षिप्त गाथा सुन लीजिये। भला जब अध्यापकोंकी यह व्यवस्था है, तो मार्जाओंका क्या पूछना! इनको निकालना-पैठाना तो कोचर

महाशयके बायें हाथका खेल है। इन्हीं समयोंमें कमसे कम लगभग एक दर्ज़न (श्रीयुत पं० हनुमानजी श्रीमाली, पं० हीरालालजी-ओझा, पं० कृष्णजी, सेठ तेजकरनजी रामपुरिया, पं० धौंकलदासजी पुरोहित, पं० शिवधनजी श्रीमाली आदि आदि) मार्जा देखते-देखते पाठशालासे अलग हुए। जहांतक मुझे ज्ञात है प्रायः सभीने असन्तुष्ट तथा दुःखी हो अपना-अपना रास्ता लिया। सम्भव है एकाधको बाजे-गाजेके साथ टिकट मिला हो।

सारांश यह कि सितम्बर सन् १९२० ई०से दिसम्बर सन् १९२४ ई० तक ५२ महीनोंमें लगभग ३० अध्यापक मय मार्जाके पाठशालासे पृथक् हुए हैं। अर्थात् पौने दो मासके पश्चात् औसतन एक अध्यापकका शिकार होता रहा—क्या अधिक है!

ज़रा तुलनाके लिये यह भी सुन लें कि इन्हीं समयोंमें श्री बीकानेर-राज्यके सबसे भारी विद्यालय श्री डूंगर-कालेजसे कितने अध्यापक कैसे विदा हुए हैं, जहाँपर कि इसी दिसम्बर सन् १९२४ ई० में लगभग ५७५ छात्र विद्याध्ययन कर रहे हैं, कुल लगभग ३५ अध्यापक हैं, प्रत्येक विद्यार्थीपर शिक्षाके लिये लगभग ४।≈) मासिक व्यय पड़ता है, विद्यालयका मासिक व्यय लगभग २५००) है, इलाहाबाद युनिवर्सिटीकी मैट्रिक्युलेशन (एन्ट्रेन्स) तक पढ़ाई होती है और आगामी परीक्षामें १८ विद्यार्थी सम्मिलित होनेवाले हैं—

(अ) श्रीयुत बा० शिवमूर्त्तिसिंहजी विशारद, मिस्टर मौमिक बी० ए०, पं० मुल्कराजजी भुक्का ड्राइङ्ग मास्टर, मौ० जव्वाद

हुसेन, बा० सम्पूर्णानन्दजी बी० एस-सी०, एल० टी० हेड्मास्टर, बा० गोपीनाथजी बी० ए० तथा बा० खेमराजजी दूगड़ ड्राइङ्ग-मास्टर-इन महाशयोंने स्वयं अपने-अपने इच्छानुसार भिन्न-भिन्न समयोंपर त्यागपत्र दे कॉलेजसे विदा ली है।

(ब) श्रीयुत पं० लक्ष्मणजी मार्जा, पं० जयदयालजी शर्म्मा प्रधान संस्कृताध्यापक —ये दोनों सज्जन पेंशन प्राप्त कर कॉलेज-से सादर विदा हुए हैं।

(स) श्रीयुत बा० व्रजवासीलालजी और पं० सदानन्दजी— ये लोग निज इच्छानुसार हिन्दू-विश्वविद्यालयमें पढ़ने चले गये।

(द) श्रीयुत पं० शंकरदासजी और बा० रामकृष्णजी बी०ए० —इनके तबादले इनके इच्छानुसार राज्यान्तर्गत हुए हैं।

(य) श्रीयुत पं० रामचन्द्रजी तथा मौ० अब्दुललतीफ़— इनका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकारसे लगभग १५ अध्यापक कॉलेजसे पृथक् हुए हैं, जिनके साथ किसी प्रकारका ज़ोर व जुल्म अथवा अन्याय राज्यकी ओरसे होना नहीं पाया जाता।

परिशिष्ट नं० ५

मेरे विरुद्ध पाठशाला-कालमें पृथक् होनेके समय तक केवल नीचे लिखे दो स्वच्छन्दतापूर्ण रिमार्क निकले हैं. जिनका उल्लेख "साँचको आँच क्या?" नोटिसमें संक्षेपतः किया गया है। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी रिमार्क नहीं निकले हैं—

प्रथम रिमार्क—ऑर्डर नं० २, ता० ३-६-२१—इसका

सारांश* यों है:—

आप (रामलौटनप्रसाद) ने श्रीमान् हेड मास्टर बा० (श्रीरामजी गुप्त) साहिबका अपमान † टीका-टिप्पणियाँ पेश करके किया है। चूँकि यह आपका पहला सङ्गीन जुर्म है, इसलिये दयापूर्वक मुआफ़ फ़र्माया जाता है। आइन्दाके लिये पूरा ख़्याल रक्खें।

मेरा हस्ताक्षर:— R. L. P. } द० शिवबक्स कोचर, मंत्री, श्रीजैनपाठशाला, बीकानेर।

इस आर्डरके विषयमें निम्नांकित सम्मतियाँ ध्यानपूर्वक देखिये —

प्रथम सम्मति—

Shri Jain Pathshala,
27 June 1921.

In accordance with Mr Ram Lautan Prasad's request about order no 2 of 3·6 21 I made certain enquiries and came to the conclusion that the above mentioned order was based on misrepresentation I approached the ex-Headmaster Mr Sri Ramji and asked him if he could throw any light on the matter and he definitely stated that it was simply owing to some misunderstanding on his part that he went to the Secretary and complained him of Mr Ram Lautan Prasad in the heat of the moment But

* आर्डरकी नकल अप्राप्त होनेके कारण केवल सारांश ही दिया गया है।

† टीका-टिप्पणियोंका पेश करना बिलकुल असत्य है। सत्यता तो इसीमें है कि उन्हें अब भी प्रकट कर दें।

that afterwards he himself felt very sorry for the step he had taken

I personally spoke to the Secretary to verify his remarks in the said order but as he was unwilling to hear anything now on the subject, I took it to be my duty to inform Master Ram Lautan Prasad that nothing could be done in the matter and that the Secratary's ears had been poisoned against him Hence I shall advice him to look at the better side of the question thinking as if nothing had happened, for this sorts of remarks can throw no darkness or blot on his conduct

27 June 1921

(Sd) Surya Karan Acharya, B A ,
Hony Headmaster,
Shri Jain Pathshala, Bikaner

उपर्युक्त अँग्रेज़ी भाषाका संक्षिप्त अनुवाद यह है—

आर्डर नं २ ता० ३-६-२१ के सम्बन्धमे मैंने बा० रामलौटन प्रसादके प्रार्थनानुसार जाँच की, तो मैं इस नतीजेपर पहुँचा कि उक्त आर्डर ग़लत इत्तिलापर निर्भर था। मैंने बा० श्रीरामजीसे भी, जो पहले हेडमास्टर थे, पूछा; परन्तु वह भी इस मामलेपर कुछ प्रकाश न डाल सके और उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि केवल गलतफहमीके कारण ऐसा हुआ कि मैं (बा० श्रीरामजी) ने सेक्रेटरी साहबसे बा० रामलौटन प्रसादकी शिकायत जोशमे आकर कर दी, परन्तु उसके पश्चात् मुझे भी इस व्यवहारके लिये खेद हुआ।

मैंने स्वयं सेक्रेटरी साहबसे उक्त आर्डरके रिमार्कोंपर विचार करनेको कहा; परन्तु अब वह इस विषयमें कुछ भी सुनना नहीं चाहते। इसलिये मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि मास्टर रामलौटन प्रसादको सूचित कर दूँ कि इस विषयमें कुछ भी नहीं किया जा सकता; क्योंकि सेक्रेटरी (मंत्री) साहबके कान आपके विरुद्ध अच्छी तरह भर दिये गये हैं। इसलिये मैं आपको यही परामर्श दूँगा कि आप इस प्रश्नके रोशन पहलूको देखें, अर्थात् यह समझ लें कि मानो कुछ हुआ ही नहीं; क्योंकि इस प्रकारके रिमार्क आपके आचरणपर कोई धब्बा अथवा ख़राबी पैदा नहीं कर सकते।

ता० २७ जून, सन् १९२१ ई०

ह० *सूर्य्यकरण आचार्य, बी०ए०,
अवैतनिक हेड्मास्टर,
श्रीजैन पाठशाला, बीकानेर।

द्वितीय सम्मति—

Bikaner
Dated, 21st August 1921

On your request I read the order no 2, dated 3rd June, 1921, and asked Mr Shri Ram, assistant teacher, the then Head Master, about the affair and made independent enquiry as well about the same

The charge, I believe, was never proved and I sup-

* इस समय आप एम० ए० हैं और श्री बीकानेर हाईकोर्टके रजिस्ट्रार पदपर विराजमान हैं।

pose the order has been issued against you without an investigation into the matter

I requested the Secretary to reconsider the matter and cancel the order if you are found innocent but he did not deem it necessary to take any such step, though admitting his want of due consideration

Thorefore it is to inform you that the order, though cannot be cancelled, cannot be considered to have any weight upon your further career

B Ram Lautan Prasad,	sd BahadurLal saksena B.A
Assistant Master	The Head Master,
	Shri Jain Pathshala, Bikaner,

उपरोक्त अँग्रेज़ी भाषाका अनुवाद यह है:—

बीकानेर,

ता० २१ अगस्त सन १९२१ ई० ।

आपके प्रार्थनानुसार मैंने ऑर्डर नं० २ ता० ३-६-१९२१ पढ़कर बाबू श्रीरामजी असिस्टेण्ट मास्टर से, जो उस समय हेड्मास्टर थे, इस विषयमे बातचीत की और स्वयं इसकी जाँच भी की ।

मुझे विश्वास है कि जो दोषारोपण किया गया है, वह सिद्ध नही होता और मेरे विचारमे उक्त ऑर्डर विना किसी जाँच-पड़तालके आपके प्रतिकूल निकाला गया है ।

मैंने मन्त्रीजीसे इसपर पुनर्विचार करने और अगर आप निर्दोष हों तो उस आर्डरको रद्द करनेके लिये प्रार्थना की, परन्तु वह इस विषयमे कोई कार्रवाई करना उचित नहीं समझते ।

हालाँकि वह इस बातको स्वीकार करते हैं कि उन्होंने इ
मामलेको भलीभाँति नहीं विचारा।

इसलिये आपको सूचित किया जाता है कि उक्त ऑर्ड
यद्यपि मनसूख नहीं किया जा सकता तथापि आपके भविष्यप
कोई असर नहीं डाल सकता।

द० वहादुरलाल सक्सेना, बी० ए०
हेड्मास्टर,
श्री जैन पाठशाला, बीकानेर।

द्वितीय रिमार्क—नोटिस नं० ३८६ ता० २०-१-२३

बा० रामलौटन प्रसादजी,

आपने आज रोज भॅवरलाल नेमीचन्द कोचरको क्या कारण-से शिक्षा दी थी और आपने शारीरिक दण्ड देनेकी सत्ता किसने दी थी। और शारीरिक दण्ड देनेमें इतना गम्भीर दण्ड किस तरह हुआ। उसको सविस्तर रिपोर्ट पेश की जावें। आपको फिरसे सूचित होवे कि शारीरिक दण्ड पाठशालाके नियमसे विरुद्ध हैं।

मेरा हस्ताक्षरः—
R L. p
20-1-23.

(sd.) M T shah,
हेडमास्टर,
श्री जैन पाठशाला, बीकानेर।

नोट—इस उपरोक्त नोटिसका सन्तोषदायक तथा उचित उत्तर मैंने उसी दिन स्पष्ट शब्दोंमें दे दिया है, जो कि स्कूल-फ़ाइल-में मौजूद है और पूर्ण जाँच-परतालके पश्चात् परम "दयालु,

निःस्वार्थ, कर्त्तव्यपालन करनेवाले तथा न्यायशील आदर्श सज्जन !" कोचर महाशय मंत्रीने भी मुझे पूर्ण निर्दोष बतलाया है।

इन्हीं दोनों उपरोक्त रिमार्कोंको लेकर शाहजी स्कूल-रिमार्क-बुकको मेरे नामसे निकले हुए रिमार्कोंसे "अलंकृत" बतलाकर "अपने आत्मीय शुद्ध भावों" का परिचय दे रहे हैं।

परिशिष्ट नं० ६

श्रीयुत पं० साँगीदासजी व्यासका पत्र भाईकी बीमारीके कारण यहाँसे बम्बई जाते समय इस प्रकार है:—

ता० २१-५-२३।

सेवामें—

श्रीमान हेडमास्टरजी,

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर।

महाशयजी,

बा० जेठमलजीका पत्र आज लगभग दस बजे मिला। मैं Secretary [सेक्रेटरी] साहबसे मिला था। उन्होंने ता० १६ से केवल दस दिनकी छुट्टी मंजूर की है। इतने समयमें आना-जाना असम्भव जान ता० १६ को Bombay [बम्बई] भाईजीको तार दिया कि यदि सख्त ज़रूरत न हो तो न आऊँ। आज आठ बजे सुबह तारका जवाब आया जिससे मालूम हुआ कि

हालाँकि वह इस बातको स्वीकार करते हैं कि उन्होंने इस मामलेको भलीभाँति नहीं विचारा।

इसलिये आपको सूचित किया जाता है कि उक्त ऑर्डर यद्यपि मनसूख नहीं किया जा सकता तथापि आपके भविष्यपर कोई असर नहीं डाल सकता।

द० बहादुरलाल सक्सेना, बी० ए०,
हेड्मास्टर,
श्री जैन पाठशाला, बीकानेर।

द्वितीय रिमार्क—नोटिस नं० ३८६ ता० २०-१-२३

बा० रामलौटन प्रसाद्जी,

आपने आज रोज भँवरलाल नेमीचन्द कोचरको क्या कारणसे शिक्षा दी थी और आपने शारीरिक दण्ड देनेकी सत्ता किसने दी थी। और शारीरिक दण्ड देनेमें इतना गम्भीर दण्ड किस तरह हुआ। उसकी सविस्तर रिपोर्ट पेश की जावें। आपको फिरसे सूचित होवे कि शारीरिक दण्ड पाठशालाके नियमसे विरुद्ध हैं।

मेरा हस्ताक्षरः—
R L. p.
20-1-23.

(sd.) M. T. shah,
हेडमास्टर,
श्री जैन पाठशाला, बीकानेर।

नोट—इस उपरोक्त नोटिसका सन्तोषदायक तथा उचित उत्तर मैंने उसी दिन स्पष्ट शब्दोंमें दे दिया है, जो कि स्कूल-फ़ाईलमें मौजूद है और पूर्ण जाँच-परतालके पश्चात् परम "दयालु,

निःस्वार्थ, कर्त्तव्यपालन करनेवाले तथा न्यायशील आदर्श सज्जन '!" कोचर महाशय मंत्रीने भी मुझे पूर्ण निर्दोष बतलाया है।

इन्हीं दोनों उपरोक्त रिमार्कोंको लेकर शाहजी स्कूल-रिमार्क-बुकको मेरे नामसे निकले हुए रिमार्कोंसे "अलंकृत" बतलाकर "अपने आत्मीय शुद्ध भावों" का परिचय दे रहे हैं।

परिशिष्ट नं० ६

श्रीयुत पं० साँगीदासजी व्यासका पत्र भाईकी बीमारीके कारण यहाँसे बम्बई जाते समय इस प्रकार है:—

ता० २१-५-२३।

सेवामे—

श्रीमान हेडमास्टरजी,

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर।

महाशयजी,

वा० जेठमलजीका पत्र आज लगभग दस बजे मिला। मैं Secretary [सेक्रेटरी] साहबसे मिला था। उन्होंने ता० १६ से केवल दस दिनकी छुट्टी मंजूर की है। इतने समयमें आना-जाना असम्भव जान ता० १६ को Bombay [बम्बई] भाईजीको तार दिया कि यदि सख़्त ज़रूरत न हो तो न आऊँ। आज आठ बजे सुबह तारका जवाब आया जिससे मालूम हुआ कि

बीमारी कड़ी है, शीघ्र बुलाया है। घबराहटके कारण आपका दर्शन न कर सका। आज ७ बजे शामको गाड़ीसे जा रहा हूँ, वहाँ पहुँचनेपर कुशलकी सूचना दूँगा। क्षमा करें।

भवदीय, आज्ञाकारी सेवक,

साँगीदास व्यास।

इस उपरोक्त पत्रपर शाहजीका नादिरशाही ऑर्डर अथवा यों कहिये कि "आत्मीय शुद्ध भावों" पूर्ण शान्तिदायक उत्तर इस प्रकार है :—

23 / 22-5-23. Recd. at 1 5. P. m. on 22-5-23
(sd) M. T. shah.

Returned. The applicant ought to have attended the school during the three days he was here, instead of staying away without giving any information as to his whereabouts even though he knew that his leave had been sanctioned from the 19 th inst. It appears from the note that the reasons he has stated are altogether false. अर्थात् पत्र वापिस किया जाता है। प्रार्थीको, जब कि वह यह जानता था कि उसकी छुट्टी १६ तारीखसे मंजूर हुई है बग़ैर किसी इत्तिला के घर रहनेके बजाय उन तीन दिनोंमें, जब कि वह यहां था, मदरसेमें हाज़िर होना चाहिये था। उसके पत्रसे मालूम होता है कि उसके बयान किये हुए कारण बिलकुल असत्य हैं।

नोट—ऐसा व्यवहार ऐसी अवस्थामें लगभग १॥ मास

सवेतन छुट्टीका हक़ रहते हुए किया गया है। अन्तर्यामी तथा जासूसी शाहजीके कथनानुसार यदि मान लिया जाय कि प्रार्थी बिलकुल झूठा है तो छुट्टी सवेतन न देकर अवैतनिक देनेमें क्या अड़चन थी? छुट्टी समाप्त होनेपर तो आप ही भेद प्रकट हो जाता। क्या डिसमिस ही करना दयालुता थी? ऐसे ही व्यवहारोंपर शाहजीका कहना है कि "पाठशालाके किसी अध्यापकके साथ कोई नियम-विरुद्ध चेष्टाका किया जाना नही पाया जाता और मेरे समयमें किसीके साथ कोई अनुचित व्यवहार नहीं हुआ है।" अब पाठक उचित-अनुचितका निर्णय स्वयं करें।

परिशिष्ट नं० ७

श्रीयुत बा० पन्नालालजी अपनी रिपोर्टकी बाबत जो "साँचमें लाँछ" में प्रकाशित हुई है क्या कहते हैं:—

Bikaner,

1-5-1924,

My dear B. RamLautan Prasadji,

In reply to your letter no 61 of 23-4-1924, I hereby inform you that my report of 7-8-23, unfortunately published in "Sanch men Lanchh" by mr, Mayabhai T shah, B A., the then Head Master of the shri Jain Pathshala; Bikaner, was never meant to show some weakness in your work, and how could it possibly mean that when after your departure the class remained practically idle for over a month under the direct supervision of the

Head master. In face of your uniform excellent results in the school I could not have said so and therefore it is extremely regretted that my report should have been taken in a light which it was never meant to convey, for which I assure you I am in no way responsible.

Your sincerely,

Pannalal.

उपरोक्त अँग्रेज़ी पत्रका अनुवाद यह है :—

बीकानेर,

१-५-१९२४।

प्यारे बा० रामलौटन प्रसादजी,

आपके पत्र नं० ६१ ता० २३-४ २४ के उत्तरमें निवेदन है कि मेरी ता० ७-८ २३ की रिपोर्ट बा० मयाभाई टी० शाह बी० ए०ने, जो उस समय श्री जैन पाठशाला बीकानेरके हेड्मास्टर थे, "साँचमें लाँछ" नामक नोटिसमें अभाग्यवश प्रकाशित कर दी है। इस रिपोर्टसे मेरा यह अभिप्राय कदापि न था कि मैं आपके कार्यमें कोई त्रुटि दिखलाऊँ और यह सम्भव भी कैसे हो सकता था, जब कि आपके जानेके पश्चात् वह कक्षा स्वय हेडमास्टर साहिब-ही-की निगरानीमें एक माससे अधिक ऊ घती रही। आपके लगातार अत्युत्तम परीक्षाफलको देखते हुए मैं कदापि ऐसा नहीं कह सकता था और इसलिये मुझे इसके लिये अति खेद है कि मेरी रिपोर्टको ऐसे भावमें ले लिया गया कि

जिसकी कभी सम्भावना तथा आशा न थी और इसके लिये मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि म इसका उत्तरदायी किसी प्रकार भी नहीं हूँ ।

भवदीय—पन्नालाल ।

मेरा पत्र नं० ६१ ता० २३-४-२४ इस प्रकार है:—

श्रीयुन वा० पन्नालालजी,

आपकी ता० ७-८-२३ की रिपोर्टको, जो "साँचमें लाँछ" मे प्रकाशित हुई है, पढ़कर भ्रममें पड़ गया हूँ । सादर निवेदन है कि निष्पक्ष हो सत्यभावको प्रकट कर अपने विचारोंसे शीघ्र सूचित करें। सत्यको प्रकाश करनेमे संकोच करना कायरोंका काम है। मैं केवल "सत्य" रहस्यको जाननेके अभिप्रायसे प्रेरित हो आपको कष्ट दे रहा हूँ । यदि "सत्य-प्रकाश" मे मेरे प्राण भी जावें तो कोई चिन्ता नहीं है । वस, अधिक यही कहना है कि सत्यतापूर्वक मेरे सन्देहको दूर कर सत्यके भागी वनें। चापलूसी करना महानिन्दनीय है ।

ता० २३-४-२४ } भवदीय—रामलोटनप्रसाद
लेटअसिस्टेएट मास्टर,
श्री जैन पाठशाला, वीकानेर ।

परिशिष्ट नं० ८

श्रीयुन वा० वहादुरलालजी वी० ए० के मुक़दमें की नक़ल:—

श्री वीकानेर कोर्टका फ़ैसला—

नक़ल दस्त बरदारी ता० ८-१२-२२ मशमूला मिसल नं० १६२ मरजूआ १४-२-२२, फ़ैसला ८-१२-२२ बअदालत मुनसफ़ी सदर राज श्री बीकानेर—

नक़ल मुताबिक़ असल व एतबार मुक़ाबिलह
द० उर्दू छुट्टनलाल सरिश्तेदार मुनसफ़ी सदर।

बहादुरलाल सक्सेना बी० ए० सा० बीकानेर,

बनाम

जैन पाठशाला मार्फ़त् शिवबख़्श कोचर मंत्री,

दावा १८४।)

जनाब आली

मुक़दमा सदरमे मैं कुल ज़रे मुतदाविया मय खरचा वसूल पा लिया और इसलिये मुक़दमा चलाना नहीं चाहता। लिहाज़ा दस्त बरदारी हाज़ा पेश है और इसकी तसदीक़ सेक्रेटरी जैन-पाठशाला मौजूदा अदालतसे फ़रमा ली जावे। ता० ८-१२-२२

द० अंगरेज़ी शिवबख़्श मुदायलेह। अर्ज़ी फिदवी मुक्ताप्रसाद मुख़्तार मुद्दई।

मु० सदर

मुख़्तार मुद्दईने पेश करके तसदीक़ की। शामिल मिसल हो।

ता० ८-१२-२२

द० उर्दू पं० छोटेलालजी,
मुनसिफ़ सदर बीकानेर।

नोट—तफ़सील कुल ज़रे मुतदाविया मय ख़रचा:—

दावा १८४।) रसूम १३।।।-) मुख़्तारनामा १।।) मेहनताना मुख़्तार ६≡), तलबाना २) और मुतफ़र्रिक़ ख़र्च २)—मीज़ान कुल २१२।।।) की डिग्री हुई है। इस स्पष्ट तथा पुष्ट प्रमाणके होते हुए भी बा० बहादुरलालजी बी० ए० के सम्बन्धमे शाहजी को क़रीब-क़रीब "कोई काग़ज़ पाठशालाकी फ़ाइलोंमें नहीँ मिला।" जब इस पुष्ट प्रमाणकी यह दशा है, तो औरोंके सम्बन्धमें काग़ज़ोंका न मिलना तथा गुम हो जाना अथवा रजिस्टरो आदिमे फेरफार हो जाना अथवा मनगढ़न्त नयी बातका प्रादुर्भाव हो जाना क्या आश्चर्य है! कहिये, अब भी लोग कोचर महाशयके दानी, दयालु तथा न्यायशील आदर्श सज्जन आदि होनेमें सन्देह करेंगे!!—यह तो स्पष्ट प्रकट दान है, गुप्त दानोंका लेखा यथाशक्ति पाठकगण स्वयं समझ लें अथवा "मौजूदा काग़जों-के आधारपर कर्त्तव्यपालन" करनेवाले सत्यवादी शाहजीसे, जिनको बात बातपर "हँसी आती है," समझ लें। यही शाहजीके "आत्मीय शुद्ध भावों" का नमूना है!!! आजकल प्रायः ऐसे ही "आत्म-प्रदर्शित पथसे विचलित" न होनेवाले जाति, समाज, संस्था तथा देश-सुधारक हैं; तभी तो आज भारतमें चारो ओर शान्ति विराजमान है!

ध्यान रहे कि यह मुक़दमा पुराना नही किन्तु शाहजीकी नियुक्तिकी बधाईका है!

परिशिष्ट नं० ६

कोचर-शाहने पाठशालासे केवल अध्यापकोंको ही पृथक् कर

चिरस्थायी आदर्श स्थापित नहीं किया है, वरन् समय समयपर छात्रोंको भी वहिष्कृत कर जनताको पाठशालाकी उन्नतिका मार्ग दर्शाते हुए न्याय तथा सुधारके विचित्र उदाहरण उपस्थित किये हैं, जिनमेंसे ये हैं —

(अ) ता० १६-१-१६२२ ई० को शाहजीकी रिपोर्टपर कोचर महाशयने कक्षा ३ के ३ छात्रों (उदयचन्द सेठिया, कन्हैयालाल सिरोहिया और रामलाल कोठारी) का पाठशालासे आजन्म वहिष्कार किया है। भला जातीय पाठशालाओंमें यह नादिरशाही! क्या जैन-जातिके लिये यही सुधारका आधुनिक सुगम उपाय है? क्या छात्रोंका ऐसा संगीन जुर्म था कि काले पानीकी सज़ा दी गयी? हाँ, छात्रोका दोष अवश्य था और वह यह कि एक अध्यापकसे वाल-स्वभावके कारण मामूली वात-पर कुछ झगड़ा हो गया था, जिसके लिये यह दण्ड कहाँतक उचित है, जैन-समाज तथा देशके अन्य सुधारक स्वयं सोचें। यह तीनों छात्र ख़ास ओसवाल-जैन-धर्मावलम्बी थे, जिनकी आयु क्रमशः लगभग १५,१४ तथा ११ वर्षकी थी। यह शाहजीके संस्था-सुधारका प्रथम वार था — जिसका ख़ाली जाना विचार-शील कोचर महाशयने उचित न समझा।

(ब) शाहजीने अपने ता० १२-४-१६२३ ई० के पाण्डित्य-पूर्ण आॅर्डरके अनुसार शिवकृष्ण स्वामी कक्षा ८, हरीसिंह राज-पूत और चाँदमल दर्ज़ी कक्षा ७ तथा चतुर्भुजसिंह राजपूत और भँवरलाल वैद कक्षा ६ को पाठशालासे सदैवके लिये वहिष्कृत

कर जैन-जनताके समक्ष "आत्मशुद्धि" का परिचय दिया है और आपने अपने इस आदर्श ऑर्डरका समर्थन और आन्दोलन जिस विचित्रताके साथ किया है, वह विचारणीय है। इस ऑर्डरसे शाहजीकी विद्वत्ता, नीति-निपुणता तथा आत्म प्रदर्शिताका दिग्दर्शन अवश्य होगा। इन उपर्युक्त पाँचों छात्रोमे प्रथम चार जैनेतर और पाँचवाँ जैनी है।

परिशिष्ट नं० १०

पाठकोंके विचारार्थ कोचर महाशयकी १६ वर्षीय (१६०७ – २३) रिपोर्टके परिशिष्ट नं० ३, ४ और ५ की नक़ल यहाँ नीचे दी जाती है—

(अ) कोचर महाशयका परिशिष्ट नं० ३—

सं०	नाम विद्यार्थी	कक्षा	छोड़ने का समय	सं०	नाम विद्यार्थी	कक्षा	छोड़नेका समय
१	चम्पालाल तोतड़	८	१६१६	६	छगनमल मथेरण	४	१६१६
२	मूलचन्द नाहटा	८	,,	१०	भयराज नाहटा	१०	१६१७
३	पूनमचन्द्र वेगानी	६	,,	११	रामलाल सुराना	७	,,
४	हीरालाल लूणिया	४	,,	१२	सिद्धिकरण सुराना	७	,,
५	चेतनदास सेठिया	४	,,	१३	राधाकृष्ण शर्म्मा	७	,,
६	दीपचन्द सेठिया	४	,,	१४	सोहनलाल रामपुरिया	६	,,
७	चम्पालाल नाहटा	४	,,	१५	भैरूदान सुराना	६	,,
८	धींचन्द नाहटा	४	,,	१६	सोहनलाल नाई	६	,,

सं०	नाम विद्यार्थी	कक्षा	छोड़ने का समय	स०	नाम विद्यार्थी	कक्षा	छोड़नेका समय
१७	शिखरचन्द मुकीम	६	१९१७	३१	मुन्नीलाल धाडीवाल	५	१९१८
१८	जेठमल फलोधिया	५	,,	३२	टीकमचन्द कोचर	५	,,
१९	देवीलाल कोचर	५	,,	३३	नृसिंहदास सेवक	४	,,
२०	मोतीलाल कोठारी	४	,,	३४	मुरारीलाल श्रीमाल	४	,,
२१	जेठमल स्वामी	४	,,	३५	माधूराम सिपाही	४	,,
२२	जानकीप्रसाद	६	१९१८	३६	जेठमल स्वामी	४	,,
२३	उदयचन्द कोचर	६	,,	३७	माणिकचन्द डागा	४	,,
२४	तेजकरण वैद	६	,,	३८	खुमाणचन्द भंसाली	४	,,
२५	समयराज नाहटा	६	,,	३९	पूनमचन्द तोतढ़	४	,,
२६	मगनमल सिरोहिया	६	,,	४०	रावतमल कोचर	७	१९१९
२७	मगनमल पारख	६	,,	४१	चम्पालाल नाहटा	६	,,
२८	धनराज कोचर	६	,,	४२	जतनलाल नाहटा	६	,,
२९	छत्रसिंह कोचर	६	,,	४३	आनन्दमल वेगानी	६	,,
३०	वंशीलाल ब्राह्मण	५	,,	४४	मगनमल भूरा	५	,,

सं०	नाम विद्यार्थी	कक्षा	छोड़नेका समय	सं०	नाम विद्यार्थी	कक्षा	छोड़नेका समय
४५	हरखचन्द् कोठारी	५	१६१६	५८	रामरतन कोचर	५	१६२०
४६	ग़फ़ूर मुहम्मद् महावत	४	,,	५६	दुलीचन्द् सेठिया	५	
४७	अमरचन्द् शिप्पाणी	४	,,	६०	सुन्दरमल कोचर	५	,,
४८	रूपचन्द् सुनार	४	,,	६१	मेघराज बछावत	४	,,
४६	सोहनलाल सुनार	४	,,	६२	चम्पालाल बोथरा	४	,,
५०	धनराज कोचर	८	१६२०	६३	भवरलाल झाबक	४	,,
५१	फालगुणलाल कोचर	८	,,	६४	गुलाबचन्द् नाहता	४	,,
५२	छत्रसिंह कोचर	७	,,	६५	लूनकरण सुराणा	४	,,
५३	छोटमल वैद्	७	,,	६६	भंवरलाल कोचर	८	१६२१
५४	चम्पालाल कोचर	७	,,	६७	भीखम चन्द् कोठारी	८	,,
५५	उत्तमचन्द् कोचर	७	,,	६८	लालचन्द् भादाणी	८	,,
५६	रामगोपाल सेवक	७	,,	६६	अरजुनदास डागा	५	,,
५७	रतनलाल नाहटा	६	,,	७०	मेघराज नाहटा	५	,,

सं०	नाम विद्यार्थी	कक्षा	छोड़नेका समय	सं०	नाम विद्यार्थी	कक्षा	छोड़नेका समय
७१	चैनरूप मूगड़ी	४	१९२१	८०	चाँदमल दर्ज़ी	७	१९२३
७२	मेघराज भादाणी	७	१९२२	८१	सूरजमल बोथरा	७	”
७३	फ़तहचन्द कोचर	७	”	८२	भवरलाल वैद	६	”
७४	मोतीलाल वैद	७	”	८३	जेसराज सुनार	६	”
७५	भैरूदान पूगलिया	५	”	८४	मोहनलाल सेवक	६	”
७६	मोहनलाल रामपुरिया	५	”	८५	चतुर्भुज राजपूत	६	”
७७	कन्हैयालाल कोचर	४	”	८६	माणिकचन्द ख़ज़ांची	५	”
७८	शिवकृष्ण स्वामी	८	१९२३	८७	सोहनलाल राजपूत	५	”
७९	हरीसिंह राजपूत	७	”				

नोट—कोचर महाशयने पाठशाला छोड़नेवाले विद्यार्थियोंकी नामावली देनेमें भी अपनी दयालुता न छोड़ी, अर्थात् मेरी मौजूदगीमें पाठशाला छोड़े हुए कतिपय छात्रोंकी नामावलीमें अभाव दिखलाया गया है। चन्दके नाम ये हैं .—(१) सैसकरन राखेचा कक्षा ४, (२) मगलचन्द कोचर कक्षा ६, (३) भागवतसिंह वैद कक्षा ६, (४) जेसराज वैद कक्षा ५ तथा (५) राधाकृष्ण सोनार कक्षा ५ आदि। न० २ एक बार कक्षा ५ से भी पाठशाला छोड़ चला गया था।

(ब) कोचर महाशयका परिशिष्ट नं० ४—

परीक्षा-फल सन् १९१५से १९२३ ई०तक

सन् १९१५ ई०					सन् १९१६ ई०				
कक्षा	संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत	कक्षा	संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत
९	१	१	—	१००	१०	१	—	१	०
८	३	२	१	६६.७	९	३	३	—	१००
७	३	२	१	६६.७	६	२	०	२	०
६	५	५	—	१००	५	९	४	५	४४ ४
५	५	५	—	१००	४	१०	८	२	८०
४	१४	७	७	५०	३	१५	६	९	४०
३	१८	५	१३	२७ ५	२	१३	१०	३	७६.९
२	५१	३०	२१	५८ ८	१	२७	१७	१०	६२ ९
१	२२	८	१४	३६ ४					

सन् १९१७ ई०					सन् १९१९ ई०				
कक्षा	संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत	कक्षा	संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत
					७	५	१	४	२०
६	१	—	१	०	६	१	१	—	१००
५	४	—	४	०	५	८	३	५	३७.५
४	६	३	३	५०	४	७	३	४	४२.८
३	१९	८	११	४१.१	३	१०	५	५	५०
२	१६	९	७	५६.२	२	६	५	१	८३.३
१	१५	४	११	२६.६	१	२२	९	१३	४०.९

सन् १९१८ ई०					सन् १९२० ई०				
कक्षा	संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत	कक्षा	संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत
					७	४	३	१	७५
६	३	२	१	६६ ७	६	३	१	२	३३.३
५	३	२	१	६६.७	५	७	७	०	१००
४	१०	९	१	९०	४	६	४	२	६६.६
३	११	७	४	६३.६	३	९	९	—	१००
२	८	५	३	६२.५	२	६	६	—	१००
१	१७	१०	७	५८.८	१	१७	१०	७	५८.८

सन् १९२१ ई०

कक्षा	संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत
६	६	४	३	६६.६
५	४	३	१	७५
४	३	२	१	६६.६
३	३	२	१	६६.३
२	८	७	१	८७.५
१	१०	९	१	९०

सन् १९२२ ई०

कक्षा	संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत
७	५	४	१	८०
६	३	३	०	१००
५	३	३	—	१००
४	४	४	०	१००
३	७	६		८५.७
२	१७	१६	१	९४.२
१	१५	१३	२	८६.६

सन् १९२३ ई०

कक्षा	संख्या	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण	प्रतिशत
८	१	—	१	०
७	६	३	३	५०
६	२	२	—	१००
५	५	३	२	६०
४	५	५	—	१००
३	५	३	२	६०
२	१४	८	६	५७.१
१	१३	११	२	८४.६

(स) कोचर महाशयका परिशिष्ट नं० ५—

सन्	लड़कोकी औसत	औसत उपस्थिति	कक्षाएँ	औसत खर्च	
१९१४—१५	२६६		९		
१९१५—१६	२२९	७३.८	१०	२६४७) रु०	
१९१६—१७	२५४	६४.२	६	२९१४॥)	
१९१७—१८	२३९	६८.५	६	३३३०॥-)	
१९१८—१९	१८५	६६.३	७	२६९१॥≡)	
१९१९—२०	१७५	६६.३	७	३५९१॥)	
१९२० - २१	१३६	७२.३	६	३७०।)	
१९२१—२२	१४८	७६.१	७	४८४४)	
१९२२—२३	१६०	९०.३	८	५३०२)	

परिशिष्ट न० ११

पाठशालाके वे नियम जो इस पुस्तिकामे उल्लिखित हैं, श्री जैन पाठशाला (बीकानेर) की **नियमावली** * से, जो व्यवहारमें है, पाठकोंके विचारार्थ नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

नियम नं० :—

५७—पाठशालाके अध्यापक व अध्यापिकाओंकी छुट्टीको स्वीकार करना तथा दोनों पाठशालाओंका निरीक्षणादि करना अथवा उचित समझनेपर सभाकी सम्मति लेकर कन्या-पाठशालाका निरीक्षणादि हेड्मास्टरको सौंपना।

५८—वार्षिक रिपोर्ट बनाकर छपवाना।

५९—आवश्यकतानुसार अध्यापकोंको नियत अथवा पदसे पृथक् करना और पेबिलपर हस्ताक्षर करके कोषाध्यक्षके पास भेजना।

७१—अंग्रेज़ी विभागकी पढ़ाईका समय ११ से ४ बजेतक ५ घण्टेका रहेगा, परन्तु विशेष गर्मी पड़नेपर प्रातःकाल ६॥ से १०॥ बजेतक केवल चार घण्टेका रहेगा। संस्कृत तथा धार्मिक ग्रन्थोंकी पढ़ाई ५ वा ४ घण्टे अंग्रेज़ी विभागके अनुसार होगी।

८४—किसी कर्मचारीको यदि असावधान अथवा नियम-विरुद्ध देखे तो एकदम उसे भविष्यत्‌में वैसा न करनेको कहे,

---

* यह नियमावली संवत् १९७६ वि० में वैदिक यन्त्रालय अजमेरमें मुद्रित हुई है। सम्भवतः हेड्मास्टर अथवा सेक्रेटरी श्री जैन पाठशाला, बीकानेरको लिखनेसे बिना मूल्य प्राप्त हो सकती है।

यदि फिर भी उसी प्रकार देखे तो रिमार्कबुकमे नोट करके उसके हस्ताक्षर लेते जाना और फिर इनको मासिक रिपोर्टमें सम्मिलित करना।

८६—पाठशालाके आफ़िस-सम्बन्धी सब कार्योंको करना व कराना और सब काग़ज़ोंको सम्हालकर रखना।

६७—पाठशालाके उन्नति विषयक अपने अपने विचार व प्रस्तावोको लेखद्वारा हेड्मास्टरपर सूचित करना।

१०५—एक वर्षमे पाठशालाके अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियोको हक़की एक मासकी छुट्टी सवेतन मिलेगी।

१०७—रियायती छुट्टीका हक़ ११ मासकी निरन्तर सेवा पीछे एक मासका होगा और तीन महीनेसे ज़ियादा हक़ न होगा, ग्रीष्मकालकी छुट्टी होनेपर यह रियायती छुट्टी आधे वेतनपर मिलेगी।

१०८—बीमारीकी हालतमें डॉक्टरका सरटीफ़िकेट पेश करनेपर हक़ मुताबिक़ छुट्टी दी जावेगी, पर कुल छुट्टी ६ माससे जियादा न चढ़ेगी।

११०—केजुअल और रियायती छुट्टी दो अध्यापकोको एक साथ नहीं मिलेगी, परन्तु ख़ास ज़रूरतपर एक हफ़्तेतक दी जा सकेगी।

१११—परीक्षा व पाठशालाके किसी ज़रूरी मौक़ेपर किसी प्रकारकी छुट्टी किसीको न मिलेगी।

११४ छुट्टीपर जानेवाले अध्यापक व अध्यापिकाको यदि

अपनी स्वीकृत छुट्टीके उपरान्त किसी ज़रूरी कामपर पाँच दिन-से ज़ियादा छुट्टी बढ़वानी हो तो अर्ज़ी अपनी पहिली छुट्टीकी मियादमें ऐसे समयमें भेजनी चाहिये कि उसका जवाब वापिस जा सके अन्यथा छुट्टी स्वीकार नहीं होगी।

११५—यदि कोई कर्मचारी पाठशाला छोड़ना चाहे तो उसे एक मास पूर्व सूचना देनी चाहिये, यदि कमेटी किसीको पृथक् करना चाहे तो भी एक मास पूर्व सूचना दे दी जावेगी। परन्तु यदि किसी कर्मचारीका आचरण बहुत ही अयोग्य वा पाठशाला-को हानिकारक प्रतीत होगा तो वह सहसा पाठशालासे पृथक् कर दिया जावेगा।

१२३ (ढ) - पाठशालामे कार्यसंचालन और सुप्रवन्धके हेतु स्कूलके नये-पुराने सामानकी फ़िहरिस्त रहेगी।

परिशिष्ट नं० १२

वार्षिक परीक्षा सन् १९२३ ई०—प्रारम्भिक हिन्दी कक्षा (सी) :—

क्रम संख्या	नाम विद्यार्थी	कक्षा-परीक्षा फल	डबल परीक्षा फल	विशेष विवरण
		पूर्णाङ्क	१००	
१	मोहनलाल वेगानी	८८	८४	
२	सोहनलाल कोठारी	८६	७६	
३	चाँदमल सोनार	८६	७०	
४	फ़तेहचन्द सोनार	८०	७४	
५	धनसुख सेवक	७६	६६	
६	भवरलाल कोचर	७६	४८	
७	रामनारायण - ब्राह्मण	७२	५४	
८	धनराज सोनार	७२	३८	
९	रागगिरि स्वामी	७०	७०	

१०	मोहनलाल राखेचा	६८	——	उपस्थित न था, आनेपर तरक्की हुई।
११	शिखरचन्द कोचर	६२	——	डबल-परीक्षा-कोर्स पढ़ा नहीं था।
१२	ऋद्धिकरण भणशाली	६०	३२	तरक्की दी।
१३	रामकृष्ण सोनार	५४	.	
१४	फाल्गुणचन्द्र सेठिया	२२	.	
१५	शिखरचन्द डागा	१४	...	उत्तीर्ण
१६	उत्तमचन्द सोनार	२	...	
१७	ग्वालदास पुरोहित	०	..	

परीक्षक —

श्रीयुत बा० रूपचन्दजी सुराना, उपमन्त्री,
श्री जैन पाठशाला, बीकानेर।

परिशिष्ट नं० १३

जब किसी देश या समाजके नेता, सुधारक, शुभचिन्तक अथवा सत्य-प्रेमी अपनी सम्मति प्रकट कर किसी देश, समाज अथवा संस्थाकी त्रुटियोंका दिग्दर्शन कराते हैं तो उनका भाव किसीका अपमान अथवा आक्षेप आदि करनेका कदापि नहीं होता, वरन् उनकी हार्दिक इच्छा यही रहती है कि किसी प्रकार सच्ची उन्नति हो। इसी भावको लेते हुए नीचे लिखे महानुभावोंने जैन समाजके प्रति समय समयपर अपनी अपनी सम्मति प्रकट-कर सहृदयता तथा शुभचिन्तकताका परिचय दिया है—ऐसे ही सज्जनोंको त्रुटियाँ दिखलायी देती हैं। चापलूसोंको तो खुशामदकी माला फेरनेसे फुर्सत ही नहीं, भला त्रुटियाँ देखें तो कैसे देखें !:—

ओसवाल . इस जातिमें यदि कमी है तो एक बातकी है, और वह कमी ऐसी अनुचित है कि उसके कारण उसकी सभ्यता, प्रतिष्ठा और महत्तापर भयङ्कर दोष लगता है। यह कमी है विद्या-प्रचारकी।......इस जातिमें शिक्षित मनुष्योंकी संख्या नितान्त अल्प है। ..यदि यह जाति शिक्षा-सम्पन्न हो तो इसकी व्यापारोन्नति दूनी-चौगुणी हो सकती है।

—श्रीयुत कन्नोमलजी, एम० ए०

—("ओसवाल" द्वितीय वर्ष, अङ्क ३)

सारे भारतवर्षकी जातियाँ गहरी नींदसे जागकर उन्नति

लगी हुई हैं, केवल हमारी ओसवाल जाति अवनति-दशामे पड़ी हुई घोर निद्रा ले रही है. . .. . ..इन सब कुरीतियोका सरदार केवल शिक्षाका अभाव है।

...[स्वर्गवासी] श्रीयुत कालूरामजी वर्डिया, वीकानेर

—("ओसवाल" वर्ष २, अङ्क ४

आज प्रत्येक शिक्षित जैनके हृदयमे... ..क्योकि जब हम दूसरी जातियोंपर दृष्टि डालते हैं तब उनकी अपेक्षा हम अपनेको अवनत ही पाते हैं ....अपने अपने लड़कोको उच्च शिक्षा दो, विज्ञान उद्योग आदिकी शिक्षाके लिये समुद्र-पार भेजो। विलासिताको त्यागकर सुकुमारताको छोड़कर संयमी और बल-वान बनो।

—श्रीयुत जगमन्दिरलालजी जवेरी।

("ओसवाल" वर्ष २, अङ्क १०)

यदि ... .जबकि समस्त संसारमे उन्नतिकी पवन प्रबल वेगसे प्रवाहित हो रही है तब हमारी समाजमे उन्नति कैसे हो, इसकी पूछताछ मची है। मैं यह कभी कहनेका साहस नही कर सकता कि यह समाज उन्नतिके शिखरका मार्ग ही नहीं जानती वरं जानती हुई कुमार्गका अवलम्बन कर रहा है यह कहनेको रुक भी नहीं सकता ....वैसे तो इस समाजमे अविचारने अपना केन्द्र स्थान बना ही लिया है। किन्तु कभी कभी क्या

विशेषकर ऐसी दुर्घटनायें घटित हो जाती हैं जो हृदयको व्यथित कर देती हैं ....मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहनेको बाध्य होकर स्पष्ट चेतावनी दे देता हूँ कि इस समाजका अन्त निकट है।

—श्रीयुत मोतीचन्दजी वैद, मुथा, चरखरी स्टेट।
("ओसवाल" वर्ष ३, अङ्क ६)

अब चेतिये,जमाना पलट गया है। सब समाजें अपनी अपनी गिरी हुई दशापर ध्यान देके निद्रासे जागृत होके उन्नतिकी राहको आँख फैलाकर देख रही हैं और विद्याबल तथा एकतासे उन्नति कर रही हैं। परन्तु अफसोस ! सख़्त अफ़सोस कि हमारी ओसवाल समाज अभीतक घोर निद्रामें सो रही है। एकता और विद्योन्नतिकी बात तो अलग रही, मिथ्या ज्ञानसे उलटे द्वेष और फूट आपसमें बढ़ रही है।

—ओसवाल समाजका एक हितेच्छु युवक।
("ओसवाल" वर्ष ३, अङ्क ७)

सज्जनो ! प्राचीनकालमें किन किन कारणोंके प्रादुर्भाव होनेसे समाजकी उन्नत दशा थी ! और आजकल किन किन कारणोंके होनेसे अवनत दशा है।.........उन्हें ज़रा ग़ौरसे बाँचनेकी या सुननेकी कृपा करेंगे तो शीशेकी मानिन्द उन्नत और अवनत दशाका हाल मालूम हो जायगा।

प्राचीन समयमें	*अर्वाचीन समयमें*
आपसमें प्रेम था।	द्वेष है।
सहानुभूति थी।	कटनी है।
ज्ञानका प्रचार था।	अज्ञानका प्रचार है।
कृतज्ञता थी।	कृतघ्नता है!
मधुरालाप था।	कठोरालाप है!
बाललग्न नहीं होता था।	बाललग्न होता है।
वृद्धविवाह नहीं होता था।	वृद्धविवाह होता है!
कन्यादान होता था।	कन्या-विक्रय होता है!
... .	....
लोक प्रायः सत्याग्रही होते थे।	कदाग्रही होते हैं!

—पंन्यास श्रीयुत सोहनविजयजी गणी।

(श्री आत्मतिलक ग्रन्थ सोसायटी पु० न० १४)

"भगवान्! जैन समाजने ही पाप क्या ऐसे किये?
सब जातियाँ आगे बढ़ीं उत्साह साहसके लिये॥
पर यह समाज सदैव ही पीछे स्वपद रखता रहा।
जो ह्रास अरु विकरालकाही नाशफल चखता रहा॥"

—कन्हैयालाल जैन।

(ओसवाल समाजकी वर्तमान स्थितिसे)

सन् १९२१ की मनुष्यगणनासे ज्ञात होता है कि जब अन्य अन्य धर्मकी आबादी बढ़ी है तब जैनकी आबादी १० वर्षके

अन्दर ७० हजारके क़रीव घटी है ..यदि ऐसा ही सिल-सिला क्षति होनेका जारी रहा तो १७८ वर्षोंमे जैनोंका नाम-निशान न रहेगा।

—"अहिंसा-प्रचारक" अजमेर, वर्ष १, अङ्क २४,

आज क़रीव ८ माससे जैन जनताके सन्मुख गला फाड़ फाड़-कर चिल्ला रहे हैं कि आप अपना आलस्य त्यागिये, मोहनिद्राको तोड़िये, आपसके भेदभावको अग्निमे भस्मीभूत कीजिए और सव मिलकर सङ्गठन कीजिए, सङ्गठनकी वड़ी आवश्यकता है, सङ्गठन समाज और जातिका जीवन है। सङ्गठन समाजका प्राण है। सङ्गठन समाजकी शक्ति है। किन्तु किसीने भी इस तरफ़ ध्यान न दिया। आज भारतमे चहुँ ओर सङ्गठन हो रहा है, किन्तु जैनोंके अदर इस वातका ज़रा भी विचार नहीं है। . .. इस वास्ते-भाइयो, सर्वप्रथम आप अपना समाजका संगठनका कार्य आरम्भ कीजिये, जिससे समाजमे शक्ति हो और प्रेम प्रीति वढ़े।

—"श्रीश्वे० स्था० जैन कान्फ़रेन्स," अजमेर, वर्ष ११ अक २०

प्यारे भाइयो, यह कहने या वतलानेकी विशेष रूपसे आवश्य-कता नही है कि अपनी समाज शिक्षासे कितनी विमुख है। और इसी कारणसे समाजमे नाना प्रकारकी वुराइयाँ आ गई हैं। अगर लोग शिक्षित हो, अगर समाज शिक्षित हो तो भी सम्भव नहीं कि समाजमे इतनी वुराइयोका प्रवेश हो। पर भाई साहव यहाँ

आप देखते हैं कि अपनी सन्तानोंको, अपने भाइयोंको पूर्ण रूपकी शिक्षा देना एक प्रकारका पाप सा समझते है। आप प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि लोग स्त्रीशिक्षासे कितना चिढ़ते हैं।..... .अगर बालक कहीं तार आदिका अंग्रेज़ीमे लिखना सीख ले तो वह मानो पूरा पण्डित हो गया। किन्तु शोक है ऐसे पांडित्यपर! कि जो इस नाम मात्रके नामादि ही लिख लेनेमें अपनेको पांडित्यमे कालिदाससे भी उच्च समझने लगते हैं। . .. .आप जानते हैं कि प्रत्येक देश, जाति और समाजकी उन्नति वहाँकी शिक्षा-ही-पर निर्भर रहती है।... ....अब मैं अधिक न कहकर यही प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग शिक्षाकी ओर विशेष ध्यान देनेका कष्ट उठावें।

—श्रीयुत मालचन्द कोठारी, चूरू (बीकानेर-राज्य)।
(ओसवाल-समाज-सुधारसे)

ओसवाल बन्धुओंकी सेवामें निवेदन है कि इस परिवर्त्तन-युगमें आप कब तक गहरी निद्रामें सोते रहेंगे। इस तरह सोनेसे समाज कबतक जीवित रह सकती है। ओसवाल-प्रतिनिधि-सभा कुछ कालसे जाति-सुधारके निमित्त प्रति रविवारको आप लोगोंको निमंत्रित कर रही है। ....जिस रूपमें ओसवाल समाज चल रही है यदि यथाशीघ्र समाजमें सुधार और सङ्गठन नहीं हुआ तो जान लीजिये निश्चय:ही समाजको अन्य समाजोंके सामने नीचा देखना पड़ेगा। अतएव अपनी प्रतिनिधि सभाको सँभालिये

और उसके द्वारा व्यापार एवं अन्य सुमार्गोंपर उन्नतिशील हो बढ़िये और समाजको गौरवान्वित कीजिये। भरोसा है, प्रार्थना विफल न होगी।

श्रीयुत फ़तेचन्द नाहटा, १२४ केनिङ्ग स्ट्रीट।
("कलकत्ता-समाचार," श्रावण शुक्ल ११, सं० ८१, संख्या १४७)

वेद है विचारो चार शास्त्र उर धारो षट,
त्यागदो विकार "मिश्र" ये ही मन मारेंगे।
काल काल खैहै कलिकालको प्रभाव यही,
अन्त काल गाल सब छनमें सिधारेंगे॥
शाल और दुशाल अश्वशाल धनमाल आदि,
प्यारे वन्धु लाल, बाल येही जाल डारेंगे।
यातें छल छिद्रता दुराय व्यवहार करो,
सोंचेहू सुजान आप जातिको सुधारेंगे॥

—श्रीयुत शालिग्रामजी मिश्र, हेडमास्टर, सोंढ़लपुर, होशंगाबाद।
("ओसवाल" वर्ष ४, अंक १२)

परिशिष्ट नं० १४

श्री महाराज बीकानेर दरबारका आदर्श क़ानून-

ऐक्ट नं० २ सन् १९१९ ई०

रियासत बीकानेरका लड़कोंके तम्बाकू पीनेको रोकनेका ऐक्ट।

२१ अप्रैल सन् १९१९ ई० को श्री जी साहब बहादुरकी मंज़ूरी हासिल हुई
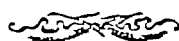
चूँकि मसलहत है कि रियासत बीकानेरके लड़कोंके तम्बाकू पीनेको रोकनेका क़ानून बनाया जावे, इसलिये हस्ब ज़ैल अहकाम सादिर किये जाते हैं —

छोटा नाम वसअत मुक़ामा और शुरू निफ़ाज़

दफ़ा १— (१) यह ऐक्ट लड़कोंके तम्बाकू पीनेको रोकनेका ऐक्ट सन् १९१९ ई० कहलायेगा ।

(२) यह ऐक्ट रियासतके कुल म्युनिसपेल क़स्बों और उन तमाम जगहोंसे, कि जिनको श्री जी साहब बहादुरकी गवर्नमेण्ट सीग़ा माल वक़्तन फ़वक़्तन राजपत्र बीकानेरमे मुश्तहिर करे, मुताल्लिक़ होगा।

(३) यह तारीख़ १ जुलाई सन् १९१९ ई०से जारी होगा।

दफ़ा २— इस ऐक्टमें अगर कोई अमर मनमून नाशिफ़ान।

या क़रीने इवारतके लिहाज़से ख़िलाफ़ न पाया जावे तो—

'पुलिस अफ़सर'से मुराद एक मुक़र्रिर की हुई जमात पुलिसके किसी मेम्बरसे है और इसमें गाँवका चौकीदार भी शामिल है।

'सिगरेट' में कटा हुआ तम्बाकू जो काग़ज़ या तम्बाकूके पत्ते या किसी दूसरी चीज़में इस तरहपर लिपटा हुआ हो कि जो तम्बाकू पीनेके वास्ते फ़ौरन इस्तेमालके क़ाबिल हो, शामिल है।

लड़कोंके हाथ तम्बाकू बेचनेपर सजा।

दफ़ा ३—(१) अगर कोई शख़्स किसी ऐसे लडकेके हाथ, कि जो दीखनेमें १४ वर्षसे कम उम्रका हो, सिवाय इख़्तियार तहरीरीके जो ऐसे लड़केके माता पिता, सरपरस्त या आक़ाने दिया हो, तम्बाकू, सिगार, सिगरेट या बीडी बेचे तो वह पुलिसके इस्त-ग़ासेसे जुर्म साबित होनेपर पहली बारके जुर्ममें जुर्मानेका मुस्तोजिब होगा जो ५) से ज़ियादह न हो और दूसरी बारके जुर्ममें जुर्मानेका मुस्तोजिब होगा जो १०)से जियादह न हो, और तीसरी बारके जुर्ममें और इसके बाद हर एक जुर्मपर जुर्मानेका मुस्तोजिब होगा जो २०) से ज़ियादह न हो।

(२) ज़ाब्ता जो अमलमें लाया जावेगा वह ऐसा होगा कि मुक़द्दमात क़ाबिल इजराय समनमे होता है।

शारह आममें तम्बाकू पीते हुए लड़केसे

दफ़ा ४—(१) अगर कोई लडका, जो ज़ाहिरा १४ वर्षसे भीतर हो, सडक या दूसरे शारह आमपर

सिगार, सिगरेट, बीड़ी, चिलम, हुक्का या पाइप पीता हुआ मिले तो हर पुलिस अफ़सरका, जो वर्दी पहने हुए हो, यह फ़र्ज होगा कि तमाम ऐसी चीजें जो ऐसे लड़कोंके पास हों, ज़ब्त कर ले।

सिगार वगैरह ज़ब्त करनेकी बाबत पुलिस अफसरका इख्तियार

(२) ऊपर लिखे हुए ज़िमनी दफ़ा (१)के इग़रज़के लिये पुलिस अफ़सर मजाज़ होगा कि वह हर एक लड़केकी तलाशी ले जो इस तरहपर तम्बाकू पीता हुआ मिले।

(३) इस ज़िमनी दफ़ाकी तामीलमें ज़ब्त की हुई चीज़ोंका तसर्रुफ ऐसे तरीक़ेसे किया जावेगा जो श्री जी साहब बहादुर-की गवर्नमेण्टकी मंजूरी हासिल करके इन्स्पेक्टर-जनरल पुलिस मुक़र्रर करे।

परिशिष्ट नं० १५

(अ) पत्र नं० १७४ ता० २२-१०-२३ :—

श्रीमान् हेड्मास्टरजी,

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर,

ता० २२-१०-२३.

महाशयजी,

"साँचमें आँच" नामका नोटिस आपकी ओरसे प्रकाशित होकर बँट रहा है। यह आम नोटिस है, इस नोटिससे मुझसे बढ़कर घनिष्ट सम्बन्ध किसी दूसरेसे नहीं है। आम नोटिस

होनेके कारण आपसे सादर निवेदन है कि इसकी कम-से-कम २५ प्रतियाँ मुझे दे कृतार्थ करें। इनको मैं अपने परिचित-पहचानियोंमे बाँटूंगा—इसका बाँटना है भी उचित।

अतः आपसे सादर निवेदन है कि मेरी प्रार्थनापर पूर्ण विचार कर मुझे *नोटिस देनेकी कृपा करें—चाहे मेरे मकानपर भेजवा दें अथवा जहाँ चाहें वहाँ मुझे बुलाकर दे देवें। आशा है, उचित तथा शान्तिदायक उत्तर दे कृतार्थ करेंगे।

भवदीय—

रामलौटन प्रसाद, लेट असिस्टेण्ट मास्टर, श्रीजैनपाठशाला।

पता—बेगानी पिरोल, बीकानेर।

(ब)पत्र नं० १७६ ता० २४-१०-२३:—

श्रीमान् हेड्मास्टर जी,

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर,

२४-१०-२३

महाशय जी,

मैंने आपकी सेवामें पत्र नं० १७४ ता० २२-१०-२३ भेजकर सादर निवेदन किया था कि मुझे "साँचमे लाँछ" नामके नोटिस* भेजकर कृतार्थ करें, किन्तु आपने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। यह तो आम नोटिस है, भला इसके देनेमें इतना विलम्ब क्यों है? इसका तो जितना प्रचार अधिक हो उतना ही अच्छा है—फिर मुझे तो प्रार्थनानुसार देना ही उचित है। अतः सादर निवेदन है

* नोटिसोंका देना तो दूर रहा, पत्रोत्तरतक नहीं मिला।

कि जितनी प्रतियाँ आप आसानीसे दे सकें, आज भेजकर अनुगृहीत करें।

भवदीय—

रामलौटन प्रसाद, लेट असिस्टेण्ट मास्टर,

श्री जैन पाठशाला, बीकानेर।

परिशिष्ट नं० १६

मैंने प्रचारार्थ अपने नोटिसोंको बीकानेरके अतिरिक्त भारत तथा भारतके बाहर भी कुछ प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थानोंमे भेजा है। उदाहरणार्थः—

एच. एच. दी महाराजा साहिब तथा महाराज कुमार साहिब, बीकानेर। एच० ई० दी वाइसरॉय ऑव इण्डिया, दिल्ली। एच. एच. दी महाराजा साहिबान ऑव कश्मीर, बड़ौदा, मैसूर, नेपाल जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, अलवर, भरतपुर, तथा एच. एच. दी नव्वाब साहिब ऑव हैदराबाद (दक्षिण) आदि आदिकी सेवामें भेजा गया था। इसके सिवाय ऑल इण्डिया कॉग्रेस कमेटी आदिकी सेवामें भी भेजा गया था।

दी राइट ऑनरेबुल दी स्पीकर ऑव दी हाउस आव कॉमन्स, दी हाउस ऑव पार्लामेण्ट, लन्दन तथा दी राइट ऑनरेबुल दी प्रेसिडेण्ट ऑव दी रिपबलिक ऑव दी यू. एस. ऑव अमेरिका (वॉशिङ्गटन) आदि आदिकी सेवामें भेजा गया था।

परिशिष्ट नं० १७

नोटिसोंके विषयमें चन्द सम्मतियाँ:—

श्री जैन पाठशाला बीकानेर—यहाँकी जैन पाठशालाके सम्बन्धमें "कोचर-शाह तिमिर भास्कर" नामक नोटिस प्रकाशित हुई है। पाठशालाके संचालक शाहजीने उसका प्रतिवाद* किया है। मैं ने सत्यता जाँचनेके लिये जाँच की तो मालूम हुआ कि दोष शाहजीका ही है। पाठशालाके व्ययमें वृद्धि और नये हेड्मास्टरकी नियुक्ति होनेपर भी अवस्था सन्तोषजनक नहीं है। सुना जाता है कि शिवबक्सजी कोचर सेक्रेटरीका विश्वास है कि यह पाठशालाके विरूद्ध आन्दोलन कोई ओसवाल ही गुप्त रीतिसे सहायता देकर करा रहा है। यदि ऐसा हो तो दानी महाशयको अपना नाम प्रकट कर उनका भ्रम दूर कर देना चाहिये।

—एक जैनी।

("तरुण-राजस्थान," अजमेर, ता० २४-२-२४)।

श्री डूंगर कॉलेज बीकानेर—"साँचको आँच क्या ?" नामक पुस्तकाकार नोटिस बाँटनेपर इस कॉलेजके हेड्मास्टर श्रीयुत पं० चुन्नीलालजी शर्म्मा एम. ए, एल. एल. बी. ने ता०

---

* "प्रतिवाद" का होना सम्पादक अथवा संवाददाताने कदाचित् भ्रमवश लिख दिया है—उसका प्रतिवाद तो आजतक भी नहीं हुआ। हाँ, भूतपूर्व दो नोटिसोंका प्रतिवाद बड़ी धूमधामके साथ अवश्य हुआ है।

२७-८-२३ को नोटिसद्वारा अध्यापकोंको सूचित किया कि इस प्रकारके नोटिस आदि न लें।

विद्यालय ही एक ऐसी संस्था है, जहाँपर ज्ञानकी शिक्षा देकर सत्यासत्य निर्णयको शक्ति प्रदान की जाती है। इसी अधारपर मैंने अधिकतर नोटिसोंका वितरण विद्यालयोंमें किया है। एक प्रधान अध्यापकका यह कर्त्तव्य कहाँतक प्रशंसनीय तथा विचारपूर्ण है, पाठकगण स्वयं विचार देखें।

श्रीगुण प्रकाशक सज्जनालय बीकानेर—ता०८-६-२३ई०

मान्यवर मंत्रीजी महोदय,

सुननेमे आया है कि "साँचको आँच क्या?" नामक पर्चाका यहाँसे वहिष्कार कर दिया गया है। जब कि उसके प्रकाशक तथा लेखकका उसपर नाम लिखा हुआ है तदर्थ वह उत्तरदायी भी है। और न राज्यने ही उसे आपत्तिजनक माना है, तो फिर ऐसी सर्व-जन एवं सर्व धर्मोपकारिणी संस्थाके बाचन-स्टेजसे निर्वासित कर देना कौतूहल-जनक नहीं है! क्या अखबारो तथा पुस्तकोंमे किसी सताये हुए दुखीकी दुखगाथा नही रहती? तथा उस संस्थाके अथवा इतरजनके विरुद्ध कुछ कम बातें रहती हैं? उसने छपाया किस लिये है! सिर्फ़ प्रचार करनेको। सिर्फ वीकानेरमे ही नहीं अन्यत्र भी प्रचारार्थ प्रेषित किये गये हैं। तथापि यद्यपि न तो किसी स्थानसे वहिष्कार ही किया गया और न राज्यद्वारा रोका गया। मुझे सिर्फ इतना ही कहना है कि उस पर्चेके यहाँपर रहनेसे किसीभी प्रकार इस संस्थाके

उद्देश्यमे खलल नहीं पड़ता है, न किसी मनुष्यका वैमनस्य ही होता है, यहाँपर सब प्रकारके मनुष्य आते हैं। इस संस्थाका किसीसे विरोध नही। निष्कर्ष केवल यह है कि बहिष्कारका कारण ज्ञात हो जाना चाहिए।

आपका, शुभचिन्तक,

—पोलाराम गोस्वामी।

(सम्मति-रजिस्टर पृष्ठ ७६ से उद्धृत)।

उत्तर:—

व्यक्तिगत आक्षेपसे प्रेरित पर्चोंको संस्थामे स्थान नहीं दिया जाता। यही नियम भिन्न भिन्न पंथोके लिये भी लागू है।

—श्रीयुक्त युगलसिंहजी [एम० ए०, एल०, एल० बी०]

मन्त्री [तथा भूतपूर्व अवैतनिक अध्यापक, श्रीजैन पाठशाला, बीकानेर]

(उपरोक्त रजिस्टर पृष्ठ ७७ से उद्धृत)

बीकानेरसे 'एक जैनी' वहाँकी 'जैन पाठशाला'के सम्बन्धमें कुछ शिकायतें करते हैं। प्रबन्धकर्त्ताओंको उन्हें दूर करना चाहिए।

—"अर्जुन," दिल्ली, ८ दिसम्बर सन् १९२४ ई०

नोट—"अर्जुन" में आन्दोलन नोटिसका जिक्र नहीं है, किन्तु आन्दोलन-समयका समाचार जान उल्लेखित कर दिया है। सम्भव है कि कोई विशेष गुप्त शिकायतें हों जिन्हें सम्पादक महोदयने स्पष्ट प्रकाशित

परिशिष्ट नं० १८

इस पॉलिसीयुगमें चापलूसोंकी विशेष क़द्र है, हर जगह पैठाव है, सभा-सोसाइटियोंमें सादर चावके साथ बुलाहट है। चापलूस सदा खुशामद-पसन्द शब्दोंकी खोजमें रहता है। आजकल प्रायः सभा-सोसाइटियों तथा अन्य संस्थाओंमे सभापति, मंत्री तथा अन्य कर्मचारियोंके प्रसन्नतार्थ चापलूस निम्नलिखित भाव प्रकट करते हैं और अफ़सरान पूर्ण अनधिकारी होते हुए भी फूल कुप्पा हो जाते हैं :—

"श्रद्धास्पद सेवक समाजके सुजान वर,
सुजन सुशील सत गुण गण धाम है।
सहज सुभावके दुराव कछु राखैं नाहिं,
भाखैं नाहिं असत करत पर काम है॥
सेवा नाथ! केहि विधि रावरी बखानि सकों,
सेवाके गनाइबेको कहाँ इते नाम हैं।
लोक उपकार हित आपको जनम यह,
आजके जमाने भगवान आप राम है॥"

बस—समाप्त होते ही करतलध्वनि आरम्भ! वाहवाह, कमाल है—इसके आगे सूर, केशव, तुलसी आदि सब झूठ!!

करना उचित तथा देश-हितकर न समझा हो—इशारामात्र कर दिया है।

और कोई लिखित सम्मति आदि मेरे देखने अथवा सुननेमें नहीं आयी है। बहुत सम्भव है कि और भी अनेकों सम्मतियाँ हों जिन्हें ज्ञात होनेपर यथासमय सूचित करनेकी यथाशक्ति चेष्टा करूँगा।

एक नवयुवक, जो पहले-ही-से इस कार्यके लिये फ़िट (योग्य) चुना रहता है, पुष्प-माला पहनानेके लिये हाव भाव करता हुआ शीघ्र भरी सभामे आ उपस्थित होता है !!! यह दृश्य वर्णन करने-योग्य नही, देखते ही बनता है। भला कहिये, इस नवयुग वहार-के आगे पुरानी सभ्यता तथा वहार कहाँ ?...आदि आदि।

अव पाठक स्वयं विचार करें कि सुधार तथा सत्य-प्रकाशमें कितना विलम्ब है, और हम लोग किधर जा रहे हैं !! क्या प्राचीन सभ्यता लेकर निखट्टू वनेंगे !!!—वस, दाँतों तले जीभ दवानेके अतिरिक्त और कुछ भी वश नही।

परिशिष्ट नं० १६

कोचर महाशय और रिपोर्ट

श्री जैन पाठशाला वीकानेरकी यह १६ वर्षीय (१६०७--२१) रिपोर्ट केवल ४० पृष्ठोंमें सर्वप्रथम प्रकाशित होकर इसी दिस-म्वर मासमे जनतामे वाँटी गयी है। मैंने सत्य-प्रेमसे, समाज तथा देशकी भलाई समझ, इसपर अपनी जानकारी के अनुसार थोड़ा प्रकाश डाला है, जिससे जनताको इसका रहस्य विदित हो गया होगा।

अति खेद है कि इस प्रकारकी झूठ वातें लिख जनताको धोखा दिया जा रहा है। ऐसे व्यवहारोंसे समाज तथा धर्मकी कहाँतक उन्नति हो सकती है, पाठकगण स्वय विचार करें। ऐसे

व्यवहारोंको आजकल प्रायः लोग भ्रमवश अहिंसात्मक कार्य कहने लगे हैं।

आश्चर्य है कि श्रीयुत पं० चिम्मनलालजी गोस्वामी एम. ए. जैसे सुयोग्य हेड्मास्टरके होते हुए रिपोर्टमे इस प्रकारकी असत्य बातोंका समावेश निर्भीकताके साथ किया गया है। सम्भव है कि गोस्वामीजीने शाहजीका विश्वास कर कागज़ोको उन्हींके हाथमे दे रक्खा हो।

इतने वर्षोंमें केवल दो ही अध्यापक (बाबू मया भाई टी० शाह बी० ए० और पण्डित रामेश्वरदयालजी) वैतनिक अध्यापकोंमें कोचर महाशयको प्रकटरूपमें धन्यवादके पात्र प्राप्त हुए हैं, जिनकी रिपोर्टमें मुक्तकण्ठसे भूरि भूरि प्रशंसा की गयी है। खेद है कि अन्य अध्यापकगण कर्त्तव्यपालनकी अवलेहना कर कोचर महाशयको खुश न कर सके।

इस रिपोर्टमे मेरे वर्त्तमान आन्दोलन तथा श्रीयुत गोस्वामीजीकी नवीन नियुक्तिका पूर्णाभाव है! कदाचित् यह कहा जावे कि पाठशालाका वर्ष ३१ मार्चको समाप्त हो जाता है और ये दोनों बातें इसके पश्चात्की हैं। किन्तु ऐसा कहना मान्य नहीं हो सकता; क्योंकि रिपोर्टमें ऐसी बातें भी पायी जाती हैं जो ३१ मार्च सन् १९२३ ई० तथा मेरे आन्दोलनके पश्चात्की हैं। गोस्वामीजीकी उपस्थितिमे इस प्रकारकी रिपोर्टका निकलना सन्तोष तथा शान्तिदायक कैसे कहा जा सकता है? आपसे जनताको विशेष आशा है।

परिशिष्ट नं० २०

विविध विचार :—

मन्थराकी निस्स्वार्थताको प्रायः भारतवर्षका बच्चा बच्चा जानता है और उसके प्रेममय शब्दोंमें पड जो दशा केकयी जैसी आदर्शशीला महारानीकी हुई है, किसीसे छिपी नहीं है। मन्थराके शब्दोंपर ध्यान देना अत्यावश्यक है—"कोउ नृप होय हमहिंका हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी॥··· 'आदि आदि।" कैसी जटिल समस्या है! कैसा जादू भरा है!! कितनी विचारशक्तिकी आवश्यकता है!!!

अब देखना है कि मेरे प्रतिद्वन्दी शाहजीके निस्स्वार्थ तथा निस्संकोच शब्दोमे क्या असर है और इस अलौकिक जादूका समाज तथा देशपर क्या प्रभाव पड़ता है—"मैं अपने आत्मीय शुद्ध भावोंसे इस संस्थाका कार्य कर रहा हूँ और मुझे अपने आत्मप्रदर्शित पथसे विचलित करनेकी किसीकी सामर्थ्य नहीं है—मैं, निस्संकोच, पाठशालाके हितार्थ अपना पदत्याग करनेको सहर्ष उद्यत हूँ। · आदि आदि!"

सत्य ही-के कारण विभीषण और सुग्रीवने अपने अपने सगे अनाचारी और व्यभिचारी भाइयोंका वध कराया। सत्य-ही के रक्षार्थ श्रीकृष्ण भगवानने अपने ख़ास मामा कंसका वध अपने हाथो किया। सत्यपालन-ही-के लिये राजा हरिश्चन्द्रने कौनसा कठिन

कष्ट नहीं भोगा? सत्य-ही-के लिये भक्त प्रह्लादने अपने पितासे पूर्ण असहयोग किया और इसीमें उसके पिताका वध हुआ। सत्य-ही के लिये ५ वर्षका बालक ध्रुव कड़ीसे कड़ी तपस्यापर उद्यत हो परम पदको प्राप्त हुआ। सत्य-ही-के लिये वीर बालक तथा आदर्श विद्यार्थी हक़ीक़तरायने प्रसन्नतापूर्वक अपना सिर कटवाया। सत्य-ही-के लिये नौशेरवाँ बादशाह पूर्ण प्रतापी होते हुए बुढ़ियाका झोंपड़ातक न ले सका। सत्य ही-के लिये मेवाड़-के राणा राजसिंहका पुत्र भीमसिंह अपने अन्यायी पिताका सिर काटनेको तैयार था, किन्तु अन्यायके छोड़ते ही वही भीमसिंह पिताके चरणोंपर गिर सदाके लिये, राज्यका उत्तराधिकारी होते हुए भी, जंगलका वासी हुआ।..... आदि आदि।

अब कहिये न्याय और सत्यका कहाँ समर्थन नहीं हुआ? और जहाँ नहीं हुआ वहाँ शान्ति कहाँ रही?

यदि स्वार्थका परित्याग कर सब लोग विचारें तो उन्हें आप ही पता लग जायगा कि कौन कार्य यथार्थमें अच्छा है—बन्धुओंकी आँखोंमें धूल डालकर अपनी पाकेट भर दामन झाड़ना या उनकी आँखकी पट्टी खोलकर सचेत करना?

——

मर्द अन्यायके लिये कभी हाथ नहीं उठाता। हाँ, अन्याय-को रोकना या आततायीको दण्ड देना हर एक भलेमानुसका काम है। भले आदमियोंका काम है कि वह बुरे आदमियोंको,

चाहे वे किसी भी जाति या धर्मके क्यों न हों, रोकें।

—माननीय पं० मदनमोहनजी मालवीय।

("अभ्युदय," प्रयाग, ३० अगस्त सन् १९२४ ई०)।

गृहस्थके लिये दूसरोंके किये हुए अपराधको शान्त भावसे सह लेना पाप है, उसे उस अपकारका वदला उसी समय और उसी स्थानपर उसी रूपमें लेनेकी चेष्टा करनी चाहिये, जिस रूपमें अपकार किया गया हो।

— स्वामी विवेकानन्द।

("मतवाला," कलकत्ता, १८ अक्तूबर सन् १९२४ ई०)।

अत्याचार करनेवाला निस्सन्देह पाप करता है, परन्तु उससे वढ़कर पापी वह निर्वल होता है, जिसपर अत्याचार होता है। नर्वलता मृत्युका चिन्ह है।

— भाई परमानन्दजी एम० ए०

"नेक वाशी व वदत गोयद् ख़ल्क़ वेह, कि वद वाशी व नेकत गोयद।" अर्थात् सुमार्ग पर चलते हुए यदि लोग वुरा कहें तो यह उससे अच्छा है कि कुमार्गपर चलते हुए तुम्हारी प्रशंसा करें।

"गर रास्त सुखन गोई वदर वन्द मानी,
वेह जॉकि दरोगत देहद अज वन्द रिहाई।"

तात्पर्य यह कि, यदि सत्य-भाषणसे तुम क़ैद हो जाओ तो यह उस झूठसे अच्छा है जो क़ैदसे मुक्त कर दे।

—महात्मा शेख़शादी।

"खलोंका कभी साथ करना नहीं,
कभी श्वानकी मौत मरना नहीं।
कभी आत्म-सम्मान खोना नहीं,
कभी देखकर दुःख रोना नहीं॥
किसी का कभी सत्व लेना नहीं,
खलोंको कभी दान देना नहीं।
किसीको अकारण सताना नहीं,
कभी गर्वसे फूल जाना नहीं॥"

'प्रकाशक' का ऋष्यंक,

लाहौर, ता०२६-१०-२४

"लक्ष्मी नहीं, सर्वस्व जावे, सत्य छोड़ेंगे नहीं;
अन्धे बनें पर सत्यसे सम्बन्ध तोड़ेंगे नहीं।
निज सुत-मरण स्वीकार है पर वचनकी रक्षा रहे,
है कौन जो उन पूर्वजोंके शीलकी सीमा कहे?"

—मैथिलीशरण गुप्त।

अहिंसा धर्म सर्वोत्कृष्ट है परन्तु सत्य उससे भी ऊपर है।

बालकोंकी शिक्षा निर्लोभी, मृदुभाषी, सत्यवादी, प्रेमी, संयमी, सदाचारी, परिश्रमी और धैर्यवान् पुरुषोंके अधीन हो।

"दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्यया भूषितोऽपि सन्।
मणिनालङ्कृतः सर्पः किमसौ न भयङ्करः॥"

अर्थात् दुष्ट यदि विद्वान् भी हो तो भी त्यागने-ही-के योग्य है, जैसे मणिसे भूषित सर्प क्या भयानक नहीं होता?

—भर्तृहरि।

"Cowards die many times before thier deaths
The valiant tastes of death but once"

—Shakespeare.

अर्थात् डरपोक अपने जीवनमें पग पगपर मृत्युको प्राप्त होता है, किन्तु दिलेर वीरताके साथ एक ही बार मृत्युका आनन्द लेता है।

——शेक्सपियर।

"ता हम चो कलम सर न नही दर तहे-कारद।
हरगिज़ व सर अगुश्ते-निगारे नरसी॥"

अर्थात् जबतक लेखनीकी भांति तू चाकूके नीचे सिर नहीं रक्खेगा, तबतक तू अपने प्यारेकी अँगुलियोंके सिरों (पोर) तक नहीं पहुँच सकेगा।

—श्रीस्वामी रामतीर्थ।

What shall it profit a man if he shall gain the whole world but lose his own soul अर्थात् यदि आत्मा-को,वेच किसीने समस्त संसारको प्राप्त कर लिया,तो क्या लाभ ?

—श्री स्वामी रामतीर्थ ।

सत्यको न छोड़ो वीरो ! चाहे जान यह तनसे निकले ।

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

—रामलौटन प्रसाद ।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	६	वाधाए	वाधाएँ
३	२, ३	year's	years'
५	२०	अथवा	तथा
६	१४	ठकुरसुहाता	ठकुरसुहाती
१६	४	उपदेश	कोरा उपदेश
२७	७	हे	हैं
२८	१०	भारतीयोपर	भारतियोपर
३१	१८	दू	दूँ
४२	७	५॥=)	५॥=)
५०	१६	वहधा	वहुधा
५३	१८	आय्य	आर्य्य
५४	२१	ता	सनद्याफ्ता
५५	६	अपनी	जैन
५५	१८	अथवा	अन्यथा
,,	२२	भाव) न	भाव न)
६०	१३	———	———३६-४———
६१	२	छात्रोको	चन्द छात्रोको
६३	५	जीवनलाल कोचर	जीवनमल कोचर
६८	१२	काना	कावा
७३	७	कहते	कह देते
७६	१५	अभीनवी	अभिनवी
७८	६	देता है	देते है
८४	१५	नं०	पत्र नं०
८६	२३	12-6-22	12-6-23
९१	५	कुछ	कुछ भी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९१	६	dated	dates
९३	२४	then in all	than in ill
९४	४	is species	is a species
,,	६	as token	as a token
९८	१४	अध्यापिकाए	अध्यापिकाएँ
९८	१६	उतीर्ण	उत्तीर्ण
९९	१२	वतन	वेतन
१०१	७	बा० भगवंतसिंहजी	बा० भागवतसिहजी
१०७	६	कण्ड	काण्ड
,,	९	पृष्ठ ९७	पृष्ठ ६०
,,	१४	पृष्ठ १७८	पृष्ठ १२१
,,	१८	पृष्ठ ९७	पृष्ठ ६०
१०८	६	[शाहजीको]	(शाहजीको)
,,	७	पड़ा।	पड़ा]।
०६	४	व्यवहारिक	व्यावहारिक
,,	,,	किये	किये गये
,,	१७	[केवल एक दिनकी	[केवल एक दिनकी]
११०	१०	हाज़िरीके अनुसार	हाज़िरीके
११५	१६	षणमासिक	षाण्मासिक
,,	१६	प्राइमर	हिन्दी प्राइमर
११६	४	पृष्ठ १६०	पृष्ठ १२६
१२१	१६	मैं	मे
१२५	१४	देना पड़े	देना पड़ा
,,	१८	पाठशालामें जन्मसे	पाठशालाके जन्मसे
१२६	६	षणमासिक	षाण्मासिक
१३४	१४, १५	जैन-समाजके ही महोदय	जैन-समाजके ही सज्जन महोदय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४१	१०	[सेन्सस]	(सेन्सस)
१४३	१२	उचित है	उचित ही है
”	१७	letter	letters
१४५	२	नामासर	नापासर
१४७	२	वह कहावत	यह कहावत
१५४	९, १०	“ब्रूयात् सत्यमप्रियम्”	“ब्रूयादसत्यमपिप्रियम्”
१५५	१४	dreads fire	dreads the fire
१५८	१३	[चीफ़ जस्टिस]	(चीफ़ जस्टिस)
१५९	११	प्रत्यक्ष अनुमान	प्रत्यक्ष और अनुमान
१६५	१०	सवला	उसे सवला
१६८	१६	[पाठशाला]	(पाठशाला)
१७१	१८	नियम नं० १७	नियम नं० ७१
१७२	१८	cennot	cannot
१७३	१९	fergotton	forgotten
१७४	१६	मज़बूर	मजबूर
१७५	१७	[नही, वरन् सबकी	[नही, वरन् सबकी]
१७६	५	कोचर शाहका	कोचर-शाहकी
”	१६	“अकंकृत”	“अलंकृत”
१८१	४	कोचर-शाहकी जो	कोचर-शाह, जो
१८३	५	६—	७—
१८४	६	मज़बूरन	मजबूरन
”	१६	ई०	ई० में
१८५	१२	विशाला	विशाल
१८६	४	हो गया।	हो [illegible] होगा।
१९१	२१	and	[illegible]
१९६	९	बा० जेटमलज	[illegible] जेठमलजी
१९७	३	कक्षा ६ तक	[illegible] ८ तक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०७	१८	अप्रैल सन् १६२३ ई०	अप्रैल सन् १६२२ ई० से
२१५	२०	infantary	infantry
२२८	२	दर्जन	दर्जन
२३३	१	an	any
२३६	६	at 1-5-p m.	at 1 50 p m
२३६	२	म इसका	मैं इसका
२४२	४	ये हैं	चन्द ये हैं
२४५	१०	समयराज नाहटा	सभयराज नाहटा
२५५	१२	रागगिरि स्वामी	राजगिरि स्वामी
२५६	३	तरक्की दी।	तरक्की दी गयी।
,,	५से८	उत्तीर्ण	अनुत्तीर्ण
२५७	२१	उन्नति	उन्नतिमे
२६६	५	डूगरज़	डूगराज़
२६७	५	कृपा करें	शीघ्र कृपा करें
२७०	५	अधारपर	आधारपर
२७३	८	निखट्ट	निखट्टू
२७६	१८	मर्द	मर्दका
२७७	४	अपराधको	अपकारको
,,	१२	नर्बलता	निर्बलता
२७८	१२	'प्रकाशक'	—'प्रकाश'

नोट—पृष्ठ २५३ पंकि १४, नियम नं० १०८ मे कुछ भूल रह गयी है। शुद्ध पाठ इस प्रकार है :—

१०८—बीमारीकी हालतमे डॉक्टरका सरटीफिकेट पेश करनेपर हक मुताबिक छुट्टी दी जावेगी। इससे उपरान्त यदि छुट्टी लेगा तो अवैतनिक छुट्टी दी जावेगी, पर कुल छुट्टी ६ माससे ज़ियादा न चढ़ेगी।